१८५७ का

भारतीय स्वातंत्र्य-समर

★

[illegible]

स्वा० वीर विनायक दामोदर सावरकर

[illegible]

[illegible]

★

[illegible]

निर्मल साहित्य प्रकाशन

[illegible]

[illegible]

[illegible]

प्रकाशक :

वि. श्री जोगळेकर

निर्मल साहित्य प्रकाशन

६९३, बुधवार पेठ, पुणे २.

(हिंदी : २)

लेखक से सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक :

वि. श्री. जोगळेकर

संजीवन मुद्रणालय

६९३, बुधवार, पुणे २.

कुछ सम्मतियाँ

पूज्य श्री जयचंद्रजी विद्यालंकार —

" श्री सावरकरजी की लिखी " १८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य समर " (अंग्रेजी संस्करण) पू. श्री काशीप्रसादजी जायसवाल द्वारा मेरे पास पहुँच गयी थी और उसी के आधारपर मैंने अपनी ' अितिहास प्रवेश ' में ' स्वाधीनता का पहिला युद्ध ' यह अध्याय लिखा है। अब अिस महान प्रामाणिक ग्रंथ का हिन्दीमें सुन्दर अनुवाद कर श्री वैशंपायनजीने हिन्दीभाषी जनता का बड़ा उपकार किया है। "

नागरी प्रचारिणी पत्रिका —वर्ष ५३–अंक २ सं २००५

नागरी प्रचारिणी सभाका मुखपत्र ' नागरी प्रचारिणी पत्रिका ' ने लिखा है।

" अिस पुस्तकको पढ़कर मुखसे यही निकलता है कि यदि किसी प्रकार यह पोथी परतंत्र भारतके हाथोंमें पड़ जाती तो देशमें वैसीही क्रान्ती होती जैसी किसी समय फ्रान्स, और योरपके अन्य देशोंमें हुआी।

—अनुवादक (श्री वैशंपायन) ने अपनी कृतिमें मूल लेखककी भावना सुरक्षित रखनेका पूर्ण धैर्य स्तुत्य प्रयास किया है। (हिन्दी) भाषा की दृष्टिसे भी अनुवाद सुव्यवस्थित अेवं बोधगम्य है। — हरेकृष्ण

' राष्ट्रधर्म ' (लखनऊ) — " पुस्तक अत्यंत सुन्दर बनी है। चित्र भी प्रसंगोचित हैं "। अिस पुस्तक की सहस्र प्रतियाँ उत्तर प्रदेश सरकारने खरीदी है। "

पुरस्कार

जिस ग्रंथ की—

* कॉंग्रेसके अध्यक्ष श्रद्धेय बाबु पुरुषोत्तमदास टंडन, पं. मौलीचंद्र शर्मा, महत दिग्विजयनाथ इत्यादि विद्वानोंने प्रशंसा की है ।

* विशाल भारत (कलकत्ता), देशदूत (इलाहाबाद), आकाशवाणी (जालंदर), इत्यादि वृत्तपत्रोंने गौरव किया है ।

जिस ग्रंथको:—

* उत्तर प्रदेश, राज्य–सरकारने और इलाहाबाद विश्वविद्यालयने प्रतियॉं खरीदकर जिस ग्रंथका गौरव किया है ।

* ओरीसा, मध्यप्रदेश, ग्वालियार इत्यादि राज्य–सरकारोंने अधिकृत मान्यता दी है ।

* हिंदी साहित्य सभा–इन्दोर, बडोदरा राज्य इत्यादि द्वारा पारितोषिक दिया गया है ।

'१८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य-समर'

ग्रंथ की जीवनी

१८५७ के भारतीय स्वातंत्र्य समर के अिस महान् ग्रंथ में कही हुअी प्रामाणिक कथा अद्वितीय है। यह ग्रंथ अेक प्रामाणिक अितिहास के नाते संसार के किसी भी अच्छे ग्रंथालय का गौरव बढ़ायगा, किन्तु अिस ग्रंथ के अद्वितीय लेखक के समान ही अिस ग्रंथ की जीवनी भी अद्भुत प्रसंगों से भरी हुअी है। श्रीकृष्णचंद्र के समान अिस ग्रंथ को गर्भ में ही मार डालने के प्रयत्न हुअे; जन्म के बाद दूर दूर भागना पड़ा, जनता के हाथ में पहुँचने को वर्षों तक झगड़ना पड़ा है।

अिस ग्रंथ का उद्देश और नाम का स्पष्टीकरण लेखकही ने किया है। वीर सावरकरने लंदन में रहते हुअे 'अभिनव भारत' की ओर से स्वसंपादित 'तलवार' पत्र के अेक लेख में, जो पत्र पॅरिस से प्रकट होता था, लिखा था, 'भारत माता स्वाधीन बनाने के लिअे हिंदुस्थान फिर अेक बार अुत्थान करे और फिर से अेक सफल स्वातंत्र्ययुद्ध करे यही १८५७ के भारतीय स्वातंत्र्य–समर ग्रंथ लिखने का हेतु है।' लेखक का विचार था, कि आगामी स्वातंत्र्ययुद्ध में राष्ट्र की सर्वांगपूर्ण सिद्धता होने के लिअे जिस संगठन और कार्यपद्धति का अवलंबन क्रांतिदल के अनुयायियों को करना पड़ेगा अुस की रूपरेखा अिस अैतिहासिक ग्रंथ के द्वारा क्रांतिकारियों के सामने प्रस्तुत हो जाय। १८५७ में छेड़े गये स्वातंत्र्य समर का दिव्य तथा अुदात्त आदर्श राष्ट्र के सामने यदि न रखा जाता, तो क्रांति–संदेश

तथा क्रांति के निश्चित सिद्धान्तों का भारत भर में प्रभावी प्रचार अिस तरह न हो पाता। सो, ५७ के क्रांतिवीरों के ओजपूर्ण शब्दों द्वारा और अुस से भी अधिक ओजपूर्ण कामों द्वारा क्रांति-संदेश देने के लिअे वीर सावरकरजी ने अुन क्रांतिवीरों का स्मरण किया। संपूर्ण राजनैतिक स्वातंत्र्य तथा अुसे प्राप्त करने के लिअे विदेशी राजसत्ता के साथ सशस्त्र युद्ध द्वारा राष्ट्रीय क्रांति, यही अेकमात्र और अन्तिम साधन होने की निश्चिति-ये दोनों बातें, अुस समय (१९०८) हिंदुस्थानमें चालू राजनैतिक विचारगति तथा कृति के क्षितिज पर भी न अुगी थीं। अुस समय के गरम दल ने यह कुछ विचित्र तथा असम्भव सा कह कर अुस का नाम लेना भी अच्छा न माना था; नरम दल के नेताओं ने तो अिन कल्पनाओं ही को दोषपूर्ण बता कर घोर निंदा की और कुछ नीतिवादी धर्मध्वजियों ने अनैतिकता के नाम पर अुन का धिक्कार किया। अुस समय की अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कॉंग्रेस) की आकांक्षा तथा साधना केवल यहॉंतक ही सीमित थी, कि हर समस्या समझौते से सुलझायी जाय और 'सुधारों' की ओर ऑंख लगाये रहे। स्वाधीनता के लिअे समर तो दूर, स्वातंत्र्य, क्रांति ये शब्द भी अुस समय के माननीय लब्धप्रतिष्ठ देशभक्तों को अपरिचित थे, अुन की बुद्धि की पहुँच के बाहर थे। सावरकरजी ने अेक अितिहास-लेखक के नाते अिस ग्रंथ का नाम केवल 'राष्ट्रीय अुत्थान का अितिहास' या '१८५७ का युद्ध' अैसा ही कुछ नहीं रखा। कारण स्पष्ट है। तत्कालीन भारतीय देशभक्तों के प्रतिदिन के विचारों में कम से कम अितने शब्दों को घुला देने और अिन शब्दों की तह में हानेवाले अुदात्त ध्येयवाद से नौजवानों को अनजान में भी प्रभावित करने के लिअे सावरकरजीने अिस ग्रथ का नाम जानबूझ कर '१८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य-समर' रखा। सशस्त्र क्रांति को सफल बनाना हो तो राजनीतिज्ञता और देशभक्ती की लहर सैनिकों तथा सब सेनाविभागों तक पहुँचाने की अत्यंत आवश्यकता का अनुरोध सावरकरजी आग्रह के साथ करते आये हैं। ५७ के अिस क्रांतियुद्ध के अितिहासने निस्संदेह सिद्ध कर दिखाया है, कि ९० वर्षों के पूर्व हमारे पुरखाओंने, संपूर्ण

स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये अुस राष्ट्रीय संघर्ष में सेना के भारतीय सैनिकों की सशस्त्र तथा सक्रिय सहायता प्राप्त की थी और मातृभूमि की मुक्ति के लिये भीषण युद्ध रचा था। सावरकरजीने देखा, कि क्रांतिकारी दृष्टिसे अिस अितिहास को भारतीयों के सामने रखा जाय तो भारतीय नौजवानों में अेक नयी लहर, अेक नयी स्फुरणा अुमड पडेगी और अुन के हृदय में अेक नयी श्रद्धा घर करेगी, कि पराधीनता को नष्ट करने के लिये आज की स्थिति में अन्य सब मार्गों की विफलता देख, ५७ का प्रयोग यदि फिर दुहराया जाय तो अुस की सफलता, पहले से अधिक निश्चित रूपसे, प्राप्त करने की पूरी सम्भावना है।

सावरकरजीने अिस उद्देश से ग्रंथ की कल्पना की। भारतीयों को हृदय की भाषा में यह अितिहास समझाने के लिये

मराठीमें ग्रंथ लिखा।

और सावरकरजी की आयु केवल २३ साल की थी, जब १९०८ में लंदन में यह ग्रंथ मराठी भाषामें पूर्ण किया। लंदन की 'फ्री अिंडिया सोसाअिटी' की साप्ताहिक प्रकट बैठकों में सावरकरजी अपने भाषणों में अपने ग्रंथ के कुछ अध्यायों का अंग्रेजी अनुवाद सुनाया करते थे। किन्तु अिससे या अन्य किसी कारण से अंग्रेजी खुफियों को अिस ग्रंथ के रूप का अंदाजा लग गया और अुन्होंने अपना निश्चित मत अूपरी अधिकारियों को बताया, कि यह ग्रंथ प्रभावशाली, अत्यंत विद्रोहजनक क्रांतिकारी साहित्य है। थोडेही दिनों में मूल मराठी ग्रंथ से दो अध्याय गायब हुअे मालूम पडे। बादमें पता चला, कि खुफियोंने अपने हस्तकों द्वारा अुन्हे चुराकर स्कॉटलंड यार्ड में पहुँचा दिये थे। फिरभी क्रांतिकारियों ने मराठी पाण्डुलिपी अत्यंत गुप्ततासे तथा भारतीय खुफियाविभाग अेवं डाक विभाग की काकदृष्टिसे बचाकर भारत में अिच्छित स्थानपर पहुँचा दिया। किन्तु क्रांति की भीषणता से भय खाकर महाराष्ट्र की बडी बडी मुद्रण संस्थाओंने ग्रंथ छापने का साहस करना स्वीकार न किया। निदान, 'अभिनव भारत' के अेक सदस्यने अपने ही मुद्रणालय में छापनेका बीडा अुठाया। किन्तु लंदन से भारत के खुफिया विभाग को सावधान किये

जानेसे अिस ग्रंथ के छपने की भनक अुसके कान में पडी। महाराष्ट्र की बडी बडी तथा लब्धप्रतिष्ठ मुद्रण-संस्थाओं की एक ही समय में अचानक छापा मारकर तलाशियाँ शुरू हुअीं। सौभाग्य से अेक पुलीस के अफसर द्वाराही अिस की खबर अुस साहसी सदस्य को मिली और पुलीस वहाँ पहुँचने के पहलेही मराठी पाण्डुलिपि सुरक्षित स्थानपर पहुँच गयी। लाचार होकर 'अभिनव भारत' वालोंने वह पाण्डुलिपि लदन के बदले पॅरिस भेज दी और वहाँसे ग्रथकार के पास पहुँचा दी गयी।

भारत में अिस पुस्तक का मुद्रण असम्भव सिद्ध होनेपर-ध्यान रहे यह १९०८ का समय था-अुसे जर्मनी में छपवाना तय हुआ, क्यों कि, वहाँ संस्कृत साहित्य छपता था। किन्तु वहाँ के देवनागरी टक (टाअिप) बिलकुल रद्दी और अजीब ढंग के होनेसे और विशेषतया, जर्मन जुडारियों को [कंपाॅझिटरों को] मराठी भाषा किस चिडिया का नाम है यह मालूम न होनेसे, धन और समय का काफी खर्च होने के बाद अुस विचार को रद्द कर दिया गया।

सब प्रकार से असुविधाअें देख कर, पराधीनता की बलिहारी से अिस

ग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद

करना अभिनव-भारत वालोंने तय किया और तदनुसार आअि. सी. अेस् के विद्यार्थियों तथा बॅरस्टरी पढनेवालों ने अनुवाद करने का काम अुठाया। भारतीय विद्यापीठ के कीर्तिप्राप्त अुपाधिधारी ये लोग 'अभिनव भारत' अिस गुप्त क्रांति सस्था के सदस्य थे। अनुवाद पूरा होनेपर श्री. वी. वी अेस् अय्यर की देखरेख में अिंग्लैंडही में मुद्रित करने की सोची गयी। किन्तु ब्रिटिश गुप्तचर कोअी मक्खियाँ थोडे ही मार रहे थे? अुन्होंने जब्ती की डाँटडपट से तथा अन्य कारवाअियों से अिंग्लैंड भर में अुसे छापना असम्भव कर दिया। तब अंग्रेजी पांडुलिपि पारिस भेज दी गयी। किन्तु अुस समय की फ्रान्सीसी सरकार अंग्रेजों की भींगी बिल्ली थी। जर्मनी के हमले का डर होने से फ्रान्स को अिंग्लैंड का मुँह ताकना पड रहा था, जिस से अंग्रेजों के अिशारे पर फ्रान्सीसी

गुप्तचरों ने 'अभिनव भारत' की हलचलों को दबा देने की चेष्टा चलायी थी। अिस से फ्रान्स में भी अिस ग्रंथ की छपाअी न हो सकी। किन्तु क्रांतिकारी भी कच्ची मिट्टी के नहीं बने थे। कभी चालें चलकर अुन्हों ने हॉलैंड की अेक मुद्रण संस्था को अंग्रेजी पुस्तक छापने पर राजी कर लिया और अिधर क्रांतिकारियों में जोरदार अफवा अुडायी, कि फ्रान्स ही में पुस्तक छप रही है। अंग्रेजी खुफिया-विभाग दंग रह गया। फ्रान्स के सभी मुद्रणालयों को अुन्हों ने छान मारा और अिधर हॉलडमें, ब्रिटिशों को सुराग मिलने के पहले ही, पुस्तक छप गयी। अुस संस्करण की सभी प्रतियाँ हॉलंड से फ्रान्स में पहुँचायी गयीं और गुप्तरूपेण अुनका प्रसार करने के लिअे छिपा रखी गयीं।

अिस ग्रंथ की पाण्डुलिपि हॉलंड पहुँचने के पहले सावरकरजी की प्रामाणिक जानकारी तथा क्रांतिकारी भावनाओं से पूर्ण लेखन के प्रभाव की कल्पना से ब्रिटिश तथा भारतीय ब्रिटिश सरकार पतलून में काँपने लगीं। मुद्रण-भाषण-लेखन स्वातंत्र्य का गला फाडकर पुकार करनेवाले अंग्रेजों के शासकों ने, जो पुस्तक अबतक छपी नहीं थी और यह बात निश्चितरूपसे वे जानते थे, उसपर पाबंदी लगा दी। प्रकाशन के पहले ही पुस्तक पर मनाही! अिंग्लंड के समाचारपत्रों ने अिस अन्याय पर सरकार को खूब रगेदा। मुद्रण-स्वातंत्र्य का गला घोंटनेवाली मनाही आज्ञा जब सावरकरजी पर जारी की गयी तो अुन्होंने लन्दन टाअिम्स में पत्र लिखकर सरकार पर कडी आलोचना की भरमार की। अुन्होंने लिखा था—स्वयं सरकार कहती है, कि मूल पाण्डुलिपि छपने को कहाँ गयी है, अुसे वह नहीं जानती। तो फिर सरकार किस सबूत पर कहती है, कि यह पुस्तक राजद्रोह की प्रेरणा करनेवाला भयकर साहित्य है, और वह भी प्रकाशित होने के पहले! अिसके लिअे दो ही तर्क सम्भवनीय हो सकते हैं—या तो, सरकार के पास ही यह पाण्डुलिपि होनी चाहिये, या तो न होनी चाहिये। यदि हाँ, तो वैध अुपाय यही था, कि सावरकर जी को राजद्रोह के अभियोग में न्यायालय के सामने खडा किया जाय; यदि ना, तो अनधिकार तथा

जानेसे अिस ग्रंथ के छपने की भनक अुसके कान में पडी। महाराष्ट्र की बडी बडी तथा लब्धप्रतिष्ठ मुद्रण–संस्थाओं की एक ही समय में अचानक छापा मारकर तलाशियाँ शुरू हुओं। सौभाग्य से अेक पुलीस के अफसर द्वाराही अिस की खबर अुस साहसी सदस्य को मिली और पुलीस वहाँ पहुँचने के पहलेही मराठी पाण्डुलिपि सुरक्षित स्थानपर पहुँच गयी। लाचार होकर 'अभिनव भारत' वालोंने वह पाण्डुलिपि लंदन के बदले पॅरिस भेज दी और वहाँसे ग्रंथकार के पास पहुँचा दी गयी।

भारत में अिस पुस्तक का मुद्रण असम्भव सिद्ध होनेपर–ध्यान रहे यह १९०८ का समय था–अुसे जर्मनी में छपवाना तय हुआ, क्यों कि, वहाँ संस्कृत साहित्य छपता था। किन्तु वहाँ के देवनागरी टंक (टािअप) बिलकुल रद्दी और अजीब ढंग के होनेसे और विशेषतया, जर्मन जुडारियों को [कंपॉझिटरों को] मराठी भाषा किस चिडिया का नाम है यह मालूम न होनेसे, धन और समय का काफी खर्च होने के बाद अुस विचार को रद्द कर दिया गया।

सब प्रकार से असुविधाअें देख कर, पराधीनता की बलिहारी से अिस

ग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद

करना अभिनव–भारत वालोंने तय किया और तदनुसार आअि. सी. अेस् के विद्यार्थियों तथा बॅरस्टरी पढनेवालों ने अनुवाद करने का काम अुठाया। भारतीय विद्यापीठ के कीर्तिप्राप्त अुपाधिधारी ये लोग 'अभिनव भारत' अिस गुप्त क्रांति संस्था के सदस्य थे। अनुवाद पूरा होनेपर श्री. वी. वी. अेस् अय्यर की देखरेख में अिंग्लैंडही में मुद्रित करने की सोची गयी। किन्तु ब्रिटिश गुप्तचर कोअी मक्खियाँ थोडे ही मार रहे थे? अुन्होंने जब्ती की डाँटडपट से तथा अन्य कारवाअियों से अिंग्लैंड भर में अुसे छापना असम्भव कर दिया। तब अंग्रेजी पांडुलिपि पारिस भेज दी गयी। किन्तु अुस समय की फ्रान्सीसी सरकार अंग्रेजों की भीगी बिल्ली थी। जर्मनी के हमले का डर होने से फ्रान्स को अिंग्लैंड का मुँह ताकना पड रहा था, जिस से अंग्रेजों के अिशारे पर फ्रान्सीसी

गुप्तचरों ने 'अभिनव भारत' की हलचलों को दबा देने की चेष्टा चलायी थी। जिस से फ्रान्स में भी जिस ग्रंथ की छपाओी न हो सकी। किन्तु क्रांतिकारी भी कच्ची मिट्टी के नहीं बने थे। कओी चालें चलकर अुन्होंने हॉलैंड की अेक मुद्रण संस्था को अंग्रेजी पुस्तक छापने पर राजी कर लिया और अिधर क्रांतिकारियों ने जोरदार अफवा अुडायी, कि फ्रान्स ही में पुस्तक छप रही है। अंग्रेजी खुफिया-विभाग दंग रह गया। फ्रान्स के सभी मुद्रणालयों को अुन्होंने छान मारा और अिधर हॉलैंडमें, ब्रिटिशों को सुराग मिलने के पहले ही, पुस्तक छप गयी। अुस संस्करण की सभी प्रतियाँ हॉलैंड से फ्रान्स में पहुँचायी गयीं और गुप्तरूपेण अुनका प्रसार करने के लिअे छिपा रखी गयीं।

अिस ग्रंथ की पाण्डुलिपि हॉलैंड पहुँचने के पहले सावरकरजी की प्रामाणिक जानकारी तथा क्रांतिकारी भावनाओं से पूर्ण लेखन के प्रभाव की कल्पना से ब्रिटिश तथा भारतीय ब्रिटिश सरकार थरथर में काँपने लगी। मुद्रण-भाषण-लेखन स्वातंत्र्य का गला फाडकर पुकार करनेवाले अंग्रेजों के शासकों ने, जो पुस्तक अबतक छपी नहीं थी और यह बात निश्चितरूपसे वे जानते थे, उसपर पाबंदी लगा दी। प्रकाशन के पहले ही पुस्तक पर मनाही! अिंग्लैंड के समाचारपत्रों ने अिस अन्याय पर सरकार को खूब रगेदा। मुद्रण-स्वातंत्र्य का गला घोंटनेवाली मनाही आज्ञा जब सावरकरजी पर जारी की गयी तो अुन्होंने लंदन टाअिम्स में पत्र लिखकर सरकार पर कडी आलोचना की भरमार की। अुन्होंने लिखा था—स्वयं सरकार कहती है, कि मूल पाण्डुलिपि छापने को कहाँ गयी है, अुसे यह नहीं जानती। तो फिर सरकार किस सबूत पर कहती है, कि यह पुस्तक राजद्रोह की प्रेरणा करनेवाला भयंकर साहित्य है, और वह भी प्रकाशित होने के पहले? अिसके लिअे दो ही तर्क सम्भवनीय हो सकते हैं—या तो, सरकार के पास ही यह पाण्डुलिपि होनी चाहिये, या तो न होनी चाहिये। यदि हाँ, तो वैध अुपाय यही था, कि सावरकर जी को राजद्रोह के अभियोग में न्यायालय के सामने खडा किया जाय; यदि ना, तो अनधिकार तथा

अविश्वासी समाचारों का विश्वास कर सरकार किस मुँहसे निश्चित मत देती है, कि अिस पुस्तक में राजद्रोह ही प्रतिपादित है ?" टाअिम्स ने केवल यह पत्र छापा ही नहीं अपनी ओरसे यह भी जोड दिया, कि 'जब सरकार ने स्पष्टतया अुद्दण्डता से पुस्तकपर मनाही लगाने का असाधारण काम किया है, तब मालूम होता है, दाल में अवश्य कुछ काला है। [समथिंग व्हेरी रॉटन अिन दि स्टेट ऑफ डेनमार्क]

हॉ, तो अंग्रेजी संस्करण छप जानेपर क्रांतिकारियोंने अुसकी सैंकडों प्रतियाँ कअी तरकीबें लडाकर भारत में भेज दीं। अुनमें अेक तरकीब यह थी, कि अुन प्रतियोंपर 'पिक्‌विक्‌ पेपर्स,' 'स्कॉटस्‌ वर्क्स,' 'डॉन क्विक‌जोट' आदि झूठे नाम छपे लिफाफों में लपेटकर वे भेजी गयीं। कुछ प्रतियॉं बनावटी पेंदियों तथा खानोंवाली सदूकों में भेज दी गयीं। अिसतरह का अेक सदूक स्व सर सिकदर हयात खॉं, पंजाब के प्रधानमत्री जो सावरकरजी की 'अभिनव भारत' गुप्त सस्था के सदस्य थे और लदनमें अुस समय विद्यार्थी थे, भारत में ले आये थे और बम्बअी के काकदृष्टि चुगी अधिकारियों की कअी ऑखों में धूल झोंककर वह संदूक सुरक्षित निकल गया; अिसी तरह कअी पार्सलें भी निकल गयीं। और यह पुस्तक कअी बडे बडे नेताओं, अभिनव भारत के सदस्यों, महाविद्यालयों, ग्रंथालयों तथा क्रांतिकारियों के सहानुभूतिको तथा कुछ भारतीय सैनिकों के पास पहुँच गयी। अिस पुस्तक के प्रथम संस्कारण की सभी प्रतियॉं, मय भेजने के खर्च के, 'अभिनव भारत' ने विनामूल्य वितरित की। फिर फ्रान्समें यह पुस्तक प्रकट रूप से १७ आगस्त १९०९ को प्रकाशित की गयी और आयर्लंड, फ्रान्स, रूस, जर्मनी, मिश्र और अमरीका के क्रांतिकारियों ने अिस पुस्तक का अच्छा स्वागत किया।

'अभिनव भारत' के क्रातिकारी सगठन को कुचल देने के लिअे अिंग्लैंड तथा भारत के शासकोंने १९१० में अनेक यंत्रणाओं से क्रातिकारियों को हैरान करने का अेक जोरदार कार्यक्रमही जारी किया था। कअी भारतीयों को फॉंसी दिया गया; कअी कालेपानी

पर भेजे गये; सैंकडों को १० से १४ वर्षोंतक की सश्रम कारावास की सजाओं दी गयीं। वीर सावरकरजी को तो दो जन्मों की (५० साल) सजा देकर अण्डमान भेजा गया।

जितनी भयंकर चोटें होने पर भी 'अभिनव भारत' के लाला हर दयाल, प्रख्यात साहसी श्रीमती कामा, चट्टोपाध्याय आदि क्रांतिकारियोंने जिस ग्रंथ का दूसरा संस्करण छापना तय किया। *श्री लाला हरदयालने अमरीका में* 'अभिनव भारत' की शाखा स्थापित कर 'गदर' नामक अेक समाचारपत्र शुरू किया। क्रांतिदल की सहायता के लिये

ग्रंथ का दूसरा संस्करण

प्रकट रूप से बेचना प्रारंभ हुआ। और अुस का अनुवाद अुर्दू, पंजाबी, तथा हिंदी में 'गदर' पत्र में क्रमशः प्रकाशित होने लगा, जिससे सैनिकों तथा खेती के लिअे कॅलिफोर्निया में बसे हुअे सिक्खों में नये जागरण की लहर दौडने लगी। जल्द ही १९१४ का युरोपीय महासमर छिडा। भारतीय सेना में विद्रोह पैदा करने की चेष्टा जिस समय की गयी, जिस में जिस ग्रंथ का काफी हाथ था। जिस पुस्तक की कअी प्रतियाँ अमरीका में १५०) रु में बिक गयी थीं।

वीर सावरकर के पकडे जाने पर मूल मराठी पाण्डुलिपि श्रीमती कामा के पास पारिस भेजी गयी। ब्रिटिश गुप्तचरों को जिसकी बू तक न मिले जिस लिअे श्रीमती कामाने

मूल मराठी पाण्डुलिपि का जेयर बैंक ऑफ पारिस में सुरक्षित रख दिया था। किन्तु जर्मनी के आक्रमण से तथा श्रीमती कामा की मृत्यु से न् पारिस बैंक रही, न 'जेवर' का ग्राहक! बहुत खोज करने पर अुस का कहीं पता न लगा। मराठी साहित्य की अमिट हानि कर यह ग्रंथराज नष्ट हो चुका!

अंग्रेजी प्रति के कहीं और भी संस्करण निकले होंगे, किन्तु हमारी जान में जितने प्रयत्न हैं अुन्हीं का लेखा यहाँ दिया गया है।

सं. १९१७ में राजकोट जेल के कार्यालय में बैठ कर हॉलैंड से प्राप्त संस्करण की तीन प्रतियाँ टंकित (टाअिप) कर अुस के अंदर देनेवाले दो चित्रों की भी प्रतियाँ अनुवादक ने बनायी थीं। तीस वर्षों के अुथलपुथल के बाद भी अुनमेंसे अेक प्रति आज सुरक्षित है।

अिस ग्रंथ का तीसरा संस्करण

'हिंदुस्थान सोशिआलिस्ट रिपब्लिकन असोसिअेशन' के तत्त्वावधान में हुतात्मा सरदार भगतसिंहजी ने १९२९ के अन्त में, गुप्तरूपसे, छपाया था अब तक के संस्करणों पर लेखक का नाम 'अेन अिंडियन नॅशनलिस्ट' था। भगतसिंहजी द्वारा प्रकाशित संस्करण पर वीर सावरकरजी का नाम दिया हुआ था। अिस का प्रचार भी ठीक हुआ। गुप्तरूपसे प्रकाशित होने पर भी अच्छे मूल्यपर काफी संख्या में लोगों ने पुस्तक खरीदी और सरकारने भी काफी प्रतियाँ जब्त कीं। १९३०-३१ में 'लॅमिंग्टन रोड शूटिंग केस' नाम से प्रसिद्ध

अिस ग्रंथ के तामिल संस्करण

प्रसिद्ध किया, अिस का प्रथम भाग कोलंबोमें [ज्वालामुखी] नामसे प्रकाशित हुआ था। अिस ग्रंथ का पूरा अुपयोग नेताजीने किया था, यहाँ तक, कि 'चलो दिल्ली' अमर नारा भी सावरकरजी की अिसी ग्रंथ के प्रथम खण्ड से लिया गया।

१९३७ में जब पहली बार राष्ट्रीय महासभा के चुने प्रतिनिधियों का मंत्रिमंडळ प्रांत प्रांत में स्थापित हुआ, तब जप्त साहित्य को मुक्त करवाने के लिअ जनताने बडा आंदोलन किया; किन्तु अन्य पुस्तकों से मनाअी हटाने परभी सावरकरजी के अिस महान् ग्रंथ की जप्ती हटाने का साहस ये कांग्रेसी स्वातंत्र्योपासक न कर पाये!

किन्तु दूसरी बार १९४६ में प्रांतिक शासनसूत्र कॉंग्रेसियोंने सम्हाला तब बम्बअी के नौजवानोंने गुप्तरूपसे अंग्रेजी संस्करण का पुनर्मुद्रण किया और मन्त्रिमंडल को चेतावनी दी, कि 'जेल जानेकी जोखम उठाकर भी, हम यह क्रांति–गीता बेचने जा रहे हैं।' किन्तु अिधर मंत्रिमण्डलने समग्र सावरकर साहित्य की जप्ती रद् कर देने की घोषणा की और अिस तरह ३८ वर्षों का अन्याय दूर हो गया। सारा भारत बम्बअी मंत्रिमण्डल को धन्यवाद देगा!

अब अिसका अंग्रेजी सुंदर संस्करण प्रसिद्ध हो चुका है तथा मराठी 'आवृत्ति' भी निकल गयी है।

अिस प्रकार भारतीय स्वाधीनता के लिअे 'अभिनव भारत' ने सशस्त्र क्रांति का संगठन शुरू किया तब से, नेताजी सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद् सेना के साथ चढाई तक; सब को प्रेरणा देनेवाला यह अनमोल ग्रंथ क्रांति *कारियों का प्रथसाहब बन गया था और आगामी* क्रांतिकारियों का दीपस्तम्भ बना रहेगा। ब्रिटिश साम्राज्य की समस्त शक्ति, कंस की तरह, अिस ग्रंथ के श्रीकृष्ण को मिटाने में असमर्थ रही; क्यों कि, गोकुलवासी जनों के समान देशभक्त क्रांतिकारियोंने अुसे प्राणों के अंचल में छिपा कर अुसकी रक्षा की। कहते हैं अितिहास की पुनरावृत्ति होती है; गोकुल से यह नवकिशोर अब प्रकट रूप से वासुदेव बना है! सभी छल–कपट तथा दुष्ट हमलों से बचकर यह कृष्णचम्

अब मथुरा में पहुँच रहा है और अनेक यन्त्रणाओं, वनवास, देह दंड, काला पानी, अपनों ही से दुःख को सह कर **क्रांति के द्रष्टा वीर सावरकरजी** वसुदेव के समान कंस के कारागार से मुक्त हो कर अपने लाडले ग्रंथ की विजय को देखने के लिअे अुत्सुक है। भारत का अहो भाग्य !

जिस अिच्छा और आकांक्षा से वीर सावरकरजी ने मात्र २३ वर्ष की आयु में यह 'अितिहास' लिखा, अुस को सफल होते देखने को आप अुत्सुक है। १८५७ का स्वातंत्र्य-समर समाप्त हुआ यह विचार ही गलत है। भारतीय स्वाधीनता के रणयज्ञ का वह अेक अध्याय, अेक काण्ड था ! ५७ का यह अितिहास विद्यापीठों में केवल अेक प्रामाणिक विवरण के तौर पर पढाया जाने में सावरकरजी को संतोष नहीं है; वह भविष्य में मार्गदर्शक तथा चैतन्य की स्फूर्ति का अखण्ड सोता बन कर रहेगा–रहना चाहिये।' सो, भारत संपूर्ण स्वतन्त्र बन जाने तक अिस 'अितिहास' का कार्य पूरा नहीं होगा। कंस को मार-कर द्वारिका में अेक नया राज्य श्रीकृष्णचन्द्र ने बसाया; यह ग्रंथ भी अब मथुरा पहुँच चुका है और केवल वहीं नहीं पश्चिम में नया राज खडा कर भारत की अखण्डता को अुसे सिद्ध करना है, तब तक १८५७ का रणयज्ञ पूरा नहीं होगा। १९०७ की १० मअी को लंदन में, १८५७ को ५० वर्ष पूरे होने के अुपलक्ष्य में, अेक समारोह मनाया गया था। अुस समय युवक सावरकरजी ने अपने भाषण में कहा था:—

'१० मअी १८५७ को प्रारंभित युद्ध १० मअी १९०७ को समाप्त नहीं हुआ है और अुस १० मअी तक समाप्त न होगा, जबतक कि साधना पूरी होकर भारतमाता संपूर्ण स्वाधीनता को प्राप्त न करेगी !

पाठक ! अिस ग्रंथ को पढने के पहले अितना पर्याप्त नहीं है ?

२३-२४ वर्ष के सावरकरजी

लंदन के 'इंडिया हाउस' में १८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य समर लिख रहे हैं।

कॉपी राइट
विमल साहित्य प्रकाशन, पुणे २

प्रथम संस्करण में ग्रंथकर्ता की भूमिका

अब पचास वर्ष बीत चुके हैं, परिस्थिति बदल चुकी है, दोनों दलों के प्रमुख अभिनेता काल के गाल में छिप चुके हैं, सो; १८५७ का युद्ध अब प्रचलित राजनैतिक क्षेत्र की मर्यादा लाँघ चुका है; जिससे अुसे 'अितिहास' की कक्षामें रखना योग्य होगा।

अिस दृष्टिसे जब मैं अितिहासकार की आँखों से अुस ज्ञान–गर्भ तथा भव्य महादृश्य की खोज करने बैठा तो १८५७ के अुस 'बलवे' में स्वातंत्र्य समर की जगमगाहट देख मैं दंग रह गया। मृत वीरों की आत्मायें हुतात्मता के तेजोवलय में रची हुअी थीं; भस्मराशी में तेजस्वी प्रेरणा के स्फुलिंग दीख पडे। अितिहास के अेक अत्यंत अुपेक्षित कोने में गहरे दबे पडे अुस दृश्य को पाकर, मेरे देशबंधु भी अत्यंत मधुर निराशा का अनुभव करेंगे, जब कि, मैं खोज की किरणों में अुसके दर्शन कराअूँगा। मैंने यही चेष्टा की और आज मैं भारतीय पाठकों के सामने, यह चौंका देनेवाला किन्तु प्रामाणिक, १८५७ के महत्त्वपूर्ण घटनाओं का, चित्र रखने में समर्थ हुआ हूँ।

जिस राष्ट्र को अपने अतीत का सच्चा भान न हो, अुसके लिअे कोअी भविष्य नहीं है। अिसी के साथ यह भी सत्य है, कि हर राष्ट्र को केवल गर्वभरे अतीत की क्षमता ही नहीं विकसित करनी चाहिये, भविष्य को सुधारने के लिअे अुसका अुपयोग करने के ज्ञान की भी योग्यता होनी चाहिये। राष्ट्र को अपने देश के अितिहास का दास नहीं, स्वामी रहना चाहिये। क्यों कि, अतीत में किये हुअे कुछ कामों का फिर से अुसी तरह दुहराना महत्त्वपूर्ण होनेपर भी निरी मूर्खता है। शिवाजी महाराज के समय मुसलमानों के प्रति द्वेषभाव न्यायपूर्ण और आवश्यक था; किन्तु केवल अिस बूतेपर, कि हमारे

पुरखाओं का मन अुसी द्वेषसे भरा हुआ था, आज भी अुसी भाव को अुभाडना अन्याय और मूर्खता होगी।

अिस ग्रंथ में दिये गये सब प्रमाण लगभग अंग्रेज लेखकों के ही हैं; अुनके अपने पक्ष के कर्तृत्व का चित्र जिस विस्तार तथा श्रद्धा से रंगा है अुसी तरह दूसरे पक्ष को भी न्याय करना अुनके लिये असम्भव हो गया होगा। हो सकता है, आवश्यक हुआ होगा, कि अिस ग्रथ में वर्णित के अलावा दूसरे कअी प्रसग अनुल्लेखित रह गये हों, अिस ग्रंथ में कअी प्रसंग गलत तरीके से वर्णित हों। किन्तु यदि कोअी देशभक्त अितिहासकार अुत्तर भारत में जाय और अुन लोगों के मुँह से, जिन्होंने अुस प्रलय को देखा हो या अुस युद्ध में शायद अग्रसर हो लडे हों, जानकारी प्राप्त करे, तो अब भी अिस महान् युद्ध के बारे में सच्ची और ठीक बातें सुरक्षित रखने के साधन मिल जायँ। जल्द से जल्द यह उद्योग न किया जाय तो दुर्भाग्य से ये साधन हाथ से निकल जायँगे। अेक या दो दशकों में, अुस युद्ध में हाथ बँटानेवाली पीढी की पीढी, फिरसे कभी न लौटने के लिअे कालकवलित हो जायगी, तो अुन वीरों के प्रत्यक्ष दर्शन करने का आनद तो दूर, अुनके किये कामों का लेखा भी अितिहास में अधूरा रह जायगा। बहुत देरी होने के पहले ही, कोअी देशभक्त अितिहासकार अिस हानि से बचने के लिअे कटिबद्ध न होगा?

अिस ग्रथ में वर्णित महत्त्वपूर्ण घटनाओं तथा अितिहास के प्रमुख सूत्र के समान ही, छोटा से छोटे सदर्भ या अुल्लेख और अत्यत साधारण बात को प्रमाणित ग्रथों के आधार से सिद्ध किया जा सकता है।

विराम करने के पहले मै अेक अिच्छा प्रकट करना चाहता हूँ, कि किसी भारतीय सज्जन की लेखनी से अत्यत त्वरित १८५७ की कहानी अैसी लिखी जाय, जो देशभक्तिपूर्ण होने पर भी प्रामाणिक हो और बहुत विस्तारसे कही जानेपर भी सुसंगत हो; और अैसे सुदर कार्य के कारण मेरा यह नम्र लेखन जल्द ही विस्मृत हो जाय।

ग्रंथकर्ता

संदर्भ-ग्रंथ

— अंग्रेजी —

[पहले पुस्तक का नाम फिर लेखक का नाम है।]

(१) दि मॉर्क्विस ऑफ डलहौसीज ॲडमिनिस्ट्रेशन ऑफ ब्रिटिश अिंडिया—सर अेडविन आर्नोल्ड

(२) दि हिस्टरी ऑफ अिंडियन म्यूटिनी—चार्ल्स बॉल

(३) अे लेडीज अेस्केप फ्रॉम ग्वालियर—श्रीमती कूपलंड

(४) दि अिंडियन रिबेलियन; अिट्स् कॉजस ॲन्ड रिजल्टस् अिन अे सीरीज ऑफ लेटर्स—डॉ अलेक्झांडर डफ

(५) लेटर्स ॲन्ड डिस्पॅचेस्—सर विन्सेंट आयर.

(६) रेमिनिसन्सिस ऑफ दि ग्रेट म्यूटिनी १८५७-५९—विलियम फोर्ब्स्-मिचेल

(७) रियल डेन्जर अिन इंडिया—फॉर्नेट

(८) स्टेट पेपर्स (कभी संस्करणों)—जार्ज विलियम फॉरेस्ट

(९) अिन्सिडेन्ट्स अिन दि सीपॉय वॉर १८५७-५८—(सर होप ग्रँट के व्यक्तिगत जर्नलों से संगृहित, जिस में अेच नॉलिस की टिप्पणियों के कभी अध्याय जोड़ दिये हैं)—सर जेम्स होप ग्रँट

(१०) ॲन अकाअुंट ऑफ दि म्यूटिनीज अिन अवध ॲन्ड ऑफ दि सीज ऑफ लखनअू रेसिडेन्सी—मार्टिन रिचर्ड गबिन्स

(११) अेसेज ऑन दि अिन्डियन म्यूटिनी—हॉलोवे

(१२) हिस्टरी ऑफ दि अिन्डियन म्यूटिनी—होम्स.

(१३) वेस्टर्न अिंडिया बिफोर अॅन्ड ड्यूरिंग दि म्यूटिनी; पिक्चर्स ड्रॉन फ्रॉम लाअिफ—सर जॉर्ज ले ग्रॉद् जेकब.

(१४) अे हिस्टरी ऑफ दि सीपॉय वॉर अिन अिंडिया—३ खण्डों में–सर जॉन विलियम के.

(१५) हिस्टरी ऑफ दि अिन्डियन म्यटिनी—६ खण्डों में—के अॅन्ड मॅलेसन.

(१६) ट नेटिव्ह नॅरेटिव्हस्—मुअिनल–दिन–हसनखॉ

(१७) फिक्शन्स कनेक्टेड वुअिथ दि अिन्डियन आअुट-ब्रेक ऑफ १८५७ अेक्सपोज्ड—अेडवर्ड लेके.

(१८) सेन्ट्रल अिन्डिया ड्यूरिंग दि रेबेलियन ऑफ १८५७—थॉमस लो, अेम. आर. सी. अेस.

(१९) रेड पॅम्फलेट—के. बी. मॅलेसन.

प्रथम सस्करण में ग्रंथकर्ता की भूमिका

(२०) व्हाय अिज दि अिंग्लिश ओडियस टु दि नेटिव्हस् ऑफ अिंडिया—विलियम मार्टिन.

(२१) दि सीपॉय रिवोल्ट, अिट्स् कॉजेस् अॅन्ड कॉन्सि-क्वेन्सिस—हेन्री मीड.

(२२) अे अियर्स कॅम्पेनिंग अिन अिंडिया फ्रॉम मार्च १८५७ टु मार्च १८५८—ज्युलियस जॉर्ज मेडले.

(२३) नेटिव्ह नॅरेटिव्हस्—मेटकाफ.

(२४) फॉर्टिवन अियर्स अिन अिंडिया—लॉर्ड रॉबर्टस्.

(२५) माय डायरी अिन अिन्डिया अिन दि अियर १८५८—१८५९—दो खण्डों में सर वि. हॉवर्ड रसेल.

(२६) पर्सनल नॅरेटिव्ह ऑफ कानपुर—शेफर्ड.

(२७) रेकलेक्शन्स—सिल्वेस्टर.

(२८) दि पाटणा क्रायसिस—विलियम टेलर.

(२९) दि स्टोरी ऑफ माय लाअिफ—मीडोज टेलर

(३०) दि स्टोरी ऑफ कानपुर—मॉबरे थॉमसन

(३१) कानपुर—सर जॉर्ज ऑटो ट्रेवेलियन

(३२) कम्प्लीट हिस्टरी ऑफ दि ग्रेट सीपाय वॉर—चार्ल्स बॉल

(३३) दि डिफेन्स ऑफ लखनअू—विल्सन

(३४) हिस्टरी ऑफ दि सीज ऑफ दिल्ली—यहाँ मुलाजिम अेक अफसर.

(३५) मिलिटरी मॅरेटिव्ह—

(३६) मॅरेटिव्ह ऑफ दि अिंडियन रिव्होल्ट, आदि। ' अिलस्ट्रेटेड टाअिम्स ' से पुनर्मुद्रित

— मराठी —

(३७) शिपायांचें बंड—श्री विनायक कोंडदेव ओक

(३८) झांशीच्या राणीचें चरित्र—श्री पारसनीस

— बंगाली —

(३९) शिपाअी युद्धेर अितिहास

अनुवादक की भी सुनिये

पूज्य सावरकरजीने अुनकी अनोखी पुस्तक का अनुवाद हिन्दी में लिखने की अनुज्ञा देकर मेरा बडा अुपकार किया है। अहिन्दी प्रांतोंमें हिन्दी प्रचार का काम करने में मेरा यह भी मन्तव्य था, कि राष्ट्रभाषा का भण्डार अन्य भारतीय भाषाओं के अुत्तमोत्तम ग्रंथों के अनुवाद से भर दिया जाय। किन्तु, केवल अेकही पुस्तक अब तक मेरी सहायता से हिन्दी संसार के सामने आयी—वह है 'हिन्दुओं की अवनति की मीमांसा'। मैंने राष्ट्रभाषा की सेवा के बल पर वह धृष्टता की; भारतियोंने बडी सहृदयता से अुसका स्वागत किया। अब फिर मैंने दूसरी बार यह धृष्टता की है। किन्तु, अिस के बारे में मुझे झिझक नहीं, गर्व है। मै अपने भाग्य को सराहता हूँ; कि मैं अैसे महान् ग्रंथ के विचारों का वाहक—भारवाहक—बना। महाराणा प्रताप को वहन करने में अुन के घोडे को—चेतक को—जिस गर्व का अनुभव होता होगा, वहीं गर्व मुझे सावरकरजी के अनमोल विचारों को वहन करने में होता है। क्यों कि, जब यह ग्रंथ भारत में आ ही न सकता था, तब अिन के पन्नों को रट कर लोगों को सुनाने में मुझे बडा संतोष मिलता था। अिस ग्रंथने क्रांतिकारियों को जीवनमंत्र पढाया, सं. १९०९ में प्रकाशित अिस ग्रंथ में 'करेंगे या मरेंगे'; 'चलो दिल्ली' जैसे, आजकल भारतियों के गर्व के निधान बने, नारे प्रत्यक्ष दीख पडते हैं। अिस ग्रंथ को चोरी से पढने की लालसा श्री राजगोपालाचारी भी संवरण न कर पाये थे। १९३० में बम्बअी में अिस के पन्नों को टंकित कर खोंचेवालों द्वारा वितरित करने में हम लोग मस्त रहते थे। पूज्य सुभाष चन्द्रजी पर अिस ग्रंथने प्रभाव डाला था। अैसे ग्रंथ का परिचय पूर्णरूपेण मेरे

भारतीय बंधुओं को कराने में मुझे स्थान मिला, जिस से मैं मेरा जन्म सफल समझता हूँ।

तेअीस वर्ष की आयु ही क्या होती है ? पर अुसी आयु में पूज्य सावरकरजीने यह पुस्तक लिखकर हिंदुस्थान की अभूतपूर्व सेवा की है। स्व लोकमान्य टिलकजीने ' अितिहास छात्र वृत्ति ' के लिअे सावरकरजी के विषय में क्रांतिकारियों के भीष्म स्व पं शामजी कृष्ण वर्मा को अनुरोध कर भारतीय राष्ट्र का सदा के लिये अुपकार किया है, जिस से हर कोअी सहमत होगा, जो अिस ग्रंथ को समझ कर पढेगा।

ब्रिटिश म्यूजियम में संरक्षित सरकारी तथा अन्य पत्रों तथा सलेखों की अलमारियाँ भरी पडी हैं। अुनकी छानबीन कर राष्ट्रीय दृष्टिसे हमारे देश के महान् संघर्ष का प्रामाणिक अितिहास तो अिस ग्रंथ में हमी है–यही अुसका अेक अुद्देश है–किन्तु रूखी और गंभीर भाषा की क्लिष्टता से अपनी पाण्डित्याकी छाप लोगों के मनपर लगाने के लिये सावरकरजीने यह ग्रंथ नहीं लिखा। स्वतंत्रता के महान् यज्ञ को प्रत्यक्ष करने के लिये अिस ग्रंथ द्वारा यह गाथा गायी है। क्यों कि, सावरकरजी सर्वप्रथम कवि है, फिर असाधारण वक्ता, लब्धप्रतिष्ठ लेखक, दूरदृष्टि राजनैतिक संत हैं। अितिहास की कथा को काव्यपूर्ण भाषा में अुन्हों ने लिखा है। अुपन्यास के समान सुललित, मनोहारी।

और अिस से मैंने कहा, कि मैंने धृष्टता की है अुस काव्य को, व्यंग को, अुस ओज को, राष्ट्रीय स्वातंत्र्य की लगन को यदि मैं अभिव्यक्ति न कर पाया हूँ, तो पाठक मेरी घोर निंदा करेंगे। और मैं पहले से यह प्रार्थना कर छुटकारा नहीं पाता, कि ' मेरा प्रथम प्रयत्न होने से क्षमाशील पाठकगण मेरे दोषों की क्षमा कर दें '। यदि मुझसे अुन महान् विचारों का वहन अच्छी तरह नहीं बना हो, तो मुझे निंदा को सिर आँखों पर रखना चाहिये; यदि मैं बहुत अंशों में सफल हुआ हूँ, तो प्रशंसा को नम्रता के साथ ग्रहण करना चाहिये।

मेरी जान में श्री. सावरकरजी की तरह १८५७ के स्वातंत्र्य-समर का विचार, मात्र श्री. जयचन्द्रजी विद्यालंकारने किया है—चाहे वह कितनी ही संक्षेप में क्यों न हो! अब भी अैसे अितिहासज्ञ—जो अपने को वैसा मानते है—पडे हैं जो १८५७ के प्रसंग को मात्र 'गदर' ही मानने का हठ करते हैं। अिसी से मैं जयचन्द्रजी का अुल्लेख कर चुका हूँ।

१५ अगस्त १९४७ से अंग्रेज भारतवर्ष के गले पर दबाया हुआ बूटवाला पैर हटाकर, अब दाहिनी रान पर रख कर खडा है। हम अिसे स्वतंत्रता मानते हैं—हॉ, पहले हम न बोल सकते थे, न अुठ पाते थे। अब हम बैठ सकते हैं, बोल सकते हैं। अेक महत्त्वपूर्ण बात हम कभी न भूलें: अंग्रेजों का विश्वास कभी न करना चाहिये। संसार भर में किसी अंग्रेज का विश्वास करना हो, तो केवल दो स्थानों में होनेवाले का—अेक चित्र में दिखायी देनेवाला, दूसरा कब्र में दफनाया हुआ! तीसरे किसी अंग्रेज का विश्वास करने से सदाही हानि होगी। अिस का प्रत्यक्ष अुदाहरण आज पूर्व पंजाब की सीमापर अुपस्थित है। अिस बात के कअी अुदाहरण अिस ग्रंथ में पाये जायँगे।

अिस ग्रंथ में कहीं भी रोमन अक्षरों का अकारण अुपयोग नहीं किया है। अंग्रेजी भाषा भी देवनागरी में लिखी जानी चाहिये; अिस सिद्धान्त को मैंने निबाहा है।

अन्त में, सदय पाठकों से यही प्रार्थना है, कि अिस ग्रंथ से जो भी आनंद मिले अुसका जश श्री सावरकरजी को देकर, सब दोषों का अधिकारी मुझे बनाअें और भारतीय स्वतंत्रता की रक्षा के लिअे हर युवक को अिस का पठन करने का अनुरोध करें।

'वंदेमातरम्'
७८७ ब, सदाशिव पेठ
पुणें २
भाद्रपद २००३

सज्जनों का सेवक
ग. र. वैशंपायन

इस ग्रंथ के अनुवादक प ग र वैशंपायन

आभार

श्री सावरकरजीने अपने अनूठे ग्रंथ का हिन्दी संस्करण प्रकाशित करने का गौरव हमें प्रदान किया है, अिसलिअे हम आप के अत्यंत आभारी हैं।

हिन्दी में प्रकाशन करने का यह हमारा पहला अवसर है। यदि हमारे अिस साहस का अच्छा स्वागत हिन्दी संसार करेगा, तो आगामी प्रकाशन के लिअे हम अुत्साहित होंगे।

बम्बअी सरकारने कागज की सुविधा कर दी, हम अुसे धन्यवाद देते हैं। श्री ग. र. वैशंपायनजी के तो हम अत्यंत ऋणी हैं। आप के अनथक परिश्रम ही से हम यह ग्रंथ पाठकों के करकमलों में रख पाये हैं।

अकथनीय महँगी, निपुण कर्मचारियों की कमी, मुद्रणालयों की अड़चनें कागज की असुविधा आदि सैंकड़ों अड़चनों से सामना करने पर अब यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। हमारे परिश्रम को सफल बनाना अब पाठकों की रसिकता पर निर्भर है।

अिस ग्रंथ में रूसी चित्रकार का १८५७ में बनाया हुआ चित्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वह केवल अिसी संस्करण में है। श्रीमंत नानासाहब का चित्र भी समकालीन होने से महत्त्वपूर्ण है जो हमें श्री वि. मा. देशमुख वकील (पुणें) के दुर्लभ संग्रह से मिला है। हम अुनके आभारी हैं। हमारे भाअी श्री र. श्री. जोगळेकरजी की भी जितनी सहायता हुअी है, कि अुनके आभार मानना आवश्यक ही नहीं, हमारा कर्तव्य है।

'अग्रणी' मुद्रणालयने जो सहयोग दियाँ अुस के लिअे धन्यवाद। चित्रकार देशपांडेजी तथा श्री केळकर के भी हम ऋणी हैं।

किन्तु श्री. नानाराव गोखले की सृजन-शक्ति के फलस्वरूप हर अध्याय पर हम चित्र दे सके हैं, जिस के लिअे हम अत्यंत ऋणी हैं। श्री. विनायकरावजी परांजपे तथा बधु ने तो हर तरह से सहायता की है, किन शब्दों में हम अुन्हें धन्यवाद दें ?

× × ×

हमारा आगामी प्रकाशन

महाराष्ट्र के माननीय नेता, सव्यसाची संपादक श्री. शि. ल. करंदीकर से लिखित 'सावरकर चरित्र, [अर्थात भारतीय क्रांति के आंदोलन का लगभग ५० वर्षों का प्रामाणिक अितिहास] हम प्रकाशित कर रहे है। अिस की भाषा भी श्री. ग. र. वैशंपायनजी की लिखी हुअी है। मूल ग्रथ मराठी में १९४३ में प्रकाशित हुआ था, जो तुरन्त जब्त भी हुआ था। अिस ग्रथ को बम्बअी विद्यापीठ ने सर्वोत्तम ग्रथ के नाते स. १९४२ का पारितोषिक दिया था। अिस की विशेषता यह है, कि श्री. **सावरकरजी की कविता का अनुवाद कविता ही में दिया है**। डिमाअी आकार के लगभग ६०० पृष्ठ होंगे। मार्च १९४८ के अन्त तक प्रकाशित हो जायगा। आशा है, हिन्दी संसार अुस का समादर करेगा।

६९३ बुधवार पेठ
पुणे २

वि. श्री. जोगलेकर.
व्यवस्थापक, **निर्मल साहित्य प्रकाशन.**

चित्रसूची

१ श्रीमती रानी लक्ष्मीबाअी (तिरगा) आवरणपर
२ श्री. सावरकरजी (लदन में १९०८)
३ श्री. ग. र. वैशंपायनजी अनुवादक
४ सम्राट् बहादुरशाह
५ सम्राज्ञी जीनतमहल
६ दो क्राति नेता
७ रूसी चित्रकार का १८५७ में बनाया चित्र
८ श्रीमंत नानासाहब पेशवा (तिरगा)
९ वीर सावरकरजी (६४ वर्ष की आयुमें)
१० शाहज़ादा जवानबख्त (दिल्ली)
११ अवध का युवराज
१२ श्री कुँवरसिंहजी (तिरगा)
१३ सेनापति तात्या टोपे (तिरगा)

अिस ग्रंथ में क्या है ?

१	मूलग्रंथ की जीवनी	क–ञ
२	लेखक की भूमिका	ट–ठ
३	अनुवाद की भी सुनिये	त–थ
४	आभार	ध–न
५	चित्र सूची	न
६	अिस ग्रंथ में क्या है ?	प–फ

खण्ड १ ला – ज्वालामुखी

अध्याय	नाम	पृष्ठ
१ ला	स्वधर्म और स्वराज्य	१–१३
२ रा	कारणों का सिलसिला	१४–२५
३ रा	नानासाहब और लक्ष्मीबाभी	२६–४१
४ था	अवध	४२–५२
५ वाँ	आग में घी	५३–६५
६ वाँ	वह महान् यज्ञ	६६–६९
७ वाँ	गुप्त संगठन	७०–९७

खण्ड २ रा – प्रस्फोट

१ ला	हुतात्मा मंगल पांडे	९८–१०४
२ रा	मेरठ	१०५–११३
३ रा	दिल्ली	११४–१२४
४ था	विप्लव तथा पंजाब काण्ड	१२५–१५७

५	वाँ	अलीगढ तथा नसीराबाद	१५८–१६२
६	वाँ	रुहेलखण्ड	१६४–१७२
७	वाँ	काशी और प्रयाग	१७३–१९६
८	वाँ	कानपुर और झाँसी	१९७–२२९
९	वाँ	अवध	२३०–२४७
१०	वाँ	अुपसंहार	२४८–२७०

खण्ड ३ रा – अग्निप्रलय

१	ला	दिल्ली का संग्राम	२७३–२९१
२	रा	हॅवलॉक	२९२–३०२
३	रा	बिहार	३०३–३१८
४	था	दिल्ली का पतन	३१९–३३४
५	वाँ	लखनअू	३३५–३६३
६	वाँ	तात्या टोपे	३६४–३७५
७	वाँ	लखनअू का पतन	३७६–४००
८	वाँ	कुँवरसिंह तथा अमरसिंह	४०१–४२३
९	वाँ	मौलवी अहमदशाह	४२४–४३६
१०	वाँ	रानी लक्ष्मीबाअी	४३७–४७४

खण्ड ४ था – अस्थायी शान्ति

१	ला	सरसरी व्रुष्टिसे	४७५–५०१
२	रा	पूर्णाहुति	५०२–५१८
३	रा	समारोप	५१९–५२३
		संदर्भसूची	५२३–५४३

संदर्भ

['१८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य-समर' ग्रंथ में स्थान स्थान पर अुद्धृत अंग्रेजी अुद्धरणों का अनुवाद अुसी जगह दिया है; किन्तु जो सज्जन मूल अुद्धरण पढना चाहें, अुन की सुविधा के लिअे नीचे दिये जाते हैं। ग्रंथ में संदर्भ के क्रमांक दिये हुअे हैं, जैसे 'सं. १.' अुस का मूल अुद्धरण नीचे पढिये।]

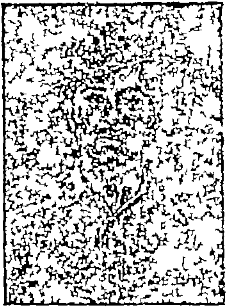

हुतात्मा भगतसिंग ! १९३०
में अिस ग्रथ का अग्रेजी
सस्करण छपवाकर
आपने प्रचारित
किया था !

मलाया में वदनीय श्री सुभाष
बाबूनें अिस ग्रथ का कुछ भाग
तामिळमें छपवाया था ।

ज्वा ला मु खी

ज्वालामुखी

हिंदुस्थान का जागरित ज्वालामुखी अब भड़कने लगा है। सप्तरस के डरावने सोते अब अुस के अुदर में खौलने लगे हैं। स्फोटक रसायन का भीषण मिश्रण घोंटा जा रहा है और स्वातंत्र्यप्रेम का स्फुलिंग अुस पर गिर रहा है। अत्याचारी शासन! अब तक अवसर हाथ से नहीं गया, अभी सीख लो। अिस में जरा भी टालमटूल किया तो अुद्दत और पीडक शासन को ज्वालामुखी के समान धधकते प्रतिशोध का परिचय भस्फोट की प्रचंडता ही से होगा, अिस में संदेह नहीं।

१८५७ का

भारतीय स्वातंत्र्य-समर

प्रथम खंड

ज्वालामुखी

अध्याय १ ला

स्वधर्म और स्वराज्य

एक अनपढ़ देहाती भी इस बातको समझता है, कि एक झोंपड़ा भी बनानी हो तो वह कच्ची नींवपर कभी खड़ी नहीं हो सकती। १८५७ में हुई क्रांति का इतिहास-लिखने का दम भरनेवाले इतिहास-लेखक जब उपर्युक्त मामूली सिद्धान्त की ओर ध्यान न देकर, क्रांति के सच्चे कारणों की छानबीन न करते हुए ही बेधड़क प्रतिपादन करते हैं, कि इस क्रांति मन्दिर की भव्य रचना मात्र एक तिनके पर हुई है, तब या तो वे मूर्ख हैं अथवा, जो अधिक संभव है, वे जानबूझकर अपने को तथा दूसरों को धोखा दे रहे हैं। चाहे जो हो, इतनी बात निर्विवाद है कि इतिहास-लेखक के पवित्र कार्य के लिये वे पूर्णतया अपात्र हैं।

महान धार्मिक तथा राजनैतिक क्रांतियों की तहमें होनेवाले मूल-सिद्धान्तों को जाननेके पहले उपरसे विरोधी दीखनेवाली घटनाओंका समन्वय कर दिखाना सर्वशः असम्भव है। अनगिनत चक्रों तथा अगणित पेंचों से भरे, प्रचडशक्ति का निर्माण करनेवाले, यत्र मे शक्ति कैसे पैदा की जाती है इसका पता यदि हमे न हो तो उसे देखकर हमें बडा अचरज होगा; किन्तु उस यंत्र के पुर्जों के पूरे ज्ञान से होनेवाले आनंद का अनुभव कभी न होगा। जब लेखक फ्रान्स की राज्यक्राति या हालड की धार्मिक क्राति के सनसनीखेज प्रसगों का वर्णन करते हैं और उन के घोरतम समरप्रसगों के शब्दचित्र अकित करते हैं, तब उन प्रसगो की जगमगाहट तथा अतिमहत्ता ही से उनके मनःश्चक्षु ऐसे तो चौंधिया जाते है, कि उन-क्रातियों के मूल सिद्धान्तो का विश्लेषण करने को पैठने के लिए आवश्यक धीरज तथा शान्ति उनके पास नहीं बचती। क्राति की तहमें होनेवाले अज्ञात कारणों तथा कार्य करनेवाले गुप्त शक्ति-स्रोतों को पूरीतरह बिना परखे, क्रातिके सच्चे स्वरूप का दर्शन कभी नहीं होगा, और इसीसे केवल कथन की अपेक्षा तत्त्वदर्शनही को इतिहासमें अधिक महत्त्व होता है।

सिद्धान्तों ही को ढूँढने में इतिहासकार और एक भूल कर जाता है। हर घटना के भिन्न भिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष, विशेष और साधारण, आवश्यक एव आकस्मिक कारण होते हैं। उनके ठीक श्रेणि-विभाजन मे ही इतिहासकार की कुशलता है। इसी छानबीन मे कई इतिहासकार चकरा जाते हैं, क्योंकि आकस्मिक कारणो ही को वे आवश्यक मानते है और किसी अग्निकाड के मामले की जॉच करनेवाले न्यायाधीश के समान, जिसने दियासलाइ जलानेवालेको बरी कर सलाई ही को दोषी ठहराया, अपनी हँसी करा लेते हैं। किसी घटना का सच्चा महत्त्व, इस तरह कारणों की मिलावट कर देनेसे, कभी मालूम नहीं होता। यही नहीं, जिस क्रातिमें अनगिनत मानव तलवार के घाट उतार दिये गये और एक विशाल देश वीरान हो गया वह क्राति कुछ मानवोंने 'स्वातः-सुखाय' तथा अपने छिछोरे स्वार्थ को सीधा करने के लिए सगठित की यह मानकर, संपूर्ण मानवजाति, उन मानवों की स्मृति को, शापपर शाप देती है। और इसी से किसी घटना का और खासकर क्रातिकारी घटना-

घटनाओं का इतिहास लिखते समय, मात्र उनका वर्णन भर या आकस्मिक कारणों से उनका संबंध जोड़, ऐसा सच इतिहास को कहने में कभी कृतकार्य नहीं होगा। इस लिए निःपक्षपाती इतिहासकार को चाहिए कि वह क्रांति की रचना की नींव को सर्वप्रथम टटोले। मूल और आदि की खोज तथा विश्लेषण ही उसका काम है।

मैंने राज्यक्रांतिपरक एक महत्त्वपूर्ण आलोचनात्म ग्रन्थ में क्रांतिवीर मॅझिनी कहते हैं कि हर क्रांति के पीछे कोई न कोई आद्य सिद्धान्त होना ही चाहिए। इतिहास पुरुष के जीवनमें होनेवाले संपूर्ण उथल पुथल का नाम है क्रांति। क्रांतिकारी आंदोलन का आधार क्षणजीवी तथा तुच्छ मूल, कुत्सायी कारण कभी नहीं होता, वरन क्रांतिकी तहमें ऐसे एक सर्व व्यापक सिद्धान्त का होना आवश्यक है कि, जिसके कारण सहस्र सहस्र मानव युद्ध के आह्वान का स्वीकार करते हैं सिंहासन डांवाडोल हो जाते हैं राजमुकुट चूर होते हैं, बनते हैं, आज के आदर्श मिट्टीमें मिलकर उनके स्थानपर नए आदर्श उदित होते हैं और अनगिनत जन अपना पवित्र लहू हँसते हँसते बहा देते हैं। जिस मात्रा में क्रांति की तहमें होनेवाला सिद्धान्त मंगलकर या हानिकर होगा उसी मात्रामें क्रांतिको पवित्र या अपवित्र माना जाता है। व्यक्तिगत जीवनमें हो या इतिहासमें हो, किसी मानव या समूचे राष्ट्रके कर्मोंकी भलाई बुराई उनकी तहमें होने वाले हेतुक स्वरूपपरही निर्भर है। इस कसौटीको यदि हम भूल जायँ, तो अलेक्झांडरके साम्राज्यवर्धक युद्ध और गॅरिबाल्डीके नेतृत्वमें लड़े गये इटलीके स्वातंत्र्ययुद्धका भेदका महत्त्व हमारे ध्यानमें आ ही नहीं सकता। इन दो घटनाओंका ठीक मूल्य आँकनेके लिए इन युद्धोंको खड़ा करनेवाले प्रणेताओंके आद्य हेतुका निश्चय पहले करना पड़ेगा या उन क्रांतियोंका संपूर्ण इतिहास लिखनेके लिए उनके तहके हेतु, उनके प्रणेताओंके मनकी तीव्र भावना तथा आकांक्षाएँ आदि बुनियादी कारणोंसे उन क्रांतियोंकी घटनाओंके प्रत्येक सिलसिलेको मिलानकर जाँचना चाहिए। पक्षपाती तथा दूषित दृष्टिवाले इतिहास लेखकोंने जान बूझकर छोड़ी तथा दुर्लक्षित छोटी मोटी घटनाएँ उपयुक्त दूरबीनसे सुस्पष्ट दीखने लगेंगी। और इस तरह जब हम प्रारंभ करें तब सरसरी तौरपर असंबद्ध दीखनेवाली

घटनाओंमें एकाएक सिलसिला दिख पडता है, टेढीमेढी रेखाएँ सीधी हो जाती हैं, अंधेरा उज्वल हो जाता है और पहले जो गंदा लगता था वह अब सुंदर भासता है उसीतरह, पहलेके सनसनीदार प्रसंग अब अलोने मालूम होते हैं और जाने या अनजाने, किन्तु सुस्पष्ट रूपमें, सच्चे इतिहासके प्रकाशमें, क्रांति निखर पडती है।

१८५७ की प्रचंड क्रांतिका इतिहास, इसी वैज्ञानिक दृष्टिसे, आजतक किसी भी विदेशी या स्वदेशी लेखकने नहीं लिखा है। और इसीसे उस क्रांति के बारे में अनहद विचित्र, असत्य एवं अन्याय्य कल्पनाएँ संसार भर में पक्की हो गयी हैं। अंग्रेज ग्रंथकारोंने इस बारे में ऊपर गिनाये हुए सभी प्रमादों को अपनाया है। उनमें कुछ ऐसे हैं जिन्होंने केवल घटनाओं का वर्णन करनेसे अधिक कुछ नहीं किया, तो भी बहुतेरोंने यह इतिहास पक्षपाती तथा दुष्ट बुद्धिसे प्रेरित हो कर ही लिखा है। उनकी दूषित दृष्टि उस क्रांति के बुनियादी सिद्धान्त को न देख सकती थी और न देख सकी। क्या कोई समझदार व्यक्ति कभी ऐसा विवेचन कर सकता है कि इस अतिविशाल क्रांति को चेतना देनेवाला कोई विशेष सिद्धान्त था ही नहीं? पेशावर से कलकत्तेतक उछली हुई लहर, अपने उत्पात के जबडे में निश्चित रूपसे, कुछ हडप जाने का उद्देश न रखते हुए, उठी हो यह क्या कभी संभव हो सकता है? दिल्लीके घेरे, कानपुरकी कतलें, हजारों वीरों का खेत रहना, और ऐसी ही कई उदात्त और स्फूर्तिमयी घटनाएँ, क्या उसी तरह के उदात्त और स्फूर्तिप्रद आदर्श के बिना ही घटी होंगी? किसी छोटेसे गाँव का हाट भी बिना किसी हेतु के, नहीं भरता! तो फिर जिस हाट की दूकानें पेशावरसे कलकत्तेतक फैली हुई रणभूमिपर करीनेसे लगी हुई थीं, जहाँ राज्य और साम्राज्य बेचे जा रहे थे, और जहाँ चलन का सिक्का केवल लहू ही था, हम कैसे मानें कि वह विराट हाट बिना किसी कारणपरंपरा के बनी और बिगडा? नहीं! न वह बाजार बिना कारण के बना, न टूटा! अंग्रेज इतिहासकारोंने ठीक इसी बात को, इस लिए नहीं कि उनके लिए इसे मनवाना दूभर था वरन्च इसे मान लेना उन्हीं के हक में हानिकर था, जानबूझकर टाल दिया है।

इस अनुदार उपेक्षा से भी अधिक विश्वासघातक, धोखा–देह और १८५७ की क्रांति की मूल भित्ति ही का मटियामेट करके उसे विकृत रूप देनेवाली अर्वाचीन मूल अंग्रेज इतिहासकारोंने दी है, और उसी का हूबहू अनुवाद उनके सामने दुम हिलानेवाले भारतीय चापलूसोंने किया। यह भूल है यथाक्रम चिल्लाकर के कहना कि इस क्रांति का मूल कारण था चरबी लगाये कारतूस! अंग्रेजी इतिहास तथा अंग्रेजी पैसों से स्फूर्ति पानेवाले एक भारतीय इतिहासकार कहते हैं, "गौ तथा सुअर की चरबी से लिपटे कारतूसों के पवित्र अपवाद से व बचपन के भाग्य बिगाड़, बस, पागल से हो गये।" किसीने कभी पृच्छा की कि यह कथन कहाँतक सत्य है? "किसी एकने कहा, दूसरने उस की हाँ में हाँ मिला दी। दूसरा बिगड़ा, तीसरा उस की हामी भरने लगा और इस तरह मठिया मसान शुरू हुआ, जिससे कुछ अविचारी सिरफिरे उठ और विद्रोह की आग सुलग उठी।" हम इसका विश्लेषण आगे करनेही वाले हैं कि कभी न अंध मनपर कहाँतक इसी कारतूसी गप का विश्वास किया। किन्तु जिन्होंने कयास अंग्रेजी इतिहास प्रयत्नपूर्वक यार्थिकोंसे परिशीलन किया है और उसपर कुछ विचार किया है उन्हें स्पष्टतया मालूम होगा कि अंग्रेज प्रथकारों ने इसी हथोमरेपर भार देकर उसीपर क्रांतिके जनकत्व का लादने का महान जतन किया है। सोचने की बात है कि यदि क्रांति की पैदाइश केवल कारतूसों से हुई हो तो श्रीमानानासाहब, दिल्ली के बादशाह, झाँसीवाली रानी, रुहेलखंड के खान बहादुरखाँ उस क्रांति में क्यों कर शामिल हो गये? ये थोडेही अंग्रेजी सेना के सिपाही थे? और तब उन कारतूसों का दाँत से काटने की सख्ती कभी नहीं हुई थी! यदि कारतूसी ही के कारण विशेषतः और पूर्णतरह क्रांति की आग भड़की हो तो अंग्रेज गवनर–जनरल के आज्ञापत्र के निकलतेही, कि "अबसे उनका (कारतूसोंका) चलन बन्द कर दिया जाता है," क्रांती शान्त हो जानी चाहिये थी। गवर्नर ने तो सैनिकों को छूट दी थी कि "चाहे तो वे अपने हाथों कारतूस बना लें।" किन्तु न सिपाहियों ने वैसा किया न नौकरी का लाथ मार इस झगड़े से पर्देसे निकल गये, बल्कि सैनिकोंने युद्ध के राही बनना स्वीकार किया; सो क्यों? सैनिकही केवल नहीं, किन्तु सहस्र सहस्र शान्तिप्रिय नागरिकजन, राजा महा

राजा, कि जिनका सेना से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे कोई सबध न था, सब विद्रोही बन उठे। सो, इससे स्पष्ट हो जाता है कि सैनिक तथा नागरिक, राजा तथा रक एव मुसलमान को उत्तेजित करने मे काडतूसो के इस आकस्मिक कारणने कोई हाथ नही बॅटाया था।

यह भी उपपत्ति उतनीही भ्रमपूर्ण है कि अवधप्रात को हथियानेसे क्राति का उठाव हुआ। कई जन, जिन्हें अवधके राजवशके भविष्यत् के विषय में रत्तीभरभी अपनौवा नहीं था, सरपर कफन बॉधे लडते ही थे न; तो फिर, इस युद्धमें उनका क्या मन्तव्य था? अवधका नवाब तो स्वय कलकत्तेके किलेमे कैदीकी दशामे बैठा था, और अग्रेज इतिहासकारों के कथनानुसार उसके प्रजाजन उसकी राजनीतिसे ऊब उठे थे! यदि यह सच था तो सैनिक, तालुकदार, और नवाब की रियायासे बहुतेरे जन, अपने नवाबके लिए तलवार सॅवारकर क्योंकर आगे बढे? किसी बगाली 'हिंदूने' उस समय इग्लडमे रहते हुए क्रातिपर एक निबध प्रकट किया था उसमे 'हिंदू' कहता है—"हमे आश्चर्य होगा यह सुनकर कि, कितनेही साधारण जन, जिन्होने न कभी नवाबको देखा था, न आगे कभी देखनेका मौका मिलने की आशा थी, उसका शोकपूर्ण इतिहास बताये जानेपर, अपने झोपडों मे रोते पीटते रहे। और, इस बात की जानकारी भी हमे कभी न होगी कि कितनेही सैनिक सिपाही वाजिदअलीशाहपर गुजरे अत्याचारो का प्रतिशोध लेनेके लिए—मानों यह अत्याचार स्वय उनपर ही हुए हो,—अपने ऑसुओको पोंछकर हरदिन, उस प्रतिशोधके लिए लडने को प्रतिज्ञाबद्ध होते थे"। सिपाहियों को नवाबके लिए इतना अपनौवा क्यो कर पैदा हुआ? और उनकी ऑसुओं की झडी क्यों लगी जिन्होने कभी नवाबको देखातक न था? उत्तर स्पष्ट है, इससे साफ पता लगता है कि केवल अवधप्रात की स्वाधीनता छिन जानेसे क्रातिका प्रस्फोट नहीं हुआ।

अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि चरबीवाले कारतूसो का भय तथा अवध का ग्रहण ये मात्र आकस्मिक तथा अस्थायी कारण थे। किन्तु इन्ही कारणो को यदि हम मूल कारण मान बैठें तो क्राति के सच्चे स्वरूप का दर्शन हमे कभी मालूम न होगा। ऐसी भूल यदि हम करें तो मानना पडेगा कि ये दो कारण न होते तो क्राति होती ही नही, इससे

घन्कर भ्रमपूर्ण तथा मूलतापूर्ण उपपत्ति क्या हो सकती है! कारतूसों का भय न होता तो उस भय की तह में होनेवाली मनोगति दूसरे किसी रूप में प्रकट होती और यही क्रांति फिरसे घटित होती। अवध छीना गया न होता तो राज्यों के हडप जाने की मनोगति का रूप दूसरे किसी राज्य के विध्वंसन में दीख पडता। फ्रेंच राज्यक्रांति के सच्चे कारण, स्वाधिकारों की महँगाई, बैस्टाइल कारागार, राजाका पॅरिस से निकल जाना या दावतें, ये नहीं थे! इन से उस क्रांति की कुछ घटनाओं पर कुछ थोडा प्रकाश पडेगा, किन्तु उसमें क्रांति का पूरा ध्यान होना असम्भव है। राम-रावण युद्ध में सीताजीका अपहरण एक नैमित्तिक-प्रासंगिक-कारण था, सच्चे कारण तो इससे बहुत गहरे और अदृश्य थे।

हाँ तो, इस क्रांतिकी तहमें क्या मूल कारण तथा हेतु काम कर रहे थे जिनके कारण हमारे वीरों की तलवारें नंगी हो कर रणक्षेत्र में चमकीं मल्लिन तथा जग लगे राजमुकुटों का फिरसे जगमगाना तथा पतोंतक रौंदे जानेवाले झण्डों को फिरसे फहराने की सामर्थ्य पैदा हुई, जिनके कारण, सहस्र सहस्र पुरुषोंने अपना सून कर्तव्यक बहा दिया मौलवियों ने जिनका प्रचार किया, विद्वान ब्राह्मणोंने जिसे विजयी होनेका आशीर्वाद दिया, जिनके विजयी होने के लिए दिल्लीकी मस्जिदों तथा काशी के मन्दिरों से प्रार्थनाएं गूंजकर देवलोक तक पहुँच गयीं, जिन के लिये यह सब हुआ वे सिद्धान्त -मूल कारण-आखिर क्या थे?

वे महान सिद्धान्त थे स्वधर्म और स्वराज्य। प्राणोंसे प्यारे स्वधर्मपर छुपे और घातक आक्रमण होने के लक्षण जब दिखायी देने लगे तब धर्मरक्षा के लिये उठी सघगर्जन-सी क्रांतियुद्ध की ललकारों में मूल कारणोंका आभास मिलता है, धोखेबाज दुष्ट करतूतसे ईश्वरदत्त स्वाधीनता का अपहरण कर जब राष्ट्र राजनैतिक पराधीनता की जंजीरों से जकडे जाने की बात ध्रुव सत्य बन गयी, तब स्वराज्य प्राप्त करने की पवित्र साधना से प्रेरित होकर जो महाभीषण आघात उन दास्य शृंखलाओं पर किया गया उसी में क्रांतियुद्ध के मूल कारण मिल जाते हैं। अन्य स्थानों में किसी इतिहास में यह स्वदेश और स्वधर्म की लगन, अपने राष्ट्रमें उदासता की

जिस मात्रा में प्रकट हुई उस मात्रा में, शायद ही कहीं मिल पाती है विदेशी और पक्षाध इतिहासकारोंने अपनी इस महाप्रतापी भूमि का चाहे जितना घृणांस्पद चित्र बनाने का जतन किया हो, किन्तु जबतक इतिहास के पन्नों से चित्तौड का नाम नष्ट नहीं होता, और जब तक उनपर प्रतापादित्य तथा गुरु गोविंदसिंग का नाम अमिट अंकित है तबतक हिंदुस्थान के सपूतों के अस्थि अस्थि में और मज्जा मज्जामें यह स्वराज्यप्रेम तथा स्वधर्मप्रेम गहरा ही गहरा भिदा हुआ नजर आयगा! पराधीनता के गाढे कुहरेमें वह कुछ समय के लिए भलेही धुंधला हो जाय–सूरज भी कभी मेघोंसे ढक जाता है–किन्तु उस स्वयंसिद्ध सिद्धान्त की दमकती आभा जब जगमगा उठती है तब सब कुहरा छँट जाता है, मेघ तितर बितर हो जाते हैं। थोडे में, स्वधर्म और स्वराज्य के परंपरागत महान् सुंदर सिद्धान्तों का वायुवेग से प्रसार होने को १८५७ में जो कारणों का सिलसिला बन पडा उसका सानी और किसी स्थानमें शायद ही नजर आया है। इसी सिलसिलेने हिंदुस्थान की कुछ सुप्त भावनोंओं को विचित्र तरहसे भडकाया और स्वधर्म तथा स्वराज्य के लिये युद्ध करने की सिद्धता में लोग लग गये। स्वराज्यस्थापनाके घोषणापत्रमें दिल्ली का बादशाह कहता है "भारतके सुपुत्रो! यदि हम ठान लें तो बहुत जल्द शत्रुओं को मटियामेट कर देंगे। शत्रुओंको मिटा कर हम हमारे प्राणोंसे भी प्यारे स्वधर्म तथा स्वराज्य को निर्भय कर छोडेंगे!"* इस अंतिम वाक्य में सूचित उदात्त सिद्धान्तों के लिये यह युद्ध लडा गया, इस क्रातियुद्धसे अधिक पवित्र युद्ध संसार भरमें और कहाँ पायेंगे?

'देश और धर्मकी रक्षा'–

दिल्लीके सिंहासनसे घोषित स्पष्ट, शुद्ध तथा महान् स्फूर्तिशील शब्दसमूहहीमें १८५७की क्रातिका बीज समाया हुआ है। बरेलीके घोषणापत्रमें बादशाह कहता है "भारतके हिंदुमुसलमानो! उठो! भाइयो उठो! परमात्माके सभी वरदानोंमें, स्वराज्यही उसका दिया हुआ सर्वोत्तम वरदान

* लेकीकृत 'फिक्शन्स एक्सपोज्ड ॲन्ड, उर्दू वर्क्स.

है। जिस शैतानने उसे हमसे छलसे लूट लिया है, देखें वह कबतक उसे सँभाल सकता है? प्रभुकी इच्छाके विरुद्ध बना यह गवाह कबतक टिक सकता है? नहीं, कभी नहीं टिक सकता। अंग्रेजोंने अबतक इतने तो घृणित अत्याचार किये हैं कि अब, निश्चय, उनके पापोंका घड़ा भर चुका है। और, मानों उसीको और भरनेके लिए हमारे परमपवित्र धर्मको नष्ट करनेकी शरारत उन्हें सूझी है। ऐसी स्थिति रहते भी क्या तुम चाहे बच कर तो जाओगे? किन्तु परमात्माकी इच्छा ऐसी नहीं मालूम होती, क्योंकि, अंग्रेजोंको इस देशके बाहर भगा देनेकी प्रेरणा, हिंदुओं और मुस्लिमोंके दिलोंमें उसी प्रभुने पैदा की है। और निश्चय जानो कि उसी दयामयकी कृपासे और तुम्हारी वीरतासे इसी हिंदुभूमिमें उनकी करारी हार होगी, उनका नामभी यहाँ न बचेगा। हमारी सेनामें अपने छोटे बड़ेका भेद मिटकर हमेशा समता का पालन होगा क्यों कि, इस प्रकारके धर्मयुद्धमें स्वधर्मकी रक्षार्थ हेतु जो अपनी तलवार उठाते हैं वे सभी श्रेष्ठ वीर हुतात्मा होते हैं। वे सभी हमारेलिए भाईके समान हैं। उनमें छोटे बड़ेका भाव हो ही नहीं सकता। इससे हे भारतीय भाइयो, हम फिरसे कहते हैं, कि इस परम पवित्र सर्वोत्तम देशकार्यके लिए उठो और रणक्षेत्रमें कूद पड़ो!"

क्रांति के नेताओं की ये उदात्त बातें देखकर भी क्रांति की तह में होने वाला महान् कारण जो भाँप नहीं सकता वह, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, या तो मूर्ख है अथवा बड़ा धूर्त होना चाहिए। मानवको प्रभुने दिये हुये इस उदार निधिकी रक्षा करना अपना कर्तव्य है यह जान कर स्वधर्म और स्वराज्य के लिए भारतीय रणवीरोंने अपनी तलवारें निष्कोषित कीं, इससे अधिक दृढ सबूत और क्या हो सकता है? क्रांतिकाल में समय समयपर भिन्न भिन्न स्थानोंसे प्रकट हुई घोषणाओं ही से यह स्पष्ट मालूम होता है कि अब क्रांति के मूल सिद्धान्तों की चिकित्सा करते रहना वस्तुतः अनावश्यक ही है। ये घोषणाएँ किसी अनपढ़टोलेसे नहीं की गयी थीं, बल्कि आदरणीय तथा शक्तिशाली सिंहासन ही से ये उद्घोषित की गयी थीं। उस समय की क्षुब्ध क्रोध—भावना की जीती जागती परछाईं इन घोषणाओं में स्पष्टतया दीख पड़ती है। युद्ध के इस कालखण्ड में

डर या दबाव से सच्चे भावों का उच्चारण करने में किसी तरह रुकावट न होनेसे, राष्ट्रके अंतःकरण की सच्ची प्रतिध्वनियाँ इन घोषणाओं में निनादित हो रही थीं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं! सो, यह कहना पडता है कि 'स्वधर्म और स्वराज्य' की प्रचंड वीर गर्जना—इस क्रांतिमें 'शस्त्र उठानेवाले सभी वीर श्रेष्ठ थे'—अपनी उदात्तता को डंकेकी चोटपर संसार को सुना रही है।

किन्तु, उपर्युक्त दो सिद्धान्तोंको, एकदूसरेसे भिन्न या पूर्णतया स्वतंत्र थोडेही माना गया था? कमसेकम पौर्वात्योंको तो ऐसा कभी नहीं लगा कि स्वधर्म और स्वराज्यका एकदूसरेसे कोई नाता नहीं है। मॅझिनी के कथनानुसार, पौर्वात्य मन, इसी परंपरागत और संपूर्ण श्रद्धासे, मानता आया है कि स्वर्ग और पृथ्वीके बीच कोईभी लाँघनेमें महान् कठिन किलाबंदी खडी नहीं है, उलटे, स्वर्ग और पृथ्वी तो एक ही महतत्त्वके दो छोर हैं। स्वधर्मकी हमारी कल्पना स्वराज्यकी कल्पनासे जरा भी विरोधी नहीं है। बिना स्वधर्मके स्वराज्य जिसतरह घृणास्पद और तुच्छ है, उसीतरह बिना स्वराज्यके स्वधर्म दुबला और अपाहिज है। इसीसे, ऐहिक अभ्युदय—स्वराज्य-की यह तलवार अपने पारलौकिक निःश्रेयसकी चिंता करनेवाले स्वधर्मकी रक्षाके लिए हमेशा नंगी ही रहनी चाहिए। पौर्वात्य मन का यह रुख इतिहासमें कई प्रसंगों में प्रतीत होता है। पूरबमें सभी क्रांतियाँ धर्म-क्रांति का रूप ले लेती है, यहाँ तककि, पूरबमे धर्मसे दूर रहनेवाली किसी क्रांति होने का खयालतक नहीं किया जाता—इसका कारण धर्म इस विशाल अर्थवाची शब्द में मिल जाता है। भारतीय इतिहास में पायी जानेवाली 'स्वधर्म और स्वराज्य' की यह जुडवा सिद्धान्तपद्धति १८५७ की क्रांतिमेंभी पूर्णरूपसे निखर पडी है। दिल्लीकी बादशाह की घोषणा का उल्लेख हम पहले करही चुके हैं। आगे चल कर एक समय पर, जब अंग्रेजोंने दिल्लीको घेर लिया था और युद्ध बिलकुल अपनी टोंचपर पहुँच चुका था, तब बादशाहने सभी भारतीयों को संबोधित कर और एक घोषणा की थी, वह थी-- "परमात्माने संपत्ति, सत्ता और स्वदेश क्यों दिया है? इसलिए नहीं कि केवल हम अपने (स्वार्थके) लिए उनका उपभोग करें; बल्कि स्पष्ट है कि हम उनका उपयोग धर्मकी रक्षा के लिए ही करें" किन्तु इस-

पवित्र साधनाको पूरा करनेके साधन कहाँ हैं ? उपर्युक्त घोषणामें बताया हुआ प्रभुका दिया हुआ परम कृपा निधि ' स्वराज्य ' है ही कहाँ ?

कहाँ है वह संपत्ति ? कहाँ गया वह स्वदेश ? कहाँ लोप हुई वह स्वसत्ता ? पराधीनताकी धाऊनमें यह सब स्वर्गीय स्वातंत्र्य मरा हुआ-सा पड़ा है। उपर्युक्त घोषणा ही में, यह पराधीनता की बीमारी हिंदुस्थानका गला कैसे घोंट रही है यह बताने के लिए, इस घटनाओं का ब्योरेवार वर्णन किया गया है कि नागपूर, अवध और झाँसीके राज्य अंग्रेजोंने कैसे मटियामेट कर दिये थे। धर्मरक्षा के सभी साधन गँवाने से प्रभु की इस पवित्र भूमीमें हम धर्मनाश के पातकमें साक्षी हो रहे हैं यह बात लोगों को इस वर्णनसे प्रतीत कराने का खास हेतु था। क्यों कि, प्रभु की यही आज्ञा है कि पहले स्वराज्य हासिल करो ! क्यों कि, यही स्वदेश की रक्षा का मूलमंत्र है। जो स्वराज्य प्राप्त करने के लिए जतन नहीं करता, जो गुलामी में चुप चाप सोता है वह धर्म का शत्रु और पाखंडी है। इसलिये धर्म के लिए उठो और स्वराज्य प्राप्त करो !

' धर्म के लिए उठो और स्वराज्य प्राप्त करो '—भारतीय इतिहास में इस सिद्धान्त के असरकारी अनुभव से भरे चाहे जितने दिव्य तथा उदात्त प्रसंग मिल जायँगे। संत रामदास ने २५० वर्ष पहले यही महामंत्र महाराष्ट्र को दिया था,

" धर्मके लिए मरें। मरते हुए पूरीतरह मारें। मारते मारते छिन लें। अपना राज्य " (दासबोध)

१८५७ की क्रांतिमें भी यही मूलमंत्र था। क्रांतिका मनोविज्ञान यही है। श्री गुरुरामदासकी उपर्युक्त छन्दी क्रांतिका स्पष्ट तथा सत्य स्वरूप दिखानेवाली एकमात्र दूरबीन !

इस दूरबीनसे जब हम देखने लगते हैं तो हमें किस प्रकारका सुभव्य दृश्य दिख पड़ता है। स्वधर्म और स्वराज्यके लिए हुए इस युद्धकी पवित्रतापर अपवादक स्मरण जरा भी आँच नहीं आती। गुरु गोविन्दसिंहकी जीवनीकी उज्ज्वल आभा में, उनकी चेष्टाएँ उनके जीवनकालमें सफल न हो पानेपरभी, मलिनताकी छायातक नहीं पड़ सकती। अथवा, १८४८के

इटलीके उत्थानको उस समय भलेही हार खानी पडी हो, फिर भी हम उसकी पवित्रतामें कोई कमी नहीं मानते ।

जस्टिस मॅकार्थी कहता है "सच तो यह है, कि उत्तर भारतके कई विभागोंमें तथा उत्तरपच्छम प्रांत में वहाँ के निवासियोंने अंग्रेजी हकूमत के विरुद्ध विद्रोह किया। इस विद्रोह में केवल सैनिक ही शामिल थे या यह केवल सेनाही में विद्रोह था, सो बात नहीं है । मालूम होता था कि इस विद्रोह में सेना का असंतोष, राष्ट्रीय द्वेष और वहाँ के अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध धर्मनिष्ठ प्रतिशोध का पागलपन, इन सब की मिलावट हो चुकी थी। देशी सैनिकों का हिस्सा भी इसमें था ही। ईसाई राजसत्ता के विरुद्ध लडने के लिए हिंदु मुसल्मान भी आपसी वैर को भूलकर एक हुए थे। द्वेष और भय ही इस महान् विद्रोह के कारण थे। चरबीवाले काडतूस के लिए अनबन तो इस समूचे ज्वालाग्राही अंगारपर पडी, बहाना बनी, चिनगारी थी। इस चिनगारी से यदि स्फोट न हुआ होता तो और किसी चिनगारीसे वह जाग उठता। "एक क्षण में मेरठ के सैनिकों को ध्येय, ध्वज और धुरीण मिल गये और झट सैनिक विद्रोह का स्वरूप एक क्रांतियुद्ध में पलट गया। प्रभात के सूरज की किरणोंसे चमकती हुई जमुना के किनारे जब ये क्रांतिकारी आ पहुँचे तब अनजाने उन्होंने इतिहास के महान् प्रसंग को हस्तगत किया और उसी क्षण सैनिक विद्रोहने धार्मिक एवं राष्ट्रीय युद्ध का स्वरूप धारण किया"*

चार्ल्स् बॉल लिखता है, "आखिर यह सैलाब किनारेपर आही धमका और उस से भारत की नैतिक भूमि पूरीतरह सिंच गई। उस समय तो ऐसा लगा कि इन उछलती लहरों के नीचे भारत में से समूचा युरोपीय जीवनही लोप हो जायगा, और जब इस विद्रोह की भयंकर बाढ उतर जायगी और फिरसे पहले के समान शान्ति हो जायगी तब विदेशियों के दास्य से विमुक्त स्वाभिमानी स्वतंत्र भारत देशी नरेशों के स्वतंत्र राजदंड को ही अभिवादन करेगा! विद्रोहने अब

* हिस्टरी ऑफ अवर ओन टाईम्स खण्ड ३.

और ही किन्तु महत्वपूर्ण रूप लिया। धार्मिक पागलपन की धुन में सने और काल्पनिक अन्यायों का बदला लेनेके विचार से उत्तेजित समूचे राष्ट्र का यह रूपसे खड़ा हुआ युद्ध बन बैठा।*

सिपाहियोंके युद्ध के संपूर्ण इतिहासमें म्हालेन लिखता है "अवधके लोगोंने जो हिम्मत दिखाई उसका गौरवपूर्ण उल्लेख मैं यदि न करूं तो इतिहासकारके सत्यनिष्ठाके कर्तव्यका पालन न करने की भूल कर बैठूंगा। नैतिक दृष्टिसे, अवध के ताल्लुकदारोंने म्युटिनी विद्रोहियोंका साथ देनेमें बड़ी भारी भूल की थी। इस बातको छोड़कर देखा जाय तो अपनी मातृभूमि तथा अपने राजाके लिए एक शुद्ध भावनासे प्रेरित हो कर लड़नेवालों की गिनती महान् देशभक्तोंमें करना आवश्यक है।"

* इंडियन म्युटिनी, माल्सन १ पृ ६४४

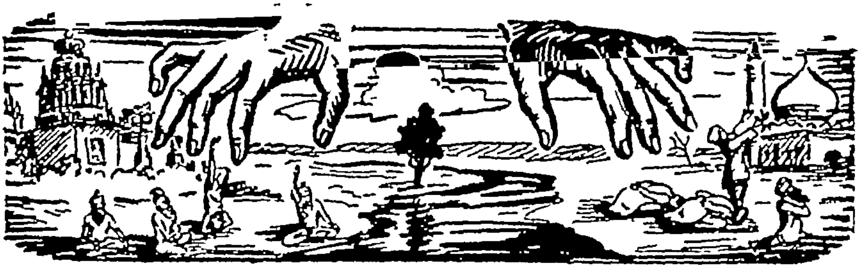

अध्याय २ रा

कारणों का सिलसिला

यदि यह बात सच है कि १८५७के रणक्षेत्रपर इस समस्याका निर्णय होनेवाला था कि उत्तरमें हिमालय तथा दक्षिणमें महासागरसे परिसीमित यह आर्यमही पूर्णतया स्वतंत्र रहे या नहीं, तो १७५७के उस दिनसे, जिस दिन यह समस्या पहलेपहल सामने आयी, इस कारण-पंक्तिका प्रारंभ होता है। पहलेपहल, पलासीके रणक्षेत्रपर, खुलमखुल्ला इस समस्याकी चर्चा हुई कि हिंदुस्थान अंग्रेजोंके अधीन रहे या नहीं। उसी दिन और उसी रणक्षेत्रमें-जहाँ इस समस्याकी पहलेपहल चर्चा छिडी-क्रांति-युद्धका बीज बोया गया। पलासीकी घटना न हुई होती तो १८५७का युद्धभी लडा न जाता। पलासीकी वह घटना सौ सालकी पुरानी हो चुकी थी फिरभी भारतियोंके अंतःकरणमें उसकी याद सदाही जागृत थी। उसका प्रमाण देखना हो तो उत्तर भारतमें २३ जून १८५७के महाभयंकर किस्सेको स्मरण करना चाहिए! इस विशाल भूखंडमें, पंजाबसे कलकत्तेतक जहाँ कहींभी खुला मैदान हो वहाँ, सहस्र सहस्र क्रांतिकारी एकही समयमें कई रणमैदानोंमें, सूर्योदयसे सूर्यास्तपर्यंत, "आज हम पलासीका बदला लेंगे" इस प्रकार प्रकट आव्हान देकर अंग्रेजोंके साथ भिडनेका दृश्य दिख पडता है।

पलासी की युद्धभूमिपर हिंदुस्थानने स्वाधीनता के लिए फिरसे एक संग्राम करने की सौगंध ली, तो, मालूम होता है, इंग्लंडभी मानो उस

प्रतिज्ञापूर्ति के दिन को, जबतक हो सके, नजदीक लाने को उत्सुक हुआ था। क्यों कि, पलासीमें क्रांतियुद्ध का बीज बोकर ही अंग्रेज चुप न रहे, उन्हों ने भारत भरमें इस वृक्ष को लहलहाता हुआ देखने के लिये अनथक चेष्टाएं कीं। बनारस, रुहेलखण्ड तथा बंगाल में वारन हेस्टिंग्सने वृक्ष की अच्छी तरह देखभाल की। मैसूर, अवध, पुणें, सातारा तथा उत्तर भारतकी उपजाऊ भूमिमें वेलस्लीने यही किया। किन्तु यह सब बिना असीम चेष्टाओं के थोडे ही बना? क्यों कि इस भूमि को पहले जोतना आवश्यक था—हां, मामूली हलसे नहीं, तलवारों तथा बन्दू- कोंसे। पुणें के शनिवारवाडेपर, सह्याद्री की दुर्गम चोटीपर, आगरे के किलेपर और दिल्ली के सिंहासनपर ये मामूली हल किस काम के? जब यह पथरीला भूभाग खोदकर चूर्ण चूर्ण कर दिया गया, तब भूलसे जो कुछ छोटे हीरे बच गये थे उनको अत्याचारों से खराब कर दिया गया। और इस बातादम अंग्रेजों के अन्याय्य तथा विश्वासघात के प्रहार से छोटे नरेश धूलमें मिल गये।

अंग्रेजोंने जिन लोगोंके दुश्मन नरपशुओंके बलपर इन सब विजयोंको प्राप्त कर इन प्रदेशोंपर कब्जा कर लिया उन्हेंभी वे पूरी तरह खिलाते पिलाते न थे, न उनकी पीठ सहलाते थे। पूरे सौ सालोंतक अंग्रेज देशी सैनिकोंको जुल्म जबरदस्ती की चक्कीमें पीसते जाते थे। मराठों या निजाम के सैनिक जब महत्त्वपूर्ण लड़ाइयोंमें विजयी होकर आते तब उन्हें पारितोषिक तथा जागीरें मिला करती थीं वहाँ 'कंपनी' सरकारने उनके सैनिकोंको 'मीठे धन्यवाद' सिवा कुछ भी न दिया था। जिन सिपाहियोंके केवल बलपर हिंदुस्थान अंग्रेजोंके अधीन हुआ उनसे सेनापति आर्थर वेलस्ली इतना हीन बरताव करता कि यदि कोई सिपाही घायल हो जाय तो उसे रुग्णालयमें पहुँचाने के बदले तोपसे उड़ा देता था।

इस तरह जब अंग्रेज स्वयं ही हिंदुस्थान भरमें असंतोष तथा द्वेष का बीज बोते जाते थे, तब उनके यत्नों का पूरा फल प्राप्त होने का समय भी जल्द आ लगा। हिंदुस्थानकी स्वाधीनतापर आँच आनेवाली है, यह बात पुणें के नाना फडनवीस तथा मैसूर के हैदरसाहबने भाँप

लिया था। उस दिनसे इस संकट का डर अस्पष्ट ही क्यों न हो हिंदी नरेशों को सता रहा था, और इसका प्रत्यक्ष परिणाम वेलोर के विद्रोह मे दीख पडा। वेलोर की यह बगावत १८५७ के प्रचंड उत्थान का पूर्वप्रयोगही (रीहर्सल) था।

जिस तरह रंगमंचपर प्रत्यक्ष नाटक खेले जाने के पहले कई पूर्वप्रयोग होना आवश्यक होता है उसी तरह इतिहासमेंभी संपूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करनेके पहले (खेल के सभी साधनोंको जुटानेके लिए) बगावत के रूपमें ऐसे कई पूर्वप्रयोगो का खेला जाना आवश्यक होता है। इटलीमे १८२१ के प्रारंभसे ऐसे पूर्वप्रयोग होते थे, और १८६१ मे उनका खेल इतिहासके रंगमंचपर सफल हुआ। १८०६ की वेलोरकी बगावत एक छोटासा किन्तु पूर्वप्रयोगही था। इस उत्थानमें जनता और राजपुरुषोंने सैनिकोंको अपनी ओर कर लिया था। बाजारोंमें फकीरों का स्वाँग भरे कई सौ प्रचारक प्रचार कर रहे थे। विद्रोहके चिन्हके नाते रोटियों को भी उस समय बाँटा गया था। हिंदू और मुसलमान दोनों धर्म तथा स्वातन्त्र्यके लिए एक होकर उठे थे। किन्तु यह पहलाही पूर्वप्रयोग होने के कारण इस उत्थान मे उन्हें अपजश मिला। चिंता नही! आखरी प्रयोग (खेल) के पहले ऐसे कई पूर्वप्रयोग दुहराये जाने चाहिए। हॉ, उनमें काम करनेवाले नट जीवटसे पूर्वप्रयोगोंको जारी रखे, अपजशसे हार कर पूर्वप्रयोग बंद न होने पावे। और ऐसाही नाटक खेले जाने के लिए हिंदुस्थान और इंग्लंड दोनो राष्ट्र दिनरात लगे रहे थे। और इस खेलके अभिनेता, जो रूपरचना (मेकअप्) कर रहे थे, भी कोई साधारण, दरिद्र और क्षुद्र नही थे। तंजावर की गद्दी, मैसूरकी मसनद, रायगडका सिंहासन, दिल्लीका दीवान–ई–खास (वहाँके बहादुर राजपुरुष) ये थे उस महान् खेल के चुने हुए अभिनेता। और इन सबपर शान दिखाने के लिए ही मानो १८४६ मे हिंदुस्थानके किनारेपर डलहौसीका पैरा पडा। बस, अब प्लासीके रंगमैदानपर, जिसके लिए लोग शपथबद्ध हुए थे, उस कार्य का प्रारंभ होनेमे बहुत समय नहीं रहा था!

ऊपर बतायी कारण-परंपरासे यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि डलहौसीके भारतमे पदार्पण करनेके पहले समूचे भारतमे असंतोषका बीज बहुत गहरा

पैठकर उगन लगा था। अंग्रेजोंके राज्य हड़प जानेसे राजा तथा महाराजा तो अंग्रेजसे मन्मुन रह थे।

पल्सीकी छत्रछायातले अच्छी पूर्ण हानि हो रही है इस विचारसे तो जनतामें एक अर्जीब आशाकी किरण चमक रही थी और साम कर अंग्रेजोंकी मातहत सेनाके सिपाही ही भदरसी अंतर क्रोध और कीनेसे जल रहे थे। ऐसे समयमें इस लगे हुए असंतोषको शान्त करनेका प्रयत्न करनेवाला दूसरा कोई भी वाइसराय यदि हिंदुस्थानमें आया होता तो भी इस काममें यह कहाँतक सफल होता यह कहा नहीं जा सकता उसकी सफलतामें संदेह था। उस समय यह प्रश्न रहा ही न था कि कंपनी सरकारकी राजनीति अच्छी है या बुरी, भारतभरमें सवाल यह हो रहा था कि कंपनीका राज यहाँ रहेही क्यों? इस सवाल का फैसला करनेका और एक जोरदार कारण मिला था-डल्हौसीका वाइसरायके नाते भारतमें आना! क्यों कि, उसने मारनेके लिए मीठेमें घोले विषकी गाली देनेकी नीतिको फेंककर, खुल्लमखुल्ला और प्रत्यक्ष अत्याचारका प्रारंभ किया, जिससे सब जनताके अंतःकरणोंमें गहरी चोट न लगे तो और क्या हो!

अंग्रेज इतिहासकारों ने डलहौसी का वर्णन "अंग्रेजी साम्राज्य का संस्थापक" कहकर किया है। यही एक बात डलहौसी की क्षमता तथा स्वभाव का मान करा देने को काफी है। जिस राष्ट्र में देशों का छीनने के अन्याय्य युद्ध और पराये राष्ट्र तथा वहाँपर किये अत्याचार सबको पसंद होते हैं, उस राष्ट्रमें अकथनीय अन्याय तथा शोषण करने वाले ही लोगों को सम्मानित किया जाय तो इसमें अचरज की कोई बात नहीं है। ऐसेही इस साम्राज्यमें (जहाँ अन्याय तथा अत्याचार अधिक से अधिक करने की होड़ लगती हो) लॉर्ड डल-हौसी को साम्राज्य संस्थापक की सुयोग्य उपाधि समर्पण की गयी थी। सचमुच इससे बढ़कर उसके स्वभाव का यथातथ्य वर्णन करने को दूसरा शब्द मिलना भी दूभर हो चुका है। जिसकी पृष्ठपोषक अंग्रेजों की सौ साल की कुटिल राजनीति की कृतपस्या रही थी, जिसमें दुर्दम्य आत्मविश्वास था किन्तु स्वभावसे जो अत्यन्त हेकड़ था, जिसके रक्तमांसमें अंग्रेजोंकी आसुरी साम्राज्यसत्ता का घमंड तथा प्रतिष्ठा पूरेपूर भिद चुके

थे और जो बुद्धिमान् न होते हुए भी साहसी था, वह डलहौसी "मैं भारत की भूमि को समथल बनाने आ रहा हूँ" इन दर्पपूर्ण उद्गारों के साथ, इस देश के किनारेपर उतरा।

डलहौसीने यहाँ आते ही ताड लिया कि जबतक पंजाब में वीरवर रणजीतसिंह है तबतक भारत की भूमिको समतल बना डालने का उसका अत्यंत प्रिय ध्येय वह कभी सफल नहीं कर पायगा। इसीसे, भलेबुरे तरीकों से पंजाब के इस शेरको दासता के कटघरे में बंद करने की डलहौसीने ठान ली। किन्तु पंजाब के सिंह के नाखून साधारण-से न थे। अपनी मांदपर हमला होने की सम्भावना देखते ही वह चिलियाँवाला की अपनी गढीसे बाहर निकला और अपने पंजे के प्रखर प्रहार से उसने शत्रु को कुचल कर लहू-लुहान कर दिया। किन्तु हाय! चिलियाँवाला की गुहा के मुँह पर बैठे इस शेरको गुजरात की ओरसे पिछाडी की किलाबंदी को तोडकर एक आस्तीन के साँपने अकस्मात् आ कर घेरा और बाँध लिया। तात्काल उस शेर की माँद उसीका कारागार बनी। रणजीतकी रानी जिंदाकौर लंदनमें कुढती घुलती मर गई और उस शेरका छौना धुलिप-सिंह फिरंगी शत्रु के फेंके टुकडों को चाबते हुए भिखारी की तरह पेट पालते वहीं रहा।

पंजाब प्रांत पर हाथ साफ करने के बाद डलहौसीने बडे गर्व के साथ लंदन को लिखा कि, 'ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार अब हिमालयसे कन्या-कुमारीतक अखण्ड हो चुका है।' किन्तु अंग्रेजी हकूमतकी सीमाएँ उत्तरमें हिमालय तथा दक्षिणमें सागरतक लग जानेसे उत्तर और दक्षिण की सीमाओं की बराबरी करनेवाली सीमाएँ पूरब तथा पश्चिममें बढाना तो आवश्यक ही था। तो फिर देरी क्यों? इन् शान्तिदूतोंने बरमा की शान्ति देवी को इतना कसकर गले लगाया कि उसीसे उस बेचारी शांन्ति देवी की पसलियाँ चूर चूर होकर उसका अंतकाल हो गया! यह प्रेमभरा दूतकर्म जल्दही समाप्त हुआ और बरमा भी साम्राज्यमें शामिल कर दिया गया। हिमालयसे रामेश्वर तथा सिंधूसे ईरावती तक समूचा प्रदेश लाल रंगमें रंगा गया। किन्तु डलहौसी! तुझे इसका डर

क्यों नहीं कि अब जल्द ही इससे बढ़कर भड़कीला लालरंग समूचे फैलने-वाला है!

पाठकगण! पंजाब और बरमाका अमली साम्राज्यमें शामिल होनेका पूरा मतलब तुम्हारे ध्यानमें आ चुका है! केवल नामों से इसका ठीक खयाल हमें नहीं आ सकता। अकेला पंजाबही ८०,००० वर्गमील होकर उसकी आबादी लगभग चार करोड़ है। जिनके किनारे पुराने समयमें ऋषियोंने पवित्र वेदमंत्रोंका सामगायन किया था, वेही की उन्हीं पंचनदियों के जलसे इस भूमिकी सिंचाई हुई है। इस प्रदेश को जीतने के लिए यूनानसे अलक्षान्दर दौड़ आया था तब इसी भूमि की रक्षाके हेतु पुरुराजाने घमासान युद्ध किया। ऐसे प्रदेशको हड़प कर रावण की हवस भी शान्त हो जाती! किन्तु भूमि हड़प जाने की डलहौसी की भूख केवल पंजाब खाकरही नहीं, बल्कि बरमा का विस्तीर्ण भूखण्ड निगलने पर भी शान्त न हो सकी! इसतरह भलेही अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य की चतुःसीमाएँ बढ़ायीं किन्तु उनके अंतर्गत प्राचीन राजाओं की समाधियाँ तो अभी रहीं थीं। इसीसे उनको भी उखाड़कर समूची भूमि समतल करनेकी डलहौसीने ठानी और वह उसी के पीछे पड़ा। उन समाधियोंके रहनेसे कुछ बहुत बड़ा हिस्सा रुक जानेका कारण इस करतूतकी तहमें नहीं था, उसे यह डर था कि कहीं इन्हीं मृत स्मारकोंमें से, एकदिन, भारतके साथ किये गये अन्यायोंका प्रतिशोध लेनेवाला, कोई वीर प्रकट न हो। और, सचमुच सातारेके मृत अवशेषों के नीचे एक धधकशील हिंदुसाम्राज्य दबा पड़ा था। और कयामत के दिन होनेवाले ईसाके मृतोत्थान में दृढविश्वास करनेवाले इस डलहौसी को यदि यह डर हो कि इसी सातारेसे एकाध हिंदुसम्राट निकल कर विदेशियों को मटियामेट करते हुए स्वराज्य की स्थापना करेगा, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी। सन १८४८ के अप्रैलमें सातारेके महाराज अप्पासाहब की मृत्यु हुई। यह संवाद पाते ही सातारा जब्त करनेकी डलहौसीने ठानी। और बहाना?' यही कि महाराज निःसन्तान मरे! देहात के एक साधारण खेतीहर की झोंपड़ी भी उसके निःसन्तान मरनेपर जब्त नहीं की जाती, बल्कि उसके दत्तक-पुत्रको, या आत्मीय नातेदारोंको दी जाती है। और सातारेका राज्य किसी किसान की कुटी सा थी ही नहीं, अंग्रेजी राजका वह 'मित्र' था।

१८३९ मे ब्रिटिश सत्ताको उलटा देनेके षडयंत्रमे शरीक होनेके अपराधमे छत्रपति प्रतापसिंहको गद्दीसे हटाकर अंग्रेज सरकारने छत्रपति अप्पासाहबको उनके स्थानमें सिंहासनपर बिठाया था।*

"डलहौसीका शासन" पुस्तकमें श्री आर्नोल्ड लिखते है, "छत्रपतिकी पदच्युतिकी कहानी अकथनीय तथा (अंग्रेजों के लिए) कलंकित करनेवाली है।" ऐसी अपमानपूर्ण तथा निर्लज्ज पदच्युति के बाद अंग्रेजोंने निःसन्तानताके कारण सातारकी गद्दीपर प्रतापसिंहके भाईको बिठाया, जिससे अंग्रेजोंने नातेदारको सिंहासनपर बैठनेका अधिकार (जो हिंदुशास्त्रोंकी सर्व-सम्मतिसे न्यायसंगत है) प्रत्यक्षरूपसे मान लिया। इस मामलेमे सत्य यही है, कि डलहौसीने अपने राष्ट्रके खूनमें भिदे विश्वासघातको काममें लाकर उपर्युक्त स्पष्ट मान्यताको जानबूझकर ठुकरा दिया, क्यों कि, वही तरीका उस समय उसका उल्लू सीधा करता था।

भिन्न भिन्न राजाओंसे किये अलग अलग संधिपत्रोमे दत्तक पुत्रका, दत्तक मातापिताके राजसिंहासनपर बैठनेका, अधिकार अमान्य करनेकी शर्त किसी स्थानपर अंग्रेजोंसे रखी जानेका उल्लेख नहीं मिलेगा। सं. १८२५में कोटाके राजाके दत्तकको मान्यता देते समय कंपनी सरकारने स्पष्ट ही कहा था कि शास्त्रकी सम्मतिके अनुसार अन्य सर्वसाधारण हिंदुके समान, कोटा नरेशको भी दत्तक लेने या अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करनेका अधिकार है।+

सं. १८३७में फिर एकबार, जब ओरछाके राजाने दत्तक गोद लिया

---

* छत्रपतिको जब सातारेकी गद्दीपर बिठाया गया तब जो संधि हुई थी उसमें 'सरकार'ने जो सर्वप्रथम शर्त रखी थी वह यों है.—

"बहादुर अंग्रेज सरकार अपनी ओरसे मान्य करती है कि दर्ज किया हुआ प्रांत और प्रदेश छत्रपति महाराजको (सातारा नरेशको) अथवा उनके संस्थानको दिया जायगा, महाराज छत्रपति और महाराजके पुत्रपौत्र, वंशज तथा उत्तराधिकारियोंको सदा के लिए, याने पीढी दर पीढी उपर्युक्त प्रदेशपर राज्य करते रहने का अधिकार है (सं. १)।"

+ पार्लियामेंटरी पेपर्स १५ फरवरी १८५० पृ. १५३.

तब अंग्रेजोंने उसे मान्यता देकर वचन दिया था कि, "स्वतंत्र हिंदु नरेशोंको दत्तक गोद लेने और अन्य दूसरे उत्तराधिकारीका दाखिल करनेका पूरा अधिकार है, और हिंदु धर्मशास्त्र ऐसे कामको विरोध न करता हो तो अंग्रेज सरकारको उसे स्वीकार करनाही पडेगा।' * मतलब, यह बेखटके कहा जा सकता है कि एक बार स्पष्ट दिये और खतपत्रोंमें दर्ज किये वचनोंसे, यह कहकर कि ऐसे वचन दिये ही नहीं थे, इनकार करनेकी निलज्जता तथा साहस अंग्रेज राजनीति के बिना और किसी स्थानमें नहीं पाया जायगा। केवल उपर्युक्त घोषणाओंहीमें नहीं किन्तु अन्य कई अवसरोंपर अंग्रेजोंने स्पष्टतया मान्य किया है कि, हिंदुधर्मशास्त्रके अनुसार हर हिंदुनरेशको पुत्र गोद लेनेका अमसिद्ध अधिकार है ही। भाडेमें १८४६ से ४७ के दो वर्षोंके छोटसे कालखण्डमेंही, अंग्रेजोंने कई दत्तक वारिसोंको गद्दीपर बैठनेका अधिकार मान्य कर, उनके राज्य-कारोबारको सम्मत किया था।

आश्वासनों तथा आपस में की हुई संधियों के पश्चात् भी संस्थानों पर दखल करने के मूल कारणों को ढूँढना तो बिलकुल ऊँचे रास्ते जाना है। इन सब घनाओं की सची पृष्ठभूमि यह है कि, डलहौसी समूचे भारत को 'समथर' बनाने के लिएही यहाँ आया था और यहाँ वो भूमिमें गडा हुआ सातारे का मृत साम्राज्य फिरसे उठ खडा होने की चेष्टा कर रहा था, जिससे स्पष्ट है कि, प्रतापसिंह तथा अप्पासाहबने हिंदुधर्मशास्त्र के आज्ञानुसार यद्यपि दत्तक गोद लिया था तो भी अंग्रेजों ने, सातारा नरेश नि संतान होनेके बहाने, सातारा जब्त कर लिया। सातारे का सिंहासन! इसीपर शिवाजी महाराज को श्री गागाभट्टने राज्याभिषेक किया था! इसी सिंहासन के सामने बाजीराव प्रथमने अपना उज्ज्वल असि तथा विजय यश्री धर कर अपना मस्तक नवाया था। महाराष्ट्र, देख! जिस सिंहासन को श्री शिवाजी महाराज ने विभूषित किया था, संताजी धनाजी जैसे वीरवरोंने जिसे राजवंदना अर्पण की थीं उसी सिंहासन के, डलहौसीने, टुकडे टुकडे कर डाले! अर्जियाँ, प्रार्थनाएँ, और शिष्टमंडल ले जाना

* पार्लियामेंट पेपर्स १५ फरवरी १८५० पृ १४१

यदि तुमसे हो सके तो! किन्तु डलहौसी यदि तुम्हारी बातपर ध्यान न दे तो? तुम समझते हो कि, निदान अिंग्लैडमें तो कपनी सरकार के संचालक तुम्हारी सुनेंगे। डलहौसी तो, भई, एक सादा मानव है, किन्तु हो सकता है कि अिंग्लैंड में रहनेवाले ये सचालक ईश्वरीय अवतार हो। यही न? महाराष्ट्रीय किसी भी व्यक्ति ने अबतक इन देवमानूसो का मुँह तक नहीं झाँका था! और इसी से निश्चय हुआ कि रगो बापूजी जैसे निष्ठावत तथा सुयोग्य सज्जन अिंग्लैंड जाय और सातारे की दुखभरी कहानी वहाँ के सत्ताधारियों को सुनायें। सफलता मिले या न मिले, उन्हें विश्वास हुआ कि एकबार जतन तो करना चाहिये। किन्तु अपनी बसीठी मे सफलता मिलेगी, (जो कि जनमभर मे सत्य न होनेवाली बात थी,) इस आशा-पर वे कहाँतक राह देखते रहते? रगो बापूजी आखिर लदन हाल रास्ते की फर्श को कहाँ तक घिसते? और हाँ, करोडों रुपये अंग्रेज बॅरिस्टरों के जेब में उडेलने पर जिन्हें घर लौटने को एक पाई भी पास न बचेगी और "सातारे का राज्य कभी नहीं मिलेगा" यह अशिष्ट उत्तर कपनी के सचालकों से साफ साफ जिन्हे दिया जायगा वह रगो बापूजी इस तरह अपमान और मखौल करनेवाला तोहफा अंग्रेजोंसे प्राप्त होनेतक, अपने विफल आशाततु में आखिरतक चिपके रहेगे!

जब रगो बापूजी लदन को जानेकी सिद्धता करनेमें व्यस्त थे तभी एक नयी घटनाने डलहौसीका मन हर लिया। नागपुर राज्यका पतला और सिमटा हुआ पौधा उखाड फेकनेका अनायास बहाना मिला था। नागपुरके एकमात्र अधिपति भोसले अपनी आयुके ४७ वे वर्षमें अचानक स्वर्ग सिधारे। बरारका यह अधिपति अग्रेज सरकार का माननीय मित्र था।*

और यही अग्रेजों की मित्रता भोसलेके विनाशका सामान हुआ। जिन्हें भान था कि अंग्रेज उनसे द्वेष करते है, वेही बच गये। किन्तु अग्रेजोंको

* १८२६ की सधि यों थी:—ईस्ट इडिया कपनी और महाराजा रघोजी भोसले, उनके उत्तराधिकारी तथा वारिसों के साथ सार्वकालिक मित्रता की यह संधि है।

अपने गले का हार मानने की मूर्खता जिन्होंने की थी उन्हीं का, अनहद निर्दयता और विश्वासघातसे, अंग्रेजोंने सत्यानाश कर डाला। बराड का राज्य कोई अंग्रेजोंके बाप की जमींदारी नहीं थी, या अंग्रेजो की मर्जीपर ही जिन की हस्ती अवलंबित हो ऐसा कोई सामंतराज्य भी न था। फिरंगी सरकार के समान यह एक स्वतंत्र और स्वयंपूर्ण राज्य था। जे सिल्व्हियनने अंग्रेजोंको साफ शब्दोंमें ललकारा था " किस कारणसे और किस न्यायके दिखावेसे (चाहे वह पाश्चिमात्य हो या पौर्वात्य) अंग्रेजों को हक है कि वे केवल इसलिए किसी के राज्य को जप्त करे कि उसका राजा नि संतान मरा"।

सचमुच यह सब एक हथकंडे का इंद्रजाल था। एक डाका ले और दूसरा साथी चुपचाप उसे छिपाये रखे। एक सिर काट ले और दूसरा साथी चिल्ला चिल्ला कर पुकारता जाय ' किस न्याय या निर्बंध के आधार पर तुमने यह काम किया है !' मानों, चोरों और खूनी डाकुओं को अपने काम की पुष्टिमें किसी न्याय, निर्बंध की आवश्यकता होती है। स १८५३ में निदान डलहौसीने अपने "मित्रोंकि" गलेपर खूनी खंजर फेर ही दिया। और केवल इसी बहाने कि भोसलेने दत्तक गोद न लिया। राजा रघूजीको प्रबल आशा थी कि उन्हें पुत्र अवश्य होगा किन्तु एकाएक उनका अन्तकाल हुआ। फिर भी उनकी धर्मपत्नी रानी को दत्तक गोद लेनेका पूरा अधिकार था। हाँ, इसके पहले मृत राजाओंकी रानियोंने गोद लिए दत्तक पुत्र को अंग्रेजोंने न माना होता तो हमें कुछ कहना न था, किन्तु यह तो सब जानते हैं कि १८२६ में दौलतराव शिंदे की विधवा रानीके गोद लिए हुए, १८३४ में धारके राजाकी विधवा के लिए हुए और १८४१ में किसनगढकी रानीके लिए हुए दत्तकको अंग्रेजोंने मान लिया था। एक दो नहीं, कई एक दत्तविधानोंको अंग्रेजोंने मान्यता दी थी। किन्तु, ध्यान रहे, ये सब दत्तविधान मान लेना उस समय अंग्रेजोंके लाभ में था। हाँ, इस बार राजा रघूजीकी रानीका दत्तक मान लेना उनके स्वार्थके विरुद्ध था, जिससे स्पष्ट है कि अंग्रेजोंका हानि-लाभही उनकी नीतिका आधार था। नागपुर नरेशने दत्तक नहीं लिया और सातारेके छत्रपतिने गोद लिया इससे दोनोंके राज्योंपर अंग्रेजोंने कब्जा जमाया। तर्कशास्त्र भी यहाँ लाचार हो जाता है।

नागपुर प्रांत जब्त कर डलहौसीने ७६८३२ वर्ग मील का प्रदेश, जिसकी जनसंख्या ४६, ५०,००० और वार्षिक आय ५० लाख की थी, हडप लिया। असहाय रानियाँ अपना सिर पीटती रो रही थीं उसी क्षण राजमहल के द्वार खटखटाये गये। दरवाजों को धडाम से खोलकर अंग्रेजी सेना अंदर घुस पडी, अस्तबल से घोडों को खोल दिया गया; ऊपर चढी हुई रानियों को बलपूर्वक नीचे उतार कर हाथियों को मवेशी बाजार में बेचने भेजा गया, सोने चांदी के अलंकार राजमहाल से लूट कर गली गली में नीलाम कर दिये गये। रानी के गले की शोभा बढानेवाली कंठमाला बाजार की मिट्टीमें मलिन हुई। एक हाथी के मात्र सौ रुपये इस हिसाब से सभी हाथी बेच मारे गये। और, फिर, इसमें क्या आश्चर्य, कि वे घोडे, जो डलहौसीके प्रतिदिन के खाने से भी अधिक मूल्यवान तथा अच्छी खुराक पा कर पुष्ट थे, बीस बीस रुपर्डों में बेचे गये। और घोडोंकी उस जोडी को, जिनपर स्वयं राजा रघूजी सवार होते थे, पांच रुपर्डों में दिये गये। हौदे के साथ हाथी, और जीन चढाये घोडे तो बेच डाले अवश्य, फिर भी, देखो, उन रानियों के गहने उनकी देहपर पडे हुए हैं! क्यों न उस जेवरको बेचा जाय? और आखिर, अन्य वस्तुओंके समान इन जेवरों को भी रास्ता दिखाया गया; बेचारी रानियोंकी देहपर फूटी मणि भी न रही! किन्तु तिस पर भी अंग्रेजों से 'मित्रता' न छूटी। इसलिए उन्होंने राजमहलकी भूमि खोदना प्रारंभ किया। हायरे दैव! रानियोंके अंतःपुरके शय्यागारोंको अपवित्र करनेको अंग्रेजी कुदाली सँवारी गयी! पाठक, चौंको मत, व्यथित न बनो! क्यों कि, अभी तो अंग्रेजी कुदालीने अपना काम शुरूही किया है, उसे आगे चलकर बहुत काम करना है—वह कर रही है। देखो, रानीका पलंग भी उसने तोड फोड दिया और अब उसके नीचेकी भूमि खोदी जा रही है! कैसे कहें? महाराणी अन्नपूर्णाबाई उस समय अपनी घडियाँ गिन रही थी। नागपुरके श्रेष्ठ भोंसले घरानेकी यह विधवा राजमाता राज्य तथा घरानेके अपमानसे दुःखित कराह रही थी, तभी उसकी बगलके दालानके उसीके शय्यास्थानके नीचे, अंग्रेजोंकी कुदाली अपना विध्वंसन—कार्य बढा रही थी। बगलके दालानके आर्त कराहोंका साथ देनेको इस कुदालीकी टनटनाहटका कैसा

घोर पार्श्वसंगीत ! और इस भीषण बनाव का कारण ? यही कि राजा रघूजी भोसले किसी पुत्रको गोद लेनेके पहले स्वर्ग सिधारे !*

अपने प्राचीन राजवंशपर मढे गये असहनीय अपमानकी आगसे तडपती हुई, रानी अन्नपूर्णाबाईने अंतिम साँस ली। फिर भी रानी बकाकी यह आशा मरी नहीं कि 'अब भी अंग्रेज न्याय करेगा'। उसकी यह आशा भी अंतिम साँस छोड गई, हाँ, किन्तु अंग्रेज बॅरिस्टरोंको भरपेट खिलानेके पहले नहीं ! फिर रानी बकाने क्या किया ? फिरंगियोंसे 'राजनिष्ठ' रहकर अपनी शेष आयु समाप्त की ! जब झाँसीकी बिजलीकी कडकडाहट हुई और रानी बकाने जब देखा कि उसके बेटे अपनी तलवारें सँवारकर स्वराज्य-संग्रामके महायज्ञमें जा रहे हैं, तब भोसलेकी इसी विधवा रानी बकाने उन्हें धमकाया कि 'मैं स्वयं जाकर अंग्रेजोंको तुम्हारे षड्यन्त्रकी खबर देती हूँ और तुम्हें कत्ल करवाती हूँ'। बका ! उस महान् लब्धप्रतिष्ठ वंशको कलंकरूप बनी पापिनी ! जा, गहरे—बहुत गहरे नरकमें जा, वहीं तुझे आसरा मिलेगा ! किन्तु, क्या मालूम, अपने राष्ट्रसे विश्वासघात करनेवाले जीवको नरकमें भी स्थान मिलता है या नहीं !

* डलहौसीज ॲडमिनिस्ट्रेशन पृ १६५–१६८

अध्याय ३ रा

नानासाहब और लक्ष्मीबाई

बजाओ! इतिहास के अग्रदूतो! अपनी तुरहियाँ और शख जोरसे फूंको! क्यो कि, दो महान वीरश्रेष्ठोंका प्रदेश अब इतिहास के रगमचपर हो रहा है। हिंदमाता के गलेके हारके मानो, ये दो आबदार मोती! इस समय स्वदेश के क्षितिजको अमा के घटाटोप अंधेरेने जब पूरी तरह व्याप्त कर दिया था तब दो दमकते हुए तेजोगोलोंके समान ये दो व्यक्ति स्वदेशके आकाशमे चमक रहे है। अपनी देहके खूनकी आखरी बूँद तक स्वदेशपर हुए अन्याय्य अत्याचारों का प्रतिशोध लेने को सिद्ध हुए, मानो, ये दो भयकर 'अकाली' ही हैं। स्वदेश, स्वधर्म और स्वराज्यके लिए अपने प्राणोंको निछावर करनेवाले येही दो हुतात्मा वीर! शिवाजीको जन्म देनेवाली भारमाताका खून अब तक सूखा नहीं है—संसार को आव्हान देकर सिद्धकर दिखानेवाले तलवारके धनी ये दो महावीर, मानों, प्रतिनिधिरूप खडे है! स्वराज्यकी परम पवित्र महत्त्वाकाक्षा को अंतःकरणमे पालनेवाली येही दो विभूतियाँ। हारमे भी धवलित कीर्ति से अलंकृत धर्मयुद्धके येही दो धर्मवीर! इसीसे पाठक, उठो, परम आदरसे खडे हो कर इन वीरोंका स्वागत करो! क्योंकि, नानासाहब पेशवा तथा झाँसीवाली महारानी ये दो विभूतियाँ अब इतिहासके रंगमचपर पदार्पण कर रही हैं।

पावनप्रताप महाराष्ट्रके माथेरानकी पहाडियोंके पठारके प्राकृतिक

सौंदयका वर्णन करें या उसकी तलहटीम फैले हुए हरे मुलायम मखमली कछारोंका वर्णन करें, हम निर्णय नहीं कर पाते। इस सुंदर पहाडियोंकी उपत्यकामें तथा गगनचुंबी मायेरानकी गिरिशिखरोंकी छायामें वेणू नामक एक छोटासा गाँव, उस प्रकृति-सुंदर भूप्रदेशकी शोभाको और सुंदर बनाते हुए, वहीं सुखसे बसा हुआ था। उस वेणू गाँवके प्राचीन और प्रतिष्ठित घरानोंमें माधवराव नारायण भट का घराना अग्रसर माना जाता था। इस देहाती सीधे-सादे वातावरणमें रहकर भी माधवराव तथा उनकी शीलवती धर्मपत्नी गंगाबाई सुखचैनसे जीवन बीता रहे थे। इस सुखी परिवारमें १८२४ ई में गंगाबाईकी गोद बेटेसे भर जानेके कारण सबके मुँहपर आनंद लहरें मार रहा था। यह पुत्र और कोई न होकर नानासाहब पेशवा था, जिसका नाम सुनतेही फिरंगियोंके छक्के छूट जाते हैं। स्वाधीनता और स्वदेश के लिए झूझकर अपना नाम इतिहासमें अमिट अंकित करनेवाला वही नानासाहब!

इसी अरसेमें, बाजीराव द्वितीय अपने राजसिंहासनसे वंचित होकर गंगाके किनारे ब्रह्मावर्तमें अपनी शेष आयु बिता रहा था। कई महाराष्ट्रीय परिवार उसके साथ थे। और बाजीराव अपने पाससे खर्चकर उदारताके साथ उनको पालता है यह मालूम होनेपर और भी कई परिवार उसके पास आकर बसे। १८२७ ई में बाजीरावकी शरणमें ब्रह्मावर्तको पहुँचे परिवारोंमें माधवरावका परिवार भी था। वहाँ रहते हुए माधवरावके इस बालकसे बाजीराव बहुत आकर्षित हुआ और फिर तो नानासाहब सारे राजदरबार ही का लाडला बना। बचपनहीमें दीख पडने वाली यह तेजस्विता, यह गहरी छबी, वह असाधारण बुद्धि-बाजीरावके मनपर इनकी गहरी छाप पडी, जिसके फलस्वरूप बाजीरावने उसे गोद लेनेका निश्चय किया। ७ जून १८२७ को बाजीराव द्वितीयने विधिपूर्वक बडे समारोहके साथ नानासाहबको गोद ले लिया। नानाकी उम्र उस समय २॥ वर्षकी थी। इस प्रकार वेणू गाँवमें पैदा हुआ यह साधारण बालक, भाग्यबलसे, पेशवाके सिंहासनका उत्तराधिकारी-रक्तकही क्यों न हो-बन बैठा।

मराठी साम्राज्यके पेशवाके पदपर उत्तराधिकार प्राप्त होना निःसंदेह

एक बडे भाग्य की बात थी। किन्तु, हे तेजस्वी राजछौने! इस महा-भाग्य के साथ, तुझे भान है कि, कितने बडे दायित्व की धुरा तेरे कंधेपर आ पडी है? पेशवा का सिंहासन कोई मामूली बात नहीं है। इसीपर वे महाप्रतापी बाजीराव प्रथम चढे थे और यहींसे उन्होंने एक साम्राज्य का सचालन किया है। पानीपत का युद्ध इसी सिंहासनके लिए लडा गया था। पेशवाओंके मस्तक पर अभिसिंचन करनेके लिए इसी सिंहासनपर सिंधु का पवित्र जल उंडेला गया था। वडगाव की संधि इसीके लिए हुई और सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, पराधीनता का पापी स्पर्श इसी सिंहासनको होनेवाला है– नहीं पहले ही हो चुका है। समझे बालक! सिंहासनका उत्तराधिकारी होनेका मतलब है उस सिंहासनकी रक्षाका भार उठाना और उसका सुयश अक्षुण्ण रखने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होना। तो फिर पेशवाके इस सिंहासनकी प्रतिष्ठा बनाये रखना स्वीकार है न? या तो पेशवाके इस गद्दीपर विजय का मुकुट विराजमान हो जाय, या तो, चित्तौड की वीरांग-नाओं के समान इस सिंहासन को धधकी हुइ पवित्र चिताग्निमें स्वाहा कर देनाही योग्य होगा! पेशवाके सिंहासन की शान अक्षुण्ण रखनेका और कोई चारा नहीं है! प्यारे राजकुमार! सोच ले यह कर्तव्यभार, और तभी पॉव धरो उस पेशवाके गद्दीपर। जब तेरे इस दत्तक पिताने बाजीराव (२ यं) ने हृदयको दहलानेवाले ताने मारनेका लोगों को अवसर दिया कि 'पेशवाका मस्तक झुक गया,' तबसे यह देश लज्जासे निस्तेज हो गया है और सब चाहते हैं कि यदि इस गद्दीका अंतही होना हो तो वह आरम्भ के समान हो—नष्ट होना हो तो भी लडते लडते! ओ चुलबुले कुमार! ऐसी शान और दृढतासे पेशवा के सिंहासन पर चढो, जिससे इतिहास भी गर्वसे पुकारेगा कि हॉ हॉ, प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथके स्पर्शसे गर्वित सिंहासन उसके आखरी उत्तराधिकारी नानासाहब पर भी गर्व करता है।

हॉ, इसी अरसेमें काशीक्षेत्रमें चिमाजीअप्पा पेशवाके संगी साथियोंमें मोरोपंत तांबे अपनी धर्मपत्नी भागीरथीके साथ थे। इन पतिपत्नीके सपनेमें कभी खयाल नहीं आया होगा कि आगे चलकर उनका नाम अमर होनेवाला है। विधनाने जिस बालिकाको भारतमाताके हाथमें चमकनेवाली तलवारका स्थान देनेका संकेत किया था, उसके मातापिता होनेका गर्व

इस परिवारकी है। गुलाबकी कँटीली शाखाओंसे कहीं पता होता है कि वसंतमें अपनी महकसे सबका मस्त बनानेवाला फूल उसपरही खिलनेवाला है! भलेही शाखा इसे न जान, किन्तु हिन्दुभूमिके, वसंतका आगमन होतेही फूलने तो अपना सिर ऊँचा किया! १८३५ ई. में भागी रथीबाईने वीरकन्या लक्ष्मीको जन्म दिया। उसका नाम मनूबाई रखा गया।

मनू तीन चार वर्षोंकी हुई तब यह तांबे परिवार काशी छोड ब्रह्मा वर्तमें बाजीराव के पास आ गया। यहीं मनू सबकी लाडली बनी, उसे सब 'छबेली' कहते थे। राजकुमार नानासाहब और यह फूइड छबेली! जब ये दो बच्चे अल्हडपनसे एक दूसरेको चिपकते होंगे तब ब्रह्मावर्तके लोगोंकी बाछें खिलती होंगी। नानासाहब और छबेली को शस्त्रशालामें तलवार चलानेकी शिक्षा लेते हुए देखकर किसकी आँखें अभिमानसे न चमकती हों! नानासाहब और लक्ष्मी इसी शिक्षाके बलपर आगे चलकर स्वराज्य और स्वधर्मकी रक्षामें टटने वाले जो थे! हाँ, जिन्होंने इन बालकोंकी शस्त्र–शिक्षाकी उन्नति देखने का सौभाग्य प्राप्त किया था, वे उनका उज्ज्वल भविष्य न देख पाये, जहाँ उनकी तलवारोंका कौशल रणक्षेत्रमें देखनेका सौभाग्य जिन्हें प्राप्त हुआ वे उनकी बचपनकी बाल–लीलाओंको देखनेसे वंचित रहे। चाहे जो हो, ये चर्मचक्षु भले ही उस दृश्य को देख नहीं सकें, कल्पना का ऐनक लगाते ही हम अतीत की उनकी बाल–क्रीडाको हू–ब–हू देख सकते हैं। और बाबा और रावसाहब (नानाका चचेरा भाई) जब अपने शिक्षकके नेतृत्वमें पाठ पढते थ तब छबेली भी उन्हें ध्यानसे देखती थी और कुछ लिखना–पढना भी उनकी देखादेखी सीख गयी। हाथीपर हौदेमें चढ नानासाहब जाते हो तब छोटी छबेली लाडसे कहती 'मुझे भी उठा लो न भैय्या'।* कभी नानासाहब उसे ऊपर उठा लेते और हाथीपरसे हथि यार चलानेकी शिक्षा देते। कभी घोडेपर चढे नाना लक्ष्मीकी बाट जोहते खडे रहते, इतनेमें लक्ष्मी भी कमरमें तलवार लटकाए, वायुसे बिखरे बालों को सँवारती, घोडा दौडाती वहाँ आ धमकती, किन्तु अपनी

* पारसनीसकृत 'झाँसीकी रानीका चरित्र' (मराठी)

सवारी के तेज जानवर को रोकने के कष्ट से उसकी गौर छवि और ही आरक्त गौर हो उठती। अब नाना १८ सालका और लक्ष्मी ७ साल की थी। ठीक बचपन से इनमें गाढी मित्रता पैदा हो चुकी थी। एक ही अनादि शक्ति के ये दो रूप थे और एक ही महान् साधना के लिए उनका जन्म हुआ था, जिससे उनका एक दूसरे के प्रति आकर्षण विद्युत् परमाणु के समान प्राकृतिक ही था। इस समय ब्रह्मावर्त में १८५७ के क्रांतियुद्ध के तीन महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बढ रहे थे—नानासाहब, लक्ष्मी और तात्या टोपे। आगे अभिनीत होनेवाले महाभीषण नाटक के तीन प्रमुख अभिनेताओं की रूपरचना (मेक--अप्) करने के लिए ही, मानो, विधाताने ब्रह्मावर्त की रंगशाला का निर्माण किया था। कहते हैं, हर भाईदूज के दिन, नाना और लक्ष्मी—दो ऐतिहासिक भाई—बहन, दिवाली का समारोह संपन्न करते थे। सोने की थालीमें नीराजन रखकर अपने हाथों नाना की आरती उतारनेवाली मोहक किन्तु तेजस्वी छबेली का चित्र हम अपने मनःचक्षुओं के सामने खींच सकते है। एक ही कामधेनु के बच्चो, एकही कान के कोहीनूरो, तुम भाईबहन एक दूसरे को प्रेमसे तोहफे दो। हम भी उसी भारतमाता के कोखसे जन्मे हैं: हमारी भी नसों में वही खून बह रहा है, हम सब भाई बहन हैं; हर क्षण हमारे लिए दिव्य भाईदूज के समान है। अपने हृदय को सुवर्णपात्र बनाकर उसमें प्रेम की दिव्य ज्योति को जगमगाओ! लक्ष्मीबाई नानासाहब की मंगल आरति उतार रही है; इस प्रकार के दिव्य अवसर—जो इतिहास ही को अद्भुत आकर्षक कहानियों से भी अधिक अद्भुत रमणीयत्व प्राप्त कर देते हैं—संसार के किसी अन्य राष्ट्र के इतिहास में शायदही मिलेंगे। हे भारतमाता! जबतक ऐसे भाई बहन तुम्हारी कोख से जन्म पाते हैं तबतक तुम्हें कोई भय नहीं है। जबतक ऐसे दिव्य भाईदूज के प्रसंग और उनकी उनसे भी बढकर स्फूर्तिप्रद कहानियाँ जीवित हैं; तबतक किसकी हिम्मत है कि तुम्हारी ओर आँख उठाकर देखे? और यदि कोई ऐसी दुष्ट चेष्टा करने की धृष्टता करे तो विश्वास करो कि कानपुर का भाई और झाँसी की बहन, ये दोनों भाईदूजका वह महान् समारोह फिरसे शुरू करेंगे।

नानासाहब और मनूबाई के बचपन ही मे उन के आगामी बडप्पन

का बीज पाया जाता है। ये बच्चे जब नन्हे थे तभी से उनके रोम रोम में स्वराज्य के लिए प्रेम, आत्माभिमान की गहरी सूझ, और पुरखाओं का योग्य अभिमान भिद गया था। स्वराज्य शक्ति ने जब पुणे से उठकर ब्रह्मावर्तमें अपना अड्डा जमाया तब नानासाहब, लक्ष्मीबाई, रावसाहब तात्या टोपे जैसे छोटे छोटे पौधे वहाँ अपने छोटे छोटे कोंपलों को बाहर धकेल रहे थे। उनसे एक पौधा थोडे ही समयमें झाँसी के उपवन में बोया गया। स १८४२ में झाँसी के गंगाधरराव बाबासाहब महाराज से छबेली का गठबंधन हुआ और इस तरह यह छबेली झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई बन गयी। वहाँ राजसभा में यह बहुत जनप्रिय हुई और उसने अपनी प्रजा के प्रेम तथा भक्तिपूर्ण राजनिष्ठा को कैसे प्राप्त किया इस का इतिहास आगे चल कर मालूम होगा।

स १८५१ में बाजीराव द्वितीय मर गया। अच्छाही हुआ। उस की मृत्युपर एक भी आँसू बहाने की आवश्यकता नहीं है। क्यों कि, स १८१८ म अपना राज्य गँवा कर, यह पेशवा घराने का कुलबोरन, दूसरे राजाओं के राज्य छिन जाने में सहायता देते हुए जीवन बिता रहा था। ईस्ट इंडिया कंपनी के दिये हुए आठ लाख की प्रतिवार्षिक पेन्शन से इसने काफी बचाया था और उसे उसी कंपनीके नोटोंमें लगा रखा था। फिर अफगानिस्तान से जब अंग्रेजोंने युद्ध शुरू किया तब इसने अपने बचाये हुए धनसे पचास लाख रुपया अंग्रेजोंको कर्जा देकर उन की सहायता की। थोडेही दिनोंबाद फिर अंग्रेजों का सिक्ख राष्ट्र के साथ युद्ध जारी हुआ। और सब को आशा (और केवल अंग्रेजोंको डर था) थी कि ब्रह्मावर्त का यह मराठा, सिक्खों का साथ देकर अंग्रेजों के सामने डट जायगा। जब लगभग समूचा हिंदुस्थान औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध करने में मशगूल था, तब, कहते हैं, पंजाब में गुरु गोविंदसिंह की हार होनेपर मराठों से सहाय प्राप्त करने के लिए आप महाराष्ट्र में चले आये। अब तो उत्तर भारतमें जाकर, मराठों को सहयोग देने का अधूरा वचन और काम पूरा करने का मौका आया था। किन्तु, हाय! बाजीरावने ऐन वक्तपर सब गुड गोबर कर डाला। इसी बाजीने शिवाजी के पेशवाओं के इस कुलदीपक ने–अपनी गाँठ को काटकर अंग्रेजों की सहायता के

लिए एक सहस्र पैदल सेना और एक हजार घुडसवार भेज दिये। अपने शनिवार वाडे (पुणें में) की रक्षा के लिए इस के पास सेना न थी, पर, हॉ, गुरु गोविंदसिंह की पवित्र भूमी को भ्रष्ट होनेमें अंग्रेजों की सहायता के लिए इस को सेना मिल गयी ! अभागे भारत ! मराठा सिक्खो का राज्य ले और सिक्ख मराठो को पीटे—और यह सब क्यो ! क्यों कि इन दोनो की लाशों पर अंग्रेज वेहोश होकर नाचे इसलिए ! हमें हृदय से यमराज को धन्यवाद देना चाहिये कि यह स्वदेशद्रोही बाजीराव १८५७ के पहले इस लोक से बिदा हुआ !

मरने के पहले, बाजीराव ने वसीयतनामा कर रखा, जिस मे उस के दत्तक पुत्र नानासाहब को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर पेशवाई के सब अधिकार दे दिये थे। किन्तु बाजीराव की मृत्युका संवाद पाते ही अंग्रेज सरकारने घोषित किया कि आठ लाख की पेन्शन मे नानासाहब का कुछ भी अधिकार नहीं है। अंग्रेजों के इस निर्णय को सुन के नाना-साहब की दशा क्या हुई होगी ? उन के मनमें उमडते हुए विचारों और भावों ने कैसे खलबली मचायी थी इस की झॉकी उनके पत्रमे मिलती है। पत्र यों है:—

" पेशवा के श्रेष्ठ परिवार के साथ साधारण जनों का सा बर्ताव करने में कंपनी ने महान् अन्याय किया है। स्व. श्रीमंत बाजीरावसाहब ने जब अपना राजसिंहासन कंपनी को सौपा तब स्पष्टतया तय हुआ था कि उस के बदले में कंपनी वार्षिक आठ लाख रुपया दे। यदि पेन्शन सदा के लिए चालू न रहता हो, तो फिर पेन्शन के बदले में छोडा हुआ राज्य भी तुम्हारे पास सदा के लिए क्यों कर रह सकता है ? एक फरीक तो (संधि की शर्तों) प्रतिज्ञापत्र पर पूरा अमल करे और दूसरा फरीक जानबूझ कर उसे ठुकराय यह तो घोर अन्यायपूर्ण, असंगत, और वाहियात बात है। "

दत्तक पुत्र के नाते अपने पिता के किसी अधिकार पर कोई हक नहीं है, अंग्रेजों की इस दलील का मुँहतोड उत्तर अगले परिच्छेद में देकर हिंदुशास्त्रों, न्यायशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र के उद्धरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि करते हुए आगे लिखा है, " पेन्शन बंद करने का कारण बताते हुए कंपनीने कहा है कि बाजीराव (२ य) ने पेन्शन से बचा कर जो

रकम इकट्ठी की है वह इतनी अधिक है कि उनके परिवार के खर्च के लिए काफी है। कपनी भूलती है कि वह पेन्शन आपस की संधि के एक शर्त के अनुसार मिलती थी और उस के खर्च करने के तरीके पर कोई नियन्त्रण उस शर्त में नहीं रखा गया है। इस से हमारा सीधा सवाल है कि, पेन्शन किस तरह खर्च किया जाय यह पूछने का कंपनी को क्या अधिकार है? रंचमात्र भी नहीं है। कंपनी ने कभी अपने नौकरों से भी पूछा था कि उन के पेन्शन को वे कैसे व्यय करते हैं और उससे कितनी बचत करते हैं। तब कितने आश्चर्य की बात है कि जो प्रश्न अपने नौकरों से कंपनी नहीं पूछ सकती वह एक राजवंशी से किया जा रहा है और संधि की शर्तों को ठुकराने का बहाना ढूँढा जा रहा है।"* इस तरह तर्कसंगत और स्पष्ट निवेदनपत्र लेकर नानासाहब का अत्यंत विश्वासी राजदूत (अँबेसडर = एलची) अजीमुल्लाखान इंग्लैंड रवाना हुआ।

१८५८ के क्रांतियुद्ध में काम करनेवाले व्यक्तियों में अजीमुल्लाखाँ का नाम खास ध्यान में रखना चाहिये। स्वातंत्र्य-समर की सूझ जिन असाधारण, बुद्धिशाली तथा विशाल हृदय की व्यक्तियों के मन में सर्व प्रथम पैदा हुई, उन में अजीमुल्ला का स्थान बहुत ऊँचा है और जिन अनेक आयोजनों के कारण अन्यान्य अवस्थाओं से गुजरती हुई क्रांति का विकास हुआ उनमें अजीमुल्ला की योजनाएँ महत्त्व रखती हैं।

अजीमुल्ला का जन्म एक गरीब परिवार में हुआ था। अपने गुणों के बलपर उसकी उन्नति हुई और आखिर वह नानासाहब का विश्वसनीय मंत्री बना। बचपन में गरीबी के मारे वह एक अंग्रेज परिवार में नौकर रहा था। किन्तु उस हैसियत में भी महत्त्वाकांक्षा की ज्योति उसके अंतःकरणमें सदासे चलती रहती थी। साहब का 'बॉय' बनकर रहते हुए उसने कई विदेशी भाषाएं सीख लीं और थोड़ेही समय में वह अंग्रेजी तथा फ्रान्सीसी भाषाएं धारावाही रूपसे बोलने लगा। इन

* नानाज क्लेम अगेन्स्ट दि ईस्ट इंडिया कंपनी

दो भाषाओं का पूरा अध्ययन कर लेने के बाद, अजीमुल्लाने फिरंगी की सेवा छोड दी और कानपुर की एक पाठशाला में भरती हो गया। अपनी असाधारण क्षमता के कारण थोडेही समयमें वह उसी पाठशाला में शिक्षक हुआ। वहाँ उसका बडा नाम हुआ और उसकी विद्वत्ता की कीर्ति नानासाहब के कानोंतक पहुँच गयी, जिससे उस का प्रवेश बिठूर के दरबारमें हुआ। पहले ही उस की दी हुई नेक सलाह नानासाहब को जँच गयी, जिसकी उन्होंने प्रशंसा की और फिर तो, बिना अजीमुल्ला की सलाह के नानासाहब कोईभी महत्त्वपूर्ण काम नहीं करते थे। स. १८५४ में नानासाहब ने उसे अपना एलची बनाकर अंग्लैंड भेजा। उसका चेहरा सुंदर था, साथमें उसकी वाणी भी मीठी किन्तु गंभीर थी। अंग्रेजों के उस समय के रीतिरिवाजों का बहुत अच्छा जानकार था जिससे लंदनके राजनैतिक क्षेत्रमें वह बहुत जल्द प्रिय बन बैठा! इसकी मीठी वाणी की मोहिनी और मुसलमानी रुबाब के तेजस्वी व्यक्तित्त्व से कई आंग्ल युवतियाँ उस पर आशिक हो गयीं। उस समय लंदनके क्रीडोद्यानों में और ब्रायटन के पुलिन पर जवेरात से लदे इस हिंदी 'राजा' को देखने के लिए लोगों के झुंड के झुंड उमड पडते थे। ऊँचे, प्रतिष्ठित घरानों की कई अंग्रेज महिलाओं तो इससे इतनी पागल हो गयी थीं, कि उसके भारत लौट आनेपर भी, प्रेमभीनी चिठ्ठियाँ उसे भेजा करती थीं। आगे चलकर जब हॅवेलॉक की सेनाने बिठूर छीन लिया तब हॅवेलॉक को वहाँ 'अपने प्रीतम अजीमुल्ला' के नाम लिखे अंग्रेज महिलाओं के हस्ताक्षरमें कई पत्र प्राप्त हुए।

किन्तु, अजीमुल्लाके अंग्रेज युवतिओं को अपने पीछे पागल बनाने पर भी ईस्ट इंडिया कंपनीने अपने हठीले रुखपर जरा भी आँच न आने दी। कुछ समयतक वह उसको गोलमोल उत्तर देती रही और निदान टका-सा जवाब दे दिया, कि "गवर्नर-जनरलने जो निर्णय दिया है, कि दत्तकपुत्र नानासाहब को अपने पिता की पेन्शन पर किसी तरह का अधिकार नहीं है, हमारी रायमें बिलकुल ठीक है।" इस तरह उस की यात्रा का प्रमुख हेतु बिगड जानेपर खाली हाथ लौटते समय उसका मन कुछ दुःखी हुआ। 'कुछ' इस लिए कहा है कि, इसी समय एक नूतन आशा उस

के मन में सिर ऊँचा कर रही थी। उस आशा कि सफलता में किसी विदेशी की सम्मति अपेक्षित नहीं थी, किन्तु उसकी सफलता पूर्णत: उस के स्वदेश तथा देशबांधवों पर निर्भर थी। स्वजनों की अनुमति कैसे प्राप्त करें? साम, दाम, भेद ये तीन इलाज करनेपर भी स्वदेश की स्वाधीनता प्राप्त नहीं होती तब, किस दण्ड शक्ति का उपयोग करें? इस विचारसे अजीमुल्ला के हृदय में एक नूतन आशा, एक नवचैतन्य पैदा हुआ।

ठीक इसी समय लंदन की प्रतिष्ठित बस्तीमें एक क्षत्रिय विश्राम कर बैठा था। उसे भी यही विचार सता रहा था कि अर्जी प्रार्थना से जो प्राप्त नहीं होता उसे किस उपाय से हासिल करे? और असीम निराशा के परिणाम से पैदा होनेवाले प्रतिशोध से अभिभूत हो कर यह अन्यान्य आयोजनों के विषय में सोच रहा था। यह क्षत्रिय था सातारे का वकील रंगो बापूजी। पेशवा का प्रतिनिधि अजीमुल्ला उनसे कई बार मिलता था और उन दोनों में गुप्त मन्त्रणाएँ भी हुआ करती थीं। स्वाधीनता प्राप्त करने के आयोजनोंमें महागूढ छत्रपति तथा पेशवा के इन दो वकीलों को कुछ समय के लिए भूलकर नानासाहब की गतिविधिपर ध्यान देना हमें आवश्यक है।

वह दिन बड़े सौभाग्य का होगा, जब संसार के सम्मुख श्रीमंत नानासाहब पेशवा की जीवनी सिलसिलेवार रखी जायगी। किन्तु तबतक नाना साहब के कट्टर शत्रु अंग्रेज इतिहासकारों के उन के जीवन के मोटे प्रसंगों का वर्णन यहाँ करना असंगत न होगा। आवश्यक होनेपर उन के जवान होनेतक का इतिहास हम जान ही चुके हैं। उनका ब्याह सांगली के महाराज की भगिनी बहन से हुआ था। सं १८५७ के उत्थान का कार्यक्रम उत्तर भारत के लिए निश्चित करनेपर नानासाहब के इस नातेदार सालेने उसीतरह का संगठन तथा क्रांति महाराष्ट्र में भी करने के लिए पटवर्धन वंशीय रियासतों में सब प्रकारसे सिद्धता कर रखी थी। अपने पिता की मृत्यु के बाद नानासाहब बिठूर ही में रहे। यह नगर यों भी रमणीय था, उसकी किस्मतदी से टकराकर बहनेवाली भागीरथीने उसकी शोभा और भी बढ़ा दी थी। नानासाहब के राजमहल की चारदिवारी से तो दृश्य बहुत सुंदर दीख पड़ता था। आगे फैला हुआ भागीरथी का प्रशांत जल, उस के तटपर आनंदसे

क्रीडा करनेवाले स्त्री-पुरुषों के झुंड और रमणीय तथा शिल्प-कौशल्य के प्रसिद्ध मंदिरों के आकाश में ऊँचे उठे और गंगा-तटपर दूरतक चमचमाते हुए, कांचन-कलश; सभी दृश्य अत्यंत मनोहारी था। राजमहल के दिवारों के अंदर चौडे बने मार्ग, किनारे लगे हुए हाट, राजनैतिक कार्यालय और मंत्रिमंडल के प्रधान भवन-इनसे वहाँ के महान् कार्यकलापों की कल्पना आ जाती थी! राजमहल के अंदर उसके विशाल सभागृहों में कीमती कालीनें बिछी हुई थीं, रंगबिरंगी चिकें लटक रही थी। रसिकता से चुने हुए तथा कीमती चीनी मिट्टीके बरतन, जडाऊ रत्नोंसे चमकते झाड-फानूस, सुंदर सजे हुए शीशे, बढिया कारीगरी के हाथी-दाँत के नमूने और मणिरत्नो से बढी शोभा—कहाँतक वर्णन करे? सारांश, हिंदु राजप्रासाद में मिलनेवाले सभी भोग-विलास तथा वैभव बिठूर में बसने आये थे।* श्रीमंत नानासाहब के घोडे तथा ऊँट चांदी के साजसामानसे सजे थे। घुडसवारी का नानासाहब को बहुत शौक था और कहते है, उस समय अश्वविद्यामें लक्ष्मीबाई तथा नानासाहब अपना सानी कोई नहीं रखते थे। उन की अश्वशालामें शुद्ध बीज के चुने हुए घोडे थे। प्राणीसंग्रह का भी उन्हे बडा चाव था, उनके संग्रहालय के शिकारी कुत्तों, हिरनों, मृगोंको देखने के लिए दूर दूर से लोक आया करते थे। किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, नानासाहब अपने शस्त्रागार पर अधिक गर्व करते थे। उस शस्त्रागार मे सब प्रकार के तथा हर काम के शस्त्र, पैनी फौलादी तलवारें, लंबे निशाने की अद्यावत् बंदूकें तथा छोटे बडे मुँह की तोपे रखी हुई थीं।

अपने उच्च कुल तथा वीर वंश का सार्थ गर्व करनेवाले नानासाहबने अपने मन में ठीक निर्णय कर रखा था कि या तो अपनी वैभवशाली परंपरा की शोभा बढानेवाला जीवन व्यतीत करेंगे या नामोनिशान मिटा कर समाप्त हो जायँगे। यह भी ध्यान देने योग्य है कि, प्रमुख

---

* थॉमसन का लिखा 'कानपुर' अवश्य पठनीय है, क्यों कि, कानपुर की कत्ल से बचे दो में से एक यह जीव है, जिससे इस की पुस्तक का विशेष महत्त्व है।

सभाभवनों में सहज ध्यान में आ जाय इसतरह, मराठों के इतिहास का गौरव ये महान् तथा शक्तिशाली वीरों के चित्र लगाये गये थे।* उन वीरों से नानासाहब क्या बात करते होंगे? छत्रपति शिवाजी का चित्र उन्हें क्या संदेश देता होगा? जब उनकी दृष्टि बाजीराव प्रथम, पानिपत के समरशिवराव भाऊ, राजश्री युवक विश्वास-राव, सद्गुणी माधवराव तथा राजनीतिकुशल नाना फडनवीस के चित्रोंपर पड़ती होगी तब क्या भाव उनके मनमें उमड़ते होंगे? ऐसे महान् राजपुरुषों के कुल में जन्म होनेकी एकमात्र भावना नानासाहब की मनोगति को किस ओर मोड़ती होगी? अपने पुरखा जिस महान् हिंदू साम्राज्य के प्रमुख प्रतिनिधि—नहीं, नहीं, राज्यकर्ता—थे उस साम्राज्य की पेन्शन अपने सम्मुख अर्जी-प्रार्थनाएं कर मॉंगते रहना, इस मानहानि का भारी विचार नानासाहब के मन को चुभता होगा इसमें क्या संदेह? शिवाजी महाराज की गौरवपूर्ण स्मृति नानासाहब के जिस अंतःकरणमें जग रही थी उसमें, शिवाजी महाराज के महान् कार्यों की ऐतिहासिक कथाओं ने प्रतिशोध और क्रोध की ज्वालाओं को अवश्य भड़काया होगा। 'संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते'— सज्जनों को अपमान से पहले मृत्यु अधिक पसंद होती है। नानासाहब भी इस तरह के मानी सज्जन थे। आत्माभिमान ही उस उत्तम राजकुमार की संपत्ति थी —वीरोंका सदासे यही नियम है। इससे गोरे अधिकारियों के निमंत्रण को स्वीकार करने की कल्पना उन्हें नहीं भाती थी। क्यों कि, वे पेशवा थे और पेशवा के सम्मानमें तोपें दागने की प्रथा का पालन करने कंपनी कभी न राजी होती। नानासाहब स्वस्थशरीर थे, सादगी उनका स्वभाव था। शराब आदि या नशा से वे कोसों दूर थे।+ नानासाहब को कईबार नजदीक से देखनेवाले एक अंग्रेजने लिखा है कि उसने पहले पहल जब नानासाहब को देखा तो उनके २८ वर्ष के

---

* चार्ल्स् बॉल कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १ पृ ३०५

+ ए क्वाएट ॲंड अन्‌ऑस्टेन्टेशस यंग मॅन नॉट ॲट ऑल ॲडिक्टेड टु एनी एक्स्ट्रॅव्हॅगंट हॅबिट्स्—शरबॉन के

होनेपर भी वे ४० साल के पुख्ता पुरुष मालूम होते थे। ऐसे तो उनका बदन मोटा ही था, चेहरा गोल, आँखे शेर के समान सब ओर फिरनेवाली, तेजस्वी और भेदक थी। उनका रग स्पॅनियॉर्ड के समान गेहुआ था; उनकी बातों में हँसोडपन झलकता था।* दरबार मे वे किनखाबी वेश पहनकर जाते। परम उदार और दयापूर्ण हृदय से उन्होंने प्रजा का प्रेम प्राप्त किया था। अपनी जनता के लिए वात्सल्यभाव रहना तो स्वाभाविक ही है किन्तु जिन अंग्रेजों ने उनके विरुद्ध षडयत्र कर उनका सर्वनाश किया उन अंग्रेजों से भी सदा शिष्ट तथा उदार बरताव रखते थे, यह विशेष बात है; किसी अंग्रेज नौजवान दपति का मन हुआ कि चार दिन सैर करें तो 'महाराजा' नानासाहब के यहाँ उनकी अगवानी होती थी। कानपुरमे रहते ऊब उठे कई गोरे और उनकी मेमे 'महाराजा' नानासाहब की राजधानी में आते थे और बिठूर से बिछुडते समय उनसे कीमती शालों, मौल्यवान् मोतियो तथा मणियों को भेटस्वरूप ले जाते थे।* इससे स्पष्ट है कि, व्यक्तिगत विद्वेष का विष नानासाहब के मन को छू तक न गया था। जिस शत्रुको रणक्षेत्रपर अत्यत कठोरतासे हना जाता है, उसी शत्रुपर उपकार कर उदारता से, सामाजिक शिष्टाचार के नियमों का पालन करने का महान् ऊँचा तथा वीरता को शोभा देनेवाला आदर्श भारतीय इतिहास तथा महाकाव्यो में बार बार गौरवपूर्ण रूपसे वर्णित है। राजपूत वीर अपने हाडवैरी से भी कल्पनातीत उदारतासे पेश आते थे। इससे ध्यान में रखना चाहिये की उस समय नानासाहब और अंग्रेज अच्छे दोस्त थे।+ जबतक 'महाराजा' नानासाहब के राजमहल में दावतो पर हाथ साफ करने का अवसर मिल जाता था तबतक अंग्रेज हाकिम और उन की मेमे नानासाहब की प्रशसा के पुल बाधते थे,

* ट्रेव्हेल्यान कृत 'कानपुर' पृ. ६८-६९

+ नानासाहब हमारे देशबाधवों से सबध आनेपर जिस सचाई से हमेशा पेश आते थे वह अकथनीय है। हाकिम उनकी मित्रता और सरलता में पूरा विश्वास करते थे, पताकाधारी उन्हें महान् पुरुष कहते थे। —ट्रेव्हेल्यान कृत 'कानपुर'

किन्तु येही नानासाहब जब स्वराज्य और स्वदेश के लिए कानपुर के रण मैदान में पवित्र खड्ग तैयार कर खडे हो गये तब उन्ही अंग्रेजोंने उनपर अनगिनत हीन और अशिष्ट अभियोगों की वर्षा की।

श्रीमत नानासाहब शिक्षित और बहुत सभ्य थे। राजनीतिमें बहुत रस लेते थे, राजनैतिक हलचलोंपर बारीकी से ध्यान देते थे। बडे बडे राष्ट्रों की छोटी मोटी घटनाओंपर गौर करते थे, जिस के लिए अंग्रेजी समाचार पत्रोंको ध्यानपूर्वक पढते थे। हर दिन, दैनिक पत्रों को टॉड नामक अंग्रेज से पढवा कर सुनते थे—यह टॉड आगे चलकर कानपुर में मारा गया—और इसीसे इग्लैंड और भारत में होनेवाले राजनैतिक हेरफेर बहुत बारीकी से जान लेते थे। अवध प्रांत कंपनीने जब्त किया। उस-पर जब गहरा विषाद होता तब नानासाहब अपनी स्पष्ट सम्मति प्रकट करते कि इस ज्यादह अंग्रेजोंने युद्ध को न्योता दिया है।*

उपर्युक्त सभी वर्णन नानासाहब के शत्रुओं के लिखे इतिहास से इकठ्ठा कर लिया है, जिससे, ध्यान रखने की बात है कि, उन के शत्रुओं से वर्णित गुण नानासाहब के विशेष मोटे मोटे गुण होने चाहिये। क्यों कि, नानासाहब से जलनेवाले इन अंग्रेज इतिहासकारोंने, अगतिक होकर आवश्यक स्थानमें ही उन सद्गुणों की प्रशंसा की होगी अन्यथा ऐसा वे कभी न करते। इस प्रशंसा का बडा महत्त्व है। क्यों कि, यह सत्यकथन लाचार हो कर कह जाने के बाद इन्हीं अंग्रेज इतिहासकारोंने, नानासाहब के स्वातंत्र्य-समर में कूद पडते ही उनके विरुद्ध म इतना उबाल निकाला है कि मानो वे शैतानियत मरा बदला हो। अंग्रेजी विषैली लेखनी, नाना को 'बदमाश', 'डाकू' 'राक्षस' 'शैतान का परकाला' आदि विशेषण लिखते समय राक्षसी आनंद से गौसला उठती है। खैर, इन सब विशेषणों का श्रीमत नानासाहबपर लागू होना मान भी लिया जाय, फिर भी नाना साहब स्वदेश और स्वराज्य के लिए लडे और झूझते हुए लहूलुहान हुए यह एक ही बात, हम भारतियों के हृदय में, उन की प्रिय स्मृति सदा

* चार्ल्स् बॉलकृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १ प ३०४

बनाय रखने के लिए काफी है। समूचे संसार को यह सूचित होना आवश्यक था, कि भारत की स्वाधीनता को छिनने का पाप करने-वाले का प्रतिशोध—आज नहीं तो कल, जल्द या देरीसे—भयंकर और सर्व भक्षक प्रतिशोध अवश्य लिया जाता है। नानासाहब भारतभूमि का प्रत्यक्ष क्रोध! इस भारती का नृसिंहमंत्र। हाँ, यही एक बात हमारे अंतःकरण पर नानासाहब का महान् व्यक्तित्व अमिट अंकित करेगी! हाँ, केवल यही एक मात्र गुण भी! और फिर साथ साथ उनकी निजी उदारता, तीव्र कुला-भिमान और उससे भी महनीय देशप्रेमसे छलकता विशाल हृदय, इन सब की स्मृति हमारा मस्तक उनके चरणोंमें विनम्र कराती है। और फिर जिसका बल भीम–सा है, मुकुटसे मस्तक सुशोभित है, जिनकी तेजस्वी और सचेत आँखे छेडे गये आत्माभिमानके कारण आरक्त बनी है, जिनकी कमरमें लटकती तलवार तीन लाखके मूल्यवान म्यानसे बाहर निकलनेको तडप रही है, और जिनकी सारी देह स्वराज्य तथा स्वधर्मके अप-मानका प्रतिशोध लेनेकी तीव्र आकांक्षा तथा क्रोधसे, लाल हो उठी है, वह भव्य मूर्ति हमारे मनःचक्षुओंके सामने खडी हो जाती है और हमें प्रभावित कर देती है।

उमडते हुए परस्पर-विरोधी भावो, जरा ठहरो! उधर देखो, क्या हाः हाः कार मचा है! आखिर अंग्रेजों से नानाको उद्धत उत्तर मिला कि बाजीराव (२ य) की पेन्शनपर उसका कोई हक नहीं, वरन्च उसे बिठूरके उत्तरा-धिकारित्व के सारे अधिकारों को भी छोडना पडेगा और ऊपरसे कंपनी-सरकार शेखी बघारती थी कि उसने बिलकुल न्यायपूर्वक निर्णय किया है! न्याय? अबसे न्याय अन्यायकी बातें अंग्रेज न करें, उसका निश्चित उत्तर देनेकी उन्हे आवश्यकता नहीं है। बहुत गहरी सिद्धता पूर्णताको पहुँच चुकी है और न्याय अन्याय का प्रश्न कानपुरके रणमैदानपर हल होगा, यह निश्चित है। उसी स्थानमें मराठोंके हृदयोंपर चोट करना न्याय या अन्याय है इसकी पूरी चर्चा होगी। सिरकटे कबंध, घावोंसे छिदे शरीर और लहूकी नहरें ही प्रश्नका उत्तर देंगे! और हाँ, कानपुरके कुएँके किनारेपर बैठे गीध यह सब बहस सुनेंगे और न्याय अन्याय की समस्याके विषयमें पंचायतका निर्णय सुनाएँगे।

इस प्रकार के असाधारण समारोह की बड़ी भारी सिद्धता नानासाहब के राजमहल में हो रही थी, तब उनकी बहन छबीली थोड़ी ही हाथपर हाथ धरे बैठी रही! उसके सामने भी उसी न्याय अन्याय की समस्याने अपना जबड़ा खोला था। सन् १८५३ में उस के पति की मृत्यु पर जब उसने दामोदरको गोद लिया, तो दत्तक के अधिकार को ठुकराकर अंग्रेजोंने झाँसी का जब्त किया। किन्तु झाँसी ऐसी मामूली रियासत न थी जो मात्र कहने भरसे या एक पत्र से हड़प ली जाय! वहाँ नागपुर की कथा नहीं, नानासाहब की प्यारी बहन छबीली रानी लक्ष्मीबाई राजपद सँभाले थी, उसने ऐसी आशा को कूड़ेमें फेंक दिया। अंग्रेजों की यह कठोर और नीच धूर्तता की कार्रवाई को देख उस के आत्माभिमान तथा प्रतिष्ठा पर चपत पड़ी, इस अपमान से उस के क्रोध की आग धधक उठी और उसने साफ कह दिया "क्या मैं झाँसी छोड़ूँ! मैं नहीं छोड़ूँगी। जिस में हिम्मत हो वह एक बार जरा आजमा तो देखे! मेरी झाँसी नहीं दूँगी!"*

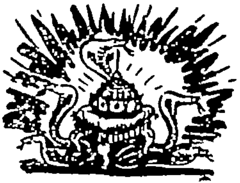

* डलहौसीज़ ॲडमिनिस्ट्रेशन वाल्यूम २

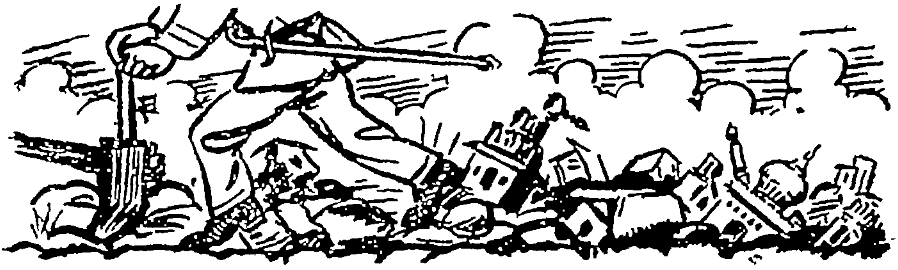

अध्याय ४ था

अवध

भारत के शासकों म से राज्य प्रबंध के बारे में वास्तविकता से अधिक पातकों के लिए हम जिन्हें दोषी मानते है उनमें डलहौसी को शामिल करते हमें जरा भी सकोच नहीं होता। डलहौसी जैसे शासक सर्वश्रेष्ठ अत्याचारी सत्ता के मुख होते है। इग्लड के स्वामियों की आज्ञा का पालन करना ही इन भारवाहकों का काम होता है। इससे भारत में घटे अत्याचारी कामों का पूरा दोष उनके सिर मढना पूर्णतया भ्रमपूर्ण और अन्याय्य है। उसकी नियुक्ति जहाँ हुई थी वहाँ की परिस्थिति के अगतिक दास के नाते डलहौसी अपना काम करता था। इससे उसके अच्छे बुरे कर्मों का बहुत बडा हिस्सा, जिन्हों ने ऐसी स्थिति पैदा की उनके सिर जा पडता है। जबतक कारोबारविषयक नीति का निर्धारण इग्लैड के बडों से किया जाता था और उसको सिर आँखों पर रख कर जिन्हें चलना पडता था उनमें-डलहौसी के समान ईमानदार सेवक शायद ही कोई होगा। डलहौसी के इग्लैड-निवासी स्वामियोंने और उनके हिंदुस्थानमें रहनेवाले सहयोगियों ने पैदा की परिस्थितिमें उत्पन्न, दोनोंके कुकर्मों के लिए डलहौसीही को मात्र दोषी मानना ठीक न होगा। सौ वर्षों पहले उनके पुरखाओं ने कडे परिश्रम से बोये बीज की राजनैतिक डकैती की फसल का मौसम अवश्य डलहौसी ने साधा। किन्तु इस प्रकार की अन्याय्य सत्ताके उत्तराधिकार की परपरा उसका आधार न होती तो डलहौसी ऐसे कितने राज्योंपर दखल करता। उसके पुरखाओ के कई

पीढियों ने धीरे धीरे, भिन्न भिन्न रियासतोंकी नींव कुतर कर पोली कर रक्खी थी, जिसका डल्हौसी को पाठ पढ़ाया गया था, और इसीमें कलम के धारी से ही उसने उनमें से कई राज्य अंग्रेजी सत्ता में शामिल कर लिये।

सं १७६४ में पहले पहल अवधके नवाब का ईस्ट इंडिया कंपनीसे पाला पड़ा तबसे कंपनी सरकारने हित् भेदक अवधका यह उपजाऊ प्रांत हड़प जानेका जतन बराबर करते रहे। अवधका नवाब अपने ही पैसोंसे अपनी 'रक्षा' के लिये अंग्रेजी सेनाका रख ले—इस तरह उसे फंसाकर अंग्रेजोंने उनकी सेनाके वेतनके नये मदमें सालाना सोलह लाख रुपये नवाबसे ऐंठे। इस प्रकारसे 'संरक्षण तथा ऐच्छिक सख्तीसे' नवाबका भंडार खाली हो गया। फिरभी अंग्रेजोंने उसे सूचित किया (वास्तवमें यह छुपी आज्ञा ही थी) कि यदि वह अपना राज तथा वैभव बनाये रखना चाहता हो, तो वह अपने हिंदी सेनाविभाग को तोड़ दे और उसके स्थानपर अंग्रेजी सेनाको रख ले। अंग्रेज अच्छी तरह जानते थे, कि जो खजाना इस 'संरक्षक' सेनाके वेतन ही को पूरा नहीं कर पाता, उसे और बढ़े हुए सेनाविभागोंके वेतनको पूरा कर देना सर्वथा असम्भव है और सचमुच इसे जाननेही से उन्होंने अपनी माँग नवाबके सिर मढ़ी। और निदान, (उसकी इच्छाके विरुद्ध) कंपनीने उसे बताया कि, भले ही राजकोष खाली हो, रियासतका प्रदेश तो है न! फिर क्या था! नवाब का मंगल करनेही के हेतुसे प्रेरित होकर, कंपनीने वार्षिक दो करोड़की आय का यह प्रांत खानेके लिए हड़प लिया और गोरे सैनिकोंकी पल्टनें नवाब की नौकरीमें जबरदस्ती रख दीं। वह प्रांत था रुहेलखंड और दोआब।

अवध के इस प्रदेशपर डाका मार अंग्रेजोंने नवाब के साथ एक संधि की जिससे तय हुआ कि क्यों कि नवाबने सभी प्रदेश से स्वामित्व के सब अधिकार छोड़ दिये हैं, बचा हुआ सब प्रदेश उस के वंश में पीढी दर पीढी नवाब के अधिकार में चलता रहेगा। इस संधिपत्र में एक शर्त यह भी कि नवाब कभी अपनी प्रजापर अत्याचार न करे। सं १८०१ में यह संधि हुई और उस के बाद सद चाहा तब करोड़ों रुपये कंपनीने उस से ऐंठे। अवध के सभी राजाओं का भविष्य अब कंपनी के सेनाधिकारियों के हाथ था।

इसतरह कपनी को दिये हुए जबरदस्ती के कर्ज तथा दान के कारण राजकोष खाली हो गया और नवाब के लिए स्वतत्ररूपसे अपने प्रदेश पर राज चलाना, किसी तरह के सुधार करना असम्भव सा हो गया। किन्तु 'ससार का भला करने की ठेकेदार कपनी सरकार नवाब साहब को लगातार सताती रही कि राज्यप्रबध मे अपनी रियाया को सुखी और सतुष्ट करने के लिए अवश्य सुधार करे। किन्तु नवाब क्या कर सकता था? राज की आमदनी बढाने के प्रयत्नों में कपनी हर बार कोई न कोई बहाना कर टाग अडाती। राज के जिन पुराने निबंधों (कानूनों) के कारण जनता सुखी थी उन सभी निबंधो को रद कर कपनी ने नये कानून बनाये। इन बदले हुए निबंधों के कारण जनता की दुर्दशा हुई, जिससे कपनीने भी अपनी भूल कोई दस साल के बाद मान ली। मतलब, कपनीने नवाब के अतर्गत राज्यप्रबधमें अनधिकार हस्तक्षेप किया, जहाँ दूसरी ओर से यह जताना शुरू किया कि नवाब की प्रजा किसी प्रकार की शिकायत न करे। एक तरफसे कपनीकी बेहूदी माँगों को पूरा करते करते नवाबका कोष खाली हो गया और फिर नयी नयी माँगोंको पूरा करने (और वे तो पूरी होनी ही चाहिये) नवाब कहीं रियायापर बोझ डाले तो कपनी नवाबको उसके कुप्रबधके लिए कोसती, क्यों कि जनता सचमुचही नये करोंसे असतुष्ट थी, इस तरह नवाबके शासनको अग्रेजोंने अपाहिज–सा बना डाला! किन्तु कहीं दूसरी ओर अवसर देखकर अन्यायका विरोध करते हुए राजनैतिक सुधार प्राप्त करनेको जनता सगठित हो उठती, तो वहाँ जनताके सगठनको कुचलनेके लिए 'आश्रित' अग्रेजी सेनाके हाथमे रही सगीनें तथा तलवारें हमेशा सिद्ध थीं और फिर भी कपनी आखीरतक यह आग्रह करती रही कि राज्यका कोई जीव शिकायत न करे। वास्तविकता यह थी कि यदि राज्यप्रबध मे सच्चा सुधार तथा असरकारी सुधार होना आवश्यक था और प्रजा को सुखी करना था, तो सबसे पहले ब्रिटिश रेसिडेंट को वापस बुलाकर नवाब को अपने अंतर्गत कारोबार मे पूरी स्वतत्रता देनी चाहिये थी। किन्तु सब कुछ इसके विपरीत हो रहा था, जिस से प्रजा के असतोष का दोष पूरी तरह कपनी के सिर आ पडता है।*

* चार्लस बॉल कृत इडियन म्यूटिनी खण्ड १ पृ. १५२.

लार्ड हेस्टिंग्सने स्वय यह निर्णय प्रमाण दे रखा है। तिसपर भी कपनी ने नवाब को यह डॉट दी थी कि यदि यह अपनी प्रजा को सुखी रखने का प्रबध न करे तो कपनी यह मानेगी कि स १८०१ की संधि रद हो चुकी है।

और सचमुच, स १८०१ की संधि को ठुकराया गया और बचारे नवाब ने स १८३७ म फिर से नइ संधि की। हाँ, इस संधि ने यद्यपि नवाब की सत्ता को बहुत मात्रा में कमजोर बनाया था, फिर भी स १८०१ की छलकपट की संधिसे अपना गला छुडाने के लिए नवाब ने नइ संधि पर हस्ताक्षर किये थे। स १८४७ में वाजिद अलीशाह नवाब बना। उसने पहिले ही ठान ली थी कि स्वराज्य के प्राणों को कुतरनवाले इस गोरे कीडे को पूर्ण तरह नष्ट करेंगे और इसी स राज्य के प्राणों की आधारभूत सेनामें सुधार करना शुरू किया। इस नौजवान सुजान सैनिकोंके अनुशासन के बारे म नये नियम बनाये; और कभी कभी यह स्वय सैनिक संचलन (परेड) का निरीक्षण किया करता था। सभी सेना विभागों को प्रतिदिन सबेरे नवाब के सामने संचलन करना पडता था, जहाँ सिपहसालार का गणवेश (युनिफाम) धारण कर यह स्वय उपस्थित रहता। उसने कडे अनुशासन की घोषणा की थी कि जो सैनिकदल (रेजिमेंट) संचलन भूमिपर (परेड ग्राउंडपर) आनेमें देरी कर दे, उस २००० रुपये दण्ड देना पडेगा और स्वय नवाब भी विलम्ब करे तो वह भी दण्ड देगा।*

नवाब अपनी शक्ति बढा रहा है यह देखकर कपनी का माथा ठनका। ब्रिटिश रेसिडेंटने थोडेही समयमें सभी सैनिक कार्यक्रमोंको बद करवाया, और साथ नवाबको चेतावनी दी कि नवाब यदि उसकी सेना बढाना चाहता हो तो कपनी भी 'आश्रित' सेना बढा देगी और उसका बढा हुआ खर्च पुरा करनेको प्रतिवर्ष और रकम देनी पडेगी; यह बात नवाब को माननी पडेगी। यह सुनतेही उस आत्माभिमानी नवाबके तनबदनमें आग लग गयी, किन्तु समयको पहचानकर उसे सेना-सुधारकी सारसी योजना को

---

* मेटकाफकृत 'नेटिव्ह नॅरेटिव्हस् ऑफ दि म्यूटिनी, पृ ३२-३३

स्थगित करना पडा। लाचार, उसे चुप रहना पडा। फिर भी 'उदार' कपनी सरकार रट लगाये हुई थी कि नवाबको उसकी रियाया को सुखी करनेके लिए राज्यप्रबंधमें सुधार करने चाहिये !

किन्तु अब नवाब को अपने राज्यप्रबंध को सुधार कर प्रजा को सुखी करने की योजना सोचने की आवश्यकता नहीं है। क्यों कि, भारत के सभी स्वतत्र सस्थानों का राज्यप्रबंध सर्वोत्तम कर देने का दायित्व अपने सिर लेकर और जल्द से जल्द जनमगल साधने की साधना का व्रत लेकर ईस्ट इडिया कपनी का प्रतिनिधि डलहौसी हिंदुस्थान आ पहुँचा है। राजनीतिज्ञ की पैनी बुद्धि से उसने परख लिया कि असलमें १८३७ की सधि एक बडी भारी भूल हो गयी है। क्यों कि पुरानी सधि रद करने से, अवध के स्वतत्र राज्यपर दखल करने का एक अच्छे से अच्छा बहाना हाथ से निकल गया। स. १८०१ की सधि की यह एक शर्त, कि 'नवाब को ऐसा प्रबध करना चाहिये जिससे प्रजा सुखी हो,' जब चाहें तब अयोध्या को हडप जाने के लिए अग्रेजों के पास अकाट्य प्रमाण था। अब यह १८३७ की भूल कैसे सुधारी जाय? या तो, सधि से साफ इनकार ही क्यों न किया जाय? बस, झगडा खतम! और सचमुच, किसी तरह कोई परदापोशी न करते हुए नवाब को स्पष्ट कह दिया गया कि '१८३७ की जैसी कोई सधि अबतक बनी ही नहीं'! अग्रेजों को इस सधिका पूरा स्मरण था–१८३७ के बाद थोडेही वर्षोंमें उन्हे, इस का भान हुआ। स. १८४७ में लॉर्ड हार्डिंग्टन ने इस सधि के होने की बात स्पष्ट घोषित की थी। आगे चल कर १८५१ में तो कर्नल स्लीमनने सधि हो जाने की बात दावे से कही थी। और १८५३ में केवल इस का जिक्र ही नहीं, प्रत्यक्ष वह सधिपत्र ही उस वर्ष के कपनी के खतपत्रोंमें अन्य सधिपत्रों के साथ नत्थी कर रखा गया था।*

और तिसपर भी अग्रेजोंने उस सधि की हस्ती से इनकार कर दिया और वाजिद अलीशाह को सूचित किया गया कि यदि प्रजा के हित में

---

* डलहौसीज ॲडमिनिस्ट्रेशन खण्ड २ पृ. ३६६.

नवाब का करोबार न हो, तो राज्य का प्रबंध अपने हाथों में लेने को कंपनी बाध्य हो जायगी।

सोचने की बात है, कि ऊपरके सभी प्रश्न डलहौसीके भारतमें पग धरने के पहले, कभी के निर्णीत हो चुके थे। उसके पुरखाओंने पापी हेतुसे प्रेरित होकर यह प्रदेश हड़प जानेका मार्ग उसके लिए निकाल दिया था और उनके ये सभी यतन लगभग सफल हाने को थे। डलहौसीके लिए अब एक आखिरी चोट करनेका काम ही शेष छोड़ा गया था। पंजाब और बरमा की तरह सेनाके बलपर अवधपर टसल करने का विचार किसी काम का न था। नवाबपर यह अभियोग नहीं लगाया जा सकता था कि उसने मित्रताके योग्य सहायता कभी न दी थी। क्यों कि, वह हर बार अंग्रेजकि काम आया था। इसके पहले कई बार, क्या नवाबने स्वयं हानि उठाकर अंग्रेजों का धन नहीं दिया था? यहाँ तक कि कई लड़ाइयोंमें अंग्रेजोंकी दुबली हालत देखकर उन्हें रसद पहुँचा कर उनकी सहायता की थी।

और, नागपुर की तरह नवाब के औरस संतति न होने का बहाना बनाने को भी गुंजाइश नहीं थी। नवाब की औरस संतानोंसे समूचा राजमहल भरा हुआ था। झाँसी के समान यहाँ दत्तक पुत्र की भी अड़चन न थी; क्यों कि वाजिदअली तो स्वर्गस्थ नवाब का सीधा राजमान्य तथा प्रजामान्य पुत्र था और वही गद्दीपर चढा था। मतलब, अवध के नवाब ने इन में से कोई अपराध नहीं किया था, जिसके कारण अनकों राजा अपने राज्योंसे हाथ धो बैठे थे। हाँ, नवाब ने उपर्युक्त कोई भी अपराध भले ही न किया हो, किन्तु उस मूलने एक अक्षम्य अपराध तो किया था। इससे बढ़कर क्या अपराध हो सकता है, कि हर तरह समृद्ध तथा सुजला सुफला सुनहली फसलसे लहराती अयोध्या की भूमि उसके हाथ में थी! यह देखते ही बनता है कि इंग्लैंड के सरकारी विवरण की 'नीली पुस्तकों' की रूखी रचना भी इस सुंदर और समृद्ध भूमिका वर्णन करनेमें काव्यकल्पना की रसीली भाषा से भर जाती है।

सरकारी विवरणमें लिखा है "इस सर्वोत्तम भूमिमें भूपृष्ठसे बीस फीटपर, और कहीं कहीं तो दस फीटपर भी, कहीं भी भरपूर पानी मिलता

है। ऊँचे ऊँचे बाँसके जगलोंसे लहराता हुआ, आम्रवृक्षोंकी घनी छायासे शीतल और हरी हरी उची फसलोंसे शस्यशामल यह भूप्रदेश अत्यत वैभवशाली और मनोहारी है। इमलीके वृक्षोंकी घनी छायासे नारगियोंकी सुगधसे, अजीरोंके मनोहारी रगोंसे और पुष्परेणुओंसे सर्वत्र महकतीं हुई मधुर सुगधोंसे इस प्रकृतिसुदर भूमिके वैभवमें और ही चार चॉद लग जाते है।

और इसीसे, ऐसी हरीभरी भूमि का स्वामी बनने के अपराध के कारण नवाब को सिहासन से नीचे खींच पटकने के लिए कोई भी धूर्त अंग्रेज नही हिचकिचायगा। डलहौसी यह बात अच्छी तरह जानता था और निदान १८५६ मे अवध जब्त करने की आज्ञा घोषित की गयी किन्तु इस के लिए कारण क्या बताया गया? यही, कि नवाब अपने राज्य मे आवश्यक सुधार करने को सिद्ध नहीं है!

यदि इग्लैंड, प्रजा का असतोष तथा कुशासन इन दो ही कारणों को, नवाब को गद्दीसे उतारने मे काफी मानता हो, तो, फिर भारत के एक दिन के उसके शासन का भी समर्थन इग्लैंड नही कर पायगा। चीन मे अफीम खाने का व्यसन है, अफगानिस्तान मे स्वेच्छाचारी राज खुले आम चल रहा है, यही नहीं, इग्लैड की खुली ऑखों के सामने रूसमें अत्याचार और लूटखसोट पराकाष्ठापर पहुँच गये हैं; तो फिर चीनी सम्राट, अफगानी अमीर या रूसी जार को उनके सिंहासन से उखाड उन देशोंपर दखल करने की हिम्मत इग्लैंडमे है? पडोसी उस के घरमें कुप्रबध करे तो उस के हाथ पॉव बॉध कर उसीके मुँह में कपडा ठूँस कर, उस के घरपर दखल करने का हक तुम्हे कैसे प्राप्त हो सकता है? किसी भी दशामें स. १८०१ की सधि के अनुसार अयोध्या का राज छीनने का कपनी को अधिकार नही था। और जिस कुशासन के बारे मे उन्होंने आकाश सिरपर उठा रखा था उस का दायित्व कपनी के पिठ्ठुओं के सिर ही तो था न? डलहौसी की जीवनी तथा शासन का इतिहास लिखनेवाले श्री. आर्नोल्डने बडे आग्रहसे लिखा है कि "अवध के नवाबने इससे भी बढकर कई अपराध किये थे। एक तो वह अपने स्त्री-पुरुष सेवकोंको शाल दुपट्टे पारितोषिकके रूपमे दिया करता था। एकबार १२ मईको आतषबाजीका बडा समारोह किया था, यहाँ तक कि उसने एक

दिन शाहबगन तथा ताजबगमका गायन "ा । हाँ इससे बढ़कर और क्या भयंकर अपराध नवाब कर सकता था ! नवाब उसके पाटिक औषधियाँ भी खाता था। नवाबकी यह सब बुरी करतूतें (!) अंग्रेजोंने शान्तिसे सह लीं किन्तु गद्दीसे नहीं उतारा था। इसके लिए अंग्रेजोंको जितने भी धन्यवाद दिये जायँ, कम होंगे ।। फिर भी अंग्रेजोंकी सहनशीलताकी भी कोई सीमा तो है ही! क्यों कि एक दिन यीजास (ग्लेडियन) जब पादियों में सभागम करता था तब नवाब स्वयं वहाँ उपस्थित रहा। बेचारे बीबाध का लज्जा आयी होगी उस बातेपर तरस खाकर, उसे समय उपस्थित होनेके अभव्य अपराध के कारण अंग्रेजोंने नवाब को गद्दी से हटा दिया।"

ऐसे छिछोरे और मूर्खतापूर्ण अभियोग नवाबपर लगा कर फिर उसका शासन अयोग्य होने का इश्तहार देनेवाले दुष्ट-बुद्धि अंग्रेज इतिहास कार संसार भर में बाँटें यह बड़े अचरज की बात है! सचमुच ऐसी घटनाओं को देखने के लिए उन्हें स्वयं भारतमें न जाना चाहिये। वहीं क्यों! उन्हीं के देशमें तथा उन्हीं के राजमहलों में और धनी सरदारोंके प्रासादों में उन्हें इससे भी बढ़कर अश्लील बातें देखने को मिलेंगी। और फिर अवध की बाड़ियों पर हुए अत्याचारों से बढ़कर होनेवाले भयंकर बलात्कारों तथा व्यभिचारों का रोकने के लिए इन सरदारों तथा उनके शासक की जागीरें या राज्य को जब्त करने का काम ये लोग करेंगे तो हम मानेंगे कि इन्होंने अपना समय अच्छे काम में लगाया अस्तु।

डल्हौसीका निर्णय नवाबको सूचित करनेवाला आज्ञापत्र रेसिडेंटके पास पहुँचतेही वह सीधा राजमहलमें पहुँचा और नवाबसे कहा कि वह अपने हस्ताक्षरके साथ यह लिख दे, "मैं अपना राज्य कम्पनीको सौंप देने को सिद्ध हूँ।" नवाबने निर्णयपत्र पढ़ा और उसपर हस्ताक्षर करनेसे साफ इनकार *किया। नवाब से हस्ताक्षर कर लेने में सहायता देने के लिए* रेसिडेंटने वजीर तथा रानी को रिश्वत देने का भी यतन किया, तथा साथ में यह डाँट भी दी कि नवाब हस्ताक्षर करनेपर राजी न हो जाय तो उसके लिए मुकरर पेन्शन भी उसे नहीं दी जायगी। इस गाज गिरनेसे नवाब ढाढ़ें मारकर रोने लगा। किन्तु बेकार। तीन दिन बीते फिर भी

नवाब इनकार पर डटा रहा, तब ब्रिटिश सेना अनधिकार लखनौमें घुस पडी और नवाब के राजमहल के साथ समूचे अवध पर दखल कर लिया गया। रनवासों को लूटा गया, बेगमो को अपमानित कर नवाबको सिंहासनसे उतार फेंका गया और उस के राजमहल को ब्रिटिश सोजीरों के रहने की बारिक बना दिया गया। इस तरह तब तक के नवाबी कुशासन का अत होकर अंग्रेजों के स्वर्गराज्य (?) का प्रारभ कर दिया गया।

अवध का शासक मुसलमान था, किन्तु उसके बडे बडे जमींदार हिन्दू ही थे। जागीरी तथा ताल्लुकदारी के पूर्ण अधिकार उन के वश में पीढी दर पीढी अखण्ड चालू थे। सैंकडो गाँव एक एक जमींदार के स्वामित्व में पले जाते थे। इन जागीरों की रक्षा के लिए उन के पास छोटी-सी सेना तथा गढ भी हुआ करते। इसीसे कपनी का क्रोध इन जमीदारोंपर उतरा इसमे क्या आश्चर्य है? इन बलशाली जमींदारों को मटियामेट कर सभीको दरिद्रता की एक ही सतह पर लाने के लिए मालगुजारी के प्रबध की कपनी की चक्की पिसने लगी। ताल्लुकदारों से उनके मातहत होनेवाले सैकडों गाँव छिने गये, उन की जमीनें जब्त की गयीं, गढ तहसनहस कर दिये गये, अवध की समूची भूमिमे दुःखसे कुहराम मच गया। कल का अमीर आज अकिंचन बन गया। पुराने तथा ऊँचे घराने के वशजों को किसी अनाडी गोरे युवक की आज्ञापर गाँव गाँव मे भगाया गया; सब ओर अपमान और अप्रतिष्ठा ऊधम मचा रहे थे, और हर एक परिवार को बेहाल बना दिया गया।*

* इन जमींदारों के विषय में 'के' लिखता है:—(स. ५)

उन की हालत बहुत बुरी थी। उन्हें भिन्न भिन्न विपत्तियों का सामना करना पडता था और वे शायद ही उन सब के झोंकों से बच सकते थे। जब एकाध बडे ताल्लुकदार को अधिकार से पूरी तरह वचित करने का बहाना न मिलता तब घोषित किया जाता कि वह बदमाश है; या पागल है। इस तरह उसे बदनाम कर उसका सत्यानाश करने का तत्काल उपाय किया जाता। यह बरताव बडा कठोर अन्याय

अंग्रेजोंका दावा है कि यह सब गरीब किसान और काश्तकारों के हित के लिए किया गया था! अत्याचारी जमींदार अपने किसानों तथा प्रजा का शोषण करते थे जिससे प्रजा के हिमायती (!) अंग्रेज उनको जमींदारों के क्रूर चंगुलसे छुडाने की नयी रीति शुरू कर रहे थे। हाँ, इस ढकोसले ने कितने असामी और किसान भासे में आये यह अब अवध के रणमैदानपर जल्द ही दीख पडेगा। अपने स्वामी की ईमानदारी से सेवा करनेवाले व विश्वासी देहाती, परवार से वंचित, पूर्णतया लुटे गये और दर दर भटकनेवाले अपने जमींदारों तथा तालुकदारों का मिलने जाते और अपने स्वामी के समक्ष उनकी निष्ठा और प्रेम प्रकट करते। मतलब, अवध के नवाब से ठेठ साधारण किसान तक हर एक दुःखभागी था। एक भी स्थान ऐसा न बचा था कि जहाँ लूटखसोट, आग, बलात्कार की धूम न मची हो, एक भी घर न था जो उध्वस्त, स्मशानवत् न बना हो। नवाबी कुशासन की जगह यह अतीव मंगलकारी अच्छा शासन जो आया था!!

स्वराज्य और पराराज्यमें कितना बड़ा अंतर होता है इस का स्पष्ट भान, मानो, ऐसी दुःखपूर्ण रीतिसे, अवध की जनता को कराया गया था। पुराना पूरा इतिहास उनके नेत्रोंके सम्मुख नाच रहा था। उन्हें अब पूरा विश्वास हो गया था कि ऐसी पराधीनतासे मौत भी अच्छी है। स्वदेशका सर्वनाश होकर स्वराज्य भी मिट्टीमें मिल गया अब कहाँ तक इस देशमें पड़े रहेंगे? इस अत्यंत लज्जापूर्ण तथा अपमानित जीवनसे उन्हें घृणा हो आती थी! 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ' तुलसीदासके इन शब्दोंका पूरा अर्थ उनके हृदयपर अंकित हो गया था, परतंत्रता वस्तुतः विषैली मक्खियोंका विषपूर्ण छत्ता है। उन्हें भान हुआ, कि जब तक यह छत्ता *भारत के छतमें लटकता रहेगा तब तक डलहौसीके समान उसकी मक्खियाँ* अपना विषैला डंख, हमारी मृत्युतक, मारतीही रहेंगी, इसीसे उन्होंने सोचा कि डलहौसी जैसी एकाध मक्खीको मारकर काम नहीं बनेगा। इस

और महान गंभीर भूल थी। क्यों कि इसतरह उनका सफाया करने को न तो वे छातीपर के बोझ थे, न कोई डाकू।

लिए उन्होंने निश्चय कर लिया कि, इस समूचे ज़िरीले मधुछत्तेहीको उठाकर फेकना है। इस तरह, स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए भीषण रण करनेका निश्चय कर अपने कमानका गेंदा चढाया।

इसी समय, अयोध्याके समान अन्य प्रांतोंमें भी जमींदारो तथा जागीरदारोंका पूरा सफाया करनेके लिए 'इनाम कमिशनकी' चक्की चल रही थी। जो जमीनें या जागीरें तलवारकी सनदपर प्राप्त की गयी थीं उनको, लिखित सनदें न होनेके बहाने जब्त कर ली गयीं। इस इनाम कमिशन के पाटोंके पीसनेकी शक्तिका ठीक भान करानेको इतना कहना काफी है कि दस वर्षमें ३५००० जागीरों और इनामों की जाँच की गयी और उनसे २१००० को जब्त करवाया। इस तरह भारतमें, किसी तरह की संपत्ति का भरोसा न रहा। राजा महाराजाके सिंहासन, सरदारोंके 'इनाम', जमीनदारोंकी आय, तालुकदारोंके तालुक, नागरिकों के घरबार सब के सब इस भीषण दावमें भस्मसात् हो गये। जीना भी एक पहेली हो चुकी, हर एक को संदेह रहता आज हमारी आजीविका है, कल यह बचेगी भी ? स्वराज्य और परराज्य, स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य इनके विरोध का नंगा रूप जनताके सामने भीषण रूपमें प्रकट हुआ। इस तरह सब आबालवृद्धोंको अपनी वर्तमान दशाका दारुण भान हो गया। उनका मन कहता, ऐसी दशामें एक जंतु का सा जीवन जीनेकी अपेक्षा मानवके समान मानसे मौत के मार्गमें चलना ही मंगलकारी है।

इस तरह, अबतक के हिंदी नरेशों के कुशासन से उन के राज्यों को मुक्त कर अंग्रेजोंने, अपने स्वर्गराज्य के सुशासन (?) का अनुभव भारतियो को कराना शुरू किया!!

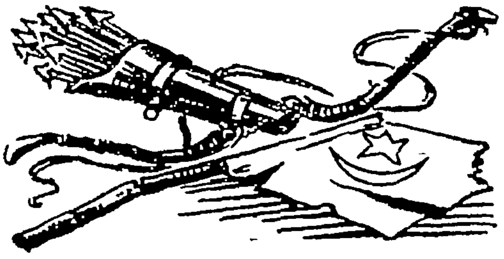

अध्याय ५ वाँ

आग में घी

जिस पराधीनता में, गत अध्याय में वर्णित अन्याय्य और अत्याचारी करतूतें और अबतक न बताये गये सकड़ों अपराध (जो अकथनीय और अनगिनत हैं) खुले आम बरते जाते हैं, उस परवशता को खुली आँखों सहन और जिन की बेहयाई से यह सब हुआ उन के आगे गर्दन झुकाने में, क्या, स्वधर्म का सच्चा नाश नहीं है! किस धर्मने आज तक पराधीनता और दासता की घोर निंदा नहीं की! सब धर्म मानवी जीवन का यही आदर्श बताते हैं कि, जगन्नियंता परमात्मा के, तथा चराचर को स्वयमुक्त होने के लिए ही अपने रूपमें पैदा करनेवाले करतार के, चित्स्वरूप में मुक्ति प्राप्त करें। उस निर्मल निरंजन से तद्रूप होना हो तो मानव में किसी प्रकार की कमी न रहे। किन्तु जिस राष्ट्र को गुलामी का शाप लग चुका हो वहाँ अधूरापन के बिना हो ही क्या सकता है! न्याय की पराकाष्ठा ही प्रभु है और न्याय का निर्दोष अभाव ही पराधीनता है। स्वाधीनता का परम विकास ही परमात्मा है और स्वातंत्र्य का संपूर्ण अस्त ही पराधीनता है। इसमे जहाँ प्रभुकी हस्ती है वहाँ परतंत्रता का स्थान नहीं है और जहाँ पराधीनता धूम मचाती हो वहाँ देवता या दयी गुण कैसे रह सकते हैं! और जहाँ देवता को स्थान न हो वहाँ धर्म कहाँसे टिक सकेगा! सारांश, अन्याय के मसाले से भरी यह परवशता जहाँ कुहराम मचाती हो वहां सच्चे धर्म का होना असंभव सा होता है। गुलामी का सीधा रास्ता नर्कमें पहुँचाता है, जहाँ सच्चा धर्म

स्वर्गका साधन है । स्वर्ग के रास्ते जाना हो तो पहले दासता की श्रृखला को तोड देना चाहिये । श्री समर्थ रामदास ने शिवाजी, तथा श्री प्राणनाथ महाराज ने छत्रसाल को स्पष्ट शब्दोंमे यही उपदेश दिया था, यह व्यावहारिक वेदान्त है । धर्म उसी की रक्षा करता है, जो धर्मकी रक्षा करे और धर्म की रक्षा चाहनेवाले को श्री रामदासस्वामीने ढाई सौ वर्ष पहले यह महामत्र दिया था 'मरना सीखो शत्रु को मारते हुए और मारते मारते अपना (स्व) राज ले लो।' १८५७ मे पराधीनता से कुचली हुई प्रजा के हृदय मे यही महामत्र गूजने लगा था।

जिन्होंने यह अप्राकृतिक और अन्यायसे उत्पन्न पराधीनता को भारतके गले मढा उन्हींने, न केवल भारतमें, वरच सारे ससारमे धर्मपर हमला करनेका प्रारभ सबसे पहले किया । कौनसा धर्म है जिसने अन्याय की निदा न की हो? किन्तु इस मूक निदाकी पर्वाह न करते हुए भारतमे पग धरनेके क्षणसे १८५७ के भीषण काण्डतक हिंदू और मुसमानोंके धर्मको रौध डालनेका ढगदार और लगातार जतन फिरगी शत्रुओंसे किया गया है । आफ्रिका और अमरीकाके मूल वन्य जातियोंको ईसाई बना लेने की अपूर्व विजयसे इग्लैडकी गर्दन कुछ तन गयी थी, और उससे उन्हे बलवती आशा थी कि भारतमें भी ईसामसीहका क्रूस भारतभरमे ऊँचा उठेगा । अग्रेजोंको तो पूरा विश्वास था कि भारतके निवासी एक बार पश्चिमी सभ्यताकी झलक पर ऑख उठाऐंगे तो, बस, वे अपने धर्मपर लज्जित होंगे और उसे त्याग देंगे, वेद और कुरानसे अजीलको अधिक पवित्र मानेंगे, मदिर और मस्जिदें खाली होकर गिरजाघरमे समा जायेंगे । इस कथन का प्रमाण उन्नीसवी सदीके प्रथमार्धमें हर अंग्रेजके लेखन, भाषण या सामाजिक साहित्यमें स्पष्टतया मिल जाता है । स. १८५७में ईस्ट इडिया कपनीके प्रमुख सचालक श्री. मॅगल्सने "हाउस ऑफ कॉमन्समे" कहा था :—

"भारतके एक छोरसे दूसरे छोर तक ईसाकी विजयपताका गर्वसे लहरानेके ही लिए भारतका विशाल साम्राज्य परमात्माने हमारे हाथ सौपा है । इसीसे समूचे भारतको ईसाई बनाने के इस महान् कार्यमें किसी तरह ढीलापन न करते हुए हर एक अपनी शक्तिभर जतन करे!"

स. १८३६ में बंगालमें पहले पहल एक अंग्रेजी पाठशाला खोली गयी। उसके उपलक्ष्यमें मेकॉलेने निश्चित आशा प्रकट की थी कि, "आगामी ३० वर्षोंके अंदर अंदर एक भी मूर्तिपूजक न बचेगा।" (सं. ६ मेकॉलेका अपनी माँ को लिखा पत्र—अक्तू. १८३६)

हिंदुमुसलमानोंके धममतोंके बारेमें मिशनरियोंके मन इतने तीव्र द्वेष तथा ईर्ष्यासे विषाक्त हो गये थे कि बड़े बड़े पाश्चिमात्य लेखक शिष्टाचार की मामूली सीमाओंको भी तोड़कर इन दो धर्मोंपर अवसर पातेही लज्जाहीन दोष मढ़ते थे।

सारे भारत को ईसाई बना देनेमें ईस्ट इंडिया कंपनी इतना आग्रह क्यों रखती थी इस का कारण स्पष्ट है। उन्हें विश्वास था कि एक बार हिंदुस्थान के दोनों धर्म लोप हो जायँ कि, फिर यहाँ की राष्ट्रीय भावना अपनी मौतसे मर जायगी, और जिस का स्वत्व मर चुका हो ऐसे राष्ट्रपर राज करना जितना सरल है, उतना उन जीवित मानवोंपर नहीं, जिनमें अपनत्व और आत्माभिमान जीवित है, अर्थात् यह सारा मामला धार्मिक नहीं, राजनैतिक था। और उनकी इसी कुटील राजनीतिसे अंग्रेजोंने उपर्युक्त कार्य के लिए तलवार का उपयोग क्यों नहीं किया, इसका कारण मिल जाता है। औरंगजेब के इतिहास से इंग्लंड बहुत कुछ सीख चुका था, उस युगमें साम्राज्य की राजनीति की कची पक्की कड़ियों को वे ठीक तरह जाँच चुके थे। जिस राष्ट्र का धर्मही नष्ट करनेसे उस राष्ट्र को सदा के लिए गुलामी में रखना सरल होता है, यह रहस्य औरंगजेब के इतिहास से अंग्रेजोंने हृदयगत किया था, और प्रकट रूपसे धर्मान्धता से कष्ट देने की मूर्ख नीतिपर चलना अंग्रेजोंने जान बूझकर छोड दिया। और इसी से धीरे धीरे किन्तु लगातार, हिंदुस्थान को ईसाईस्थान बना छोड़ने का धंधा, प्रकट रूपसे न सही, अप्रकटरूप से अंग्रेजों ने जारी रखा।

उस समय रेवरंड केनडी लिखता है —"जबतक हमारा साम्राज्य भारत में होगा तब तक हमें कभी न भूलना चाहिये कि, किसी प्रकार की अड़चनोंकी पर्वाह न करते हुए भारतभरमें ईसाईधर्मका फैलाव करनाही हमारा प्रमुख कार्य है। हिमाचलसे लंका तक सारा भारत जब तक ईसाई न बनेगा और हिंदू तथा मुस्लीम धर्म की निंदा करना शुरू न करेगा तब

तक हमें अपना काम बडे वेगसे जारी रखना चाहिये। इस कामके लिए हमें आकाशपाताल एक कर देना चाहिये, अपना बल और अधिकार इस कार्यके लिए काममे लाये जायँ, जिससे भारत ईसाई धर्मका पूरबमें एक प्रबल गढ बन जाय। "

अंग्रेज शासकों तथा धर्मप्रचारकों की प्रकट घोषणाएँ सुन कर यदि भारतका हर निवासी यह मान ले कि उसे अग्रेजी राजमें जबरदस्तीसे ईसाई बनना पडेगा तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। स्वराज्य का अंत होतेही मदिरो और मस्जिदोंको इनाम या जागीरें देनेवाले राजा महाराजा भी लोप हो गये और पहले दान दिये हुए वार्षिक इनाम जब्त कर लिये गये। धर्म की रक्षा करनेवाला राजसत्ताका बल ही टूटा देख, हिंदु और मुसलमान दोनों का दुःखी होना स्वाभाविक ही था। सरकारी तथा व्यक्तिगत खत-पत्रोंमें हिंदुमुसलमानोंके लिए अग्रेजोंने ' हीदन ' जगली पाषणपूजककी गाली रूढ कर रखी थी, जिससे हिंदुमुसलमानोंका खून खौलने लगता था। तिसपर भी लोगोंको आशा थी कि ईसाके उपदेशोंके प्रचारसे व्योपारको बढाना जो अधिक चाहते हैं, और अकिंचन ईसाके भक्त बननेकी अपेक्षा लक्ष्मी के ही उपासक बनना चाहते हैं वे अग्रेज प्रकट अत्याचारों से जनता की धर्मभावना पर चोट नहीं करेंगे।

मानो, इस भ्रमपूर्ण आशा को झूठी दिखानेके लिए ही अग्रेजोंने निर-कुश राजसत्ता के नशेमें जल्द ही भारत के धर्मों में आक्रमक हस्तक्षेप करना शुरू किया। सती-प्रथा को बद करने के निर्बंध (कानून) को मान्य करवाने की बातचीत जिस समय कलकत्तेमें चल रही थी तभीसे ब्रिटिशों की कुटिल नीतिपर लोग सदेह करने लगे थे। सती-प्रथा का निर्बंध कलकत्ते के कौन्सिल के सामने आने के पहले ही यह घोषणा की गयी थी कि कैदियो को धार्मिक रिवाजो के पालने का कोई हक नहीं है। थोडेही दिनोंमें विधवा विवाह-पुनर्विवाह-का निर्बंध किया गया और तभी लॉर्ड कॅनिंगने अपनी राय दी कि बहुपत्नीत्व को बद करने का निर्बंध भी लेजिस्लेटिव्ह कौन्सिलमें लाया जाय और जब वह लाया गया तो उसे जल्दसे जल्द मान्य करवानेको उसने स्वय बडा जतन किया। हम यहाँ इसका विचार नहीं कर रहे हैं कि उपर्युक्त निर्बंध लाभकारी थे या नहीं हमें इसमे कोई

मतलब नहीं ! हम यही बताना चाहते हैं कि हिंदु मुसलमानोंको यह पता न लगा कि उनके धार्मिक रीतिरिवाजोंपर होनेवाला यह आक्रमण किस हद तक चलेगा। क्योंकि, इस तरह नये निषेध बनानेका अधिकार चलाने की धुनमें अंग्रेजोंने जनताकी धार्मिक रीतिरिवाजों में हठात् हस्तक्षेप करना शुरू किया था। इन निषेधोंकी अच्छाई बुराईको तूल देनेका कोई कारण नहीं था। बात स्पष्ट है कि, धर्मशास्त्रमें बताये हुए सामाजिक रीती रिवाजों में किसी तरह हस्तक्षेप करना हो तो हर समय योग्य विद्वानोंकी इच्छा पर उस धर्ममतके अनुयायियोंकी सम्मतिसे ही हो सकता है। पराये धर्मका सिर आँखोंपर रख कर चलनेवाले विदेशी शासकोंका, धर्ममें दखल न देनेके स्पष्ट वचन देनेपर भी, हिंदु या मुस्लीम धर्ममें किसी तरह की योग्यता और ज्ञान न रखनेवाले विधर्मियोंके बहुमतके आधारपर तथा अपनी निरंकुश सत्ताके बलपर, उन धर्मोंके अनुयायियोंके स्पष्ट और प्रकट विरोधके होते हुए भी, धार्मिक रिवाजोंमें दखल जबरदस्तीसे करना, शोभा नहीं देता। फिर ब्रिटिशोंके जुल्मी शासनमें और औरंगजेब की धर्मान्धतापूर्ण राजनीतिमें क्या भेद रहा ? आज सती-प्रथाका निषेध हुआ, क्या पता है, एक अन्याय गोरोंने चुपचाप सह लिया है इससे, कल मूर्तिपूजाको अपराध करार देनेवाला कानून न बन जाय ! पहला अन्याय सहन करने पर दूसरा अन्याय अवश्य छातीपर चढ़ बैठेगा। नये निषेधों के आधार पर धर्ममें दखल देनेकी इस पद्धति को काम करने देना तो औरंगजेब की तलवार को आग लगन सुझाना ही था। जब भी अंग्रेज औरंगजेब बन गये तो भारतीयों को भी शिवाजी या गुरु गोविंद सिंग को खड़ा करने के बिना कोई चारा न रहा। यही उस समय भारतीय जनता की मनोगति थी।

ईसाई मिशनरियों ने भी गली गली में प्रचार कर इस अशान्ति को बढ़ावा दिया। वे साफसाफ बकते थे कि थोडेही दिनोंमें समूचा भारत ईसाई बननेवाला है। इधर हिंदु और इस्लाम धर्म की नींव उखाड़ डालने के लिए नये नये निर्बंध बनाते करने का काम जारी रखा था। आग गाडी (रेलगाडी) की सुविधा देशभरमें हो गयी और उसमें बैठने का प्रबंध, छूत अछूत की रोक न होनेसे, हिंदु जातिनिष्ठा के माथों का चोट पहुँ-

चानेवाला था। मिशनरियो की बडी बडी पाठशालाओ को बडी बडी रकमें सहायतार्थ देनेकी घोषणा सरकार कर चुकी थी। जब कि, लॉर्ड कॅनिग स्वय अपने हाथो हजारो रुपयो का दान उन्हें देता था तब समूचे भारत को ईसाई बनाने का उसका हेतु स्पष्ट हो जाता है। और, हॉ, धर्म-भ्रष्ट ईसाइयों को पहले की (हिंदु या मुस्लीम रहते हुए) उनकी मौरूसी सपत्ति को गॅवाने का भय है? अच्छा, धर्मातर के साथ वह सपत्ति भी उसके साथ जाने की सुविधा देनेवाला एक कानून बना दिया जाय, बस!

और मिशनरी अपना प्रचार भाषणोंद्वारा कर ही रहे थे कि सवाद मिला, धर्मातरित व्यक्ति के अपने पूर्वधर्मकी मौरूसी सपत्तिके बारेमे सब तरहके हक कायम रखनेका कानून बन चुका है। और एक बात खुल गयी कि ईसाई धर्मप्रचारक तथा उनके आचार्य (बिशप) को दिये जानेवाले मोटे मोटे वेतन हिंदुस्थानही के खजानेसे दिये जाते थे। साधारण सरकारी कर्मचारी से लेकर बडे अफसरोंतक, हर अंग्रेज में ईसाईकरण का मोह इतना व्याप्त हो गया था कि प्रत्येक गोरा अधिकारी अपने मातहत 'काले' को ईसाई बन जाने का साग्रह अनुरोध किया करता था (सख्ती भी!)। भारत के पैसे से पुष्ट बने सरकारी कर्मचारी, भारत ही के पैसे के बलपर भारत की जडपर कुल्हाडी मार रहे थे और सरकार उनको तरजीह देती थी। और सरकार के नामपर थे केवल लॉर्ड कॅनिग और उस के कौन्सिलर! इस दशामे लोगोंके मन मे यह भय घर कर गया था। ब्रिटिश राज में आगे चल कर भारतीय धर्मोंपर कठोर आघात होनेवाला है। इस भयकर अशान्ति को नष्ट करने के लिए मिशनरियों ने भारत का प्रमुख स्थान बने सेना के सैनिकों को ही ईसाई बनाने का जतन शुरू किया। विचार यह था कि जनता बिगड उठे तो उस अशान्ति की लपट सैनिकों तक पहुँचने का डर न रहेगा। लोग इस कुटिल दॉव को भॉप गये थे, इस का प्रमाण उस समय के विद्रोहियों के घोषणापत्रोंमें मिल जाता है। घोषणापत्रों मे उल्लेखित दुःख तथा शिकायतें अक्षर अक्षर सत्य होनेका प्रमाण उस समय के अंग्रेज इतिहासकारोंके उन वाक्यों में मिलता है, जो अनिच्छा से किन्तु लाचार होकर उन्हें लिखने पडे। प्रत्यक्ष लडाई चालू न हो, तब सिपाहियो को फुरसत थी। और

तब अंग्रेज कर्नेल, कप्तान तथा अन्य सेनाधिकारी अपना समय किस तरह बिताते होंगे ? कल्पना कर सकते हो, पाठक ! और कुछ न करते हुए ईसाई धर्मपर भाषण झाड़ते थे ! और सिपाहियों का सुनना अनिवार्य था। इस तरह उनकी मतिम श्रम पेश करना अफसरों का फुरसत का धंदा था। और ये भाषण सरल और शिष्ट भाषा में थे ! नहीं, कभी नहीं। जिसके केवल पवित्र नामोच्चारण से हर हिंदू का अंत करण भक्ति-भाव से भर जाता है उन प्रभु रामचंद्रजी का, तथा जिस का नाम मुसल्मानोंके हृदयमें आदरपूर्ण घर पैदा करता है उन हजरत मुहम्मद्साहब को ये ईसाई धर्म-प्रचारक चुनी हुई गालियोंसे संबोधित करते थे। इसी बीच वेद तथा कुरानकी पवित्रता को भ्रष्ट किया जा रहा था मूर्तियोंको भी भ्रष्ट कराया जा रहा था। यदि कोइ सैनिक इन दुष्ट फिरंगियोंको थानेको ताना और गालीको गाली सूदसमेत लौटा देता तो मिशनरी कर्नेल उस गरीबकी 'ब्री-रोटी' बंद कर देते थे। अंग्रेजोंकी सैनिकी बारिक में रहना तो स्वधर्म पर अंगार रख कर ही जीवन बिताना था। कोइ सिपाही ईसाई बन जाता तो उसे बहुत बढावा मिलता और ऊँचे पदपर उसकी 'तरक्की' होती। हाँ, जो सचमुचही अच्छी योग्यता रखते थे उनकी दाद न दी जाती और यह भी जानबूझ कर। एक आवारे सैनिकको स्वधर्मत्याग करने पर हवाल्दार बनाया गया और दूसरे स्वधर्मद्रोही हवाल्दारको सूबेदार मेजर का पद दिया गया।*

सेनाके सिपाही गरीब, गँवार और अल्पदर्शी थे। ऐसे सैनिकोंको धर्म भ्रष्ट किया जाय तो फिर साधारण जनताको धर्मभ्रष्ट करना तो बाएँ हाथका खेल होगा, इस गहरे विचारसे अंग्रेजोंने निश्चय किया कि पहला हमला इन सैनिकों ही पर किया जाय और इस निर्णयके अनुसार सब ओरसे *प्रकट-अप्रकटरूपसे हिंदु-मुसलमानोंके धर्मोपर आक्रमण शुरू हुआ।* यहाँ तक कि, सेनामें कमांडर और कर्नेल के पदपर होनेवाले गोरोंने स्पष्टरूपसे समाचारपत्रोंद्वारा प्रकट करनेकी हिम्मत की कि, सिपाहियोंको धर्मभ्रष्ट करनेके एकमात्र हेतुही से वे सेनामें भरती हुए थे। बंगाल पैदल

---

* एक बंगाली हिंदू लिखित 'कॉजेस् ऑफ दि म्युटिनी'

सेनाका कमांडर स्वयं सरकारी विवरणमें लिखता है:—"मैं लगातार २८ वर्षों तक सिपाहियोंको ईसाई बनानेका काम कर रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि इन मूर्तिपूजक जंगली सैनिकोंकी आत्मा सैतानसे सुरक्षित रहे ऐसा प्रबंध करना मेरा सेनाविषयक कर्तव्य ही (मिलिटरी ड्यूटी) है।" एक हाथमें बाइबल और दूसरे हाथ में सैनिकी आज्ञापत्रोंके पुलिंदे लेकर राज करनेका काम दिनरात चलाया जाता हो, उन के मातहत रहनेमें अपने धर्मकी जड से खुदाई होगी, उसको बचाना असम्भव कर दिया जायगा, इस प्रकारका डर सैनिकोंके मनमें घर कर जाय, तो यह डर निराधार था यह कहने का साहस कौन कर सकता है? देशभर में लोगोंके मनमें यह बात बैठ गयी, कि यहाँके सभी धर्मोंको दबाकर उनके स्थानपर ईसाके धर्मका साम्राज्य स्थापित करनाही अँग्रेज सरकार की नीति है।

हिंदु मुसलमानो के हृदयोंमें फिरंगियोंके प्रति तीव्र द्वेषकी आग कैसे धधकती थी इसका वर्णन करते हुए एक अंग्रेज लिखता है, 'मेरे परिचित एक मौलवी, जो ऊपरसे बडा दोस्त बनता था, एकबार मृत्युशय्यापर पडा था। मै उसके पास बैठा था। मैंने पूछा, "मौलवीसाहब आप बताइए आपकी अंतिम इच्छा क्या है"? प्रश्न सुनते ही वह बेचैन हो उठा, उसके मुँहपर विषाद छा गया। मैने जब इतना दुखी होनेका कारण पूछा, तो उसने बताया, "साहब, मैं साफ साफ बताता हूँ कि मेरी सारी आयुष्यमें मैंने दो फिरंगियोंको भी कत्ल नहीं किया इसी टीससे मैं दुखी हूँ।" और एक अवसरपर एक पंडित और प्रतिष्ठित हिंदुने मेरे मुँहपर साफ सुनायी—"हम तो उस दिनकी प्रतीक्षामें बेचैन हैं कि, तुम यहाँसे कब टलोगे और हमारे पुरखाओंको शोभा देनेवाले स्वराज्यका कारोबार फिरसे कब चालू होगा!"*

इस प्रकार अशान्ति की लपटे देशभर मे उछल रही थीं तभी डलहौसीने फिर एकबार हिंदूधर्मपर एक नया आक्रमण करना शुरू किया। अंग्रेज सरकार की सभी करतूतों का समर्थन करने का व्रत लिये हुए अंग्रेज इतिहासकार भी इस ज्यादती का समर्थन नहीं कर पाते। हिंदुधर्म-

---

* रेवरेंड केनेडी एम, ए.

शास्त्रों में बतायी, और सदियों से देशभर में लोगोंने प्रेमसे अपनायी दत्तक गोद लेनेकी परम पवित्र धार्मिक प्रथा ही को ठुकराने के लिए यह ईसाई भीर डलहौसी आगे बढ़ा, तब समूचा भारत थर्रा उठा। अब तक (देश भरमें) बारूद का अंबार ठूँस कर भरा पड़ा था, केवल उसमें चिनगारी का आवश्यकता थी और डलहौसीने अपने इस करतूत से उस कमी की पूर्ति की।

मानो, इस धधकती क्रोधाग्नि में घी उँडेलनेके लिए नये कारतूसों का उपयोग करने की आज्ञा सिपाहियोंपर लादी गयी। इसके साथ साथ बन्दूकों में उपयोग करने के लिए नये कारतूस बनाने के कारखाने स्थान स्थानपर खोले गये। कारतूस खराब न हो इस लिए उसे चिकना करने के लिए एक खास किस्म की चरबी चुपड़ी जाती थी जिसपर यह आज्ञा जारी हुई की इसकी चरबीसे चिकनी की हुई टोपी हाथ से न काटते हुए, जैसा कि अबतक हो रहा था, दाँत से काटी जाय। इसके अनुसार फिर स्थान स्थानपर सैनिकोंको बन्दूक चलाने तथा कारतूसों की टोपी दाँत से तोड़ने की शिक्षा देनेकी पाठशालाएँ खोली गयी! इनके बारे में बनाये गये सरकारी विवरणोंमें लिखा है कि 'नयी दूर-वेधी (लाँग रेंज) राइफलें सैनिकों को बहुत भाती है।'

एकबार कलकत्तेके पास डमडम छावनीका एक ब्राह्मण सैनिक हाथमें पानी का लोटा लिए छावनीको लौट रहा था। वहाँ एक भंगी आया,
८ जिसने ब्राह्मणके लोटेसे पानी पीना चाहा। ब्राह्मणने कहा 'मेरा लोटा तेरे छूनेसे अपवित्र हो जायगा'। जिसपर भंगी बोला 'महाराज! अब आपकी ऊँची जातिका अभिमान छोड़ दीजिये! आप जानते हैं कि अब आपको गाय और सुअरकी चरबी आपके दाँतोंसे काटनी पड़ेगी? ये नये कारतूस जानबूझकर ऐसी चरबीसे चिकने किये जा रहे है, समझे?" इतना सुनना था, कि वह ब्राह्मण सिपाही तत्काल आपसे बाहर होकर, मानो भूतसे डराया हुआ, छावनीकी ओर दौड़ पड़ा। उसके वहाँ पहुँचते ही सब सिपाही क्रोधसे पागल हो उठे और चारों ओर डरावनी कानाफूसी जारी हो गयी। सैनिकों के मनमें बैठ गया कि फिरंगियोंने उनका धर्म भ्रष्ट करने ही के लिए कारतूसमें गौ और सुअरकी चरबी लगानेकी ठानी थी। सरकारकी ओरसे

घोषणा की गयी कि धर्मभ्रष्ट करनेकी बात तो दूर ही रही, किन्तु कारतूसों में गौ का खून और सुअरकी चरबी लगाये जानेकी बात सरासर झूठी और कपोलकल्पित बात है।

तो फिर यह झूठी खबर क्यों कर फैली? इसका दायित्व सरकारपर था या सैनिकोंपर? यदि गौ का खून और सुअर की चरबी सचमुच कारतूसोंमें चुपडी गयी हो तो इसमें सरकारका अज्ञान था या और कोई हेतु छिपा था? यह बात तो एक क्षणके लिए टिक न पायगी कि इन कारतूसोंमें क्या लगाया था या उनमें क्या लगाया गया था इसका पता अंग्रेजोंको नहीं था। क्यों कि, स. १८५३में ये कारतूस नये बनाये गये और कानपुर, रंगून, फोर्ट विलियम आदि स्थानोंमें 'काले' सैनिकोंको दिये गये थे, उन्हें जरा भी संदेह न था कि उन में कोई अपवित्र वस्तु लगायी गयी हो, उन सैनिकोंने जब अंग्रेजोंका विश्वास कर अपने दाँतोंसे उन कारतूसोंकी टोपीको काटा तब भी अंग्रेज अफसर पूरी तरह जानते थे कि कारतूसों को किस तरह चिकना किया गया था। स. १८५३के दिसंबर के सरकारी विवरणमें यह बात साफ शब्दोंमें बतायी है।* यहाँतक कि सिपहसालार भी इसे ठीक तरह जानते थे। और हाँ, गौ या सुअरका खून या चरबी चाटना दोनों धर्मोंमें अपवित्र, इसीसे त्याज्य होना स्वीकार किया है, इस सत्यको जानते हुए भी इन काडतूसोंके कारखाने भारतमें स्थानस्थानपर धडाधड खोले गये। इन कारखानों में, काम करनेवाले निम्न स्तरके लोगोंसे ठीक जानकारी प्राप्त कर बराकपुरके सिपाहियोंने इस चरबीवाले सवादको देशभरमें फैला दिया और वह भी इतने वेगसे कि बिजली भी हार मान जाय! केवल दो सप्ताहोंमें घर घरमें हिंदु और मुसलमान, बिना इन चिकने कारतूसोंके, दूसरी चर्चाही नहीं करता था। ज्यों ज्यों इस कारणसे लोगोंके क्रोधकी मात्रा बढने लगी, त्यों त्यों वाइसरायसे ले कर साधारण गोरे सिपाही तक हरएक दावेके साथ बार बार कहता था कि यह चरबीवाली बात एक झूठी अफवाह थी।

---

* के कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १, पृ. ३८०

फिरंगी सरकारका हर बयान, इस बारेमें, सरासर झूठ था किन्तु यह मानते हुए भी लोगों को ढाये के साथ जान बूझकर बताया जाता था कि इस कारतूसी गप का विश्वास न करो। लार्ड लाट साहब इस बातको निश्चित रूपसे चार साल पहलेसे जानते थे, इस सत्य स भी अंग्रेज सरकारने प्रकट रूपमें इनकार कर दिया। यहाँ तक कि अंग्रेज इतिहासकार भी आग्रह से प्रतिपादन करते थ कि दमदम के कारतूसों में गाय की या सुअर की चरबी कभी काममें नहीं आयी। यह तो इन अनाड़ी और मिथ्या धर्मी सिपाहियों के मस्तिष्क की उपज है। किन्तु अब हम कह सकते ह कि चरबीवाली बात सरकार पूरी तरह जानती थी। कारतूसों में लगाये जानेवाली चरबी के ठेकेदारन उस समय अपन इकरारनाम (अहदनामे) म स्पष्ट शब्दों म लिखा है कि "गौ की चरबी ही दी जायगी।" साथ उसमें यह भी शर्त थी कि चरबी की दर दो आने (१२ पैसे) रतल होगी। जब इस अहदनाम की खबर मालूम हुई तो फिरंगी सरकारने फिरसे आज्ञा जारी की "कारतूसोंके लिए चरबी केवल बकरों या भेड़ों की ली जाय, गौ या सुअर की चरबी का उपयोग कभी न किया जाय।" इस नई घोषणा से यह बात उतर आती है कि तबतक गौ तथा सुअर की चरबी का उपयोग होता रहा होगा। इस घोषणा का कारण ही यही था कि अब तक सिपाहियों ने जो अभियोग सरकार पर लगाया था वह सत्यही था। श्री फारेस्ट के प्रकाशित असली सरकारी खतपत्रों से तो स्पष्ट हो जाता है कि कारतूसोंके लिए जो चरबी ली जाती थी उसमें गौ और सुअर की चरबी मिली हुई रहती थी और इस बातको सब बड़े गोरे अफसर जानते थे* (सं. ७) हाँ, जब सैनिकोंने इन कारतूसोंकी टोपीको दाँतसे तोड़नेसे साफ

* के लिखता है "　　इस चरबी की बनावट में गौ की चरबी रहती थी इस विषय में रत्ती भर भी संदेह नहीं है (खण्ड १ पृ. ३८१)

लॉर्ड रॉबर्टस् कहता है —

'श्री फॉरेस्ट के सरकारी रिकार्डकी हालमें जो जाँच की उससे सिद्ध होता है कि कारतूसोंको चिकना करनेके लिए जो मिश्रण बनाया जाता था उसमें निषिद्ध वस्तुएँ—गौ की वसा तथा चरबी—निःसंदेह रहती थी, और

इनकार कर दिया, तब सेनाधिकारियोंने शपथसे कहा, कि यह चरबीवाला मामला, बस, ढकोसला है। तिसपर भी,जो सिपाही अपने धार्मिक विश्वासो (?) के कारण दॉतमे टोपी काटनेसे इनकार करते थे,उन्हे बडी सजा देनेकी धमकी भी दी जाती। किन्तु इस डॉटडपटकी पर्वाह न करते हुए अपने धर्मकी रक्षाको, हर स्थितिमे, सिपाहियोंने सबसे ऊपर माना तब सरकारने अपनी चाल बदली और सैनिकोंको छुट दी कि चरबी लगी जगहपर कागजका उपयोग किया जा सकता है। किन्तु जिस सरकारने गौ और सुअरकी चरबीका उपयोग करनेकी नीचता दिखायी, वही सरकार, सुविधाके लिए दिये हुए कारतूसी कागजको और थोडा चिकना बनानेके लिये, भला, और कोई दुष्ट छलविद्याका प्रयोग न करेगी इस की क्या निश्चिति? किसी तरह एक बार अनजानमे गौ और सुअरकी चरबीसे सैनिकोंके मुँह अपवित्र हो जायँ कि मिशनरी कर्नैल और कमांडर अधिकारी उन्हें ताना मारते थे "देखा! तुम धर्मभ्रष्ट हो गये!" इस तरह एक ओर से, सेनाके ऊँचे अफसर अपनी खराब करतूतोंसे इनकार कर तथा निर्लज्जतासे अपनी बात को बार बार बदल कर, सैनिकोंकी बेचैनी और क्रोधको शांत करनेका जतन कर रहे थे, जहाँ दूसरी ओर ये ही महाशय, धर्मद्वेषके जोशमे सचलन–स्थान (परेड–ग्राउंड) पर, श्रीरामचन्द्रजी तथा हजरत मुहम्मदसाहबको गालियॉ गिनानेवाले पर्चे, हजारोंकी संख्यामे वितरण कर सैनिकों की क्रोधाग्नि को भडका रहे थे। इस कारतूस–विरोधी आंदोलन का प्रारंभ ठीक जनवरीके प्रारंभ से हुआ था और जनवरीके समाप्त होते होते सरकार और एक बार झुक गयी, नई आज्ञा जारी हुई की "अबसे सैनिक अपने हाथों बनाई चरबी को काम मे लाया करें।" आगे चलकर और एक सैनिकी पत्रेमे श्री. बर्चने सब के लिए प्रकट किया कि अबसे सैनिकों के पास एक भी निषिद्ध कारतूस नहीं पहुँच पायगा। सफेद झूठ के सरदार के भी, इस कथनने कान काट लिये। सं. १८५६ मे

इस कारतूसी मामलेमें सैनिकोंके धार्मिक विश्वासोंकी ओर तनिक भी ध्यान न देने की भूल की गयी है।

(फॉर्टी इयर्स इन इंडिया पृ ४३१)

अंबाला केन्द्रसे बाईस हजार पाँचसौ तथा स्यालकोटसे चौदह हजार याने कुल ३६५०० कारतूस रवाना हुए। राइफल-शिक्षा-केन्द्रोंमें इन्हीं कारतूसोंका उपयोग इस समय भी सरेआम हो रहा था। गोरखा टुकड़ियोंमें ये कारतूस खुलकर बाँटे गए और सेनाधिकारी डाँट दिखाते थे कि सैनिकों को जबरदस्ती इन कारतूसोंका उपयोग करना पड़ेगा। एक स्थानमें सैनिकोंने डट कर इनकार किया तो समूची पलटनको दण्ड दिया गया।

तब सिपाहियोंको भान हुआ कि इन कारतूसोंको दाँतसे काटना पड़े या न पड़े, एक बात निश्चित है कि जब तक इस सारे संकट की जड़ यह पराधीनता, यह राजनैतिक गुलामी पूरी तरह नष्ट न की जाय तब तक वे सुखसे नहीं रह सकेंगे। पारतन्त्र्यके पचड़ेमें पिचनेवाले प्राणियोंको कैसा धर्म! धर्मका सबसे प्रथम चिन्ह है स्वतंत्र राष्ट्र का स्वतंत्र नागरिक होना।

उठो, भारत, अब उठो! गुरु श्रीरामदासका यह उपदेश ग्रहण करो—

धर्मके लिये मरें।
मरते सभी को मारें।
मारते मारते ले लें।
राज्य अपना ॥

इसी संदेसको अपने हृदयमें रखते हुए, हिंदुस्थानका हर सैनिक स्वराज्य और स्वधर्मके लिए मैदानमें उतरनेको अपनी तलवार पैनी करने लगा।

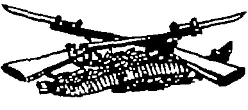

अध्याय ६ वाँ

वह महान् यज्ञ

सो, अपना राजनैतिक स्वातंत्र्य छीननेके लिए तथा अपनी पितृभू और पुण्यभूके उज्ज्वल ब्रिरदकी रक्षाके हेतु सशस्त्र प्रतिकार करनेके लिए विषम विग्रहमें उतरनेको सिद्ध रहना होगा; बिना इसके दूसरा कोई चारा नहीं है। तब इस रुधिर-महोत्सवके अधिष्ठाता देवता-अग्नि-नारायण-को सबसे पहले प्रसन्न कर लेने की हमें उतावली करनी चाहिये। पुराणोंकी कथा है, इंद्रजितने समरांगणमें उतरनेके पहले इस मन्तव्यसे एक यज्ञ किया था, कि धधकती अग्निज्वालाओंसे अजेय रथ प्रकट होकर उसे मिल जाय। यह सच है कि उसकी साधना ही राक्षसी और पापी होनेके कारण उसका मन्तव्य पूरा न हो सका। किन्तु हमारी साधना, हमारा आदर्श, अत्यंत न्यायसंगत और परमपवित्र होनेसे हमारे इस महान् यज्ञमें कोई रुकावट पैदा होनेकी थोडी भी सम्भावना नहीं है। हम इस बातको पूरी तरह जानते हैं, कि जिसे हम सत्य समझते हैं और उसके लिए अपने प्राणोंकी बाजी लगानेपर उतारू होते हैं, वह सत्य अपने स्थानमें स्वभावसे भलेही पवित्र और न्यायपूर्ण हो, फिर भी उसका पृष्ठपोषण करनेको उतनीही मात्रामें शक्तिबल खडा नहीं करते तबतक वह सत्य दावेसे विजयी होता हो, सो बात नहीं है। तो भी अपनी शक्तिभर पूरी तरह सत्यके लिए झूझनेमें भी सच्चे रणबाँकुरेको स्वर्गीय रणावेशसे अभिभूत असीम वीरानंद ही भरपूर मिल जाता है।

तो फिर, प्रज्वलित करो उस यज्ञवेदी को ! क्यों कि, अग्निनारायण का वरदान हमें प्राप्त होना अत्यंत आवश्यक है ।

यज्ञवेदीपर अतिविशाल और अत्यंत गहरी यज्ञवेदी अच्छी तरहसे खोद डालो । देखो, राष्ट्रीय क्रोधाग्निकी लपटें एक दूसरेपर कूद रही हैं ! इस यज्ञ का संकल्प बहुत पहले, याने १८५७ में, किया जा चुका है । इसीसे इस यज्ञ की प्रथम आहुति का सम्मान पलासी की रणभूमि को देकर, भस्म हो उसे इस वेदीमें !

कहाँ है वह पंजाब का सिरताज कोहनूर ? इस काम में हाथ बँटाने के लिए डलहौसीने स्वयं आगे बढ़कर उस कोहेनूर को उस के असली स्वामी खालसा वीर गुरु गोविंदसिंगजी से कब का लूट लिया है । हिंदुस्थान के सार्वभौमत्वका एकमात्र प्रतीक, प्राचीन ऐतिहासिक कालसे कीर्तिमान् इस निर्मल, शान्त आभा-किरणोंके कोहेनूर हीरे के अतिरिक्त और कौनसी आहुति इस लपलपाती अग्निज्वाला को भड़काने में अधिक समर्थ होगी ? इसलिए धकेल दो उस पंजाब के कोहनूर को उस यज्ञवेदीमें !

अब इस के बाद बरमा की आहुति पड़नी चाहिये । इससे वहाँ के राजा थीबा को भगा दो राज की सीमा के बाहर और धकेल दो यज्ञशाला की ऊँची उठी अग्निशिखा में !

अरे ! उस ओर स्वयं छत्रपति शिवाजी महाराजका सिंहासन भी है, उसे क्यों कर भूले हो ! सातारेमें यों ही उसे सड़ते रहने देनेमें क्या गौरव ? उसके सर्वश्रेष्ठ होनेका सम्मान उसे अवश्य मिलही जाना चाहिये । इससे, हे परम दयामयी आँग्ल सत्ते ! अपने फड़कते हुए पैने नाखूनोंसे अधिकसे अधिक विध्वंस करो, सातारेके सिंहासनको मिट्टीमें मिला दो (जहाँ उसके स्वामी सुखसे राज करेंगे) और, उस राष्ट्रीय क्रोधकी अग्नि और भभककर महाभीषण हो जाय इसलिए धकेल दो सातारेका सिंहासन ! स्वाहाऽ !

केवल नागपूरकी गद्दीकी आहुति राष्ट्रीय क्रोधकी संहारपरक अग्निदेवताके लिए तो क्षुद्र वस्तु होगी ! सो इस गद्दीके साथ साथ नागपुरके उदास राजमहल, हाथी, घोड़े और साथ रानियोंका भी, मात्र उनसे बलपूर्वक छीने गये जेवरोंके साथही नहीं, बल्कि उनके भयंकर आर्त आक्रोशके

साथ ले आना; धकेलो इन सबको एक साथ इस धूधू जलनेवाली यज्ञ-वेदीमे ! स्वाहा ऽऽ !

अब तो, इस यज्ञ की अग्निज्वालाएँ ऊँची, और ऊँची गयीं, एक दूसरे पर झपटती हुई आकाशको छूने जा रही है, किन्तु इससे भी अधिक भीषण भयकरतासे यज्ञाग्नि भडकनी चाहिये। तब धकेल दो झाँसीकी बिजलीको, स्वाहा ऽऽ !

यज्ञवेदी से उफनती हुई अग्नि के गहरे उदर मे कितनी प्रचड खलबली और उथलपुथल मची है उसका भान करानेवाली प्रलयकारी घरघराहट तुम्हें सुनायी नहीं देती ? निश्चय, कोई भीषण प्रस्फोटक क्रांति, अग्निज्वालाओं के पेटमें अस्थि–मास–मज्जायुक्त साकार रूप बनकर बाहर निकलने की सिद्धता हो चुकी है : इसीसे, जो भी हाथ लगे इस अग्निमें स्वाहा करो ! स्वाहा करो, अर्काट्के नवाब को ! जाने दो ताजोर की गद्दी को अंदर ! खैरपुर के अमीर की खैर स्वाहा होने ही मे है ! धकेल दो अंदर जैतपुर और सम्भलपुरके राजमुकुट ! सिकिम का स्वाहा करो, जमींदार, तालुकदार, जागीरदार, वतनदार-सब को स्वाहा करो ! स्वाहा !

अब डमडमकी बारी है ! दोस्तो और दुश्मनो ! जलदी करो; भारतभर फैले हुए डमडम जैसे अनेकों उद्योगालयोंसे लाखों नये कारतूस ले आओ, गौ तथा सुअरकी वसा और चरबीमें अच्छी तरह डुबोकर झोंक दो इस सर्वसहारक तथा सर्वभक्षक अग्निकी कराल ज्वालामें ! देखो बहुत ऊँची उठी इन लपटोंसे राष्ट्रीय क्रोधकी रणदेवताका रूप निखर रहा है।

यज्ञवेदीकी उफनती अग्निज्वालाओंपर ताडव करती हुई महाकाली–इस महायज्ञकी अधिष्ठात्री–अब स्वय साकार हो रही है। काली, भवानी, नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः–शत शत दडवत् प्रणाम ! चंडिके, तुम्हारे भीषण ताडवतले अन्याय, अत्याचार और पाशविक शक्ति कुचलकर खाकमें मिल जाती है, तुम्हारे हाथ की गदाकी चोटसे दासताकी श्रृखला चकनाचूर हो जाती है; राष्ट्रकी हस्तीकी रक्षा प्राणोंपर खेलकर भी करनेका समय आ पडता है, और आकाश युद्धके बादलोंकी काली घटासे बोझल हो जाता है; राष्ट्ररक्षाके हेतु आवश्यक युद्धमें रणभूमिमें खूनकी नहरें बहती है, तब तुम्हारी लपलपाती जिव्हाएँ उस उष्ण रक्तको पेटभर पी जानेको प्यासी

रहती है, हे महादेवी—मृत्यु भी तुम्हारा ही दूसरा रूप है—हे महाकाली, तुम्हें शत शत प्रणाम! हमारे इस स्वाहाकारसे प्रसन्न होओ! हमारी पूजा प्रार्थनाओंको स्वीकार करो! जगदम्बा! हमारे लहूकी धारका और पैनी बनाकर, क्या, तुम अपना विजयी वरदहस्त उसपर न रखोगी!

" विजय का वरदान शायद न भी मिले, किन्तु तुम्हारे खड्ग का भी प्रतिशोध का वरदान अवश्य दोगी।' प्रतिशोध! हाँ, बदला! अत्याचारी, अन्यायी पाशवी शक्ति की टांग तोड़नेवाला समर्थ बदला! प्रकृति की गूढ़ दण्डशक्ति को, इसी प्रतिशोध को, देखकर अत्याचारी घबराता मौतसे भी अधिक डरता है। इस दैवी दण्डशक्ति की छाती में आगामी विजय का बीज पड़ा रहता है!!

अध्याय ७ वॉ

गुप्त संगठन

गत अध्यायोंमे बताया गया है कि भारतभरमे क्राति की बयार जोरोंसे बहने लगी, इधर बिठूरमें भी स्वातन्त्र्य-समर की यशस्विताकी दृष्टिसे इस युद्धमें आवश्यक सब बातोंको सगठित करनेका एक कार्यक्रम बनाया गया।

तीसरे अध्यायमें, लंदनमें गुप्त योजनाएँ बनाते हुए रगो बापूजी तथा अजीमुल्लाको हमने छोड दिया था। सातारेके इस क्षत्रिय और बिठूरके खॉ साहबके बीच होनेवाली बातचीतको इतिहासमें, भले ही, ब्योरेवार न लिखा गया हो, इतना तो निश्चितरूपसे कह सकते हैं कि इन दोनोंने मिलकर लदनमें क्रातिके उत्थानकी रूपरेखा बनायी थी। लदनसे रगो बापूजी सीधे सातारा पहुँच गये। किन्तु अजीमुल्ला सीधे भारतमें न आ सके। जिनके सामने खडे होकर यह स्वातन्त्र्य-युद्ध लडना था उनकी सत्ता तथा राजनीतिके तानेबाने केवल भारत ही में मर्यादित न रहे थे, जिससे, जिस किसी मोर्चेसे ब्रिटिशोंको सताया जा सके, वहॉ हमला करना आवश्यक हो गया था। साथमें यह भी जॉचना आवश्यक था कि इस आगामी स्वातन्त्र्य-युद्धमें युरोपके किस देशसे प्रत्यक्ष सहाय और नैतिक सहानुभूति प्राप्त हो सकते हैं। इसी उद्देशसे भारतको लौटनेके पहले अजीमुल्लाने युरोपखड-भरमें यात्रा की। ससारभरके मुसलमानोंके खलीफाका स्थान, तुर्की सुलतानकी राजधानीको भी वह हो आया। उस समय रूस-तुर्की युद्ध चालू था, जिसमें सेबस्तपुलकी महत्त्वपूर्ण लडाईमें इग्लैंडको हार खानी पडी थी,

यह सुनकर अजीमुल्ला कुछ समय तक रूसमें रहा। अंग्रेज इतिहासकारोंको पूरा संदेह है, कि अजीमुल्लाका यहाँ आना इसी उद्देश्यसे होगा कि इंग्लैंड-के विरुद्ध एशियामें रूस कहीं मोर्चा लेता है या नहीं? और इसकी सम्भावना हो तो रूसके साथ आक्रमक तथा संरक्षक संधि की जाय। राष्ट्रीय उत्थानके नगाड़े अब बजने लगे तब और उसके बाद लोग प्रकट-रूपसे बोलने लगे, कि रूसी जार और रूसी सेना फिरंगियोंसे युद्ध करनेकी सोच रहे हैं। इस बातके प्रकाशमें उपर्युक्त संदेहको और पुष्टि होती है। अजीमुल्ला जब रूसमें था तब लंदन टाइम्सका नामी संवाददाता तथा सुप्रसिद्ध लेखक श्री रसेलके साथ उसकी बातचीत हुई थी। बेचारे रसेल को इसका खयाल तक न था कि रूस-तुर्क युद्धकी समाप्तिके बाद थोड़े ही दिनोंमें उसे अपने अतिथिके आश्चर्यकारी युद्ध-प्रयत्नोंके संवाद भारतसे भेजनेकी बारी आयगी। अंग्रेजोंकी हारका संवाद यह था कि १८ जूनको अंग्रेज तथा फ्रांसके संयुक्त सेना-विभागोंको रूसने बहुत हानि पहुँचाकर भगा दिया। इस संवादको पाते ही अजीमुल्ला अंग्रेजी शिविरमें किसी तरह घुस गया। उसका वेश भारतीय तथा राजसी ठाठका था। श्री रसेलसे मिलते ही अजीमुल्लाने कहा "जिन छुपेरुस्तमोंने (रूसी सिपाहियोंने) अंग्रेज-फ्रेंचकी संयुक्त हरावलको भी भगाया, उन वीरोंको तथा उनकी राजधानीको एक बार देख आने की इच्छा होती है। * अजीमुल्ला किसीका बनाने तथा व्यंग करनेमें सिद्ध-हस्त था। जिन रूसी वीरोंने अंग्रेज और फ्रान्सीसियोंके छक्के छुड़ाये थे उन्हें देखनेकी अजीमुल्लाकी इच्छाको पूरी करनेके लिए रसेलने उसे उसके खेमेमें आनेको कहा। शामके झुट-पुटे तक वह आग उगलती रूसी तोपोंको बड़े कुतूहलसे देखता रहा। उन तोपोंसे उड़ा एक गोला उसके निकट आ धमकनेपर भी वह वहाँसे न हटा। रातको खेमेमें लौटनेपर आनंदसे भरे अजीमुल्लाने रसेलसे कहा,

* उपर्युक्त जानकारी सुविख्यात 'रसेलकी दैनंदिनी' (रसेल्स् डायरी) पुस्तकसे ली है। १८५७के युद्धमें लंदन टाइम्सके संवाददाता की हैसियतसे वह भारतमें आया था। उसकी लिखी बहुतेरी घटनाएँ उसकी 'आँखों देखी' हैं।

"मुझे इससे भारी संदेह है कि यह बलवान् और सुसंगठित रणव्यूह तोडनेमें तुम कहाँ तक सफल होंगे।" रात उसने रसेलके खेमेमें काटी और सवेरे लौटते समय उसने रसेलकी मेजपर एक चिट रखी—"शुभेच्छा के साथ धन्यवाद! आपने स्वयं मेरी आवभगत करनेमें जो कष्ट उठाये उसके लिए धन्यवाद देनेकी अनुज्ञा मुझे दीजिये।"

अजीमुल्ला के रूससे लौटनेपर वह कहाँ कहाँ ठहरा यह कहना दूभर है। किन्तु बाद से प्रसिद्ध हुए कानपुर के क्रांति घोषणापत्रों से स्पष्ट दिखायी पडता है कि अजीमुल्ला, मिस्र के साथ राजनैतिक संबंध प्रस्थापित-करने के यत्नोंमें व्यस्त था। *

इसके बाद अजीमुल्ला युरोपके दौरेसे बिठूर लौट आया तब उस समय क्रांति दलके सारे प्रमुख नेता वहाँ इकठ्ठा हुए थे। फिर क्या था? बिठूरके राजमहलका वातावरण ही बदल गया। किसी समय भारतभरमें विजयी वैभवसे लहरानेवाला जरीपटका, मराठोंका झण्डा, आजतक कोनेमें बेकार पडा था। जिनकी ध्वनिमात्रसे हजारों मराठी तलवारें रणभूमिमें उमडकर अपूर्व वीरताके काम करतीं थीं, वे मारू बाजे, डंके नगाडे, अबतक भयानक तथा दुःखी सुर निकाल्ते थे। और जिसपर मुगल सल्तनत का भवितव्य

---

* भारतमें जारी राजनैतिक शोषणकी जानकारी देनेवाला अजीमुल्लाका तुर्की सुलतानके नाम लिखा हुआ असल पत्र लॉर्ड रॉबर्ट्सके हाथ लगा था। इस बारे में लॉर्ड रॉबर्ट्स् लिखता है:— "अजीमुल्लाके नाम उसकी अंग्रेजी प्रेमिकाओंके कई पत्र तथा एक फ्रान्सीसीके दो पत्र थे.. लाफों (Lafont) के पत्रोंसे मालूम होता है कि कलकत्तेके असंतुष्ट तथा राजद्रोही जनों तथा, शायद, चंद्रनगरके फ्रान्सीसियोंसे यह आशा की गयी थी, अंग्रेजी जूवेको उतार फेंकनेके काममें वे सहायता करें—इस आमन्त्रणके संतोषजनक उत्तरकी आशा लगाये वह बैठा होनेकी सम्भावना थी। इस पत्रव्यवहारका कुछ हिस्सा बंद लिफाफेमें पडा था और अजीमुल्लाके हस्ताक्षरमें कई पत्र थे। इनमें से दो कुन्स्तुतुनियाके ओमरपाशाके नाम थे, जिनमें हिंदी सैनिकोंकी अशान्ति तथा भारतकी बिगडी हालत का सरसरी तौरपर जिक्र था।"

लाचार, अवलम्बित था, वह पेशवाकी राजमुद्रा बिठूरके राजभवनमें स्वयं ही विवश होकर संदूकमें बंद पड़ी थी। किन्तु अब कुछ और ही रंग दीख पड़ता था। कोनेमें धूल चाटते पड़ा 'जरीपटका' नवचेतनासे फिर लहराने लगा। पुराने समरगीतोंको लगभग भुलानेवाले मारू बाजे फिर अपने रण-संगीतसे प्रभावतका वातावरण भरने लगे और पेशवाकी राजमुद्रा पराधीनताके शापको नष्ट करनेके लिए उतावली हो उठी। नानासाहब की वे "व्याघ्रके समान भेदक और तेजस्वी" आँखें आत्माभिमानपर आघात होते ही, अजीमुल्लाके आगमनके बाद, और ही चमकीली और बड़ी हो गयीं। फिर एक बार भगवान् श्रीकृष्णके 'तस्मात् युद्धाय युज्यस्व' वीरसंदेशने नानासाहबका अंतःकरण नयी प्रेरणासे भर गया। बिठूरके कोने कोनेमें यही मन्त्र गूँज उठा, "तस्मात् युद्धाय युज्यस्व-लो उठो, लड़नेको सिद्ध हो जाओ!" क्यों कि, अपने ही देशमें-हिंदुस्थानमें ही-विदेशी शासनकी गुलामीकी बेड़ियोंमें जकड़े पड़े रहनेका लोगोंके भाग्यमें बदा था। स्वराज्य ही समाप्त हुआ तब स्वातंत्र्यका जन्मसिद्ध अधिकार भी लोप हो गया। स्वदेश और स्वाधीनताको फिरसे प्राप्त करनेके साम-दाम-भेद आदि सभी उपाय पस्त हो गये थे। इस प्रश्नका सुलझाव एक ही रहा-'युद्ध'। "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्-समरमें मारे जाओगे तो स्वर्गका सुख पाओगे युद्धमें जीत होगी तो इस कर्मलोकका राज करोगे" गीता का संदेश गूँज उठा "इस लिए, उठो, युद्ध करनेमें तुम किसी प्रकारका पाप नहीं करते।" इस दिव्यमन्त्रसे नानासाहबकी आँखें और भी चमक उठीं (सं १)*

नानासाहबने देश की स्थिति की पहले पूरी जाँच की। अपने देश-बांधवों की गरीबी हालत तथा शापथ और तिसपर भी उनके धर्मपर

---

* (सं १) उस समय, नानाका मन्तव्य था, कानपुर में अपने राज की नींव डालना पेशवा की महान शक्तिको फिरसे पहले के स्थान पर बिठाना, और अपने भाग्य का विधाता बनकर उस अलोप राजदण्ड के वैभव को फिरसे अपने हाथों बढ़ाना। बस, इसी तरह के कोई विचार उसे उत्तेजित कर रहे थे। ट्रेव्हेलियन पृ-१११

होनेवाले भयकर आक्रमण आदि को देख उसने पराधीनता की पुरानी पीडा की चिकित्सा कर निश्चय किया कि, बस, एक तलवार ही इस प्राण-घाती रोग का अंत कर सकती है। यह तो पूरी तरह नहीं बताया जा सकता कि नानासाहब ने अपने मनमे इस विषय में क्या निश्चय किया था और कौनसा कार्यक्रम पक्का किया था, फिर भी अनुमान लगाया जा सकता है, कि पहले तलवारके बलपर अंग्रेजोंको निकाल बाहर करना और अपना स्वातन्त्र्य प्रस्थापित करना, फिर, हिंदुस्थान के नरेशों की सगठित एकता के झण्डे के नीचे भारतीय केन्द्रीय सत्ता को खडी करना, यही ध्येय मुख्यतः अपने मनमें स्थिर किया होगा। आपसी फूट की दावमें फँसकर पराधीनता के पाशमें स्वदेश किस तरह पकडा गया, इसका इतिहास नानासाहब की आँखों के सामने प्रत्यक्ष होकर नाचने लगा। उस के सामने एक ओर श्री शिवाजी महाराज और दूसरी ओर अपने पिताका—बाजीराव द्वितीयका—चित्र लगा था। एक साथ उन दो चित्रोंको देख, पहलेका वैभव और आजकी लज्जापूर्ण दशामे होनेवाला विरोध नानासाहबकी आँखोंमे तैरने लगा। और इस लिए, सबोंके सहयोगसे पहले समरभूमिवर युद्ध कर भारतीय स्वाधीनताको लौटा लाना, और आपसी फूटको गहरी गाडकर ससारके स्वतत्र देशोंके बराबरका स्थान स्वाधीन भारतको प्राप्त कर देनेवाली शासन—सस्था हिंदुस्थानमें प्रस्थापित करना—यही नानासाहबका सर्वप्रथम कार्यक्रम था।

हिंदुस्थानसे नानासाहब यही अर्थ लेते थे, कि हिंदु और मुसलमानोंका सयुक्त राष्ट्र-यह उनका स्थिर विचार था। जबतक मुसलमान इस देशमें विदेशी शासक थे तबतक उनसे भाईचारा रख कर एकसाथ आनदसे रहने को सिद्ध होना तो राष्ट्रीय दुबलेपनको मान लेना था, और इसीसे मुसलमानोंको पराया मानना उस समयके हिंदुओंको आवश्यक और शोभा देनेवाला था। किन्तु उस मुगली राजसत्ताका अन्त, पजाबमें गुरु गोविंदसिंगने, राज-पूतानेमें राणा प्रतापने, बुन्देलखण्डमें छत्रसालने तथा दिल्लीमें तो मराठोंने उस ‘तख्त—ताऊस’ पर स्वय चढकर, एक शतीके झगडेके बाद, किया था। हिंदुपदपातशाहीने उस मुगली सल्तनको एक ही कौर में निगल लिया और उसे मिट्टीमें दफना दिया। तब मुसलमानोंसे हाथ

मिलाना किसी तरह राष्ट्रीय अपमानकी बात न थी, परन्तु यह एक उदारतापूर्ण सहयोग था। इस लिए, हिंदुमुसल्मानोंने आपसी द्वेषको अतीतमें छोड दिया क्यों कि अब उनका नाता शासक और गुलामका न होकर, धर्मके भिन्न होते हुए भी, पूरे भाईचारेका था। अब ये दोनों हिंदभूमिकी संतान थे। नाम उनके भिन्न थे किन्तु एक ही भारतमाताकी गोदमें पे पलते थे। इस तरह भारतमाता दोनोंकी माता होनसे थे दोनों एकही स्तनके भाई भाई माने गए। नानासाहब, बहादुरशाह, मौल्वी अहमदशाह, खान बहादुरखाँ तथा १८५७ की क्रांतिके अन्य नेता, ऐसे ही कुछ बंधुभावसे प्रेरित होकर, आपसी द्वेषको भूल कर (क्यों कि, अब अपनोंसे बैर रखना अदूरदर्शिता तथा मूर्खता का परिचय देना था) स्वदेशके झण्डेके नीचे खडे हो गये। मतलब, नानासाहब और अजीमुल्लाके कार्यक्रम की उदार नीति यही थी, कि पहले हिंदू तथा मुसल्मान एक होकर कंधेसे कंधा मिलाकर स्वदेशकी स्वाधीनताके संग्राममें पूरा बल लगायें और स्वातन्त्र्य प्राप्त होते ही हिंदी नरेशोंके संयुक्त आधिपत्यमें एक संघराज्यकी स्थापना करें।

अब, बिठूरके राजमहलके हर विचारी व्यक्तिको एकही विचारने घर दबाया था, कि उपर्युक्त ध्येयको कैसे पहुँचा जाय? स्वाधीनताके हेतु किये जानेवाले युद्धमें यश प्राप्त करनेके लिए दो बातोंकी अत्यंत आवश्यकता थी। एक तो भारतभरमें एक प्रचण्ड विचार-आंदोलनको लहरा देना और दूसरे, इस साधनाकी पूर्णताके लिए एकही समयमें समूचे स्वदेशके उत्थानकी योजना करना। योंकेम, हिंदुस्थानको स्वातन्त्र्योन्मुख बनाके उसके लिए ठीक कहाँ चोट की जाय इसका मार्गदर्शन करना, ये दो बातें स्वाधीनता की अंतिम साधनाकी दृष्टिसे भारी महत्त्वपूर्ण थीं। और इस सारी भावनाके पूर्ण परिणति होने तक कंपनी सरकारको इसकी गंध तक न आने पावे। इतिहासके अनुभवोंको न भूलते हुए, बल्कि उससे योग्य सीख लेकर तुरन्त बिठूरमें एक गुप्त संगठन की स्थापना हुई।

इस गुप्त क्रांतिमण्डल की जानकारी अब और,कभी प्राप्त करना वैसा ही दूभर है जैसा कि अन्य गुप्त संस्था के बारे में हुआ करता है। किन्तु

जो कुछ सत्य बातें कभी कभी प्रकाशमें आ जाती है, उनको देख जितना भी इन क्रातिकारी नेताओं को सराहा जाय थोडा ही होगा।*

स. १८५६ के कुछ पहले, इस राजकीय साधना की दीक्षा जनता को देनेके लिए नानासाहबने समूचे भारत मे प्रचारकों को भेज दिया था। ऊपर से, नानासाहब पूरे परखे हुए तथा राजनीतिज्ञ कुछ चुने हुए अपने जनोंको, दिल्लीसे म्हैसूरतक के सभी नरेशोके पास इस लिए भेजे थे, कि उन्हे इस क्राति युद्धमे सहयोगी बनकर भारतीय सघराज्यके ध्येयको प्रत्यक्ष बनानेमें अगुआई करनेको प्रेरित करें। साथ साथ हर रियासतके शासक्के नाम भेजे हुए खरीतोंमे इस बातका पूरा और प्रभावी विवरण था, कि औरस सतान न होनेका बहाना बताकर स्वदेशी राज्योंको मटियामेट करने, तथा भारतको बहुत हीन दशाको पहुँचानेका कुटिल दॉव अग्रेज किस खूबीसे खेल रहे है, अब तक बनी रही रियासतोंकी भी वही दशा करनेका क्या ढग है, और पराधीनता की चक्कीमें ' स्वधर्म और स्वराज्य, कैसे पिसे जाते हैं। और साथ उन खरीतोंमे आग्रहके साथ अनुरोध किया गया था कि ये नरेश अपनी ही स्वाधीनताके लिए इस क्रातियुद्धमें हाथ बॅटाएँ। कोल्हापूर, पटवर्धनी रियासतें, अवधके नबाब, बुंदेलखण्डके नरेश और अन्य कई स्थानोंमे नानासाहबके ये खरीते पहुँच पाये थे इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाता है। नानासाहबके एक एलचीको अग्रेजोंने मैसूर दरबारके पास जाते हुए बदी बनाया था। इसकी गवाही इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसे हम यहॉ पूरी उद्धृत करते हैं।

“अवधके जब्त होनेके पहले दो तीन महीनोंसे श्रीमत नानासाहबने यह पत्र–व्यवहार जारी किया था। शुरू शुरूमे किसीने दाद न दी, क्यों कि, हर एकको विजयके बारेमे सदेह था। किन्तु अवधके जब्त होनेपर

---

* इस विषय में ट्रेव्हेलियन लिखता है:–जिन धनी और सभ्य ईसाइयोंने शाति और सद्भाव के मत्र का उपदेश देनेका व्रत लिया हो वे भी इतनी पूर्ण संगठन-नीति को कायम नहीं करेंगे, जैसी कि इन षडयत्रकारियोंने अशान्ति और विद्रोह फैलाने के लिए की थी। –'कानपुर' पृ. ३९

नानासाहेबने पत्रोंकी यह बौछार की कि धीरे धीरे लखनऊके शासक नाना साहबके साथ कुछ सहमत हो गये। पूरबियोंके राजा मानसिंहको भी बात जँच गयी। सैनिकोंने अपना संगठन खड़ा करनेका उद्योग किया, जिसे लखनऊके शासकोंने सहायता दी। अयोध्याके खम्रास ग्रहण तक किसीसे उत्तर नहीं मिलता था, किन्तु उसके बाद हर एककी आँखें खुल गयीं और उसने नानासाहबसे संबंध जोड़ना जारी किया। फिर कारतूसोंका मामला बना, जनता बिगड़ उठी। फिर क्या था? नानासाहबपर पत्रोंका सैलाब सा आया!" * सं ११

इस प्रकार, स्वातन्त्र्ययुद्धका गुप्त प्रचार चालू था। विशेषतः दिल्लीके दीवान-ई-खासमें क्रांतिका बीज अच्छी तरह जड़ पकड़ रहा था। अंग्रेजोंने दिल्लीके बादशाहकी सल्तनत ही नहीं छीन ली थी, वरंच बाबरके वंशकी 'बादशाह' उपाधीको भी रद करनेका निश्चय अभी अभी किया था। ऐसी दुर्दशामें दिल्लीके बादशाह तथा उसकी अत्यंत प्रिय, चतुर एवं दृढ बेगम जीनत महलने पक्का निश्चय किया, कि गतवैभवको फिरसे प्राप्त करनेका यह आखिरी मौका हाथसे न जाने दिया जाय। मरनाही है तो दिल्लीके बादशाह तथा उसकी बेगमकी शानको शोभा देनेवाले मौतको गले लगायेंगे, यह भी प्रण उन्होंने उसी समय कर लिया। इसी समय अंग्रेजों

---

* महीनों, नहीं सचमुच बरसोंसे, देशभरमें अपने षड्यन्त्रका जाल ये बुन रहे थे। एक दरबारसे दूसरे दरबारको, विशाल भारतके एक छोरसे दूसरे छोर तक नानासाहबके दूत गुप्त रूपसे शायद गूढ लिखा हुआ संदेसा और निमंत्रण लेकर, भिन्न जाति तथा धर्मके नरेशोंके पास पहुँच गये थे। हाँ, मराठोंसे उन्हें अत्यधिक आशा थी विद्रोहके प्रकट होनेके पहले देशभरमें फैली चाल्साजीमें नानासाहबका पूरा हाथ था इस बारेमें मेरे मनमें रंच भी संदेह *नहीं है। देशके भिन्न भिन्न विभागोंमें* भिन्न भिन्न गवाहोंके बयानोंके मेलसे नानासाहबकी चाल्साजीकी बात तर्कके क्षेत्रसे सत्यके क्षेत्रमें आ जाती है।—के कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १ पृ २४–२५ इसी वृतने नानाके भिन्न भिन्न दरबारोंके नाम भेजे पत्रोंकी बडी लंबी तालिका दी हुई है।

का ईरानसे युद्ध छिडा था। साथ साथ भारतमें उत्थान हो तो बडा सहायक होगा यह मानकर ईरानके शाहने दिल्लीके बादशाहके साथ गुप्त राजनैतिक बातचीत चालू की थी। बादशाहके घोषणापत्रमें तो स्पष्ट रूपसे कहा गया था कि दिल्ली दरबारसे ईरानको विश्वासी राजदूत भेजा गया था। बादशाहके दरबारमें जब यह हलचल हो रही थी तब स्वय दिल्ली नगरमें लोगोंके भावोंको अंतःकरणके गहरे स्तरसे उभाडनेके लिए एक महान् आदोलन चालू होनेके लक्षण दिखाई दे रहे थे। शहरमें प्रकटरूपसे दीवालोंपर पर्चे चिपकाये गये थे। १८५७ मे लिखित एक पर्चेमें यों लिखा थाः—फिरगियोंसे भारतको मुक्त करनेके लिए अब ईरानी-सेना आ रही है। इस लिए काफिरोंके चगुलसे छूटनेके लिए छोटे बडे, पढे लिखे या अनपढ सैनिक या नागरिक सभी भारतीयोंको चाहिये कि अब रण-मैदानमें कूद पडें।"*

ये भित्तिपत्रक (वॉल पोस्टर्स) दिल्ली नगरमें प्रकटरूपसे लग जाते थे किन्तु अंग्रेजोंको इनके कर्ताका पता कभी न लगा। भारतीय समाचारपत्रोंमें भी ये घोषणाएँ छपती थीं और उनपर गूढ तथा साकेतिक भाषामें टीकाटिप्पणी भी प्रकाशित होती थी। दिल्लीके राजमहलसे शाहज़ादे तथा उनके मुसाहिब कभी गुप्तरूपसे तो कभी प्रकटरूपसे इसको बढावा देते थे और गुप्त षड-यन्त्रोंका जाल बुन रहे थे। राजा जवानबख्तके घुडदौडके मैदानपर सार्जेट फ्लेमिंगका लडका छः वर्षोंसे घुडसवारीका अभ्यास कर रहा था। किन्तु १८५७ के अप्रैलमे यह अग्रेज युवक वजीर महबूब अलीके घर गया था। वहॉ जवानबख्त उसे देखकर आपेसे बाहर होकर बोले 'जा, निकल जा यहॉसे! फिरंगीका मुँह देखतेही मेरा खून खौल उठता है।' यह कहकर जवानबख्त उस अग्रेज युवक के मुँहपर थूके+ (स. १२) हॉ, अन्य लोक, इस ढीठ शाहजादे के समान उबल न पड़ते हुए अपना आदोलन गुप्तरूपसे चलाते थे। एक अंग्रेज महिला श्रीमती आल्डवेल ने अपने कानों सुनी बात की गवाही दी है, कि कई मुस्लीम माताएँ अपने

---

* के कृत इडियन म्यूटिनी खण्ड २ पृ. ३०.

\+ मिलिटरी नॅरेटिव्ह पृ. ३७४ .

सबों को अल्लाह से यह दुआ माँगना सिखाती थीं कि अंग्रेजों का जड मूल से सत्यानाश हो जाय * दिल्ली के बादशाह का महामात्य (प्राइव्हेट सेक्रेटरी) मुकुंदीलाल कहता है—"राजमहल के दरवाजों पर पास बैठकर मुगल तथा अन्य लोग विद्रोहपर मशविरा करते थे। सैनिक अब जल्द ही विद्रोह करनेवाले हैं दिल्ली की सेना भी अंग्रेजों के विरुद्ध उठेगी, फिर आम लोग सैनिकों के साथ फिरंगियों का जोश उखाड फेकेंगे और स्वराज्य में सुखी होंगे, इसी तरह के कुछ विचार जनता प्रकट करती थी। लोगोंके मनमें यह आशा दृढ होती जा रही थी कि स्वराज्य हो जाते ही सब सत्ता तथा अधिकार अपनेही हाथ आ जायँगे।" इस तरह दिल्लीके घर घरमें विद्रोह की भावना जग रही थी। बस, अब स्फोट होनेमें एक चिनगारी की आवश्यकता थी।

दिल्ली और बिठूर इन दोनों राजधानियोंके समान डल्हौसीकी हडप नीति की आखरी बलि अवधकी राजधानी लखनऊ भी विप्लवके शोले फेंक रही थी। लखनऊका नवाब तथा उसका वजीर कलकत्तेके पास रहते थे। ऊपरसे ऐसा मालूम पडता था कि लखनऊका वजीर रँग रेलियोंमें मगन है, किन्तु असलमें अली नकीखाँ नानासाहब के समान कलकत्तेके पास आगामी षड्यंत्रकी रूपरेखा निखारनेमें मशगूल रहता था। *बंगालके सैनिकोंको अपनी ओर कर, निश्चित समयपर वे कब विद्रोह* करें इस बारे में उसकी गुप्त किन्तु विशाल और साहसी मंत्रणाएँ देखकर भली नकीखाँकी बुद्धिपर अचंभा होता है। सैनिकोंमें अंग्रेज–विरोधी भावोंका प्रचार करनेके लिए फकीर और संन्यासीका भेष देकर अपने कई प्रचारकोंको उसने सेनामें भेजा था। सेनाके हिंदी अफसरोंके साथ पत्र व्यवहार जारी कर उनको यह बात जँचा दी कि कंपनीसरकार की नौकरीकी अपेक्षा स्वराज्यमें कई गुना अधिक लाभ हो सकता है। अवधपर दखल कर अंग्रेजोंने कैसे असह्य अपराध किया है, नवाबके राजपरिवारसे कितनी नीचतासे पेश आये, बेगमों तथा रानियोंको धक्के मारकर राजमहलसे

* ट्रायल ऑफ दि किंग ऑफ दिल्ली

किस तरह निकाल बाहर कर दिया गया आदि दिल दहलानेवाले अत्याचारोंके चित्र इतनी करुणापूर्ण रीतिसे सिपाहियोंके सामने चितारे जाते कि सैनिको की आँखोंसे आँसू बहने लगते। और फिर उसी जोशमे गगाका पानी हाथमे लेकर या कुरानपर हाथ रखकर सौगध लेते कि "दममें दम हो तब तक अंग्रेजी शासनको कुचलना यही हमारा ध्येय रहेगा" इस तरह सूबेदार–मेजर, सूबेदार जमादार ये अफसर भी जब शपथ-बद्ध होते थे, तब सारी कपनी उनके पीछे अपने आप, उसी ध्येय की हो जाती। इस तरह अवधके वजीरने अलग अलग तरकीबोंसे बगालकी सारी सेना अपने वशमें कर ली* [बंगाली पलटनसे मतलब है अवध, आगरा आदि स्थानोंके निवासी पूरबिये, मुसलमान और हिंदुओं की बनी सेना] कलकत्ते के फोर्ट विलियम में भी अली नकी खॉ के दूत क्रातिका सदेश गुप्तरूपसे फैला रहे थे।

भिन्न भिन्न शासकों तथा नरेशों के पास ब्रह्मावर्तसे पत्र भेजने पर नानासाहब ने जनता की भीतरी शक्ति को जगाने में अपना बल लगाया था। बिठूर, दिल्ली, लखनऊ, सातारा और अन्य प्रमुख नरेशों के क्रातियुद्ध में शामिल हो जाने से पैसे की कमी क्योंकर रहेगी? जनतामे जिन्हें कुछ विशेष स्थान हो ऐसे लोगोंको अपनी ओर कर लेनेके कामपर फकीरों, पडितों तथा सन्यासियोंको ताबडतोड भेजा गया था। यह कहना, कि ये सभी फकीर, सचमुच फकीर ही थे, साहस होगा। क्यों कि, कुछ फकीर तो अमीरी ठाठमे घूमते थे। उनकी यात्रा हाथीपर होती थी। सिरसे पैरतक शस्त्रोंसे सधे

---

* (स. १३) बारकपुरके सैनिकोंके पत्रही अंग्रेजोंके हाथ पडे थे। 'के' ने उन्हीको उद्धृत किया है। "सहायक तोपचीने कहा कि पूरी रेजिमेंट अवधके नवाब साहबके पक्षमें जानेको सिद्ध है। सूबेदार मदारखॉ, सरदार खॉ, ओर राम शाहीलालने कहा 'विश्वासघात करनेमें 'बेटीचोद' फिरगी अपना सानी नहीं रखते अवध के नवाबसाहब ने गद्दी छोड दी तो उन्हें पेन्शन तक न दिया।" ऐसे कई पत्र बादमें अग्रेजों के हाथ लगे—के कृत इडियन म्यूटिनी प्रथम खण्ड पृ. ४२९.

सैनिक उनकी रक्षाके लिए साथ रहते। एक प्रकारसे इस फकीरका अड्डा जो किसी सेना की छावनी मालूम होती थी। इस ठाट-बाटसे लोगोंपर उसका गहरा प्रभाव पड़ता और सरकारको भी किसी संदेह की गुंजाइश न मिलती। लोगोंके आदरपात्र बड़े बड़े मौलवी इस राष्ट्रीय पवित्र युद्धके प्रचारार्थ हजारों रुपयोंके साथ भेजे जाते। नगर नगरमें, गाँव गाँवमें, ये मौलवी तथा पंडित, फकीर एवं संन्यासी देशके एक कोनेसे दूसरे कोने तक यात्रा कर, इस राजकीय स्वातंत्र्य युद्धका गुप्त प्रचार करते थे। इससे प्रेरणा प्राप्त कर फिर भिन्न भिन्न गुप्त संस्थाओं ने अपनी ओरसे प्रचार जारी किया। वेतनिक प्रचारकों का स्थान अब अवैतनिक स्वयंसेवकोंने लिया। दर दर भीख माँगनेके बहाने देशभरमें, जनताकी शक्तिको जगानेके लिए स्वातंत्र्य, स्वदेशभक्ति एवं स्वधर्म प्रेमका बीज बोना प्रारंभ किया। इस स्वातंत्र्य-युद्धकी सिद्धता इतनी सावधानी और गुप्ततासे हो रही थी कि प्रत्यक्ष स्फोट के होने भनक तक धूर्त अंग्रेजोंको उसकी सैन जरा भी न मिली। ये फकीर और संन्यासी जब किसी गाँवमें पहुँचते तब उस गाँवमें एकाएक अशान्तिकी आँधी आ जाती। अंग्रेजोंको कभी कभी संदेह हो जाता। बाजारोंमें कानाफूसी चालू रहती। भिश्ती 'साब' को पानी देनेसे इनकार कर देता। बिना सूचनाके अंग्रेज घरोंमें काम करनेवाली आया एकाएक नौकरी छोड़ देती। बावर्ची मेमसाब' व 'आगे' जानबूझकर नंगे बदन पहुँच जाते और चपरासी दफ्तरसे संदेसा पहुँचानेको जाते हुए अपने 'साब' के सामनसे तनकर चलते तो कभी साब की हँसी उड़ानेके लिए जानबूझकर बुद्धू बनकर मुँह बिचकाते निकल जाते।* किन्तु इस एकाएक हुई जनजागृतिको देख अंग्रेज हैरान हो जाते पर कोई खास संदेह न होता। ये फकीर और पंडित सैनिक शिविरके इर्दगिर्द घूमते रहते। हिंदु और मुसलमान सिपाही इन धर्माचार्योंको बड़ी श्रद्धासे मानते थे जिससे यदि कभी अंग्रेजोंको इसमें भेद होनेका संदेह हो जाता तो भी उनके विरुद्ध कार्रवाई

* ट्रेवेलियन कृत 'कानपुर'

करनेकी हिम्मत न करते। क्यों कि, उन्हें भय था कि कहीं सैनिकोंकी अशान्तिमें और एक बहाना न मिल जाय। एकबार एकाएक अंग्रेजोको सुराग मिला कि किसी सन्यासीने क्रांतियुद्धका बीज किसी सिपाहीके घरमें जाकर बोया है। मीरतके अंग्रेज सेनाधिपतिने छावनीके पास अखाडा बनाये सन्यासीको वहाँसे निकल जानेको कहा। किसी सादे भोले सज्जन का सा बनकर वह सन्यासी वहाँसे हाथीपर चढ, विदा हुआ और पासहीके गावमें एक सैनिक के घरही में अड्डा जमा दिया।* वह देशभक्त मौलवी अहमद-शाहभी इसी तरह सारे देशभर घूम घूमकर क्रांतिका प्रचार कर रहा था। इस मौलवी के नाम का तेजोमंडल हिंदुस्थान के चारों और सदा दमकता है और उस के महान् तथा वीरता के कार्योंके वर्णन हम आगे देनेवाले हैं। इस मौलवीने फिर लखनऊहीमें दस दस हजार लोगोंकी सभाओं में खुल्लमखुल्ला प्रचार शुरू किया, कि 'स्वदेश और स्वधर्म का मंगल चाहते हो तो फिरंगियोंको तलवारके घाट उतारनेके बिना और कोई चारा नही है।' इसपर उसे पकडकर राजद्रोह के अपराधमें अंग्रेजोंने फाँसी-पर लटकाया।

हर सेना-विभागमें धार्मिक प्रसंगोंके लिए एक मुल्ला और एक पण्डितको नियुक्त करनेका रिवाज था। इससे लाभ उठानेके हेतु कई क्रांतिकारी मुल्ला और पण्डितके पदपर सेनामें भरती हुए थे, जो रातमें अपनी क्रांति-पुराणकी पोथी सिपाहियोंके आगे चुपचाप खोल देते। इस तरह ये राज-नैतिक सन्यासी, पंडित, मौलवी लगातार दो वर्षोंतक प्रचार करते रहे और उन्होंने आगामी भीषण युद्धकाण्डकी भूमिका पूरी कर दी।

जहाँ ये घुमक्कड सन्यासी और मौलवी प्रचारक गाँव गाँवमें उपदेश देते फिरते थे, वहाँ शहरोंमें स्थानिक प्रचारक भी अपना काम पूरा करते थे। बडे बडे तीर्थक्षेत्रोंमें, जहाँ हजारों यात्रिक जमा होते थे, ये क्रांतिकारी जनताके मनमें फिरंगियोंके देशी राज्योंके हडप जानेके विषयमें, जो मौन तथा अप्रकट निषेध था उसको, अंग्रेजोंके तीव्र द्वेषमें बदल देते थे। गंगाके तटपर बसे तीर्थक्षेत्रोंमें क्या खलबली मची हुई थी, गंगास्नानके संकल्पके

---

* दि मीरत नॅरेटिव्ह

साथ साथ क्रांतियुद्धका संकल्प भी किस तरह फैलाया जाता था आदि बातोंका वर्णन हम उन स्थानोंके उत्थानके कथनमें करेंगे। यहाँ क्षेत्रोंमें फिरंगियोंका द्वेष इतनी पराकाष्ठापर पहुँच गया था कि काशीके मंदिरोंमें राजामहाराजाओंकी आज्ञासे वहाँके पुजारी फिरंगियोंका पद मिटनेकी प्रार्थनाएँ बड़े समूहके साथ करते थे।*

स्वधर्म और स्वराज्यको हर दिन पैरों तले अपमानित किया जाता है, इस बातको सर्वसाधारण जनताके मनमें बैठा देनेके लिए सरल और सादी भाषामें प्रचार करना आवश्यक था। क्रांतिदलने, इसके लिए यात्रा, रासमण्डली, रामलीला, अन्य समारोह, आल्हा आदि साधनोंको अपने प्रचारतंत्रमें शामिल कर लिया था। क्यों कि, इन अवसरोंपर मेले पायस हजारों लोग जमा होते हैं। कठपुतलियाँ अब और ही भाषा बोलने लगी थीं; उनका नाच भी अब डरावना और उग्र मालूम होता था। थानोंके सामने, पेड़ोंकी छायामें, धर्मशालाओंमें तथा चौक चौकमें कुछ औरही गूढ संदेशसे भरे पँवारे और आल्हाके सुर निकलने लगे। रामलीला तथा रासमण्डलीके गानोंमें वीरताके ऐसे गान सुनाये जाते, जिनसे दर्शकों की भुजाएँ फड़कने लगतीं, उनकी छाती तन जाती कुछ पराक्रम करने की इच्छासे खून गरम हो जाता, ठीक उस समय विषय बदला जाता और दर्शकोंको देशकी दुर्दशा का करुणा पूर्ण वर्णन सुनाया जाता उसमें फिरंगी के विरुद्ध लोहा लेनेके लोगों को भड़काया जाता और फिर अपने पुरखाओं के समान वीरता के काम कर दिखानेकी स्फूर्ति देनेवाले गान सुनाये जाते। सरकार जिनके आवागमन की कभी परवाह न करती थी उन देहातोंमें घूमनेवाली मण्डलियोंका भी उपयोग क्रांतिका संदेश फैलाने का काम देनेमें क्रांतिदलके होशियार नेता न चूके थे। कलकत्तेसे पंजाबतक ये मण्डलियाँ अपने देशबांधवोंके आगे भयंकर खेल (!) हर रात को कर दिखाती थीं।+

---

* रेड पॅम्फ्लेट (लाल-पत्रक)

+ ट्रेव्हेलियन कृत 'कानपुर' और नरेटिव्ह्ज़

किन्तु इससे प्रचार कार्य पूरा न हुआ। स्त्रियोंमे इसका प्रचार करने के लिए बैंद्, बहुरूपिये, जिप्सी जादूगरे तथा ज्योतिषी आदि लोगों की स्त्रियोको यह काम सौंपा गया। जिप्सी ज्योतिषी स्त्रियाँ यह भविष्य कथन करतीं कि अब ग्रहों का ऐसा जोर हुआ है, जिससे फिरगियों का राज्य अब निश्चित नष्ट होनेवाला है। बहुरुपिया विदेशी शासन के घृणित राज्ययंत्र का दर्शन कराते थे। बैंदू स्त्रियाँ बतातीं कि माताको पीडा देनेवाले पिशाच को झाडने तथा पराधीनता की डायन को जलाने का एकमात्र उपाय विप्लव है। अंग्रेजी शासन का द्वेष स्त्रियोंमे किस सीमा को पहुँच पाया था और अंग्रेजी हुकमत का सत्यानाश देखने लिए वे कितनी आतुर थीं इसका वर्णन आगे आयगा। थोडेमे, तीर्थक्षेत्र, मठ, मदिर, सिपाही, सैनिक, नागरिक, आम जनता, नाटक मण्डली, महिला एव पुरुष—सभीमें क्रातियुद्धका प्रचार किया जाता था।

हर स्थानमे, पारतन्त्र्यसे घृणा और स्वराज्यके लिए बेचैनी दीख पडती थी। " मेरा धर्म मर रहा है, मेरा देश मुर्दा हालतमे है मेरे स्वदेश बधुओंको कुत्तेसे भी बदतर जीवन जीना पड रहा है " ऐसे ही डरावने भावोंसे हरएक हृदय जल रहा था। हाँ, साथ साथ यह भी दुर्दम्य आकाक्षा पैदा हुई थी कि अपने देशका उद्धार हो, हमारे देश—निवासी मानवको शोभा देनेवाला वीरोंके योग्य जीवन प्राप्त करें। साथ स्वाधीनताकी प्राप्तिके लिए अपने (तथा शत्रुके) खूनकी नहरें बहानेका मामूली मूल्य देनेको भी राजी थे।

स्वाधीनताकी तीव्र लालसा अतःकरणमे प्रेरित करने और उसकी प्राप्तिके लिए कटिबद्ध होनेको जनताको सिद्ध करना हो तो कवितासे बढकर जोरदार साधन दूसरा नहीं हो सकता। साधारण लोगोंके अतःकरणमें एकाध महान् विचार बस गया हो तब भी शब्दोंद्वारा उसकी व्याख्या करना प्रायः असम्भवसा होता है। किन्तु कविही इस विचारको सबसे अधिक तीव्रतासे अपनी प्रतिभामे उसका अनुभव करना है और फिर उसे ऐसी मनोहर वाङमय-देह देता है कि, वह विचार लोगोंके अतःकरण की तह तक घुस जाता है, और जनता पहलेसे भी अधिक उस महान् विचार के भक्त बन जाती है। इसीसे

क्रांतिकारी उत्थानोंमें राष्ट्रीय काव्यका महत्त्व अनमोल है। राष्ट्रीय गीत तो उज्ज्वल ध्येयसे छलकती राष्ट्रीय आत्मा का काव्यदेहमें अनुभव है। लोगोंके हृदयोंको जोडनेका इससे बढकर प्रभावी साधन दूसरा नहीं है। स्वधर्मकी रक्षा तथा स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए आवश्यक स्वाधीनताकी तीव्र आकांक्षासे जब भारतभूमि जाग्रत हो उठी, तब राष्ट्रीय अंतःकरणसे राष्ट्रीय काव्य यदि फूट न निकलता तो बडे अचरजकी बात होती। दिल्लीके बादशाहके दरबारके एक प्रमुख शायरने एक राष्ट्रीय गीत बनाया था और बादशाहने स्वयं सबको यह आदेश दिया था कि, "यह गीत हर सार्वजनीन सभा समाज, समारोहमें तथा हर देशवासीके कण्ठसे गाया जाय।" इस गीतमें इतिहासकालके वीरत्वपूर्ण कृत्यों तथा अबकी हीन दासताका वर्णन था। ठीक कलतक जिनके सिर को कतुमकतु राजश्रीका राजमुकुट शोभा दे रहा था, उन्हींको कुत्तेकी मौतसे मरनेकी बारी आयी थी। जिनका धर्म कल्तक धर्मके सम्मानसे जीवित था, उसके शरीरसे राजसत्ताका संरक्षक कवच ही दूर पडनेसे यह खुला हो गया है! कल जो सम्राट्-पदपर बैठे थे वे आज विदेशी शत्रुओंके पैरोंतले रौंदे जा रहे हैं—इस तरहके कई विपर्यासोंकी गूँज इस राष्ट्रीय गीतमें प्रतिध्वनित होती थी। (सं १४ देखो)

इस तरह जब यह राष्ट्रगीत लोगोंमें पूर्ववैभव को स्मरण करा कर वर्तमान की गारत दशा को स्पष्ट कर रहा था, तभी, मानो, आगामी आशा का सितारा चमक उठे और प्रजामें फिरसे नया उत्साह पैदा हो जाय इस लिए देशभर में एक भविष्यवानी फैल रही थी। भविष्य की मन की उडानें ही भविष्य-कथन होती हैं। हिंदुस्थान का अंतःकरण स्वराज्य के लिए बेचैन होने लगा तब इन भविष्यों में भी स्वराज्य का उल्लेख होने लगा। उत्तरमें हिमालय से लेकर दक्षिणमें रामेश्वर तक बडे बूढे, सभी एकही बात बोलने लगे-'सहस्रों वर्षों के पहले एक प्राचीन तपोधन मुनिने यह भविष्य कथन किया है कि राज्य स्थापनासे ठीक सौ बरसों के बाद फिरंगी राजसत्ता का अंत होनेवाला है। भारतीय समाचार पत्रोंने इस भविष्यवानीको बहुत प्रसिद्धि देकर साथ यह भी सूचित किया था कि "कंपनीका राज्य २३ जून १८५७ को अपने शासनके सौ वर्ष पूरा करेगा। इस भविष्यवानीसे भारतमें कई अजीब बातें

बनी, और साफ कहनेमे क्या प्रत्यवाय है कि, यदि यह भविष्यकथन न फैलता तो भारतीय इतिहासका बहुतसा हिस्सा कुछ और ही तरहसे लिखना पडता। स १८५७ यह वर्ष तो अंग्रेजीराज्य तथा पलासीके रणसग्रामका शतसावत्सरिक वर्ष था, और इसीसे १८५७ के प्रारभसे भारतके हृदयमे एक नूतन आशा तथा अजीब स्फूर्ति प्रकट होने लगी थी। इससे कपनीका राज्य अब नष्ट होनेवाला ही है, यह सबका विश्वास बँध गया था। यह भविष्य-कथनकी चाल किसकी थी, इस विषयमे अग्रेज इतिहासकारोने चर्चाका खूब हगामा मचाया और अन्तमे निर्णय हुआ कि निःसदेह यह हिंदुओकी चाल थी। क्यो कि, पलासीका सौवाँ वर्ष हिंदु पत्रेके हिसाबमे १८५७ ही मे पडता था। इतिहासके महत्त्वपूर्ण हर पन्नेपर यह बात सदा अकित है कि, इस राष्ट्रीय भविष्यकथनसे छोटे बडे सबके मनमे एक अजीब स्फुरणा हो चुकी थी, हर एक जन इस भविष्यवानीको सच्ची कर दिखानेके जतन उत्साहके साथ कर रहा था।

ब्रम्हावर्तमें सबसे पहले स्थापित क्रांतिका गुप्त सगठन अब जोरोंसे लहलहाने लगा था। * उत्तर भारतमे स्थान स्थानपर केन्द्र-कार्यालय काम चलाते थे और उनमे मेल भी बहुत बढ रहा था। दक्षिणमे भी इस सग-ठनका केन्द्र प्रस्थापित् करनेके काममे श्री रगो बापूजी गुप्त लगे थे। कानपुरके आदोलनका प्रकाशकेन्द्र (फोकस) था ब्रम्हावर्तका राजमहल। दिल्लीका दीवानी-ई-खास भी उस बडे नगर के आदोलन का केन्द्र कार्यालय बन चुका था। लखनौ तथा आगराके कोने कोने मे स्वाधीनता-संग्राम का बारीक और सगठित जाल वह महान् मौलवी अहमदशाह बुन ही रहा था। इधर जगदीशपुर का वह वीरवर कुँवरसिंह नाना-

---

* (स. १५) अपने बहुत बडे ग्रथके अन्तमे मॅलिसन लिखता है:— " इस सगटनका नेता निःसदेह मौलवीसाब थे। इसकी शाखाएँ भारतभरमे फैली हुई थी। निश्चय आगरामे, जहाँ यह मौलवी कभी कभी रह जाता, और, ९९ प्रतिशत, दिल्ली, मेरठ, पटना एव. कलकत्तेमे, जहाँ अवधका भूतपूर्व नबाब अपने बडे परिवारके साथ रहा था, इस क्रातिसगठन का प्रभाव बहुत गहरा था।" खण्ड ५ पृ. २९२.

साहबसे सलाहकर अपने प्रांतकी बागडोर हाथमें ले, युद्ध सामुग्री का जुटाने में व्यस्त था। इस धर्मयुद्धकी जड पटनेमें इतनी गहरी उतर गयी थी कि वह समूचा नगरही क्रांतिदल का एक प्रमुख गढ बन गया था। स्वदेश तथा स्वधर्मके लिए मौलवी, पण्डित जमींदार, किसान, बनिया, वकील, विद्यार्थि सब पर्योक लोक बलिदान करने को सिद्ध हुए जाते थे। इस गुप्त क्रांतिसंगठन का मंचालक एक पुस्तकविक्रेता था। कलकत्तेमें ता अवध के नवाब तथा अन्य नकीलोंने सैनिकोंमें विद्रोहकी बुआई अच्छी तरह की थी, अब फसल काटनेका अवसर ही ताक रहे थे। हैदराबादकी मुस्लीम जमात भी जागृत होकर गुप्तरूपसे मशविरे कर रही थी। कोल्हापूर-पंढरपुरतक चारों ओर क्रांतिकी बयार बह रही थी। नजदीकम होनेवाले राष्ट्रीय युद्धमें, अपने अनुयायियोंके साथ आकर राष्ट्रीय झण्डेक नीचे खडे होनेको पटवर्धन-रियासतें तथा नानासाहबक ससुर सांगलीके राजा सिद्ध थे। यहाँ तक कि सुदूर मद्रासमें १८५७ के प्रारंभमें भित्तिपत्रक लगे हुए थे ' स्वदेशबन्धुओ तथा धर्मबन्धुओ उठो, सबक सब उठो! और काफिर फिरंगियोंको यहाँसे भगा दो। उन्होंने प्रत्यक्ष न्यायनीतिको पैरोंतले कुचल डाला है और हमारा स्वराज्य छीन लिया है। हमारे देशको मटियामेट करनेपर फिरंगी तुले हुए हैं, तब इस असहनीय अत्याचारसे मुक्त होनेका एक मात्र उपाय है फिरंगियोंस युद्ध पुकारना। यह स्वाधीनताका धर्मयुद्ध है, न्यायके लिए ठाना हुआ यही वह धर्मयुद्ध! इस युद्धमें जो खेत रहेंगे वे हुतात्मा (शहीद) होंगे किन्तु इस राष्ट्रीय कर्तव्यसे दूर रहनेवाले कोई पापी दुरात्मा या कायर देशद्रोही हो तो उनके लिए नरकके अग्निमुख जबडा खोले राह देख रहे हैं। बंधुगण! तुम किस पसंद करते हो? अभी निर्णय करो। अभी!"

भिन्न भिन्न प्रांतोंमें स्वतन्त्ररूपसे काम करनेवाले क्रांति-संगठनकर्ताओंको जोडनेवाले स्वतन्त्र प्रवासी प्रचारक भी गुप्तरूपसे काम कर रहे थे। जब तक बन पत्र कम लिखे जाते और, जो भी लिखने पडते वे गूढ भाषामें और बिना किसी व्यक्तिके नाम के। कुछ समय के बाद अंग्रेज हरएक पत्रको संदेहसे देखने लगे और उन्हें खोलकर पढने लगे। तब अपनी योजनाओं

का रत्ती भी सुराग शत्रुको न मिले इस लिए क्रांतिदलवाले आकडों या अलग रेखाओं की बनी सांकेतिक भाषामें लिखने लगे।*

इस तरह सबदूर सिद्धता हो रही थी ऐसे हि अवसरपर, सैनिकों की धार्मिक भावनाको छेडने की दुष्ट बुद्धिसे उत्पन्न कारतूसोंवाली भयंकर भूल अंग्रेजोंने की, जिससे उनके पातकोंका प्याला लबालब भर गया। अपने देशभाइयों के अंतःकरण में धडकनेवाले ध्येय को प्राप्त करने के लिए लडे जानेवाले स्वातंत्र्य-संग्राम में ठीक महुरतपर पहली गोली चलाने का सम्मान प्राप्त करनेकी सैनिकोंमें स्पर्धा शुरू थी। नानासाहब तथा अलीनकीखाँने हर सैनिक-विभागके सिपाहियोंपर किस तरह दबाव रखा था और उनमें देशप्रेमकी लहर लहरानेके लिए फकीर, सन्यासी भेजनेका उपाय कैसे जारी था इसका वर्णन हम पहले कर चुके है। किन्तु अंग्रेजोंने कारतूसोंकी कमीनी कार्रवाई करनेके कारण हर सिपाही क्रांतिका स्वयं-प्रचारक बन गया और अपने साथीको इस स्वातंत्र्ययुद्धमें शपथबद्ध होनेको उसकाने लगा। इन दो महीनोंमें बारकपुर, पंजाब, महाराष्ट्र, मेरठ, अंबाला आदि छावनियोंके सैनिक-विभागोंमें अवधके नवाबके नामसे हजारों पत्र भेजे गये। किन्तु एकसाथ आये इन पत्रोंके बोझसे लदी डाककी थैलियाँ देख अंग्रेज अफसर-खास कर सर जॉन लॉरेन्स-संदेह से सभी थैलियों को जाँचते थे। अब तक सिपाहियों में एक अजीब आत्मविश्वास दृढ हो गया था। काली नदीके युद्धमें घायल सिपाहियों को जब तोफसे उडा देने की सजा हुई तब अंग्रेजोने सिपाहियों से पूछा था कि क्यों कर उन्होंने विद्रोह किया? ठंडे दिलसे सिपाहियोंने कहा हम सिपाही एक हो जायँ तो गोरे तो ऊँटके मुँह में जीरेके बराबर होंगे।" अंग्रेजोंके हाथ लगा एक पत्र बताता है- "भाइयो। हम खुद ही फिरंगीकी तलवारें अपने बदनमें घोंपते हैं, हम सब मिलकर उठें तो विजय हमारी है। कलकत्तेसे पेशावर तक की भूमिमें खुला मैदान हो जायगा।" रातमें सैनिक गुप्त बैठकें करते थे। साधारण सभामें सब प्रस्ताव मान्य किये जाते और अंतरंग-मंडल का निर्णय हर एक पर बंधनकारी समझा जाता था। गुप्त सभामें आते हुए कोई पहचान न ले

---

* इन्नर क्रुन सिपॉय रिवोल्ट पृ. ५५

इस लिए कपड़े और छाटकर मुँह बन्द कर लिया जाता था। सभामें अंग्रेजोंके देशसे निकाल बाहर करनेका निश्चय किया जाता था।* पल्टनोंमेंसे किसी एक नाम सबूतके उनके बदले दिये जाकर ही उस पल्टनमें वह सभा की जाती। सब सिपाही सामान प्रणाम करते सामूहिक अवसर माने। इस लिए अलग अलग कम्पनियोंकी सभाओं, उनमेंसे अन्य कम्पनियोंके नेता सभी और इस प्रकार सैनिकोंके संगठनमें पर्दा स्पष्ट संबंध होते। पुनः दूर सैनिकोंकी प्रत्येक गुप्तचरके परस्पर होती थी। उन्हें नये सैनिकको भी समझाया गया था कि सर्वत्र तथा धार्मिक आयोजन सिर गए होते हैं। हर सिपाही अंग्रेज सरकार का दुश्मन था। फिर भी, सब, पंच और प्रतीक प्रारंभ किया जाय तथा भिन्न भिन्न शक्तियोंके संगठन होते इस विषयमें कोई कुछ भी जानकारी न दी जाती। इसका शासक भेद गंभीर था। हरएक सनिक, अपनी इच्छासे, गंगाका पानी या कुरानशरीफ हाथोंमें लेकर या कुरान उठाकर शपथ लेता था कि कंपनीकी आज्ञाओं पर सब करनेका वह बाध्य है। इस तरह पूरी कम्पनी शपथबद्ध हो जाती, तब उस कम्पनीके नेतागण दूसरी कम्पनीके नेताओंसे बातचीत चलाते और अपनी अपनी इमानदारीका प्रमाण देकर संगठन चल शुरू करते। सिपाहियोंके शपथोंके समानही कम्पनियोंमें आपसमें होनेवाली शपथें भी अलग और अंतिम मानी जाती थीं। समूचे संगठनमें एक कम्पनी एक इकाई होती थी। आगे चलकर अंग्रेजोंने इस विषयमें बहुत सामग्री जमा की। और उसी के आधारपर भी विल्सनने सरकारी विवरण में लिखा है "मुझे निश्चय मालूम होता है कि, ३१ मई १८५७ वही दिन सामूहिक उत्थान के लिए मुकर्रर था। हर कम्पनीमें तीन सदस्योंकी एक समिति होती थी और वही समिति विद्रोह

---

* (सं १६)   १ रू. फ्रस इण्डियन म्यूटिनी प्रथम खण्ड पृ. ३६८

२ "मंत्रस्थलभूमि (परेड ग्राउंड) पर लगभग १३०० व्यक्ति जमा थे। उनका सिर और मुँह कपड़ेसे दिखने का छाड ढँके हुए थे। अपने धर्म पर बलिदान होनेकी बातें वे कह रहे थे—" नैरेटिव्ह ऑफ इण्डियन म्यूटिनी पृ. ८

की व्यवस्था देती थी। इसलिए, सैनिक क्या सोचते थे इस की कल्पना-तक न थी। आपसमे इस सेना–विभागोने तय कर लिया था जो एक कपनी करे वही दूसरी करेगी। यह समिति महत्त्वपूर्ण योजनाएँ बनाने तथा आवश्यक पत्रव्यवहार करने का काम करती थी। इस पद्धतिसे निर्णय किया गया था, कि ३१ मई ही उत्थान का दिन सब सिपाही जानें। वह दिन रविवार का था। जिससे बहुतेरे गोरे अफसर अनायस गिरजाघर ही मे पाये जाएँ। और ये सब बडे अफसर अन्य अफसरोके साथ कत्ल होनेवाले थे। उसके बाद रबी की मालगुजारी के वसूलसे भरा सरकारी खजाना लूटने का इरादा किया। कारागारोंको तोडकर सभी बदियो को मुक्त करने का निश्चय हुआ था। क्यों कि, उत्तरपश्चिम प्रातके बदियोसे ही लगभग २५०००की सेना खडी हो सकती थी। उत्थानके दिन ही शस्त्रागारों तथा गोलाबारूदके अंबारोंपर दखल करना तय हुआ था, और जहाँ हो सके गढों और किलोको भी रोके रखना निश्चय हुआ था। यह थी क्रातिसगठनकी रचाई और समूची सेना उसमे हाथ बँटाने को सिद्ध थी।"

इस गुप्त सगठन को आर्थिक सहायता देने को लखनऊके साहूकार, नाना-साहब का खजाना, वजीर अली नकी खॉ, दिल्लीका राजमहल और क्रातिकारी बडे नेता समर्थ थे। सैनिक जब उपर्युक्त आयोजनोंपर गुप्त मशविरा करते तब एक बिलकुल छोटीसी भूल के कारण किसी नरा-धम के द्वारा कुछ गुप्त बाते खुल गयीं। तब सरकारी आज्ञा जारी हुई कि सिपाही विद्रोही होनेका सदेह जहॉ भी हो वहॉ समूची रेजिमेट तोडकर सैनिको को भगा दिया जाय। वाह जी! यह तो बहुत अच्छा हुआ! नेकी और पूछ पूछ? क्यों कि क्रातिकी ज्वालाको फैलाने के स्वयसेवक, प्रचारक सन्यासी, सरकारही स्वय दे रही है। क्रातिदलके नेताओंने बडे परिश्रमसे भिन्न भिन्न रियासतें, सर्वसाधारण जनता तथा सेना इस त्रयीका सुदर समन्वय कर रखा था। हॉ, मुलकी अधिकारी इसमें से छूट गये थे। किन्तु इन्ही हाकिमोंने आगे चलकर क्रातिकार्यमें क्या क्या महत्त्वपूर्ण कार्य किये थे इसकी सिलसिलेवार जानकारी देना आवश्यक है। नबर-दार–पटवारोंसे लेकर ऊँची अदालतके न्यायाध्यक्षोतक हिंदु मुसलमान सभी अधिकारी, वकील, कारिंदे सबके सब इस क्रातिसगठनमे गुप्तरूपसे

माहात्म्यक थ। सरकारको इस असीम घगके लागोंका क्रांतिकी ओर झुकाव तथा चेष्टाओंके बारेम जरासी संदेह क्योंकर न हुआ इसका कारण बहुत सरल है। ये ही तो सरकारकी आँखें थीं जिनके द्वारा उन्हें प्रकाश मिलता था न! इनपरही तो सरकारको निर्भर रहना पड़ता था न! और इन लोगोंने यह ठान ली थी कि इस नाजुक मौके आ पहुँचने तक सरकारम भग भी विरोध न दिखाया जाय। यहाँ तक कि जब किसी क्रांतिकारी नेताको पकड़नेका काम उनके सिर आता, तब उससे चुपचाप पूरी सहानुभूति रखनेवाले ये हिंदी अधिकारी, किसी अंग्रेज हाकिमके समान बड़ी क्रूरतासे उससे पेश आते और कड़ा दण्ड भी देते। मेरठके सिपाहियोंका मुकदमा चला तब इन्हीं हिन्दी न्यायधीशोंने उन्हें भयंकर कठोर दण्ड दिया, किन्तु बादम पता चला कि यही न्यायाध्यक्ष तथा अन्य कर्मचारी क्रांतिके पृष्ठपोषक थे। लखनऊके हर चौराहेमें, जनताको चेतावनी देनेके लिए स्वच्छ भाषामें लिखे गुमनाम पर्चे दीवारोंपर चिपकाये जाते। उनसे एक बानगी यहाँ हम देते हैं —

"हिंदूमुसलमान भाइयो उठो, और आपसके सहयोगस भारतके भविष्यका एक बार निर्णय कर डालो। क्यों कि, एक बार यदि यह अवसर हाथसे निकल जाय तो जीना भी भारी हो जायगा यह निश्चय मानो। इससे यही मौका है। ध्यान रहे, इस बार नहीं तो कभी नहीं।"

अंग्रेज अधिकारी पूरी तरह जानते थे कि ऐसे पर्चे प्रतिदिन नये चिपकाये जाते थे, फिर भी उन्हें फाड़ डालनेके बिना उनसे कुछ न बनता। क्यों कि, एक पत्रक जहाँ फाड़ा चुका वहाँ दूसरा दिखायी देता। पुलीसन साफ कह डाला था, कि इन पत्रकोंको कौन चिपकाता है इसे ढूँढ निकालना हमारी बुद्धिके बाहरकी बात है। हाँ, बादमें अंग्रेजोंको पता चला कि स्वयं पुलीसके आदमीही क्रांतिदलके सदस्य थे।*

केवल रूसी क्रांतिहीम नहीं, भारतीय क्रांतियुद्धमें भी पुलीस जनताके साथ पूरी सहानुभूतिसे पेश आती थी। क्रांतिके गुप्त संगठनका पहिया अब यह वेगस घूमने लगा था तो, यह आवश्यक कार्य था कि भिन्न

---

* रेड पॅम्फलेट भाग २

भिन्न चक्रोंकी गति एक ही लयमें चलती रहे। इसी उद्देशसे बंगालमें एक क्रांतिदूत हाथमें लाल कमल लेकर सैनिक शिविरमें चुपचाप घुस पडा। उसने वह लाल कमल एक कंपनीके सूबेदार मेजरके हाथमें थाम दिया, उसने अपने सहायकको दिया और इस तरह वह रक्तकमल हर सिपाहीके हाथसे गुजरा और अंतिम सिपाहीने इसे क्रांतिदूतको लौटा दिया। बस, काम हो गया! एक शब्द भी बिना बोले यह क्रांतिदूत तीरके वेगसे निकल जाता और मार्गमें दूसरी कंपनीके हिंदी मुख्य अधिकारीके पास दे देता। इस तरह काव्यमय बना यह रहस्यपूर्ण क्रांतिसंगठन एकमात्र रक्तमय विचारसे भर जाता। मानो, यह रक्तकमल क्रांतिकी अंतिम राजमुद्रा ही थी। इसकी कल्पनातक नहीं की जा सकती कि इस रक्त-कमलको छूतेही सैनिकोंके मनमें किन भावोंका बवंडर पैदा होता था। सचमुच, किसी उच्च श्रेणीके वक्ता भी अपनी अमोघ वक्तृतासे जिस वीरभावको जगानेमें असफल होंगे उस वीरभावका संचार इन लडाकू सैनिकोंमें उस निर्वाक् रक्तकमलने अपनी लालिमाकी वक्तृतासे कराया। *

कमलपुष्प! शुचिता, यश एवं प्रकाशका कवियोंसे माना हुआ काव्यमय प्रतीक! और उसका रंग? रक्तोज्वल! इस पुष्पके केवल स्पर्श ही से हृदयपुष्प विकसित हो उठता है। सैकडों सैनिकोंके हाथों जब यह कमल-पुष्प एक दूसरेके हाथमें पहुँचाया गया होगा, तब इस पुष्पके मूक संदेश में बहुत गहरा गूढ अर्थ तथा महान् साधनाकी स्फूर्ति निःसंदेह सूचित की जाती होगी! इस रक्तकमलने, सचमुच सबके अंतःकरणोंको साधा। क्यों कि बंगालके सिपाही और किसान एक ही बात बोलते थे— "सब कुछ लाल हो जायगा!" और यह कहते समय उनकी आँखें ऐसी चमकतीं जिससे तुरन्त निश्चय हो जाता कि बहुत गहरा अर्थ भरा होगा। "सब कुछ लाल हो जायगा"—किन्तु किसके हाथों? +

* (स १७) नॅरेटिव्ह ऑफ म्यूटिनी पृ. ४ (साथ इस पुस्तकमें उस विख्यात रक्तकमल पुष्पका चित्र भी मुद्रित है)

+ ट्रेव्हेलियन कृत 'कानपुर'

इस रक्तकमलने तथा उसकी तहमें गुम्फित भावने हर व्यक्तिके हृदयमें एकही ध्वनि गूँजा दिया था। किन्तु देशभक्त दल प्रमुख क्रांति–चन्द्रमा भी इसी तरहकी सामान्य साधना तथा धर्मभावनाको जाग्रत रखनेके लिए उन्हें बार बार भेंट देना आवश्यक था। इस लिए ब्रह्मावर्तका राजमंदिर छोड़ क्रांतिसंघटनकी शृंखलाकी भिन्न भिन्न कड़ियोंको साधनेके उद्देशसे नानासाहब बाहर निकले। उनके साथ बालासाहब तथा आकर्षक व्यक्तित्वका चातुर मन्त्री अजीमुल्ला भी साथ थे। किसलिए निकले थे? हाँ, 'तीर्थयात्रा' के लिए! सचमुच एक ब्राह्मण और एक मुसलमान हाथमें हाथ दिये तीर्थक्षेत्रको जा रहे हैं! क्याही, अनोखा प्रसंग है!

१८५७ की यह बात है। "यात्रास्थानों' का एक बार जाना आवश्यक ही था न! इससे सबसे पहले वे दिल्ली पहुँचे। यहाँ, सलाह–मशविरेके समय किस बातपर अधिक जोर दिया गया था यह तो दीवान–इ–खास या शायद उस समयका दिल्लीका वातावरण ही बता सकता है। ठीक इसी समय आगरेसे कोई न्यायाध्यक्ष भी मागल नानासाहबसे मिलने आया था। नानासाहबने उसका बड़ा शानदार स्वागत किया। उस बेचारेको क्या पता था कि दो एक महीनोंमें अंग्रेजों का कुछ और ही तरीकेसे स्वागत करनेके उद्योगमें नानासाहब व्यस्त थे। दिल्लीके सब प्रबंध को अपनी आँखों देखकर नानासाहब अम्बाला गये। १८ अप्रैल को सबसे महत्त्वपूर्ण बने क्रांतिचन्द्रमा–लखनऊमें–पहुँचे। उसी दिन लखनऊमें एक घटना हुई थी। यहाँ के चीफ कमिश्नर सर हेन्री लॉरेन्सकी फिटनपर लोगोंने हमला कर रोड़े और कीचड़ फेंके थे। और उसी दिन नानासाहब का आगमन हुआ था। इससे लखनऊभरमें एक अनोखे आनन्द तथा जागृति की लहर फैल गयी थी। लखनऊके मुख्य मुख्य मार्गोंसे नानासाहबका विशाल जुलूस निकाला गया, जनतामें अपने होनेवाले सेनापतिके दर्शन होनेसे एक अनोखा आत्मविश्वास झलकने लगा। नानासाहब स्वयं सर हेन्री लॉरेन्ससे मिलने गये और बातचीतके दौरानमें यों ही कह गये कि लखनऊकी सैरके लिए ही उनका आना हुआ है। लॉरेन्सने अपने साथी कर्मचारियोंको आज्ञा दी कि वे नानासाहबका अच्छी तरह सम्मान करें। बेचारा लॉरेन्स! नानाकी

सैर किस प्रकारकी थी, उस गर्भगृहकी क्या कल्पना थी? लखनऊसे नानासाहब कालपी पहुँचे। इसी बीच जगदीशपुरके कुँवरसिंहसे नानासाहबका गुप्त पत्रव्यवहार जारी था, साथ साथ राजनैनिक गतिविधीके सूत्रोंको जुडाया जाता था।* इस तरह दिल्ली, अबाला, लखनऊ, कालपी आदि केन्द्रोंके नेताओंसे मिल तथा आगामी संग्रामकी निश्चिति कर और रूपरेखा समझा कर अप्रैलके अन्तमें नानासाहब बिठूरको लौटे।+

उधर प्रमुख नेताओंसे मिलकर क्रांतिके उत्थानका महूरत निश्चित करने की दृष्टीसे तथा सब कार्योंमें मेल पैदा करनेके लिए नानासाहब यात्रा कर रहे थे, उधर जनता भी 'उस दिन' के लिए पूरी सिद्धता करे इसलिए क्रांतिदूतों की एक गुप्त अनोखी मण्डली यात्राके लिए निकल पडी थी। ऐसे तो यह सूझ नयी न थी। जब जब क्रांतिका कार्य इस देशमें शुरू हुआ तब तब इन क्रांतिदूतोंने—चपातियोंने—देशभर के कोने कोनेमें क्रांति-संदेश पहुँचाने का काम अवश्य किया था। क्यों कि, वेलूरके 'विद्रोह' में भी चपातियोंने अपना हाथ बँटाया था। देशके सुदूर कोनेमें अपने अदृश्य पाखोंसे उडते हुए, ये देवदूतिकाएँ अपने ज्वलन्त संदेशसे देशके हर व्यक्ति का अंतःकरण चेताने का काम करती थीं। ये कहाँसे आतीं

---

* रेड पॅम्फ्लेट

\+ इस यात्रामें नानासाहबने बहुत स्थानोंको भेंट दी होगी, किन्तु जब कि, अंग्रेज ग्रंथकार उसका जिक्र टालते हैं तो हम भी उन्हें छोड देते है। हाँ, यह उद्धरण विशेष महत्त्वपूर्ण है।

उसके बाद उस महान् जोडीने (नानासाहब और अजीम) पर्वतीय यात्रा के बहाने (मेन ट्रंक रोड) सीधे राजमार्गके सभी छावनियोंको भेंट दी और अंबालेतक पहुँच गये। यह सूचित किया जाता है कि उनके शिमले जानेमें यह हेतु था कि पर्वतीय छावनियोंके गोरखा सैनिकोंमें अशान्ति पैदा कर दी जाय। किन्तु अंबाले पहुँचनेपर जब उन्हें पता चला कि उन पलटनोंका बडा हिस्सा वहींके छावनियोंमें आ गया है तो उनका काम न बना और आगे जाना इस बहाने टाल दिया कि वहाँ ठंढ बहुत है। —रसेल की डायरी। (म. १८ देखो)

और किधर चली जाती इसका किसीको कानोकान भी खबर न थी। हाँ, जो लोग इस विचित्र चिट्ठीके आगमन की राह देखते थे, उन्हें ये चपातियाँ ठीक ठीक गूढ मंत्र सुनाकर गुम हो जातीं; किन्तु जिनके पास ये क्रांति दूतिकाएँ अचानक पहुँच जातीं उनसे ये ऐसी भोली बातें करतीं, और उन्हें अपना बना लेतीं। कुछ अक्लमंद दुश्मन सरकारी कर्मचारियोंने इन चपातियोंको जब्त कर लिया और बार बार उन्हें खोल खोलकर सोचा। वे मानते थे कि इससे कुछ सुराग पायेंगे। पर भूखी वह थीं कि 'चोर' कहते ही किसी गनदार के समान अपना मुँह आगमें बंद कर लेतीं। ये चपातियाँ आम तौरपर गेहूँ या बाजरे आटेसे बनती थीं। उनपर कुछभी लिखा न रहता। किन्तु जो मानते थे उन्हें केवल छूनेसे ये चपातियाँ क्रांतिमंदिरमें पहुँचकर उत्साहसे भर देतीं। हर गांवके चौकीदारके पास यह चपाती होती थी। पहले वह उसमें एक टुकड़ा तोड़कर खा जाता और बची हुई चपाती सबको 'प्रसाद' के तौरपर बाँट देता। फिर जितनी चपातियाँ उस गांवमें पहुँचीं हों उतनीही फिरसे बन जातीं और ये ताजी चपातियाँ पासके दूसरे गांववालोंको पहुँचायी जातीं। वहाँ का चौकीदार फिर उसी तरीकेसे और गांवको बाँट देता। इस तरह भारतीय क्रांतिकी यह रहस्य अग्निशलाका हर दहान, हर कस्बेमें घुस कर क्रांतिकी अग्नि समूचे देशमें आग लगाती गयी। हाँ, जल्दी करो! क्रांतिकारिक, जल्दी करो! भारतके सभी सुपुत्रोंको यह संदेश समझा दे, कि सबको स्वाधीन बनानेके हेतु अपने राष्ट्रने पवित्र धर्मयुद्धकी घोषणा की है! बस, क्रांतिसूतिके, आगे बढ़! इन दिशाओंमें चक्कर काट! कहीं पलभर भी न ठहर! सब ओर वातावरणको भर देनेवाली यह भयंकर पुकार गूँजा दे, कि 'माता, समरांगणमें चल पड़ी है! उठो, सब उठो, और उसकी रक्षा करो'। नगरके प्रारंभ पर हो तो उनके खुलने तक रुकी न रह कर आकाशमार्गसे उड़कर अंदर चली जा। मार्गमें पर्वतके दर्रे बहुत भीषण हैं; कगार फटा हुआ और दाम्द है सगरे उरावने नदियोंका पानी असीम गहरा है। फिर भी, इन डरावनी रुकावटोंकी परवाह न करते हुए यह प्रलयका संदेश लेकर तीरके वेगसे बढ। तेरी तेज गतिपर ही देश और धर्मके जीने मरनेका प्रश्न अवलंबित है। इससे, जितने मील

तुम दौड सको, दौड, पराकाष्ठा कर। वायुको भी मात कर दे। शत्रु यदि तेरी एक देह चूर चूर कर दे तो, हे अनोखी ज्योति, वैसे सैकडों रूप स्वय निर्माण कर इस राष्ट्रके अस्तित्वके आनन्दानके समय आगे दौड। तेरी प्रत्येक नूतन देह और आत्मामें हजारों जिव्हाएँ निकलने दे। सबको पुकार। पतिपत्नी, माताबालक, भाईबहन इन सबको, उनके हितुओंको नातेदारोंको, दबी योजनासे भागमें बढे इस कामको सफल बनानेके लिए, पुकार! मराठोंके भालों, राजपूतोंके खड्गों, सिक्खोंके कृपाणों, मुस्लीमोंके चॉदको; सबको आने दे और इस यज्ञसमारोहको सफल बनने दे। पुकार कानपुरकी रणदेवीको! झाँसी दुर्गके सब देवताओंका आवाहन कर। जगदीशपुरके अधिष्ठाताको ले आ। इस क्रांतियुद्धको सफल बनानेके लिए तुरहियाँ, रणभेरियाँ, ध्वज, पताकाएँ, रणगीतों और वीरगर्जन सबको, सबको पुकार! राष्ट्रकी अधिष्ठात्री देवी महामंगल समारोहके लिए उतावली हो गयी है, सो, सभी अनुयायियोंको निमंत्रण दे। सबको मालूम हो जाय कि वह मंगल महूरत आ लगा है।"

भाइयो! उठो, कमर कसो और अभागे अत्याचार! तुम भी इस हरीभरी पहाडीपर अपनी उन्मत्त सुखनिद्रासे बाज आकर तथा जरा ऑखे खोलकर अच्छी तरह देख। दूरसे हरीभरी लगनेवाली यह पहाडोंकी पॉती सचमुच ऐसीही होगी यह माननेकी भूल कोई न करे, इसकी कल्पना-तक किसीको नहीं होती कि पर्वतशिखरपर चलना बडी भयंकर भूल होगी। अच्छा; तुम चढो उस शिखरपर! अत्याचारी शासन! रौंधो तुम इस भूमिको! अब १८५७ का वर्ष दमकने लगा है, अब कुछही क्षणोंमे सब जान जायँगे कि कालिदासका कथन इस समय भारतपर यथार्थ लागू होता है:—

शमप्रधानेषु तपोधनेषु
गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्ता
स्तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति ॥

—शाकुन्तल (द्वितीयाङ्क, श्लोक ७)

प्रस्फोट

प्रस्फोट

"जिन सैनिकों ने अंग्रेजी शासन को आजतक फैलाया और असे बनाये रखने में बल लगाया अन्हीं सैनिकों की तलवारें आज अंग्रेजों की गर्दनोंपर पड रही थीं। जिस दृश्य से छक्के छूट कर अंग्रेजी शासन मेरठ से भाग कर दिल्ली पहुँचा तब वहाँ बादशाह ने अेक हाथ से अुस का गला घोंट कर दूसरे से अुस का राजमुकुट भी छिन लिया। जिस के मुँह पर मेरठ की स्त्रियाँ भी भरे चौराहे में थूकीं और जिस के राजमुकुट आदि अलंकार लोगों ने बलपूर्वक खींच लिये, वह शस्त्रों से आहत, लहूलुहान अंग्रेजी शासन, अपने अंग्रेजी खून से लथपथ, बाल पकड तथा हड्डियों की मालायें गले में डाल, कराहती, कसकती, कलकत्ते को चल देने के लिये बेचैन दिखायी देती थी।"

"तप और शान्तिही जिनका धन है, उनमें जला देनेवाला अग्नि भी गुप्तरूपसे भरा हुआ है। ध्यान रहे एकबार यह अग्नि छिड़ जाय तो सारे विश्व को भस्म कर देनेकी सामर्थ्य उसमें होती है।"

ओ दुनियावालो सुनो! सहिष्णुता भारत का महान् गुण है अवश्य, किन्तु भारतपर इस स्वभावसिद्ध गुणसे अनपार लाभ उठाते हुए यह सब यदि याद रखेगा तो, ध्यान रहे, जिस हिंदुस्थानके अंतःकरण में सबके साथ सहिष्णुतासे पेश आनेवाली अपरंपार क्षमाशीलता भरी है उसी हिंदुस्थानके हृदयवेदीमें प्रतिशोधसे प्रज्वलित होनेवाली प्रलयकर अग्नि भी सुरक्षित है। महादेव का तीसरा नेत्र जानते हैं न? जब तक वह आँख बंद हो तबतक शिवजी परम—से शांत और शांत। किन्तु यह तीसरी आँख खुली नहीं और समूचे ब्रह्माण्ड को उस की प्रलयकर ज्वालाओंने भस्म किया नहीं। ज्वालामुखी की कल्पना कर सकते हो? ऊपरसे तो उसका मुँह हरी घासपत्तोंसे ढका हुआ होता है। जब उसका मुँह फट जाता तो उससे खौलता हुआ लावारस उगलने लगता है। ठीक उसी तरह शिवजी के तृतीय नेत्र से भी अधिक प्रलयकर हिंदुस्थान का जागरित ज्वालामुखी अब भड़कने लगा है। तप्तरसके उद्रेकने सारे अब उस के उदर में खौलने लगे हैं। स्फोटक रसायन का भी मिश्रण योग आ रहा है और स्वातंत्र्यप्रेमका स्फुलिंग उसपर गिर रहा है। अत्याचारी शासन! अबतक अवसर हाथसे नहीं गया अभी सोच ले। इसमें जरा भी टालमटूल किया तो उद्दंड और पीड़क शासन का ज्वालामुखीके समान धधकते प्रतिशोध का परिणाम प्रस्फोट की प्रचंडता से ही होगा; इसमें संदेह नहीं।

खण्ड प्रथम समाप्त

खण्ड २ रा

प्रस्फोट

अध्याय १ ला

हुतात्मा मंगल पांडे

सत्तावनी क्रांतिके विषयमें बनी अनेक आश्चर्यकारी घटनाओंकी तह सबसे बडी अजीब बात उस संगठनकी गुप्तता थी। बडे बडे चतुर अंग्रे शासकोंको भी इस बातका निश्चित पता न चला कि इस महान् प्रस्फोट मूल क्या था। क्यों कि, क्रांतिका धडाका समूचे हिंदुस्थानभर धधक हुए भी और एक वर्ष बीत जाने पर भी, उन अंग्रेज शासकोंके मन यह बात बैठ गई थी कि 'चरबीसे चिकनी कारतूस ही इस क्रांति कारण है'। किन्तु बादमें धीरे धीरे अंग्रेजों पर यह बात खुलती गई कि काडतूसोंका मामला तो मात्र एक आकस्मिक कारण था। और वे ही अब स्वयं सुनाते हैं कि "स्वधर्म और स्वराज्यके पवित्र हेतुसे प्रेरित होकर ही १८५७ के क्रांतिवीर लडे थे"* अंग्रेजोंकी सजग सत्ता

* (स. १९) मॅलिसन् कहता है:— एक बहानेके रूप और इसी रूपमें मात्र काडतूसोंने विद्रोह कराया। षडयंत्रकारियोंने इन बहानोंसे पूरा

सिरपर होनेपर भी उसे ग्ध भी खबर न होने देकर, नानासाहब, मौल्वी अहमदशाह तथा अली नकी खाँने क्रांतिके जालकी बुनाई इतनी कुशल्ता तथा गुप्ततासे की थी कि उनको जितना सराहें थोडाही होगा। जिन नताओंने, सफलताके साथ एक दूसरेकी सहायताके लिए कंधेसे कंधा मिलाकर लडनेकी आवश्यकता हिंदु–मुसलमानोंको जँचा दी और सैनिक, पुलीस, जमींदार, मुल्की अधिकारी, किसान बनिया, साहूकार आदि जनताकी सभी श्रेणियों तथा स्तरोंपर लोगोंको क्रांतिकी कल्पनासे भर दिया, उनके गुप्त–संगठन–चतुरताका कोई जोड नहीं मिलेगा। क्रांतिका यह संगठन पर्याप्त हो गया, उसी समय, बंगालके सैनिकोंपर चरबीसे चिकने कारतूसोंको बरतनेकी सख्ती सरकार

लाभ उठाया और उन्हें यह अवसर इसलिए मिला कि, जैसा कि मैंने सिद्ध करनेकी चेष्टा की है, सैनिकों तथा लोगोंकी कुछ श्रेणियोंका मन इस बातका विश्वास करनेको राजी बनाया गया था, कि हर बातमें उनके विदेशी स्वामियोंका दुष्ट हेतु है।"

मेडली कहता है—असलमें, चरबीसे चिकने कारतूसोंकी बात तो बहुत दिनोंसे, कई कारणोंसे, लगाये गये सुरंगोंमें जलायी दियासलाईके समान थी।"

"श्री किमरायलीने तो साफ शब्दोंमें इस मान्यताकी निंदा की कि चिकने कारतूस कभी उस विद्रोहके मूल कारण हो सकते हैं।"— चार्लस बॉल कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १, पृ ६२९

इससे एक डग आगे जाकर एक लेखक लिखता है:— यह तो संदेहके परे सिद्ध कर दिखाया है कि, कारतूसोंका डर तो बहुतेरोंके लिए एक बहाना मात्र था। जिन कारतूसोंकी टोपी दाँतसे तोडनेपर अपनी जातिको गँवानेके भयका इतना बतंगड बनाया गया था, उन्हींको, हमसे लडते समय, हमींपर वेही सिपाही खुलकर चलाते, उनमें कोई हिचकिचाहट न थी।

कर रही थी। यह माना जाता था कि इन कारतूसोंका सर्वप्रथम प्रयोग १९ वीं पलटनपर होगा। यह फरवरीका महीना था। बंगालमें छावनी डाले पलटनोंसे ३४ वीं पलटन विद्रोहको आतुर हो रही थी। यह पलटन तब बारकपुरमें थी। कलकत्तेके पास डेरा डाले अली नकी खाँने इस समूचे पलटनको क्रांतियुद्धका मंत्र पढाकर शपथबद्ध कर रखा ही था। इसी पलटणकी कुछ कंपनियाँ १९ वीं पलटनमें कुछ काल तक लायी गयी थीं। उस परस्पर संबंधसे वह पूरी १९ वीं पलटन क्रांतिके पक्षमें हो गयी थी। अंग्रेजोंको इसकी कल्पना तक न थी, जिससे उन्होंने कारतूसी प्रयोगके लिए इसी उन्नीसवीं पलटनको चुना और उसपर इस बारेमें सख्ती की। किन्तु, इस समूचे पलटनने उस आज्ञाको साफ ठुकरा दिया और शासकोंको चेतावनी दी कि यदि इस विषयमें उनपर सख्ती की जाय तो, अपनी तलवारोंसे उसका प्रतिकार करनेमें वे नहीं हिचकिचायेंगे। अंग्रेजी स्वभावके अनुसार इसपर उन्होंने 'काले आदमी'को दबाना शुरू किया; किन्तु अंग्रेजोंको तुरन्त होश आया कि यह वह पहलेका 'काला आदमी' अब नहीं रहा। यह सत्य तलवारोंकी झनझनाहटने उनके कानमें भर दिया। अंग्रेजोंको इस अपमानको चुपचाप पी लेना पडा, क्यों कि, सिपाहियोंको डरानेके लिए उनके पास गोरी पलटनें न थीं। इस कमीको पूरी करनेके लिए, मार्च महीनेके प्रारंभमें बरमा से एक अंग्रेजी पलटन कलकत्तेको लायी गयी। फिर, १९ वीं पलटनको तोड देनेकी आज्ञा जारी हुई। इस आज्ञाका प्रथम प्रयोग बारकपुरमें ही करनेका निश्चय हुआ।

किन्तु अपने देशबंधुओंके अपमानका यह प्रसंग खुली आंखों देख हाथ मलते बैठनेको बारकपुरकी पलटन सिद्ध न थी। और इन सैनिकोंमें मंगल पांडेकी तलवार तो अपनी म्यानमें पडी रहनेसे इनकार करने लगी। १९ वीं पलटनके समान ३४ वीं पलटन भी कंपनीसरकारकी सेनासे खारिज हो जानेको सिद्ध हो गयी थी। इसके सब स्वदेशभक्त वीर चाहते थे कि समूची पलटन् तोड दी जाय तो बहुत अच्छा हो जायगा। विचारशील और नीतिज्ञ नेताओंने सभी सहयोगियोंकी सलाह लेनेकी दृष्टिसे और एक महीना सब्र करनेका आदेश दिया। और विद्रोह का दिन निश्चित

करने को भिन्न भिन्न पल्टनों के नाम बारकपुरमें पत्र भेजे गये। किन्तु मगल पांडे का म्हगा तब तक वहाँ खत्र करवा।

मगल पांडे जन्मसे मले ही ब्राह्मण माना गया हो, पर कर्मसे क्षत्रिय था, और उसे नौजवान शूर सैनिककी हैसियत ही से उसके साथी जानते थे। समरांगणमें असीम साहसी और शूर, चरित्रसे अतीव शुद्ध तथा पापसे दूर रहनेवाले, स्वधर्मपर प्राणोंसे अधिक प्रेम करनेवाले इस तेजस्वी युवक ब्राह्मणवीर हृदयमें स्वदेशकी, स्वाधीनताकी साधना बस जानेसे उसकी सारी देह किसी विद्युत्–शक्तिसे भर गयी थी। ऐसे वीरकी तलवार क्यों कर पडी रहे? हाँ, हुतात्मा (शहीद) की तलवारें तो कभी पडी नहीं रहती। हुतात्माका दीप्तिमान् मुकुट केवल उन्हीं वीरोंके मस्तकपर विराजमान होता है, जो यश–अपयशकी पर्वाह न करते हुए अपनी प्रिय साधनाको अपने उष्ण रक्तसे नहलाते हैं। यों इस 'व्यय' की बलिके खूनमें से ही विजयकी निमल-मूर्ति साकार हो उठती है। अपने धर्मबंधुओंपर अत्याचार होगा इस खयाल ही से मंगल पांडे का हृदय व्यथित हो उठा और उसने हठ पकडा कि तुरन्त सारी पलटन विद्रोह कर दे। जब उसे पता चला कि अपने इस अनुरोधको क्रांतिदलके नेतागण नहीं मानेंगे तो वह आपेसे बाहर हो गया। तुरन्त उसने एक भरी राइफल उठाई और संचलनभूमिकी ओर यह चिल्लाते हुए दौड पडा, "भाईयो! उठो, उठो, किस सोचमें पडे हो! उठो, तुम्हें तुम्हारे धर्मकी सौगंध है। आओ, स्वाधीनताके लिए इन कमीने शत्रुओं पर टूट पडें।" सार्जन्ट मेजर ह्यूसनन जब यह सब देखा तब उसने सिपाहियोंको आज्ञा दी कि मगल पांडे को गिरफ्तार किया जाय। कोई सिपाही मगलपांडे को छूनेका साहस न कर सका हाँ, पांडेकी राइफलसे गोली छूटी और गोरे अधिकारीकी लाश भूमिपर फडकने लगी। इसी क्षण, ले. बॉम्ब वहाँ आ पहुँचा। संचलन भूमिपर पहुँचते पहुँचते पांडेकी राइफलसे और एक गोली चली और इधर लेफ्टनट साहब अपने घोडेके साथ भूमिपर गिर पडे। मगल पांडे अपनी रायफल फिरसे भर रहा था, इतनेमें यह अफसर सँभलकर उठा और अपनी पिस्तौल मगल पांडे पर तानी। पांडेने इसकी जरा भी चिंता न करते हुए अपनी तलवार उठाई

और गोरेपर झपटा । ॲव्हंने गोली चलायी, पर निशाना चूक गया, तब उसने भी तलवार सँवारी किन्तु इतनेमे पाडेने ध्यानसे वार किया और लेफ्टनट साहब धराशायी हो गये। फिर और एक गोरा पाडेपर झपटा, त्यों ही एक सैनिकने अपनी बदूककी नली उसके सिरमे दे मारी। "खबरदार, पाडे के पास कोई न जान पावे", सभी सैनिक एक साथ चिल्ला उठे, तुरन्त कर्नल व्हीलरने मगल पाडेको गिरफ्तार करने को कहा। फिर सिपाही चिल्लाये, "इस परम पवित्र वीर का बाल भी बाँका न होने देगे" अंग्रेजी खूनका बहाव और सैनिकों की विद्रोह-वृत्ति देख कर्नल व्हीलर वहाँसे हट गया और सेनापतिके निवास की ओर दौड पडा। इधर खूनसे रगे अपने हाथो को ऊँचा कर मगल पाडेने पुकारा —"भाइयो! उठो! उठो!" सेनापति हीअर्सने जब यह सुना तो गोरे सैनिकों को साथ ले वह पाडे की ओर बढा 'अब मै फिरगी के हाथ पड जाऊँगा, इससे मौत हजार दरजे अच्छी है' इस विचारसे बेहोश होकर मगल पाडेने अपनी राइफल अपनी छातीपर दागी। घायल होकर वह भूमिपर गिर पडा। उसे उठाकर रुग्णालयमे पहुँचाया गया, अग्रेज अफसर भी इस शूर सैनिककी बहादुरीसे हैरान होते हुए अपने स्थानों को लौट पडे। यह घटना २९ मार्च १८५७ को हुई।

आगे चलकर सैनिक न्यायाध्यक्षोंके समक्ष मगल पाडेका मुकदमा चला। तहकिकातमे उसे डॉटा गया कि उसके साथी षडयत्रकारियोंका नाम वह बता दे। किन्तु उस धीर युवकने किसीका नाम देनेसे इनकार कर दिया। साथ यह भी कहा, कि उसने जिन गोरोंको मारा था उनसे किसी तरह व्यक्तिगत कोई द्वेष न था। यदि मगल पाडेने अवसर पाकर अपने व्यक्तिगत कीने का प्रतिशोध लेनेके लिए गोरोंको मारा होता तो उसका नाम शहीदोंकी टोलीमे नहीं, क्रूर हत्यारोंमें लिखा जाता। किन्तु मगल पाडेका यह काम एक ऊँची और उदात्त साधनाकी लगन की प्रेरणासे हुआ था। गीताके उपदेशपर— लाभ अलाभ, जय पराजयकी चिंता न करते हुए लडो,—चलते हुए स्वधर्म और स्वराज्यकी रक्षाके हेतु उसकी तलवार उठी थी। स्वधर्म और स्वराज्य-पर होनेवाले अत्याचारोंको खुली ऑखों देखनेकी अपेक्षा मौत गले लगाना अच्छा है इसी निश्चयसे वह बाहर निकला था। उसके इस साहस-

पूर्ण कामकी तरहमें इनकारी उसकी देशभक्ति तथा धीरता तो, नितांत सराहनीय है। मंगल पांडेको फांसीकी सजा दी गयी। ८ अप्रैलका दिन मुकरर हुआ। हुतात्मा के मनमें नाट किस किस स्वर्गिका भाषा होता हो, इसके मनम तो परन्तु उनके नामहीं स उँच भाव उस हने है, तो फिर जल्लादसरा गर्भ स्थानके लिए उत्सुक उस हुतात्माका अपने सामने जीता मागता स्वर्ग देख उसपर असीम श्रद्धा रखनवाले जनोंपर उसकी कितनी गहरी छाप पड़ती होगी? इसमें क्या आश्चर्य, कि मंगलपांडेके दर्शन किये लोगोंको हुए उनके उसके मार्गमें दिव्य प्रेम तथा भक्तिभाव का अनुभव हुआ होगा। समूचे बारकपूरमें मंगल पांडेको फांसी लगानेवाला एक भी जल्लाद न मिला। आखिर उस दिन फांसी करने के लिए कलकत्तेसे चार जल्लाद बुलवाये गये। दिनांक (तारीख) ८ अप्रैल को सवेरे ही सैनिकी संरक्षणमें साथ फांसी के तख्तेपर पहुंचाया गया। वह वहीं जानेसे वध-स्तंभ की सीढ़ियां चढ़ रहा। जब वह निडर निडर कर कह रहा था कि " अपने सहयोगी षड्यंत्रकारियोंके नाम इस मुंहसे कभी नहीं निकल सकते " तभी उसके गलेपर फांसीका फंदा लगाया गया और मंगल पांडेकी दिव्य आत्मा अपने अचेतन कलेवर को वहीं छोड़कर स्वर्ग सिधारी ।।

क्रांतियुद्धकी पहली मिठास यहीं हुई और इस तरह उसकी पहली बलि होनेका सम्मान मंगल पांडेको प्राप्त हुआ। मंगल पांडे ! जिस हुतात्माने ऐसे क्रांतिके बलिदानकी परंपरा पैदा करनेवाला होता है, उसके नामकी अमर स्मृति हमारे अंत:करणमें सदा सुरक्षित होनी चाहिये। गत तीन वर्षोंसे अधिक समय बहाये हुए स्वातंत्र्यके बीजको मंगलपांडेके उष्ण रक्तकी सिंचाई पहलेपहल प्राप्त हुई। जब इस बीजका वृक्ष लहलहायेगा तब कहीं इस महान धैर्यशील वीर, जिसने इस सबसे प्रथम सींचा, को भूला न जाये।

हाँ, मंगल पांडे स्वर्ग सिधारा किन्तु उसकी प्रेरणा तो भारतभरमें फैल गई और जिस सिद्धान्तके लिए वह लड़ा वह अमर हो गया। क्रांतिके लिये उसने अपना रक्त बहाया साथ उसने अपना नाम भी उसपर

अंकित कर दिया। स्वधर्म और स्वराज्यके लिए लडे गये १८५७ के युद्धके सभी क्रांतिकारियोंको शत्रुओं तथा मित्रोंने 'पांडे' नाम दिया।* प्रत्येक माता अपने बालकको, गर्वके साथ, इस हुतात्माकी कीर्तिगाथा रसपूर्वक समझा दे।

* देखो स. २०.

अध्याय २ रा

मेरठ

मंगल पांडेके लहूसे सींचा हुआ स्वात्मार्पणका बीज अंकुरित होनेके लिए बहुत देर तक रुकना न पड़ा। ३४ वीं पल्टनके सूबेदारको इस लिए दोषी ठहराया गया कि वह रातमें क्रांतिकी गुप्त बैठकें बुलाता है, और उसे कत्ल कर दिया गया। और जब १९ वीं और ३४ वीं पल्टनें विद्रोहकी गुप्त योजनाएँ कर रही थीं इसका ऐसा प्रमाण मिला तब उनके सैनिकोंका निःशस्त्र कर भगा दिया गया। सरकारके मनसे तो यह 'दण्ड' दिया गया था किन्तु उन सिपाहियोंने इसे अपना सम्मान माना। उस दिन गोरी पल्टनोंको तैयार रखा गया था। अंग्रेज सेनाधिकारी मानते थे कि यह ही अपनी मूर्खतापर ये सैनिक पछताएँगे कि व्यर्थमें बेघर होना पड़ा। किन्तु उन हजारों सैनिकोंने किसी घिनौनी और अछूत वस्तुके समान अपने हथियारोंको आनंदसे डाल दिया और गुलामीकी जंजीरोंको तोड़नेका सुख पाया। उन्होंने अपनी वर्दियोंको खींच–फाड़कर निकाला, जूतोंको फेंक दिया और, मानो, दासताका पाप धो डालनेके लिए पासकी नदीमें नहाने दौड़े। उस समयकी प्रथाके अनुसार सिपाहियोंको अपनी टोपियाँ अपने पैसेसे खर्च कर खरीदनी पड़ती थीं, इससे कंपनी सरकारने टोपियाँ उनके पास रहने दीं किन्तु पापसे मुक्त होनेके लिए नदीमें नहानेके पश्चात् इस पराधीनताके चिन्हको सिर पर चढ़ानेको वे कहाँ राजी थे! छि! ऐसा निंदनीय काम करनेकी किसकी कामना होगी? दूसरेकी टोपियाँ पहनकर अकड़नेके दिन अब फिरसे इस

भारत न आएँगे! तो फिर फेंक दो उन गुलामीके चिन्होंको! हजारों टोपियाँ आकाशमें उड़ीं किन्तु गुरुत्वाकर्षणके अटल नियमसे वे फिर भारतभूमिपर ही गिर पड़ीं! अरे, हिंदमाता फिरसे अपवित्र हो गयीं! सैनिको दौड़ो, जल्दी करो और अंग्रेज अधिकारियोंके समक्ष इन दूसरे दास्यचिन्होंको फाड़ो, तोड़ो, मिट्टीमें पटककर पाँवतले रौंदो! सैंकड़ो सिपाही अपवित्र टोपियोंको पैरोंतले कुचलने लगे। यह तो प्रत्यक्षरूपसे सरकारी सत्ताका अपमान था। सिपाहियोंका यह टोपियोंपर नाचना देख, क्रोध तथा आश्चर्यसे अंग्रेज अधिकारी हैरान हो गये। *

मंगलपांडेके खूनमें बंगालहीमें नहीं, दूसरे छोरपर अंबालेमें भी क्रांतिकी तीव्र लहर पैदा हुई। गोरोंकी प्रमुख छावनी अंबालेही में थी और सेनापति ॲन्सन उस समय वहीं था। अंबालेके सैनिकोंने एक नयी तरकीब सोची थी, कि जो भी अफसर उनके विरुद्ध हो उसका घरही जला दिया जाय। फिर क्या था? हर रातमें देशद्रोही तथा उपद्रवी सेनाधिकारियोंके घरोंमें आगका अवांछित आगमन होता। यह आग सुलगानेका काम इतनी गुप्ततासे और झटपट होता, मानो, अग्निदेवता स्वयं इस गुप्त संगठनका सदस्य बने हों। आग लगनेकी तो धूम मच गयी, और हजारों रुपयोंका इनाम, 'आग लगानेवाले बदमाशको पकड़ा देनेके लिए,' सरकारसे घोषित होनेपर भी, एक भी क्रांतिकारीने मुखबिर बननेका पाप न किया। अन्तमें सेनापति ॲन्सनने गवर्नर जनरलको लिखा.—यह तो एक पहेलीसी बन गयी है, कि आग कैसी लगती है इसका पता नहीं चलता। हर एक जन आँखोंमें रात काटता है, फिर भी इन उपद्रवोंके जनकको जानना पूरेपूर असम्भव हो गया है।' अप्रैलके अंतमें फिर उसने लिखा, "मुझे भी यह बड़ा अजीब मालूम होता है कि अंबालेकी आगोंका मूल हमें नहीं मिल रहा है। किन्तु एक बात स्पष्ट होती है, कि उनपर हुए अत्याचारोंका बदला लेनेके लिए जिन्होंने इस भयंकर तरीकेका अवलंबन किया है, उन 'दुष्टों'में भी कितना अभेद्य संगठन है और यदि कोई भेदिया बन जाय तो उसे मिलनेवाले भयंकर दण्डका डर, लोगोंके

* रेड पॅम्फ्लेट, खण्ड १, पृ ३४

मनको कैसे दबोच बैठा है!" अंग्रेजी शासनका यह तो भारतमें भेदियोंकी हस्ती ही है। और इसीसे, अंबालेमें एक भी विश्वासघाती न मिला तो सेनापति ॲन्सनके हाथ पाँव फूल गये। मनहीमन इन सैनिकोंके गुप्त संगठनपर आश्चर्य करते हुए उनका बदला लेनेकी उधेड़बुनमें वह व्यस्त रहा।

इस तरह, यह अग्निकाण्ड भारतमें स्थान स्थानपर चालू हो जानेके संवाद आने लगे। हाँ, अंतिम अग्निप्रलयकी दाव भड़कनेके पहले इस तरह इन चिनगारियोंका इधर उधर उड़ना क्रमप्राप्तही था। नाना साहबके लखनऊ आनेसे कुछ ऊधम मच गया ही था। यहाँ भी भेदियों तथा विद्रोही गोरोंके घर आगके मुखमें जा रहे थे। जिन्होंने समूचा देश पराधीनताकी शृंखलासे जकड़ लिया था, उन अंग्रेजोंको छटक जानेका किंचित् भी अवसर न देकर यहीं ठंडे कर दिया जाय, इस उद्देशसे भारत भरमें, एक ही साथ दावानलको भड़कानेके लिए ३१ मईका दिन निश्चित हुआ था। लखनऊकी गुप्त-सभाने क्रांतिदलके कार्यक्रमको यद्यपि अनुमति दी थी, फिर भी वहाँके सैनिक अपने उत्साहको कहाँतक रोके रखते? तिसपर भी गुप्त बैठकोंमें होनेवाले जोशीले भाषण सुनकर और भिन्न भिन्न स्थानपर होनेवाले आगके उपद्रवोंके संवाद सुनकर उनको और ही जोश आ जाता! ३ मईकी बात है, भड़कीले चार सिपाही लेफ्टनंट मेर्कॉमके बंगलेमें घुस गये और कहा, 'देखो, तुम्हारे साथ हमारा व्यक्तिगत कोई झगड़ा नहीं है किन्तु चूंकि तुम फिरंगी हो, तुम्हारा खात्मा होगा" * जमदूत जैसे विकराल सैनिकोंको देख लेफ्टनंट मेकॉमकी घिग्घी बँध गयी और वह गिड़गिड़ाकर कहने लगा "तुम्हारी इच्छाही हो तो तुम मुझे एक क्षणमें खतम कर सकते हो। किन्तु, भाई, मुझ जैसे मामूली आदमीको मारकर तुम्हें क्या मिलेगा? मैं मारा जाऊँगा तो और कोई मेरी जगहपर तैनात होगा। मतलब, दोष मुझ अकेलेका नहीं, शासनपद्धतिका है, तो फिर मुझपर दया क्यों नहीं करते?"। उसके इस तरह कहनेसे सिपाहियोंका क्रोध

* चार्ल्स बॉल कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १, पृ ५२

कुछ कम हो गया, उन्हे वह बात जँच गयी कि 'अपनी साधना परायी अंग्रेजी राज्यसत्ताको जडमूलसे उखाड फेंकना है; अपने नेताओंके इस उपदेशका उन्हें स्मरण हो आया और वे लौट गये। किन्तु यह बात सेनाधिकारियोंतक पहुँच गयी और सर हेन्री लॉरेन्सने चालबाजीसे सारी रेजिमेन्टको निहत्था कर दिया।

किन्तु मेरठमें कुछ दूसरे रूपमें एक सनसनीदार आँधी उठी थी! सिपाही सचमुच काडतूसी मामलेसे चिढते हैं या नहीं इसे आजमानेके लिए अंग्रेजोंने एक नई तरकीब ढूढ निकाली और उसके अनुसार ६ मईको एक घुडदलके सभी सैनिकोंको काडतूस अनिवार्य करनेका प्रयोग करनेकी ठानी। किन्तु नब्बेमेंसे केवल पाँच सैनिक इन काडतूसोंको छूने-पर राजी हो गये। फिर उन्हें और एक बार काडतूस उठानेका आदेश दिया गया, तब तो सभीने इनकार कर दिया और अपने डेरेको लौट गये। मुख्य सेनापतिको सवाद सुनाया गया। उसकी आज्ञासे सभी सिपा-हियोंको सैनिक न्यायालयके सामने पेश किया गया और पचासी सैनिकोंको आठसे दस साल तककी कडी सजा दी गयी।

यह दिल दहलानेवाला प्रसग ९ मई के दिन हुआ। इन पचासी सैनिकों को, गोरे पैदल सिपाही तथा तोपखाने के बीच खडा किया गया था। हिंदी सिपाहियों को यह दृश्य देखनेको उपस्थित रहने की आज्ञा दी गयी थी। पहले इन पचासियोंके गणवेश (वर्दी) उतारने की गोरों को आज्ञा हुई। उन्होंने गणवेशों को चीर फाडकर उतारा, जिसमें दण्डित सिपाहियोंके हाथ खींचे गये, फिर सबको हथकडियाँ पहनायी गयीं। जिन हाथोंको अबतक शत्रुओंका कलेजा काटने के उपयुक्त तलवारें शोभा देती थीं, उन्हीं हाथोंको अब भारी बेडियोंसे बदी बनाया। इस दृश्य को देखकर उपस्थित सब सिपाही चिढ गये, किन्तु कुछ दूर तोपखानेको सिद्ध देखकर अपनी तलवारोंको उनके स्थानपर ही दबा रखा। फिर इन पचासी सैनिकों को दस दस सालकी कडी सजा होनेकी आज्ञा सुनायी गयी, उन धर्मवीरोंको भारी बेडियो के बोझसे झुकाते हुए बदीगृहको दौडाया गया। भविष्यत् कालही इस बातको खोलेगा, कि वहाँ उपस्थित देशभक्त सैनि-कोंने अपने धर्मवीर भाइयोंको क्या क्या सैनें कीं थीं। इन इशारोंसे

मंत्रियोंका उत्साह दुगना हो गया। उनकी सैनासे ऐसा ही कुछ मतलब निकला होगा कि " जिस विदेशी गुलामीने गौ और सुअर की चरबीसे चिकने कारतूसों को छूनेसे इनकार करनेपर दस दस सालके सभम और उग्र दण्डको पाना है, इस गुलामी का पूरी तरह निःपात करेंगे, और केवल तुम्हारी ही नहीं, गत सौ वर्ष प्यारी मातृभूमिके पैरोंमें जकडी हुई पराधीनता की भृखलाओं को भी हम चकनाचूर कर देंगे। "

हाँ तो, यह सब प्रसंग सबेरे हुआ था। अब सैनिकों को अपने मनपर काबू रखना असम्भव हो गया क्यों कि विदेशी शासकोंने इनके समक्ष केवल इस लिए उनके देशबंधुओंको कठोर दण्ड दिया कि उन्होंने मात्र अपनी स्वधर्म-रक्षाके हेतु आत्माभिमान प्रकट किया था। उस अपमान और लज्जासे लज्जित होकर मन ही मन क्रोधसे जलते हुए सैनिक अपने बारकोंमें लौट आये। जब योंही वे बाजारसे गुजर रहे थे तब गाँवकी स्त्रियाँ उन्हें फटकारती रहीं " देखो तो! उनके भाई यहाँ जेलमें सड रहे हैं और ये मक्खियोंका शिकार करने योंही रस्ता रहे हैं! थू थू ऐसे जीवन पर! व्यर्थ तुमने अपनी माँ को कष्ट दिये! " *
पहलेही उनका मन दुखी था अपमानसे उनका अंतर जल रहा था अब मार्गमें स्त्रियोंसे पत्नी इस मर्मभेदी फटकारसे वे चुप कैसे बैठ सकते थे! उस रातको सैनिक-शिबिरमें जगह जगह अनगिनत गुप्त बैठकें हुई। ३१मई तक ठहरना अब दूभर हो गया। जब उनके साथी जेलमें सडते हों तब क्या, वे इधर हाथपर हाथ धरे बैठे रहें! जब गाँवके बालक और औरतें 'ये हैं देश-द्रोही' कह कर उँगली उठाती हों, तब वे अन्य स्थानके सैनिकोंके विद्रोह करने तक कैसे रुक रहें! ३१ मई तो तीन सप्ताह दूर था, फिर क्या, सब तक फिरंगियोंके झण्डेतले वे खडे हो जायें! नहीं, नहीं! कल तो इतवारही है। तब कलका सूरज अस्ताचलको पहुँच नेके पहले देशभक्त मंत्रियोंकी बेडियाँ टूटनी चाहिए और साथ भारत माताकी पराधीनताकी बेडियाँ भी चकनाचूर कर, स्वातंत्र्यका झण्डा फहराना ही चाहिए, इस निश्चयके अनुसार, इस संदेशके साथ कि, " हम

---

* जे सी विल्सन

११ या १२ मईको वहां पहुँच जाते हैं, सब कुछ मिट गये", तुरन्त दिल्लीको एक हलकारा रवाना हुआ। *

निदान १० मईके रविवार के सूरजकी पहली किरणे मेरठपर पड़ीं। १८५७ की इस सिद्धताकी अंग्रेजोंको बहुत कम खबर थी, मेरठके सिपाहियोंकी गुप्तमण्डलियोंकी बैठकों की तो उनके कानोंतक भी खबर न थी, अन्य स्थानोंके सैनिकोंसे उनका जो आदानप्रदान होता था उसके विषयमें तो कुछ भी मालूम न था। इतवारको सैनिक उठे और प्रतिदिनका अपना काम करने लगे। घोड़ा–गाड़ियाँ, गरमीसे बचाव के लिए ठंडी चीजोंका उपयोग, सुगंधित फूल, सैर, गाना बजाना सब कुछ ठीक रोज की तरह मजेसे चल रहा था। कुछ थोड़े अंग्रेजोंके घरके नौकर एकाएक काम छोड़कर चले गये इसपर आश्चर्य करनेसे अधिक कुछ न किया गया। इधर सिपाहियोंकी बैठकोंमें, सामूहिक हत्याकाण्ड हो या न हो, इस विषयपर बहस मची हुई थी। २० वीं रेजिमेंट आग्रहके साथ कहती थी कि, "जब गोरे गिरजाघरमें पहुँच जाय तभी उठना चाहिये और हर हर महादेव का नारा लगाते हुए मुलकी और सैनिक अंग्रेजोंको, उनके परिवारके साथ, कत्ल करते हुए दिल्लीको आगे चला जाय।" बहसके अन्तमें यही प्रस्ताव सर्वसम्मत हुआ। गिरजाघरके घंटोंकी घनघनाहटके सुनतेही अंग्रेज अपने बालबच्चोंके साथ गिरजाघरको चल पड़े। इधर इस धूमधाममें मेरठ तथा आसपासके देहातोंसे हजारों लोग अपने पुराने शस्त्रोंको लेकर जमा हो रहे थे। देशकार्य के लिए मेरठ के सभी जन सिद्ध हुए, फिरभी अंग्रेजोंके कानोंपर जूँ तक न रेंगी थी। शामको पाँच बजे प्रार्थनाके बुलावेका घंटा घनघनाने लगा। हाँ, अपने पापोंका हिसाब देनेको करतार के सामने पहुँचने के पहले शायद अंग्रेजोंकी यह आखरी प्रार्थना थी! किन्तु इधर सैनिकोंके शिविरमें 'मारो फिरंगी को' के भीषण नारोंने वातावरण को भर दिया था।

सबसे पहले सैंकड़ों सवार देशभक्त धर्मवीरोंको मुक्त करनेके लिए

---

* रेड पॅम्फ्लेट

अपने भाइयोंको बंदीगृहकी ओर दौड़ा रहे थे। बंदीगृहके बंदीपाल भी क्रांतिकारियोंके साथी थे। इशारेका नारा, 'मारो फिरंगीको' सुनतेही जेलोंके फाटक धड़ाधड़ खुले और बंदीपाल अपने देशबंधुओंके साथ होकर क्रांतिदलमें मिल गया। क्षणभरमें कारागारकी दिवारोंकी ईंटसे ईंट बजायी गयीं। उस अकथनीय दृश्यकी कल्पना भी ठीकसे नहीं होती, जब ये मुक्त बंदी अपने मुक्तिदाता देशभक्तोंके गले लिपट गये होंगे। गगनभेदी गर्जनाओंको मुखर करते हुए, उस घिनौने बंदिगृहको पीछे छोड़, ये सब वीर गिरजाघरकी ओर घोड़े फेंकते हुए चले। किन्तु तब तक एक पैदल पलटन विद्रोह प्रकट कर चुकी थी। ११ वीं पलटनके कर्नल फिनिसने वहाँ आकर सर्पके समान अकड़कर डाँट डपट देना शुरू कर दिया। किन्तु सिपाही उसपर बाघ की तरह झपटे। २० वीं पलटनके एक सैनिकने अपनी पिस्तौलसे ठीक निशाना मारा और भाड़ेके साथ सवारको भूमिपर लिटा दिया। क्या पैदल सेना, क्या तोपखाना, क्या हिंदू, क्या मुसलमान सभी गोरोंका गला घोंटनेका तरस रहे थे। मेरठके बाजारमें यह संवाद पहुँचा और वहाँका वातावरण एकदम भड़क उठा और जहाँ भी जिसे कोई गोरा मिला उसका काम तमाम कर दिया गया। बाजारके लोगोंने तलवार, भाला, लाठी, चप्पू जो भी हाथ लगा उठा लिया और मार्ग मार्गमें अंग्रेजोंका पीछा करना शुरू कर दिया। अंग्रेजोंके बंगलों, कार्यालयों, सार्वजनीन इमारतों, होटलों में आग लगायी गयी। मेरठका आकाश भयावना और विचित्र दीख पड़ता था। धुँएके स्तंभों और आगकी भयानक लपटोंसे वातावरण व्याप्त होकर सहस्र सहस्र कंठोंके पुकारों और विशेषतः 'मारो फिरंगीको' की गर्जनासे सारी दिशाएँ गूँज उठीं। विद्रोह शुरू होते ही, जैसा कि निश्चय था, दिल्लीसे संबंधित तार काट दिये गये और रेल की पूरी तरह मोर्चाबंदी की गयी। अँधेरी रात होनेसे जो अंग्रेज बच गये थे वे अब अपना जी बचाने की सोच रहे थे। कुछ तो अस्तबलमें छिप गये, कुछ एक रातभर पेड़ोंके नीचे पड़े रहे, कुछ अपने घरके कोठेपर छिप गये। कुछ अंग्रेज खड्डु या खाईमें छिपे, कुछ एकने किसानोंका स्वांग बना लिया, कुछ तो अपने खानसामों के चरणोंमें लोटकर शरण माँगने लगे। अँधेरा होतेही सैनिक दिल्लीकी दिशामें चल पड़े, तो गौंवम बदला लेनेका

कार्य पूरा करने का दायित्व मेरठके नगरवासियोंने अपने सिर ले लिया। अंग्रेजोंका बदला लेनेकी हवस इतनी पराकाष्ठापर पहुँच गयी थी, कि जब उनके कुछ पत्थर के बने मकान जलाये न जा सके तो उनको ढहाकर चकनाचूर कर दिया गया। कमिशनर ग्रेटहेडका बंगला भी सुलगाया गया। कहते हैं, कि फिर भी वह छिप रहा था। तब मेरठवालोंने सशस्त्र होकर उसके बंगलेको घेर लिया। तब वह अपने बावर्ची की शरण में गया और अपने तथा अपने परिवारके प्राण बचानेके लिए गिडगिडाने लगा। निदान, बटलरने लोगोंको भुलवा देकर दूर हटा दिया और उस आगसे ढहते हुए बंगलेसे कमिशनर भाग खडा हुआ। भीडने श्रीमती चेम्बर्सको बंगलेके बाहर खींच लाकर चाकूसे भोंक दिया। कॅप्टन क्रेगीने अपनी औरत तथा बच्चोंको घुडसवारोंकी वर्दी पहनाकर, उनका रंग नजर न आये उस तरह, एक टूटे मंदिरमें छिपा रखा। डॉ. ख्रिस्ती और पशुवैद्य डॉ. फिलिप्स पर हमलाकर उन्हें कत्ल कर दिया गया। कॅप्टन टेलर, कॅप्टन मॅक्डोनाल्ड और ले. हेंडरसन का डटकर पीछा करके उनका काम तमाम कर दिया। कई स्त्रियाँ और बच्चे जलते घरोंमें अग्निमें जल मरे। ज्यों ज्यों अंग्रेजी खूनकी आहुति पडने लगी त्यों त्यों क्रांतिकारियोंका आवेश और उग्र बढने लगा। रास्तेसे गुजरनेवाले भी गोरोंकी लाशको लाथ मारकर उनका अपमान करने लगे। शायद किसीको दयासे अंग्रेज़ोंपर तरस आ जाय तो हजारों लोग वहाँ दौड आते और चिल्ला उठते "मारो फिरंगीको!" फिर वहाँ उपस्थित किसी सैनिककी कलाईके बेडीके चिन्ह बताकर वे चिल्लाते, "इसका बदला अवश्य लिया जाय।" बस, फिर दयाको कोई अवसर न मिलता और तलवारें चमक उठती!

असलमें, क्रांतिके उत्थानकी दृष्टिसे मेरठका क्रम सबके अन्त में होना चाहिये था। क्यों कि केवल दो पलटनें पैदलसेना और एक पलटन घुडसवार; बस, इतनीही हिंदी सेना थी, जहाँ एक पूरी रायफल पलटन तथा गोरे ड्रगूनोंकी एक पूरी पलटन वहाँ मौजूद थी। साथमें पूरा तोफखाना अंग्रेजोंके वशमें था। इस दशामें सिपाहियों को जश मिलना दूभर था। इस लिए विद्रोहके साथ बदला लेनेका काम मेरठकी जनतापर

पर छोड़ दिये सैनिक दिल्लीको चलते बने उनका मार्गहीमें रोककर भून डालना बिल्कुल सहज था। किन्तु वहाके मुल्की तथा सैनिक अधिकारियोंमें फैली हुई घबराहट, अनुशासन तथा संपर्ककी सुरक्षा न होना आदि बातोंके लिए अंग्रेज इतिहासकारोंको भी शरमसे अपनी गर्दन झुकानी पड़ी। हिंदी घुड़दलका प्रमुख कर्नल स्मिथ, पता लगनेपर कि उसके मातहत सवारोंने विद्रोह किया है, अपने प्राणोंको बचानेके लिए भाग खड़ा हुआ। तोपखानेका सेनाध्यक्ष तोपोंको जमा कर उन्हें मार्चपर खींच लानेके विचारमें था तब तो विद्रोही सैनिक कबके दिल्लीके मार्गको तय कर रहे थे। फिरभी, सारी अंग्रेज सेना उनका पीछा करनेके बदले रातभर हाथपर हाथ धरे बैठी रही थी।

सत्य यह है कि मेरठमें अचानक क्रांतिकी चिनगारी पड़ कर वह भभक उठी सो अंग्रेजोंके छक्के छूट गये और वे बावले बने दूसरे दिन तक इस अनोखे और अचानक विद्रोहके बारेमें वे कुछ तय न कर सके। इधर सैनिकोंका कार्यक्रम पहलेसे निश्चित था। वह यों था —पहले अचानक हमला किया जाय बंदिखानोंको मुक्त कर अंग्रेजोंका कत्ल किया जाय फिर उस अचानक विद्रोहसे अंग्रेज घबड़ाये हुए हों, तब मेरठके लोग सब ओरसे लूटमार करते और आग लगाते अंग्रेजोंको यह पता न लगने दें कि असलमें विद्रोहका केन्द्र कहाँ है। इससे उनकी अक्ल काम न करेगी, वे अपनी जानकी खैर की टोहमें चूर होंगे, सभी सैनिक दिल्लीके रास्ते चल पड़ें। यह कार्यक्रम बड़े कौशलसे बनाया गया था। पहले, भारतके हृदय दिल्लीपर काबूकर तुरन्त इस सैनिकी विद्रोहको राष्ट्रीय युद्धका रूप दे देना और अंग्रेजोंकी इज्जत तथा रुआबको धूलमें मिला देना—यह था क्रांतिकारी नेताओंका दाँव बड़ा लाजवाब था, इसमें क्या संदेह? चतुरतासे यह कार्यक्रम बनाया गया था और ठीक उसीके अनुसार पूरा भी हुआ। अंग्रेजोंको पूरा हाल मालूम होनेके पहले, तार काटकर, मार्गोंपर मोर्चाबंदी कायम कर, और बंदियोंको मुक्त कर अत्याचारी अंग्रेज शासकोंके खूनसे भूमि रंगाते हुए ये दो हजार क्रांतिवीर सिपाही अंग्रेजी खूनसे रंगे अपने तलवारोंको हवामें फेंककर 'चलो दिल्ली, चलो दिल्ली,' के साथ नारे लगाते हुए अपने मार्गको तय कर रहे थे।

अध्याय ३ रा

दिल्ली

अप्रैलके अंतमें श्रीमत नानासाहब पेशवा दिल्लीको भेंट देकर आये थे। और तबसे हर एक जन सर्व सम्मतिसे निश्चित ३१ मई इतवार की ओर आँख लगाये बैठा था। ठीक ३१ मईको यदि समूचा हिंदुस्थान उठता तो अंग्रेजी शासनके विनाश तथा भारतीय विजयी स्वाधीनताका सस्मरणीय प्रसग इतिहासमें अंकित करनेके लिए १८५७ के बाद बहुत समय न जाता! किन्तु मेरठके अकालिक विद्रोहने क्रांतिकारियोंकी अपेक्षा अंग्रेजोंको अधिक सुविधा कर दी।* मेरठके बाजारमें तेजस्वी

---

* (स. २१) इतनी बात पक्की है कि, यदि समूचे भारतमें एकाएक विद्रोह फूट पडता और अंग्रेज बेखबर होते, तो हमारे (गोरे) बहुत ही थोडे जन इस वेगवान् सहारसे बच जाते। फिर तो, ब्रिटिश राष्ट्रको फिरसे हिंदुस्थानको जीतना बडा कठिण कार्य हो जाता अथवा तो हमे अपने पूरवी साम्राज्यके लिए सदाही काला दाग मत्थे लगा लेना पडता।— मॅलेसन खण्ड ५.

"मेरठके भयकर विद्रोहने हमें एक बडा लाभ अवश्य पहुँचाया। वह यह कि समूचे भारतके सैनिकोंके विद्रोहका निश्चित कार्यक्रम १ मईको था, जहाँ इस कुअवसरके उत्थानने हमें समयपर जागरित या" व्हाइट का इतिहास, पृ. १७

देशप्रेमी स्त्रियोंने अपने मर्ममेदी शब्दोंसे सैनिकोंको छेड़ा और उन्हें अपने सैनिक बंधुओंको छुड़ानेका उकसाया, जिससे एक नूतन, गर्वपूर्ण पर्व नाको इतिहासमें स्थान मिला, यह ठीक है। किन्तु मरठके सैनिकोंने अपने इस अकालिक उत्थानने शत्रुको चेतावनी देकर अनजाने अपने देशबंधुओंको बड़े संकटमें फँसा लिया।* दिल्लीमें सभी सैनिक तैयार ही थे। मगर पोर्टोंकी दृतात्मताने वे भी बेचैन हो रहे थे। किन्तु बादशाह बहादुरशाह और बेगम जीनतमहल्ल बड़ी चतुरतासे सबको रोके रखा था। इसी समय मेरठकी गुप्त संस्थासे यह संदेश उनके पास पहुँचा " हम कल पहुँच रहे हैं आवश्यक प्रबंध किया जाय। " यह अनपेक्षित और अजीब संदेश दिल्लीको पहुँचते पहुँचते मेरठके दो हजार सैनिक 'चलो दिल्ली' के नारे लगाते हुए दिल्लीके मार्गको तय भी करने लगे थे। प्रत्यक्ष रात की आँखोंसे नींद गायब थी। हजारों घोड़ोंकी टापों तथा उनकी हिनहिनाहटसे तलवारों तथा संगीनोंकी खनखनाहटसे माग चलते हुए क्रांतिकारियोंके भीषण नारोंसे और उनकी मदमस्त ललकारोंसे, भला, रातकी आँखें कैसे लगतीं ? जब पौ फटी तब मेरठका तोपखाना अपना पीछा नहीं करता है यह देख कर बड़ा अचरज हुआ। सैनिकगण रातकी सब थकावटको भूल गये और रंच भी आराम न करते हुए फिरसे जोर लगाकर रास्ता तय करना जारी रखा। मेरठसे दिल्ली करीब ३२ मील है। सबेरे लगभग ८ बजे मेरठ की सेनाका एक हिस्सा परमपवित्र यमुना नदीके पास आ

* (सं २२) बाजार (मरठके) की स्त्रियोंने, वस्तुतः, हमें ११ मई १८५७ के संगठित और एक साथ होनेवाले कत्लेआमसे बचाया है। सुरंगें बिछायी गयी थीं, सिलसिला बांध दिया गया था तथा और तीन सप्ताह तक धीमे जलनेवाली दिया-सलाई जलानेका विचार नहीं था। स्त्रियोंके मुखसे बड़ी चिनगारीने उन सुरंगोंको सुलगा दिया और १० मईकी रातने उस भयंकर दृश्यका प्रारंभ देखा, जो अंग्रेजी हुकूमतके नीचे भारत आनेसे, तब तक कभी नहीं देखा गया था।—जे सी विल्सन कृत ऑफीशियल नैरेटिव

पहुँचा। शीतल वायुलहरोंसे, मानो, स्वातंत्र्य प्राप्त करने के काममें लगनसे जुटे हुए वीरोंको और बढावा देनेवाली कालिंदी को देख, सैंकडो सैनिकोंने एकसाथ " जय जमुनाजी " का नारा लगाकर जमुनाको वंदन किया। नावोंके उतराते पुलसे दिल्ली की ओर घोडे दौडने लगे। किन्तु, हां, क्या सचमुच " जमुनाजी'को इनकी पवित्र साधना का भान था? तो फिर, चलते समय उस पवित्र कार्यको जमुनाको बताकर, तथा उसका शुभाशीर्वाद लेकर आगे बढनाही अनिवार्य था। यह बात? तब खींचो उस गोरे को जो पुलपर से गुजर रहा है और हॉ. उस का खून, कालिंदी के काले पानी में, मिला दो। यही खून उसे उस कारण को समझायगा जिस कारणसे ये सिपाही इतने जोरोंसे दौडते हुए दिल्ली जा रहे है।

जनता के बनाये सम्राट बहादुरशाह

दिल्लीका इतिहासप्रसिद्ध 'कश्मीरी दरवाजा' खोला गया और क्रांतिके नारे लगाते हुए ये स्वाधीनताके सैनिक दिल्लीके अंदर प्रवेशित हुए।

मेरठका दूसरा सेनाविभाग भी कलकत्ता-दरवाजेसे दिल्लीमें प्रवेश करनेकी चेष्टा कर रहा था। पहले यह दरवाजा बन्द रहा किन्तु सैनिकोंके प्रहारसे कुछ ढीला पड़ा और धीरे धीरे खुलता गया। पूरा खुल जानेपर वहाँके *'पहरेदार' क्रांतिके नारे लगाते हुए सिपाहियोंमें जा* मिले। कलकत्ता-दरवाजेसे आये सैनिकोंने अपना रुख सबसे पहले दर्यागंजमें बसे अंग्रेजोंके बंगलोंकी ओर किया। किन्तु वे पहलेही आगसे धू धू जल रहे थे। आगकी लपटसे बचे अंग्रेज तलवारकी झपटमें आ गए। पासही विदेशी दयाभावसे पूर्ण तथा केवल अंग्रेजोंको आसरा देनेवाला एक अस्पताल था। दर्यागंजके अंग्रेजोंको आसरा देनेसे वहाँके बंगले जलकर खाक हुए यह प्रत्यक्ष देखकर भी इस अस्पतालने गोरोंको छिपनेकी जगह दी थी, इस बातपर सिपाहियोंका बिगड़ना ठीक ही था। इसीसे उन्होंने सब बातें तोड़ दीं। रुग्णालयको तहसनहस कर, मानो स्वयं महाकालही हाथमें खड्ग लिए हुए अंग्रेजोंके खूनकी प्यास बुझानेके लिए अन्यान्य रूपोंमें दिल्लीके घर घरमें घूमने लगा! हाँ, अब इस सेनाको एक झण्डेकी आवश्यकता पड़ी। किन्तु ऐसी सेनाको कपड़ेके टुकड़ेका झण्डा क्या पचेगा! जहाँ कहीं गोरेका सिर मिला उसे भालेकी नोंकपर खोंस लिया गया और फिर इन भय-सूचक *झण्डोंको उछालते हुए यह सेना बड़े वेगसे आगे बढ़ती गयी।*

दिल्लीके राजमहलमें सिपाही और नागरिक जन सभी भीड़में इकट्ठे हुए थे और उन्होंने 'बादशाहकी जय!' के नारोंसे राजमहलको भर दिया था। कमिश्नर फ्रेजर जल्दी जल्दी राजमहलमें जा रहा था। इतनेमें पास ही खड़े नबुल बेगने उसके गालमें हथियार घोंप दिया। यह सूचना पातेही फ्रेजरकी देहको कुचलते हुए सब क्रांतिवीर सीढ़ीसे ऊपर जाने लगे। फ्रेजरको रौंदते हुए सिपाही, ऊपरके मंजिलपर रहनेवाले जेनिंग्स तथा उसके परिवारके कमरेकी ओर घुसे। अंदरसे द्वार बंद करनेका प्रयत्न हुआ, तो सिपाहियोंके धमाकेसे दरवाजा टूट गया और वे अंदर घुसे। जेनिंग्स, उसकी लड़की तथा एक मेहमान तलवारके घाट

उतार दिये गये। डरसे कॉपते हुए दिल्लीके रास्तेमें भागनेवाला वह कॅप्टन डगलस कहाँ है? काटो उसे। और यह कोनेमें मुँह छिपाये बैठा कायर कलेक्टर? भेज दो उसे नर्कमें! हाँ, अब दिल्लीके राजमहलमें फिरगीके नामपर कोई न बचा था! वीरो, तुम अब थोडा आराम कर सकते हो! दिल्लीके इस पुराने राजमहलके प्रागणमें घुडदल अपना डेरा डाले और रातभर रास्तेको तय करते सैनिकोको दीवानी–ई–खास में आराम करने दो!

इस तरह, दिल्लीके राजमहल पर जनताकी सेनाने पूरी तरह दखल कर लिया। बादशाह, सम्राज्ञी जीनतमहल तथा सैनिकनेता सब मिलकर आगामी कार्यक्रमके बारेमें सलाह मशविरा करने लगे। अब ३१ मईतक ठहरना निरी मूर्खता होगी। इसलिए, परिस्थितिको समझकर बादशाहने प्रकटरूपसे क्रातिकारियो का साथ देना स्वीकार किया। इस धूमधाममें मेरठके तोपखानेके बहुतेरे विद्रोही सैनिक दिल्ली आ पहुँचे। इन्होंने राज-महलमें प्रवेशकर बादशाह तथा नूतन उदय होनेवाले स्वातन्त्र्य–सूर्यको २१ तोपे दागकर सैनिक–वदना की। क्रातिदलके नेताओंसे लम्बी चर्चा और बहस करनेके बाद जो कुछ सदेह बादशाहके मनमें था वह तोपोंकी इस गडगडाहटके साथ साफ उड गया और सम्राटपदकी सैकडो आकाक्षाएँ उसके अतस्तलमें जगमगाने लगी! अंग्रेजोंके खूनमे रगी हुई अपनी तलवारोंको हवामें फेंक कर क्रातिनेता बादशाहसे बोले "सम्राट्! मेरठके अंग्रेजोंकी करारी हार हुई है। दिल्ली तो आपके ही हाथ है और पेशावरसे कलकत्ते तक सभी सैनिक और जनता आपकी आज्ञाकी राह देख रहे है। विदेशियों की बनायी पराधीनताकी श्रृंखलाओंको तोड अपना ईश्वरप्रदत्त स्वातन्त्र्य प्राप्त करनेके लिए समूचा भारत जागरित हो उठा है। इसलिए स्वातन्त्र्यका झण्डा आप उठाइए, जिसके नीचे भारतभरके वीरवर इकट्ठा होकर लड़ेंगे। हिंदुस्थानने अब स्वातन्त्र्य–समर घोषित किया है। आप यदि हमारा नेतृत्व करे तो हम क्षणार्धमें फिरगी सेनानोंको या तो सागरतलमें डुबो देंगे अथवा गीधोंको उनके मासकी दावत देंगे।"* इस तरह हिंदु और मुसल्मान नेताओंकी सर्वसम्मत तथा उत्तेजनापूर्ण वक्तृता सुनकर,

* चार्ल्स बॉल्कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १, पृ. ७४

बादशाहको भी धीरज बँधाया। शहाजहाँ तथा अकबरकी स्मृतियोंसे उनके मनको भर दिया और यह विचार घर कर गया कि पराधीनतामें जीवित रहनेकी अपेक्षा स्वदेशको स्वतंत्र करनेके युद्धमें कट जाना ही बहतर है। बादशाहने सैनिकोंसे कहा " अपना खजाना खाली पड़ा है तुम्हें वेतन कहाँसे मिलेगा"! सिपाही तुरन्त गरज उठे " हम समस्त भारतके अंग्रेजी खजानोंको लूटकर आपके चरणोंमें धर देंगे। " * इसपर बादशाहने क्रांतिका नेतृत्व करना मान लिया, तब वहाँ उपस्थित सभी कण्ठोंसे निकली ' सम्राट की जय हो!' प्रचण्ड ध्वनिसे आकाश गूँज उठा।

राजमहलमें यह घटना हो रही थी तब बाहर नगरभरमें भयंकर धूमधाम मच रही थी। दिल्लीके सैकड़ों नागरिक हाथ लगे शस्त्रका उठाकर क्रांतिकारियोंमें मिल रहे थे और किसी अंग्रेजको खोजते हुए गली गली छान रहे थे। दोपहर बारह बजे दिल्ली बैंकको लोगोंने घेर लिया। बैंकका व्यवस्थापक बेरिस फोर्ड अपने परिवारके साथ लोगोंके प्रतिशोधकी आगमें जल गया, सब बैंक तहस–नहस हुआ। फिर जनताकी दृष्टि ' दिल्ली गैजट ' के मुद्रणालयपर पड़ी। सरकारी संवादको छापनेमें वहाँके कर्मचारी मगन थे, ज्यों ही बाहर क्रांतिके नारे सुनायी पड़े। चन्द मिनिटोंमें वहाँके ईसाई कर्मचारियोंको ईशूके पास भेज दिया गया, अक्षर (टाइप) को फेंक दिया गया, यन्त्रोंको तोड़–फोड़ दिया गया, जो भी चीज अंग्रेजोंके छूनेसे अपवित्र होनेका संदेह हुआ उसे मिट्टीमें मिला दिया गया। क्रांतिकी लपटें अब उग्र बनकर आग बढ़ी। किन्तु यह देखो उधर गिरजाघर! इधर क्रांतियुद्धकी धूम मची हो, और वही मात्र अपना शिखर आकाशमें झुकाकर तनकर खड़ा रहे! इसी गिरजाघरमें, अंग्रेजी शासन को भारतमें अमर करने के लिए, प्रार्थनाएँ की गयीं थीं। आकाशके बापके नाम, क्या कभी इस गिरजाघरके भक्तोंको भूलसे भी यह बताया गया था, कि एक प्रजाका दूसरी प्रजापर–इंग्लैंडका हिंदुस्थानपर–शासन करना सर्वथा अन्याय है, अपराध है! उलटे, इन पक्षपाती ईसाई संस्थाओंने अत्याचारी पीड़कोंको अपनी शरणमें लेकर उनके पारलौकिक कल्याणकी अपेक्षा उनके ऐहिक स्वार्थसाधन ही की अधिक चिंता की थी। इस

---

* मेटकाफ

प्रकारके ये मनमानी अड्डे अपने बीचमें टिकने दिये, इसीका बदला गौ और सुअरकी चरबीसे चुपडे कारतूसोंके रूप अदा किया जा रहा है ! तो फिर क्यों न आगे बढा जाय ? देखते क्या हो ? खींचो नीचे उस क्रूर ईसाई धर्म-चिन्हको ! गिरा दो दिवारोंपर लटकते चित्र, चकनाचूर करो उस ध्यानमंदिर तथा खिस्तीपीठको । और एकही गर्जना करो 'जय क्राति'। हर दिन गिरजा-घरमें घटा बजता है । तुमभी आज लौटते समय इन घटोंको खूब टनटनाहटसे बजाओ ! घटो, चलने दो तुम्हारी घनघन ! अजी आज इतनी देरतक यह घनघनहट होनेपर भी एकभी अंग्रेज इस ओर नहीं झाँकता, सो क्यों ? घटो ! इन 'काले' हाथोंका स्पर्श तुम्हें कहाँतक भाता है ? तुम सह नहीं सकते ? अच्छा, तो जाओ नीचे ! हमारे भाई तुमपर नाचने को खडेही हैं ! अपने स्थानसे जब एक एक घटा हडडकर नीचे गिर पडता तब उसकी घनघनाहट को सुन वह क्रातिकारियोंका जमघट विकट हास्यके फव्वारोंके साथ कानाफूसी कर रहा था 'क्या तमाशा है !'

किन्तु इधर दूसरी ओर इससे भी बढकर भीषण घटना हो रही थी। राजमहलके पासही अंग्रेजोंने गोलाबारूद का एक बहुत बडा अबार बना रखा था। इसमें युद्धके उपयुक्त अनगिनत सामग्री भर रखी थी। कमसे कम नौ लाख कारतूस, आठसे दस हजार राइफलें, बदूके, घेरेमें काम आनेवाली तोपें और धडाकेसे उडनेवाली सूरगोंकी मालिकाएँ वहाँ भरी पडी थीं। क्रातिकारियोंने इस अबारपर दखल करनेकी ठानी। किन्तु यह कोई कुल्हियामें गुड फोडनेका काम थोडे ही था ? वहाँके अंग्रेज पहरेदार चाहते तो एक दियासलाई जलाकर चाहे जितनी आक्रमक पलटनोंको एक क्षणमें खाकमें मिला सकते थे। इसीसे इस अबारपर दखल करना पहाडसे टक्कर लेना था। किन्तु क्रातिका जीना भी, बिना उसके, सुरक्षित न था। तब हजारों सैनिकोंने यह काम करनेका निश्चय किया। सम्राटके नामसे एक सदेश वहाँके मुख्याधिकारीके पास भेजा गया कि वह उस अबारको सम्राटके अधीन कर दे। ऐसे कागजी सदेशोंसे कहीं राज्य या सिंहासनका लेनदेन होता है ? लेफ्टनट विलोबीने इसका उत्तरतक देनेकी पर्वाह न की। इस अपमानसे गुस्से होकर हजारों सिपाही शस्त्रागारके तटपर चढे। अदर नौ अंग्रेज और कुछ हिंदी नौकर थे। दिल्लीके दुर्गपर सम्राटका झण्डा फहरते हुए जब उन

बेगम जीनतमहल

हिंदी लोगोंने देखा तब ये भी क्रांतिकारियोंमें मिल गये हाँ, बचे हुए जो अंग्रेज बड़ी बहादुरीके साथ जान हथलीपर रखकर लडने लगे। किन्तु सैनिकोंकी इतनी बड़ी भरमारके सामने ये मुट्ठीभर अंग्रेज खड़े नहीं रह सकते थे, यह साफ दिखायी दे रहा था। तब उन्होंने भी यह सोच रखा था कि जब शस्त्रागारको अपने हाथमें रखना असंभव हो जायगा तब उसे पूरी तरह उड़ा देंगे क्यों कि समूचा शस्त्रागार क्रांतिकारियों को सौंप देनेपर भी उनके प्राणोंकी खैर न थी। इधर सैनिकोंको भी इस बातकी पूरी कल्पना थी कि यदि अंबारको उड़ा दिया जायगा तब अनगिनत साथियों के प्राणोंकी बलि चढेगी, फिरभी सनिकोंने बारबार आक्रमण जारी रखा। उनकी सहायताके लिए दिल्लीके सकड़ों नागरिक दौड पड़े थे। इतनेमें सहसा, मानो सर्वो को जिसकी पहलेसे अपेक्षा थी, हजारों तोपें एकसाथ छूटने पर होनेवाली गड़गड़ाहटके समान एक धमाका हुआ और धुएँ और आगके स्तंभ आकाशमें चढ़ गए। उन भी अंग्रेज बहादुरोंने क्रांतिकारियोंके हाथ शस्त्रागार दे देनेसे इनकार किया और स्वयं उसमें आग लगाकर उन्होंने आत्म-बलिदान किया। उस प्रस्फोट के भयंकर धमाकेसे ~ सैनिकों तथा पासके मार्गपर खड़े १०० आदमियोंके शरीरोंकी सचमुच बोटी बोटी उड़ गयी।

हाँ, इतने भीषण रूपमें इतने लोगोंकी बलि चढाकर भी शस्त्रागार पर कब्जा करनेका यतन बिल्कुल व्यर्थ न हुआ। बारूदका एक खासा ढेर हाथ लगा, जिससे हर एकको दिनमें चार चार बर्फ आयीं। जब तक यह केन्द्र अंग्रेजोंके अधीन था तब तक छावनीके सभी हिंदी सिपाही बड़ीके अंग्रेज अफसरोंके आज्ञाकारी थे। हाँ, इन हिंदी लोगोंने अपने भाइयोंसे भिड़नेसे इनकार किया था तो भी ये अंग्रेजोंके विरुद्ध भी विद्रोही नहीं बने थे।। शामके लगभग चार बजे इस प्रचंड स्फोटसे सारा दिल्ली शहर थरा उठा और सब छावनीके सिपाही उठे और 'मारो फिरंगिको,' के नारे ललकारते हुए अंग्रेजोंपर टूट पडे। गॉर्डन, स्मिथ, रेनॉल्डी और जो भी गोरा मिला-हर एकको कत्ल कर दिया गया। एक जातीय या नागरिक राष्ट्रीय प्रतिशोधने पुरुष, स्त्रियाँ, बालक, घरबार, ईंट पत्थर, घड़ी, मेज, कुर्सी, रक्त, माँस, हाड़-मज्जा, अंग्रेजोंसे संबंधित सबकुछ

तोडफोडकर नष्टभ्रष्ट कर दिया। निदान, सम्राट्की आज्ञाने कुछ अंग्रेजोंको इस हत्याकाण्डसे बचा लिया; उन्हें राजमहलमें बंदी बनाकर रखा गया। किन्तु उन क्रूरकर्मा अंग्रेजोंके विरुद्ध जनताका क्रोध इतना भडक उठा था कि चार पांच दिन खींचातानी करनेके बाद सम्राट्ने उन पचास बंदियोंको लोगोंके हाथ सौंप देना ही उचित माना। १६ मईको इन पचास अंग्रेजोंको खुले मैदानमें ले जाया गया। हजारों नागरिक यह दृश्य देखने को जमा हुए और सभी अंग्रेजी हुकूमत तथा दुष्टता को कोसते थे। सूचना पातेही सैनिकोंने उन ५० अंग्रेजोंके सिर धडसे जुदाकर दिये। एकाध अंग्रेज तलवारसे बचनेके लिए सिर एक ओर झुकाकर दयाकी याचना करता, तब भीडसे यह चिल्लाहट होती कि, " हथकडियो का बदला "। " पराधीनता का प्रतिशोध "। " शस्त्रागार की बलि का बदला! अवश्य लिया जाय। " तब तलवार उस झुके सिर को साफ उतार देती। अंग्रेजों का हत्याकाण्ड ११ से १६ मई तक जारी रहा। इस बीच सैकडो अंग्रेज अपनी जान बचानेको दिल्लीसे भाग निकले। कुछ गोरोंने अपने मुँहपर स्याही पोत उसे काला बना लिया और काले आदमीका 'घृणित' वेश चढा लिया। कुछ गोरे जंगलोंमें भागते हुए घामकी प्रखरतासे जल मरे। कुछ एक कबीरकी साखियाँ रटकर सन्यासीके वेशमें देहातोमे गये और अपनी खैर मनायीं। किन्तु इस स्वाँगको जब देहातियोंने भाँप लिया तो उनका काम तमाम कर दिया। इतना सब होते हुए भी न किसी गाँवमे, न दिल्ली नगरमें एक भी अंग्रेज स्त्रीसे छेडछाड हुई।* यह बात अंग्रेजोंसे नियुक्त जाँच समितिने सिद्ध की है और अंग्रेज इतिहासकारोंने भी एक राय होकर मान ली है। फिर भी उस समयके ईसाई धर्मप्रचारकोंने इंग्लैंडमे झूठी अफवाहें फैलानेमे कोई कसर थोडे ही उठा रखी थी? हमें साफ कहनेमे

* स. २३ " चाहे जितनी क्रूरता तथा रक्तपात हो गया हो, बादमें जो किस्से होनेकी बात फैलायी गयी, कि स्त्रियोंसे छेड छाड हुई, उनकी आबरू लूटी गयी, मैंने जहाँ तक तहकिकात की है, इसके सच्चे होनेका कोई ठीक प्रमाण मुझे न मिला। "—ऑनरेबल सर विल्यिम मूर के. सी. एस्. आइ, हेड ऑफ दि इंटेलिजन्स ब्रँच डिपा.

कोई प्रत्यवाय नहीं है कि उपर्युक्त हत्याकाण्डके नामपर अपनी 'निजी स्मृतियाँ' इन अंग्रेज भमनारवान लिखकर फैला भी उनसे बढकर हीन, घृणित, दुष्ट और सफेद झूठका प्रचार करनेका साहस अबतक किसीने नहीं दिखाया होगा। जो राष्ट्र अपने नागरिकोंको ये गपोड मान लें, कि "अंग्रेज स्त्रियोंको दिल्लीके मार्गोंमें नंगी घुमायी गयीं उनपर खुलेमें बलात्कार किया गया उनके स्तन काटे गये और अंग्रेज कुमारी लडकियों पर भी बलात्कार हुए," मानलेनेकी छूट देता है, वह राष्ट्र सत्यका कहाँ तक आदर कर सकता है, इसकी सहजमें कल्पना कर सकते हैं। १८५७ की क्रांति इस लिए नहीं हुई कि हिंदी लोग अंग्रेज महिलाओंको चाहते थे (यों तो बाजारमें ढेर मिल जातीं) बल्कि भारतसे इन गोरोंकी हस्ती मिटानेके लिए यह क्रांति थी।।

हाँ तो, मेरठके बाजारमें गाँवकी स्त्रियोंने ताना मार कर जो बवंडर खड़ा किया था, उसने एक शतीतक हृदयमें जमे पराधीनताके विषवृक्षको एक साथ जड़मूलसे उखाड़ दिया। इन पाँच दिनोंमें क्रांतिकारियोंको जो असाधारण यश मिलता गया, उसका कारण था, पराधीनतापर कुठाराघात करनेको सब जातियाँ तथा सब प्रवृत्तिके लोग आगे आये थे। मेरठकी ओरसे लेकर दिल्लीके सम्राटतक हर एकके अंतस्तलमें स्वधर्मरक्षा तथा स्वराज्य पानेकी लगन लगी थी। इस तीव्र इच्छाको गुप्त क्रांतिकारी संस्थाओंने आवश्यक रूप दे रखा था, इसीसे पहले पाँचही दिनोंमें स्वराज्यका झण्डा हिंदुस्थानके केन्द्र—दिल्ली—में फहर सका। १६ मईको दिल्लीमें अंग्रेजी सत्ताका छोटासा भी चिन्ह नहीं रह पाया था। अंग्रेजोंके लिए द्वेष इतनी पराकाष्ठापर पहुँचा था कि यदि भूलकर किसीके मुँहसे अंग्रेजी शब्द निकल जाय तो निर्दयतासे उसे दण्ड दिया जाता। 'यूनियन जैक' की धज्जियाँ लोग मार्गमें पैरोंसे कुचलते थे, जहाँ वह स्वराज्यका विजयी ध्वज, जिससे पराधीनताके दाग उष्ण रक्तसे साफ धोये गये थे, बड़ी शानसे लहरा रहा था। स्वाधीनताका प्रेम इतना उमड आया था कि इन पाँच दिनोंमें समस्त दिल्लीनगरमें एक भी राष्ट्रघातक नराधम नहीं पाया गया। स्त्रीपुरुष, गरीब धनी, बूढे जवान, सैनिक नागरिक, मौलवी पण्डित, हिंदू मुसलमान, सबके सब स्वदेशके झण्डेके नीचे जमा होकर विदेशी

पर अपनी तलवारसे प्रखर प्रहार कर रहे थे। और इसी असाधा-
रभक्ति, स्वातंत्र्य-प्रेम और अंग्रेजोंसे तीखी द्वेषभावनासे, मेरठकी
ओंके उन शब्दोंने उस धूल चाटते सिंहासनको फिरसे ठीक स्थान-
टाया।
पॉच दिन, सचमुच, भारतीय इतिहासमें सस्मरणीय रहेंगे। क्यों
ही पाँच दिनोंमें गजनीके महमूदकी चढाईसे चले आये हिंदु–मुस्ली-
द्वेषांक्त झगडोंको, कुछ समयतक क्यों न हो, गाड दिया था। पहले
इस राष्ट्रने तब घोषणा की कि, " अबसे हिंदु और मुस्लिम आपसी
नहीं है। विजित और विजेता का उनका संबंध समाप्त हो चुका
जसे हिंदु मुसलमान भाई भाई है।" जिस भारतमाताको मुसल-
चगुलसे श्री शिवाजी महाराज, महाराणाप्रताप, छत्रसाल, प्रतापा-
गुरु गोविंदसिंग एवं महादजी शिंदेने मुक्त किया वही भारतमाता
न अपने बेटोंको आदेश देती थी कि "बच्चो! आजसे तुम भाई
और मैं तुम दोनोंकी मैय्या हूँ।"

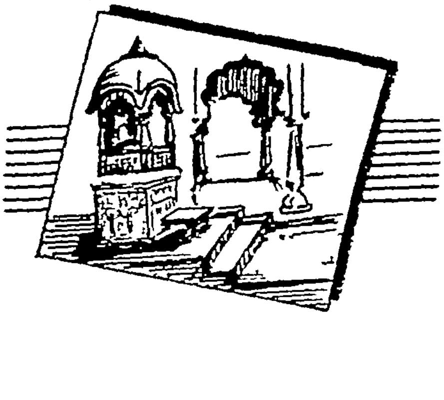

अध्याय ४ था ८

विष्कम्भ तथा पंजाब-काण्ड

दिल्लीके स्वतंत्र हो जानेका संवाद बिजली गतिसे देशभरमें फैल गया, जिससे भारतीय तथा विदेशी लोग सन्नाटेमें आ गये। अंग्रेज इस घटनाका पूरा अर्थ समझ न पाये, उनकी अकल चकरा गयी। हिंदुस्थानभरमें शान्तिका साम्राज्य बना हुआ है इस विश्वाससे लार्ड कैनिंग उधर कलकत्तेमें चैनकी नींद सो रहा था। इधर सेनापति ॲन्सन शिमलेके शीतल शैल शिखरोंपर सैर करनेकी सोच रहा था। जब कैनिंगको दिल्ली स्वतंत्र होनेका [illegible] पत्रियोंका तार आया तब उसे पढकर वह अपनी आंखोंपर विश्वास न कर पाया। अग्रभागी समान भारतीयोंको भी डर लगता था क्यों कि, दिल्लीके इस अचानक विद्रोहसे गुप्त क्रांतिकारी संगठनके सभी आयोजन व्यर्थ हो चुके थे। और दिल्लीके अचानक उत्थानसे भौंचक्का होकर अंग्रेज सैनिक हलचलोंकी दृष्टिसे जो बड़ी भूल कर बैठे थे उसे सुधारनेकी सम्भावना न थी। उलटे, अपनी भूल सुधारनेका मौका उन्हें प्राप्त हुआ था। दिल्लीके सिंहासनको सम्राट्से छीन लेना जो अब तक एक दिनमें चार बार हमला करके सहजमें बन सकता था। किन्तु पहलेसे निश्चित ३१ मईको सब स्थानोंमें एक साथ विद्रोह हुए होते, तो एकही दिनमें क्रांतिकी सफलता निश्चित थी। खैर, भलेही यह स्थान अब छोड़ना पड़ा, मेरठके अनपेक्षित विद्रोहके बावजूद भी क्रांतिकारियोंने दिल्लीपर कब्जा कर लिया, उसीसे क्रांतिको एक विशाल राष्ट्रीय रूप मिल गया, और इस असाधारण संवादसे भारतभरमें जोरकी लहर उठी थी। समस्या अब यह थी

कि इस अचानक उत्थानसे लाभ उठाया जाय, या, पहलेसे निश्चित ३१ मईतक रुका जाय ? केंद्रीय–क्रांति–कार्यालयने क्या निश्चित किया था ? हॉ, अन्य केंद्रोंमें यदि अपनी ही इच्छासे विद्रोह हो तो क्या मेरठके विद्रोहके कारण पैदा हुई गडबडीका उन्हें सामना न करना पडेगा ? ऐसे ही कुछ प्रश्नोंपर हर केन्द के नेता उधेडबुनमे पडे थे और निश्चय न होनेसे चुप रहे। **अनिश्चय, अस्थिरतासे बढकर क्रांतिको मारनेवाला दूसरा कोई विष नहीं है।**

जितना वेग तथा सार्वदेशिक फैलाव अधिक हो, क्रांतिकी सफलताकी सम्भावना भी अधिक होती है। पहले हमलेके बाद व्यर्थ समय गॅवाया जाय और शत्रुको दम लेने की फुरसट मिले तो उसे अनायास अपना सगठन दृढ करनेका अवसर मिल जाता है। सबसे पहले विद्रोह करनेवाले जब देखते हैं कि उनके बाद कोई मैदानमें नहीं आता, तो वह हिम्मत हारने लगते हैं, और धूर्त शत्रु भी सचेत होकर नये विद्रोहियोंके मार्गमें रोडे अटकाता जाता है। इससे, पहला हमला और क्रातिका सर्वत्र फैलाव इसके दरमियान शत्रुको सिद्धता करनेका अवकाश देना, सदाही क्रातिके लिए हानिप्रद होता है। किन्तु यहॉ ठीक वही हुआ जो न होना चाहिये। पहलेसे निश्चित कार्यक्रमके विरुद्ध इस अचानक उत्थानसे अन्य स्थानके क्रातिदलके नेता भौचक्के हो गये और कुछ समयके लिए 'भयी गति सॉप छछूँदर केरी।' चुप कैसे रहें और नहीं तो उत्थान कैसे करें।

क्रातिदलमें पैदा हुई यह अनिवार्य निष्क्रियता अग्रेजोंके लिए अत्यत लाभकारी सिद्ध हुई। भारतमे पॉव धरनेसे लेकर आजतक ऐसा सुन्न कर देनेवाला भयकर सवाद सुननेकी बारी यह पहलीही थी। जिन सैनिकोंने अग्रेजोंकी सत्ता आजतक बढाकर उसे बनाये रखनेमें सहायता दी वेही सैनिक आज अग्रेजोकी जानके ग्राहक बने थे। इस दृश्यसे घबडा कर अंग्रेजी सत्ता मेरठसे दिल्ली भाग खडी हुई। पर वहॉ बादशहाने एक हाथसे उसका गला दबोचकर दूसरे हाथसे उसका राजमुकुट छीन लिया। वह अग्रेजी राजसत्ता, जिसके मुँहपर मेरटके चौराहेकी स्त्रियॉ थूकीं और जिसके राजमुकुट आदि सभी अलकार लोगोंने बलपूर्वक छीन लिए थे तथा तलवारोंके घावोंसे लहूलुहान हुई थी, अग्रेजी खूनसे लथपथ अपने

बालोंको पकड़कर तथा हड्डियोंकी माला गलेमें डालकर कराहती, बिलखती, कलकत्तेका आकाश ऐंठनेकी चेष्टा कर रही थी। हिंदुस्थानकी अंग्रेजी सत्ताका प्राकृतिक रोग तो थी नहीं। इस मई महीनेमें आगरेसे बारकपुर तक ७२० मीलके टापूमें गोरे सैनिकोंकी केवल एक ही पल्टन थी। इस स्थान, जैसे कि क्रांतिदलने निश्चय किया था, इस टापूमें ठीक समयपर एक साथ विद्रोह होता तो, एक क्या दस दस इंग्लैंड भी यदि कमर कसकर आवें तो भी हिंदुस्थानको अपने हाथमें न रख सकते! गोरोंकी यह एक पल्टन सब दानापुरमें थी। पंजाब तथा सीमा प्रांतमें कई गोरी पल्टनें थीं किन्तु उनका वहीं रहना आवश्यक था। ऐसे भीषण समयमें अधिकसे अधिक गोरी सेनाको इकट्ठा करनेके लिए लार्ड कॅनिंग पहलेसे चेष्टा कर रहा था। *ठीक इसी समय ईरानसे अंग्रेजोंका युद्ध थम गया और वहाँकी* सेनाको तुरन्त भारत आनेकी आज्ञा दी गयी। ईरानका युद्ध रुका, फिर भी चीनसे अंग्रेजोंने झगड़ा मोल लिया था और वहाँ सेनाको भेजनेका प्रबंध हो चुका था। किन्तु भारतमें यह धमाका होनेसे चीनकी ओर जानेवाली सेनाको यहीं रोक रखना कॅनिंगने उचित जाना। रंगून जानेवाली इन दो पल्टनोंको कलकत्तेहीमें ठहरनेकी आज्ञा हुई। साथमें ४३ वीं पैदल पल्टन तथा मद्रासकी बंदूकधारी (फ्युजिलियर्स) पल्टनको सिद्ध रखनेको मद्रास गवर्नरको आदेश दिया गया।

इस तरह चारों दिशाओंसे गोरी सेना कलकत्तेकी दिशामें जमा हो रही थी, तभी सैनिक विद्रोह को शान्त करने के लिए एक यतन हुआ। एक प्रकट पत्रक बनाकर उसे गाँव गाँवमें चिपकानेकी उसने आज्ञा दी। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि उसी कमीनी दगाबाजी और मक्कारीसे यह पत्रक भरा हुआ था। पत्रमें लिखा था "तुम्हारे धर्म तथा रीतिरिवाजोंमें दस्तन्दाजी करना हमारा इरादा नहीं है। स्पष्ट है कि तुम्हारी धार्मिक भावना को भुलाकर तुम्हारे धर्मका मखौल उड़ाना हमारा उद्देश्य कभी होही नहीं सकता। तुम चाहो तो अपने हाथों कारतूस बना सकते हो। तिसपर भी तुम कंपनी सरकारके विरुद्ध विद्रोह कर बैठे हो, ध्यान रहे, यह नमक-हरामी है।" किन्तु ऐसे थोथे पत्रकोंकी ओर ध्यान देनेकी फुरसत किसे थी! इधर सवाल यह था कि ऐसे पत्रक प्रकाशित करनेका अधिकार अंग्रेजोंको

इस देशमें है या नहीं ? तो फिर, ऐसे समयमें ऐसी घोषणाओंका प्रदर्शन लोगोंको शान्त करनेके बदले उन्हें उभाडनेके कामका था। ऐसे थोथे पत्रकोंको पढनेका समय किसके पास था ? क्यों कि, सभीके कान दिल्लीसे घोषित होनेवाली आदरणीय राजाज्ञाकी ओर लगे थे। क्या ही मजेदार दृश्य है ! एकही समयमें दो घोषणापत्र ! एक दिल्लीसे स्वाधीनताका तथा दूसरी ओर कलकत्तेसे पराधीनताका ! अर्थात् हिंदुस्थानने दिल्लीकी राजाज्ञा को सिर आँखोंपर रखा और इसीसे कॅनिंगने अपनी लेखनीको तोडकर दिल्लीपर तोपें दागनेकी आज्ञा दी।

सर सेनापति ॲन्सनको, दिल्ली स्वतंत्र होनेका तार जब मिला तब वह शिमलेमें था। वह सोचही रहा था कि क्या करें, उसके हाथमें कॅनिंगकी आज्ञा पडी कि दिल्लीपर दखल करो। क्रांतिके संगठनके बल तथा योजनाओंके बारेमें अंग्रेजोंका इतना अज्ञान था कि एक सप्ताहमें दिल्लीको हथियाने और एक महीनेमें विद्रोहको दबानेका उन्हें भ्रमपूर्ण विश्वास था। पंजाबके कमिशनर सर जॉन लॉरेन्सने भी ॲन्सनको दिल्लीपर दखल करनेका त्वर्य (अर्जंट) तार भेजा था। किन्तु दिल्लीपर दखल करनेका काम कितना कठिन है इसका भान कॅनिंग और लारेन्सकी अपेक्षा सेनापति ॲन्सनको अधिक था, जिससे उसने पूरी सिद्धता होने तक धीरज रखना ही उचित जाना। शिमलेकी पहाडीसे वह अंबालेकी छावनीमें पहुँचा नहीं कि उसे शिमलेमें प्रचंड खलबली मच जानेकी खबर मिली। गोरखाओंकी नजीरी पलटनने विद्रोह कर दिया—ऐसी अफवाह सब ओर खूब फैल जानेसे शिमलेके अंग्रेजोंके हाथ पाँव फूल गये थे। उस वर्ष शिमलामें इतनी कडी गरमी पडी थी, जिसे अंग्रेज सह न सके। तब वहाँकी ठंढी पहाडी कोठियों तथा मनोहर बागोंके सुख उन्हें महँगे पडने लगे। गोरखा पलटनके आनेकी खबर पातेही औरतें और बच्चे जहाँभी शरण मिले वहाँ भागने लगे। इस दौडकी स्पर्धामें पीठके बोझोंके बावजूदभी पुरुषोंने स्त्रियोंको हराया और वे आगे बढ गये। अंग्रेजी वीरताका यह प्रदर्शन दो दिनतक खुले मैदानमें हो रहा था, किन्तु कोई गोरखा विद्रोही वहाँ नहीं आया। जिसमें वह बंद हो गया। कलकत्तेमें भी ऐसेही दृश्य दिखायी देते थे। एकाएक अफवाह

उठती, बारकपुरकी पल्टन अंग्रेजोंके विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह कर उठी है तब सारे अंग्रेज, उनकी औरतें और बच्चे समक सब बिलक रुख दौडने लगते। कुछ एकने तो विलायतके बहादुर गिर्जा भी कराये। कुछ अपना धारिया बिस्तर कसकर बांध, किलेमें भाग जानेकी सिद्धता कर चुके थे। कुछ गोरोंने अपना काम छोड कार्यालयके कोनेमें छिप जानेकी बहादुरी भी दिखायी। मेरठ और दिल्लीके विद्रोहने यह सब अस्तव्यस्त कर दिया था और अभी कानपुरका आगमन तो होनेवाला था।

अंबालेमें पहुँचतेही ॲन्सनने दिल्लीके मुहासरे के लिए तोपें तथा अन्य स्फोटक सिद्ध कर रखनेकी आज्ञा दी। आजतक ऐसे नौबत समयसे अंग्रेजोंको पाला नहीं पडा था, किन्तु अब तो उनकी दुर्बलतापर ही प्रकाश पड रहा था। अंग्रेजोंकी दशा बडी दयनीय हुई थी। कार्यक्रम ठीक प्रबंध करते करते ॲन्सनके नाकमें दम हो गया। अबतक गोरे अफसरोंका यही काम था कि हिंदी सैनिकोंको हुकम देते किन्तु अब गोरे सैनिकोंसे उस अधिकारमदसे पेश आनेसे काम नहीं चल सकता था। क्यों कि ये गोरे सैनिक अपनी ऐशोआरामकी आदतों तथा उद्दंडताईको थोडेही एक दिनमें भूलनेवाले थे। और हर एक काममें हिंदी सिपाहीसे बेगार करवाना तो असम्भव-सा था। सवारी, मजदूर, रसद, यहाँतक कि, घायल सैनिकोंको उठानेके लिए टाल्की डोलियाँ तथा रुग्ण गाडियाँ (ॲम्ब्युलन्स) जुटाना भी दूभर था। अडज्युटन्ट, क्वार्टर मास्टर, कमसरियट, वैद्यक विभाग किसीको भी अपने विभाग सहायक-सेवकों तथा आवश्यक सामग्रीसे भरपूर बनाना असम्भव होनेसे बडी कठनाई पेश हुई थी। हिंदुस्थानके लोगोंकी सहायताके बिना, कितनी दुबली तथा अपाहिज थी अंग्रेजी सत्ता! अब पहलीही बार ये हिंदी लोग विराट उठे तो अंबालेसे दिल्लीको छावनी ले जाना भी अंग्रेजोंके लिए कठिन हो गया। क्यों कि, सब जाति तथा श्रेणीके हिंदी लोग, जो घटनाएँ हो रही थीं उनपर ध्यान रखते हुए, तटस्थरूपसे अलग खडे थे। धनियोंसे लेकर मजदूरोंतक कोई भी, इन दिनों सहजमें डूबती हुई अंग्रेजी राजसत्ताको

बचानेकी चेष्टा नहीं करता था।* सचमुच, भारतीय लोग सदाही ऐसे उदासीन रहते तो, जैसा कि के साहब बता रहे हैं, अंग्रेजोंकी राजसत्ता एकही दिनमें मिट्टीमें मिल जाती। किन्तु वह भाग्यशाली दिन १८५७ के वर्षमें उदय नहीं हुआ। यह कहना चाहिये कि सत्तावन साल तो रातकी घोर निद्राके बाद आई हुई नये जागरणकी ऊषा थी। आगामी उज्ज्वल उजेलेकी स्पष्ट कल्पना जो पहलेही कर सके थे, वे अपनी शय्या छोड़कर जागरित हो उठे थे, किन्तु जो अब भी मानते थे कि रात समाप्त नहीं हुई, उन्होंने पराधीनताका ओढना फिरसे मुँहपर तानकर बेखबर सोना ही उचित माना। इन निद्रालु वीरोंमें, कुंभकर्णके कान काटनेकी स्पर्धा पटियाला, नाभा, तथा जींद इन तीन रियासतोंमें लग गयी थी। क्रांतिको अमर करना या उसे मारना, दोनों बातें इन रियासतोंके अधीन थीं। ये संस्थान दिल्ली और अम्बालेके बीचके टापूमें होनेसे, बिना उनकी सहायताके अंग्रेजोंका पीछा अरक्षित रह जाता। ये संस्थान यदि अन्योंके समान उदासीन भी रहते तो भी क्रांतिकी यशस्विताकी बहुत संभावना थी। किन्तु, उलटे, पटियाला, नाभा तथा जींद रियासतोंने अंग्रेजोंसे बढकर क्रूर तथा निठुर चोटें क्रांतिकार्यपर करना शुरू किया, तब तो दिल्ली और पंजाबका संबंध खण्डित हुआ। इन संस्थानोंने दिल्ली सम्राटके निमंत्रणको ठुकरा कर संदेशवाही सवारोंका सफाया कर दिया, तथा अपने कोशोंसे पैसा निकालकर अंग्रेजोंपर निछावर कर दिया, उनके लिए रंगरूट भरती किये और अंग्रेजी सेना जिन प्रदेशोंसे गुजरनेवाली थी उनकी रक्षा कर अंग्रेजोंके साथ दिल्लीपर चढाई करनेका साहस किया। और जो क्रांतिकारी अपने घरबारपर अंगार रखकर दिल्लीके राष्ट्रीय ध्वजकी रक्षाके हेतु जान पर खेल गये उन क्रांतिवीरोंको, गुरु गोविंदसिंगके सिक्ख कहलानेवाले इन संस्थानोंने, यंत्रणा देकर मारा!

पटियाला, नाभा और जींद इन तीन रियासतोंसे पूरी सहायता मिलनेका विश्वास होनेपर अंग्रेजोंकी हिम्मत बढ गयी। पटियालाके राजाने सैनिकदल तथा तोपखाना अपने भाईके साथ भेजकर उसे थानेसर मार्गकी रक्षाका

* के कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड २

भार सौंपा और स्वयं जींदका शासक पानिपतकी (सैनिक दृष्टिसे) अत्यंत प्रबल भूमिपर मांचा लगाये बैठा। इस तरह इन दो प्रमुख मोर्चोंके सुरक्षित हो जाने पर दिल्लीसे अम्बालेतकके सभी मार्ग और मराकटाक पंजाबसे अंग्रेजोंका संबंध, पूरीतरह भयमुक्त हुए। किन्तु दिल्ली स्वतंत्र होनेका संवाद मिलतेही अन्सनका दिल बैठ गया था। और फिर, शिमलेकी हिमशीतल छायामें अनंतकालसे समय बिताकर अब वीरान मैदानकी प्रखर गरमीमें झुलसना पड़ेगा इस विचारसे उसके मनमें डर छा गया। इस तरह मानसिक व्यथा और शरीर व्याधीसे जर्जर होकर २७ मई १८५७को यह सेनापति अन्सन हैजेसे मर गया। उसी दिन उसका स्थान सर हेनरी बर्नार्डने ले लिया।

पुराने सेनापतिको दफनाकर नये सेनापतिके नेतृत्वमें अंग्रेजी सेना दिल्लीपर चढ़ाई करने चली। तब अंग्रेजोंको विजयकी इतनी पक्की निश्चिती थी कि वे प्रकट रूपसे ऐसी भावनामें मगन थे कि, "सवेरे युद्ध शुरु होगा और शामतक दिल्लीमें दुश्मनोंका खून पीयेंगे।" यह सेना अम्बालेसे चली तब इन गोरोंके अंतःकरणका गुप्त गरल अगतकी आनमें पूरी तरह आ गया। कहा गया 'मेरठके सभी नैतिक शैतानके बच्चे हैं (हीदन्ज)। मेरठ और दिल्लीमें केवल कारतूसी 'अफवाह'का विश्वास कर इन दुष्टोंने 'निष्पाप' अंग्रेजोंकी हत्या की! इन लोगोंके देश–हिंदुस्थान–में धर्म और सभ्यता कितने जंगली होंगे!" हाँ, जो गुमराह है उसको नंगे रूपमें संसारके सामने रखनेसे क्या लाभ? नहीं तो झूठी अफवाहोंसे सत्य तथा जंगलीपनमें सभ्यतापर घृणा करनेके लिए स्वयं परमात्मा प्रवृत्त होगा। हाय, हाय, सत्य और परमात्माकी विडंबनाको धो डालनेके लिए लहूकी नदियाँही बहानी पड़ेंगी!!

अम्बालेसे दिल्लीके मार्गपर पड़े सैकड़ों गाँवोंसे गुजरते हुए जो भी आदमी हाथ लगे उन्हें एक कतारमें सैनिक–पंचायतके सामने खड़ा किया जाता और सबके सबको फाँसीकी सजा सुनायी जाती और अत्यंत राक्षसी ढंग जंगली तरहसे कत्ल किया जाता। मेरठके हिंदी लोगोंने अंग्रेजोंको कत्ल किया यह बात सही है, किन्तु जंगली क्रूरतासे नहीं! तलवारके एकही वारसे सिर उड़ाकर दिया जाता, बस। किन्तु अंग्रेजोंका बड़प्पन इसमें है

कि उन्होंने इस गलत तरीकेको ठीक कर दिया। पंचायत फॉसीका फैसला सुना देती तबसे फॉसीका मचान खडा होनेतक गोरे सैनिक उन देहातियों-पर अत्यत निर्दय तथा पाशविक अत्याचार करते थे। मौतकी सजा पाये हुए इन बेचारोंके सिरके बाल एक एक कर नोंच दिये जाते, सगीनें घोंप कर उनके शरीरसे खिलवाड किया जाता। और इससेभी बढकर वह काम करनेको कहा जाता जिसके सामने मौत तो मामूली बात हो जाती है। पाठक, हृदय थामे पढो ! उन बेबस देहातियोके मुखमे गोमॉस ये गोरे सैनिक भालों और सगीनोकी नोकोसे ठूँस देते थे।*

हॉ, तो, पाठकगण, यह कहते हम भूल गये कि सैनिक पचायतका नाटक वैसाही अब तक चला आ रहा है जैसा उस समय था। सैकेडों गरीब किसानोंको गोरूके समान बाडेमे बिठाकर उनका ' न्याय, किया जाता! नेदर्लेंडस्मे जब इसी तरह क्राति हुई थी, तब आल्व्हानने भी इस तरहका एक न्यायालय बनाया था। इसमे न्याय इतना योग्य और अचूक था कि कभी कभी न्यायाध्यक्षही अपने आसनपर सोया हुआ पाया जाता। निर्णय देनेका समय आनेपर उसे जगाया जाता तब बड़ी गभीरतासे अपराधियोंपर दृष्टिक्षेप कर निर्णय सुनाता "सबको फॉसी!" मालूम होता है, उसी नेदर्लेंडस्के ऐतिहासिक देहदण्डालय (डेथचेंबर) का परिवर्तित तथा परिवर्धित सस्करण हिंदुस्थानमे बनाया था। क्यों कि, यहॉके पच कभी न सोते थे! यहॉ तक कि न्यायासनपर बैठनेके पहलेही उनसे शपथ करायी जाती थी "मै अभियुक्तके अपराधी या निर्दोष होनेपर गौर न करते हुए सबको देहान्तका दण्ड दूँगा"× और, फिर इस तरह शपथबद्ध

---

* हिस्टरी ऑफ दि सीज ऑफ दिल्ली.

× (स. २४) सनिक-पचायतके आसनपर बैठनेके पहले पच शपथ करते थे कि अपराधी या निर्दोष होनेकी पर्वाह न करते हुए बदीको फॉसीकी सजा फर्मायेंगे, और उनमे से एकाध इस अविवेकी बदलेके विरुद्ध आवाज उठातेही उसके साथी शोर कर उसे चुप कर देते। चटपट निर्णयके बाद फॉसीपर जानेवाले बदियोको खिजाया जाता और अनाडी सोजीरोंसे

अंग्रेज एक 'काले' आदमी का फैसला सुनाकर एकसाथ सब फाँसी चढ़ानेका काम जिस आसनपर बैठकर करते उसे अंग्रेजीमें "कोर्ट मार्शल" नाम रखा गया था।

दिल्ली और मेरठमें लगे मुट्ठीभर अंग्रेजोंकी हत्याका बदला लेनेको राक्षसी अंग्रेज सैनिक लिए हाथ आये हर मानवकी हत्या की जाती। इस तरह हमारे गरीब किसान मारे गये और मरनेके पहले उनपर पाशविक अत्याचार किये जाते थे। इस ढंगसे गुजरते हुए सेनापति बर्नार्ड दिल्ली जानेके पहले मेरठकी गोरी पल्टनोंका साथ लेनेके इरादेसे उधर मुड़ा। हम कह चुके हैं कि मेरठमें काफी गोरी सेना थी। यह सारी सेना अम्बालेसे चली सेनासे मिलने को मेरठसे चल पड़ी थी। किन्तु इन दो सेनाओंकी भेंट होनेके पहलेही दिल्लीका राष्ट्रीय सैनिकदल मेरठकी गोरी फौजसे भिड़नेको आगे बढ़ा। दिनांक ३० मईको हिंडन नदीपर दोनोंका सामना हुआ। हिंदी सेनाका दाहिना पासा प्रबल तोपखानेके कारण निर्भय होनेसे अंग्रेजोंकी उस ओर कुछ न चली। किन्तु घमासान युद्धके कारण बायाँ पासा अंग्रेजी सेनाके दबावके सामने टिक न सका। गड़बड़ीमें पाँच तोपें पीछे छोड़कर हिंदी सेना दिल्लीतक हटी। किन्तु, गोरे आकर उन तोपोंपर कब्जा करें उसके पहले ११ वीं पल्टनके एक सिपाहीने डटकर मौतका सामना किया। कोई अपना कर्तव्य करे या न करे, देहमें प्राण हों तब तक राष्ट्रसेवाका प्रण उसने किया था। देशसेवाकी इस लगनसे, गोरोंका हाथ तोपोंपर पड़े इसके पहले उसने बारूदमें आग लगा दी, जिसके प्रचंड धमाकेसे कॅप्टन ॲन्ड्रूज और उसके साथी जलकर खाक हो गये तथा कई घायल हो गये। इस तरह अनेक शत्रुके सिर हिंदमाताके चरणोंपर चढ़ा देनेके बाद उस हुतात्माने अपनाभी मस्तक उसकी गोदमें रखनेके लिए धर दिया। जिस तरह दिल्लीके शस्त्रागारको दाग देनेके साहसपूर्ण आत्मबलिदानके लिए अंग्रेज इतिहासकार लेफ्टेनन्ट विलोबीकी कीर्ति गाते हैं, उसी तरह मातृभूमिके लिए हुतात्मा बनकर

यन्त्रणाएँ दी जातीं वहाँ बड़े लिखे अफसर तमाशा देखते और उसमें रस लेते। —होम्सकृत हिस्टरी ऑफ दि सीपॉय वॉर पृ. १२४

मौतको गले लगानेवाले उन वीरोंका स्तुतिगान हमे अवश्य करना चाहिये। किन्तु, दुर्भाग्य! उन हुतात्माओंका नामतक इतिहास नहीं जानता। इन अनामिक वीर सैनिकोंके बारेमे के लिखता है "'विद्रोहियो'मे भी राष्ट्रकार्य (नॅशनल कॉज) सफल करनेके लिए प्राण हथेलीपर लेकर कराल कालके गालमे घुसनेवाले शूर वीर थे,—इस घटनासे हम अच्छी तरह यह बात सीख गये।" *

इस पहली भिडन्तमे अंग्रेजोको पूरी विजय मिली, तब वे मानते थे कि दिल्ली तो दो एक दिनमे हथिया लेगे, इस प्रकार की पूछताछ करनेवाले कई पत्र भी चारों ओरसे आने लगे, किन्तु बात कुछ और ही थी। क्रांतिका यह अनोखा भडाका होकर देशभरमे उसकी ज्वालाएँ भडक रही थी, तो भी उसका नेतृत्व कर अनुशासनपूर्वक उसका मार्गदर्शन करने के लिए आवश्यक धैर्य तथा नीतिज्ञता दिल्लीमे नही थी। हॉं, दिल्लीके हर बाशिदेने यह प्रण किया था कि 'जबतक दम मे दम हो, मातृभूमि को स्वतत्र करके ही दम लेगे।" ३० मई को रातभर पीछे हटकर आये हुए सैनिकोंकी लोगोंने बडी निदा की, तब तेहा आकर फिर वे ३१ मईको मैदानमें उतरे। क्रातिकारी तोपे आग उगल रही थीं, अंग्रेजी तोपे भी उनका मुकाबला कर रही थी। किन्तु, उस दिन क्रातिकारी तोपे ठीक निशानेपर गोले फेकती थीं और क्राति-कारी भी उस दिन असाधारण धैर्यसे डटे हुए थे, जिससे अंग्रेजोंकी ओर मृतोंकी सख्या बहुत बढ गयी। तिसपर मईकी चिलचिलाती धूप अंग्रेजोंको हैरान कर रही थी। इसीसे, अंग्रेजोने शामके बाद चारों ओरसे हमला करनेकी ठानी। किन्तु क्रातिकारियोंने अपनी तोपोंसे मलयकर आग उगाली और अपनी फैली हुई पॉतीको भी सॅवार लिया और जब ठीक अंग्रेजी सेना हमला प्रारभ कर रही थी, तभी बडी कुशलतासे राष्ट्रीय सेना हट गयी! बहुत अच्छा क्रातिवीरो! एक दिनमे तुमने काफी प्रगति की है। कल भी इसी तरह कुशलतासे तुम हट जाओगे तो बस अंग्रेजोंकी बन आयी समझो! क्यों कि छोटी

---

* के कृत हिस्टरी ऑफ दि इडियन म्यूटिनी खण्ड २ पृ. १३८

सहाय नहीं, एक युद्धके लिए आवश्यक बल अब उनमें नहीं बचा है। दिनांक १ जूनको, पहलेही पस्त हुए अंग्रेजोंके पहाड़ीकी पिछाड़ीपर एक सेनादल चढ़ आता दिखायी पड़ा। थके सैनिकोंका यह दल देख कर अंग्रेजोंके छक्के छूट गये। फिरभी आत्मरक्षाके हेतु सन्नद्धकर खड़े हो ही रहे थे कि पता चला, यह क्रांतिकारियोंकी सेना नहीं, वरन मेजर रीडके नेतृत्वमें गोरखा-सैनिक दल है। अम्बालेकी अंग्रेज सेनाको सिक्खोंने सहायता दी, तो मेरठकी गोरी सेनाकी सहायताके लिए गोरखे रीड आये। अब बताइए दिल्लीके क्रांतिकारी क्या कर सकते हैं? ये सारी अंग्रेजी सेनाएँ ७ जूनको मिलीं। साथमें नाभा नरेशकी सहायतासे बनी, मुहासरेका काम करनेवाली कंपनी आ पहुँची। जब यह कंपनी अम्बाले पहुँचेगी तो उसपर टूट पड़नेकी योजना पाँचवीं पल्टनके सिपाही गोरखा सैनिकोंसे कर रहे थे, किन्तु गोरखोंने स्वधर्म या स्वदेशकी सेवा करनेसे साफ इनकार कर दिया और यह घेरा दल दिल्ली आ पहुँचा। अंग्रेजोंकी संयुक्त सेना अब निःशंक होकर अलीपुर तक पहुँच गयी।

अंग्रेजी सेनाके अलीपुर आतेही क्रांतिकारी सेना दिल्लीसे फिर निकली और बुंदेलकी सरायके पास अंग्रेजोंपर हमला किया। अंग्रेजी सेना पूर्ण तथा सुसंगठित थी। आवश्यक तोपचियोंसे युक्त तोपखाना, युद्धोपयोगी सामग्री, कार्यकुशल प्रमुख अधिकारीगण, अनगिनत नये पुराने सैनिक एवं बचाव तथा आक्रमणके लिए सुविधाजनक युद्धक्षेत्र आदि किसी बातकी कमी अंग्रेजोंको न थी, जहाँ एक पवित्र भावनाबलके बिना क्रांतिकारियोंके पक्षमें और कुछ नहीं था। उनका नेता एक नरेश था किन्तु आयुभरमें उसने लड़ाई कभी न देखी थी। क्रांतिदलमें शिक्षित सैनिकोंकी अपेक्षा फिरंगीरेही अधिक थे और उपरसे अपने ही देशबंधु सिक्ख तथा गोरखे शत्रुकी सहायता कर रहे थे यह सब सोचकर उनका दिल बैठ गया। इधर अंग्रेजोंने ठान ली थी कि 'यह लड़ाई एक दर्शनीय तमाशा होगा।' किन्तु स्वराज्यकी अत्युच्च भावनासे सैनिकोंके हृदयमें ऐसी कुछ दिव्य स्फूर्ति तथा ऐसा अनोखा जोश भरित था, कि इन सभी अड़चनोंको उन्होंने तिलभर न माना। उस दिन क्रांतिकारियोंने वे जौहर दिखाये, कि अंग्रेजोंका चैन

गया कि "यह लडाई एक दर्शनीय तमाशा नहीं, बल्कि यह सचमुच भयकर तथा प्राणोंका सट्टा है। दिल्लीके तोपचियोंने 'अंग्रेज' तोपोंके मुँह बंद कर दिये। गोरे तोपची तथा उनके गोरे अधिकारी एक के बाद एक खतम होने लगे तब दिल्लीकी तोपोंने और ही आग उगलना शुरू किया। तब तो अंग्रेजोंने पैदल सेनाको तोपखानेपर ही चढाई करनेकी आज्ञा दी। वे ठेठ तोपों तथा युद्ध द्रव्यागार पर ही टूट पडे, किन्तु क्रातिदल टससे मस न हुआ। स्वधर्म और स्वराज्यके इस युद्धमें ये क्रातिकारी सच्चे वीर की तरह डट गये और अंग्रेजी सगीनें उनके शरीरोंसे आरपार निकल जानेतक वे अपनी जगहसे न हटे। इन दुर्दैवी वीरवरोंके साथ रहकर धीरज बधानेवाला एक भी नेता होता, तो उन्हें किसी पथप्रदर्शन की आवश्यकता नहीं थी। क्यों कि, अंग्रेजी सगीनोंसे देहकी छलनी बननेपर भी, स्वधर्म और स्वराज्यपर निछावर होनेवाले ये वीर रचभी न हटे, जहाँ इन के 'सिपहसालार' तोपकी पहली ही गटगटाहटके साथ दिल्लीको बहादुरीसे भाग गये थे। ऐसे अवसरपर इस अभागी सेनाके बायें पासेपर अंग्रेजी घुडदलने तथा पिछाडीपर होप्स ग्रँट की गाडीचढी तोपोंने हमला किया, तब, अपनों तथा परायोंसे सताये गये तथा दिनभर की लडाईसे थके हुए सैनिक हार गये, उनकी पॉती टूट गयी और उन्हें दिल्लीको लौटना पडा। सेनापति बर्नार्डने विजयको पक्की करनेके लिए अंग्रेजी सेनाको और दबाते चले जानेकी आज्ञा दी, तब गोरी सेना दिल्लीके सरक्षक तट तक पहुँच गयी। आजकी लडाईका परिणाम यह निकला कि अब दिल्लीके आसपासके टापू परसे क्रातिकारियोंका काबू उखड गया और गोरोंको दिल्लीके किलेपर ही सीधे हमला करनेके अनुकूल आक्रमणभूमि अनायास मिल गयी। यहाँ एक बात कहना उचित है, कि सीमूरके नेतृत्वमें अत्यत वीरतासे लडे गोरखा कपनीका गुणगान अंग्रेज इतिहासकारोंने विशेष रूपसे किया है। क्यों कि, अपनीही माताके पुत्रोंकी गर्दनें काटनेमें अत्यधिक उत्साह तथा वीरता दिखानेमें आनद माननेवाले गोरखोंका शौर्य तथा निष्ठा अंग्रेजोंने बार बार बखानी है।

बुदेल की सरायकी लडाई गोरखोंके बलपर अंग्रेजोंने जीती किन्तु इससे उनका भ्रम भी दूर हो गया। क्यों कि, रातमें दिल्लीके अदर प्रवेश

कर अपने कट्टर शत्रुको लड़ने नहलानक स्वप्न पूरे चूर चूर हो गये। इस लड़ाईने इस कटु सत्यका अनुभव अंग्रेजोंको कराया कि क्रांतिकारी सेना कोई गई का जमघट नहीं है। स्वधर्म और स्वराज्यकी रक्षार्थ हेतु म्यानसे बाहर पड़ी तथा सात्त्विक क्रोधका पानी चढ़ी तलवारें दिल्लीकी दिवारोंपर चमकती थीं। इस लड़ाइम अंग्रेजोंके चार अफसर और ४७ सैनिक खेत रहे, घायलोंकी संख्या १३० तक पहुँची थी। किन्तु उनकी छावनीम जिस बातमें क्षुब्ध तथा निराशाकी गाढ़ी घटा छा गयी थीं, वह थी अॅडज्युटंट जनरल कर्नल चेम्बरकी मौत। पाठक अनुभव करेंगे कि य अंग्रेज इति हासकार क्रांतिकारोंकी हानिका वर्णन करनेमें कभी कभी अतिशयोक्तिम उपन्यास को भी मात कर देते हैं। यहाँ बताना आवश्यक है कि उम लिफ बमासान युद्धम क्रांतिकारियोंकी तोपोंकी हानियां बताते हुए एक प्रथकार तेरहकी संख्या देता है, जहाँ दूसरा उनकी संख्या छत्तीस होने की बात दावेसे कहता है। और बात यह है कि ये दोनों ग्रंथकार सैनिक अधिकारीके नाते उस लड़ाईमें स्वयं उपस्थित थे।

हाँ, तो ८ जून के सायकाल, दिल्लीकी दिवारोंको अंग्रेजी सेनिकोंने घेरा डाल दिया। अम्बाला और मेरठसे सेनाको सुरक्षित ले आना बड़ी भारी भारी पंजाबकी हालतपर अवलम्बित था। इसमे मेरठके विद्रोहका उस प्रांतपर क्या प्रभाव पड़ा, वहाँके राष्ट्रीय विचारक लोगोंने उससे क्या लाभ उठाया और उनकी गतिविधि क्या रही तथा उनके विरुद्ध अंग्रेजोंने कौनसी चालें चलीं और उन्हें कहाँतक सफलता मिली इन बातोंको देखना आवश्यक है। सिक्खोंका साम्राज्य नष्ट होकर जब पंजाबपर अंग्रेजोंका अधिकार हुआ तब उस प्रांतम लार्ड डलहौसीने ऐसी नीति जारी की, जिससे स्वातंत्र्यकी आकांक्षा तथा क्षात्रवृत्ति सिक्खोंके इन दोनों प्रभावशाली गुणोंका पूरा नाश हुआ। इस नये लूटे हुए प्रांतकी बागडोर जब सर हेन्री लॉरेन्स और सर जॉन लॉरेन्सके हाथ आयी तो उनका पहला काम था लोगोंको निहत्थे करना और सिक्खोंको अंग्रेजी सेनामें भरती करना। फिर उन्होंने उत्तर भारतकी अधिकांश गोरी सेनाको पंजाबमें रख दिया। इस तरहसे सब ओरसे दबाव जानसे जनताको पेट पालनेके लिए खेती पर ही निर्भर रहना पड़ा, दूसरा कोई चारा ही न रहा। राष्ट्रकी जनशक्ति जब

केवल खेतीबाडी ही मे मगन रहती है, तब, स्पष्ट है कि उस राष्ट्रकी क्षात्रवृत्ति धीरे धीरे लोप हो जाती है। लोगोको 'शान्ति' का युग अच्छा लगता है। खेतीमे खलल पैदा होती हों तो क्रातिके कामोंमे सहजमें, हाथ बॅटानेकी चेष्टा नही करते। अंग्रेजोंके इस अतिकुटिल राजनैतिक सिद्धातने पजाबमे बडी सफलता पायी। सिक्खोका साम्राज्य नष्ट होनेसे दशवर्षोंके अदर बहुसख्य सिक्ख समाज अपनी तलवारोंको पूर्णतया भूलकर, हल जोतनेमे अपना गौरव समझने लगा, जिन थोडे सिक्खोके पास अब तक शस्त्र था उसे उन्होने अपनेही देशबधुओका नाश करनेके लिए अंग्रेजोंके सुपुर्द कर दिया। इस तरह पहलेही पूरा बदोबस्त हो चुका था। पजाबमे किसी तरहका ऊधम होनेकी रच भी सम्भावना न होनेका विश्वास सर जॉन लॉरेन्सको हो गया था। अन्य अंग्रेजी अधिकारियोंके समान उसे भी मई के प्रारभ तक आगामी भीषण सकटकी जरा भी कल्पना न थी। धूपकालके लिए लाहोरसे मसूरीकी ठढी पहाडोकी सैर करनेका उसका विचार पक्का था। इसी समय मेरठ और दिल्लीके सवादोंसे पजाबभी थर्रा गया। इन सवादोंमें भरे भयकर और गभीर अर्थको चतुर अंग्रेजोंने झट भॉप लिया और विदेशी साम्राज्यको उखाडनेकी चेष्टा करनेवालोंका सामना करनेके लिए सिद्ध होकर अपना मसूरी जानेका विचार उसने छोड दिया।

पजाबी सेनाका बडा भारी हिस्सा इस समय मियॉमीरमे था। मियॉ-मीर की छावनी लाहोरके बहुत पास होनेसे लाहोरके किलेकी रक्षाके कामपर सबके सब हिंदी सिपाही तैनात हुए थे। मियॉमीरकी छावनीमे हिंदी सैनिक सख्यामे गोरे सैनिकोसे लगभग चौगुने थे, फिर भी मेरठके बलवेका सवाद मिलने तक अंग्रेजोंको हिंदी सैनिकोंपर जराभी सदेह न हुआ। किन्तु उस खबरके पहुँचते ही, हर हिंदी सैनिकपर शक होने लगा कि कहीं वह अपने मेरठी भाइयों के गुप्त षडयत्रमे शामिल तो नही है? लाहोर की सेनाका सरदार था रॉबर्ट मॉतगॉमेरी। सर जॉन लॉरेन्स और रॉबर्ट मॉतगॉमेरी दोनों अतिशय धैर्यशील तथा सयमशील थे। किसी भी भयकर अनपेक्षित अडचनमें उनकी समयकी सूझ सराहनीय थी। इस समय पजाबके सैनिकोंमें राष्ट्रीय स्वातन्त्र्यकी लहरका क्या प्रभाव पडा था इसको टटोलना ठीक होगा। अंग्रेजोंने सिपाहियोंकी मनोगतिको

जानने हेतु एक ब्राह्मण खुफिया नियुक्त किया था। इस ब्राह्मणने देश द्रोही का काम बड़ी इमानदारीके साथ अदा किया। मॉन्टगॉमरीसे कहा "साब! क्रांतिका विष सैनिकोंके अन्दर पूरा फैल गया है, (गल्पार समनीया फलफल) पूरपूर!!" ब्राह्मणके इस अभिनयपूर्ण भाषणसे रॉबर्ट्स तथा मॉन्टगॉमरीकी आँखें पूरी खुल गयीं। उन्हें मालूम हो गया कि, क्रांतिका संगठन केवल उत्तरभारत ही में नहीं, पंजाबमें भी हो चुका था। पंजाबमें क्रांतिकी अग्नि काफी धुधुआती रही, केवल चिनगारी पड़नेकी राहमें थी। यह गुप्त रहस्य सहजसे अचानक समझमें आनेका अनायास अवसर उनके हाथ लगा। मॉन्टगॉमरीने सहर्ष बलवेका मनही मन धन्यवाद देकर तुरन्त सिपाहियोंको निःशस्त्र करनेकी आज्ञा दी। १० मई को सवेरे मियाँमीरके सिपाहियोंका सामूहिक संचलन होनेकी आज्ञा हुई। हिंदी सिपाहियोंको अपने भविष्यके बारेमें रंच भी संदेह पैदा न हो जाय, इस लिए गोरे लोगोंके लिए एक सदर नाचका आयोजन शानपूर्वक किया गया। सर्वविनाशक रहस्य पर क्रांतिकारी सिपाही आयें इसके पहले ही गोरे रिसाले तथा तोपखानेने सब हिंदी सिपाहियोंको घेर लिया। सिपाही भौंचक हुए। जब संचलन चालू था, तभी तोपें तयार रखने की आज्ञा दी गयी थी। सिपाहियोंसे सख्तीसे शस्त्र रखवाये गये। क्रोधसे काँपते किन्तु सुसज्जित तोपखानेको देख पस्त हुए लाचार हमारे सिपाही हथियार डालकर एक शब्द भी मुँहसे न निकालते हुए सीधे अपने बारिकोंको लौटे।

इन्हीं सिपाहियोंने अफगानी युद्धमें अंग्रेजोंके प्राण बचाये थे। इनसे शस्त्र रखवानेका काम जारी था तभी लाहौरके किलेकी ओर एक गोरी पल्टन भेजी गयी। इन गोरोंने किलेके तोपखानेके बलपर किलेके हिंदी सिपाहियोंसे शस्त्र रखवाये, उन्हें निकाल बाहर कर दिया और किलेपर काबू जमा लिया। इस आयोजनमें अंग्रेज यदि रंचभी लचरपन या ढीलापन रखते तो केवल एक पलमात्रके अंदर पंजाबभरमें क्रांतिकी ज्वालाएँ धूम मचानेका दृश्य दीख पड़ता। क्यों कि, मियाँमीरके सिपाही लाहौरके किलेपर कब हमला करते हैं, इसकी ओर पेशावर, अमृतसर, फिल्लौर और जालन्धरकी हिंदी पल्टनें आँख लगाये बैठी थीं। पर, जब मियाँमीरके सिपाही निःशस्त्र कर दिये गये हैं और लाहौरका किला भी अंग्रेज

ले चुके है यह सवाद सब ओर फैल गया तब अंग्रेजोका आतक बढकर पजाबमें उन्हे सुरक्षित भूमि मिल गयी। उनकी धाक खूब जम गयी।*

किन्तु लाहौर के किले के सुरक्षित स्थान से भी बढकर अमृतसर के गोविंदगढ का स्थान था। गोविंदगढ सिक्खो का पवित्र स्थान था। वहाँ कहीं कुछ हो जाता तो वहाँ के सिक्ख विद्रोह करनेकी अधिक सम्भावना थी, इस लिए सिपाहियों की खास नजर थी। इस से मियाँमीर के निहत्थे सिपाही गोविंदगढ को कब्जा करनेके लिए अमृतसरकी ओर कूच कर जाने की अफवाह फैली थी। आगामी सकट को भाँपकर अमृतसर की रक्षाके लिए जाट और सिक्ख किसानों से प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना को मानकर इन अंग्रेजनिष्ठ देशद्रोहियोंने अंग्रेजों की सहायता की और १५ मईके पहले लाहौर के समान अमृतसर का किला भी अंग्रेजो के हाथ लगा। इस तरह लाहौर तथा अमृतसरके दो महत्त्वपूर्ण स्थान क्रातिके सपर्कसे पूर्णतया दूर रहे।

पजाबकी रक्षाका आवश्यक प्रबध पूरा कर सर जॉन लॉरेन्सने अपने प्रातके बाहर अपनी सैनिक शक्तिको बढाना प्रारभ किया। दिल्लीके सवाद पातेही उसने वादेसे कहा कि यह 'बलवा' नहीं, एक 'राष्ट्रीय उत्थान' है। फिर भी उसे यह भ्रम था कि थोडेही समयमें यदि दिल्लीपर दखल कर सके तो और किसीभी स्थानमें क्रातिका कोंपल नहीं निकलेगा। इसी लालसामें वह सेनापति ॲन्सनको पत्र पर पत्र लिखता रहा कि कुछ भी करो किन्तु जूनके पहले दिल्लीको हथिया लो। यहाँ तक, कि अम्बालेकी सेनामें सख्याकी कमी न हो इस लिए वह लगातार पजाबी सेनाविभागों को उधर भेजता रहा। हाँ, साथ, पजाबकी रक्षाका पूरा दायित्व उसने अपने सिर लिया ही था। इस सहायक सेनाकी पहली पलटन थी, डॅलीके नेतृत्वमें,

---

* स. २५ "पजाब यदि हाथसे जाता तो हमारा सर्वनाश हो जाता। हमारे पास सैनिक सहायता पहुँचनेके पहले तो सभी अंग्रेजोंकी हड्डियाँ धूपमें सूखती पडी होतीं। उस सकटसे बचकर फिर सिर ऊँचा करना और पूरबमें अपने शासनको जमाना इग्लैंडके लिए असम्भव था। —लाइफ ऑफ लॉर्ड लॉरेन्स

गाइड कोर। जॉन लॉरेन्सको डेलीके शौर्य तथा क्षमतापर विशेष भरोसा था, जिससे गाइड-कोरका नेतृत्व कर दिल्लीपर चढ़ जानेकी उसे आज्ञा दी। बड़े वेगसे मार्ग तय करते हुए अपनी सेनाके साथ डेली पश्चिमी सरायको मर्दोंकी मिहनतसे दूसरे दिन, पहुँचा। दिल्लीको घेरनेमें अब दो देशद्रोही पलटनें जमा हुई थीं। एक बीस वें नम्बरकी लड़नेवाली गोरखा पलटन तथा डेलीकी नम्बरकी लड़नेवाली पंजाबी पलटन। ये दोनों पलटनें अंग्रेजोंकी बड़ी प्यारी थीं और कौन कह सकता है कि यह प्यार अयोग्य था? देशद्रोहियोंकी नमकहरामी–भावनाका मापनपर अंग्रेजोंके प्यारको वे सर्वथा क्यों न पात्र हो! [१]

डेलीकी पलटन दिल्लीको रवाना होनेपर सर जॉन लॉरेन्सने पंजाबकी राजनैतिक स्थितिकी फिर एकबार बारीक छानबीन की। इस प्रांतमें हिंदु–मुसलमान तथा सिक्खोंमें कट्टर शत्रुता सदा धुधुआती रहती थी। उत्तर भारतके समान यहाँ भी हिंदु–मुसलमानोंमें राजनैतिक एकताका भाव जागरित होना अत्यंत आवश्यक था। इसका महत्त्व पंजाब–निवासी अब तक समझ न सके थे। ऐसे तो उनकी स्वाधीनताका अन्त होकर दस सालभी पूरे नहीं हुए थे। किन्तु १८४९ में जो सिक्ख अपनी तलवारें अंग्रेजोंकी गर्दन रेतनेके लिए समरांगणमें जुट जाते थे, वे ही सिक्ख आज १८५७में अंग्रेजोंसे लिपटकर नाच रहे थे। इस अनोखे ऐतिहासिक रहस्यका स्पष्ट कारण यह था कि, सिक्खोंके स्वाधीनता गँवानेको थोड़ाही समय बीता था, कि १८५७ की क्रांति फूट पड़ी। खालसा गुरुके शूर वीर इन अनुयायियोंने मुसलमानी गुलामीसे इतना तीव्र द्वेष किया, जिसके कारण एक शतीतक लगातार मुसलमानोंसे लड़ाइयाँ कीं। यथार्थ, इन्हीं सिक्खोंने अंग्रेजी सत्ताका सच्चा स्वरूप पहचाना होता तो, निश्चित बात है, कि वे अंग्रेजी हुकूमत को क्षणभरभी टिकने न देते। किन्तु 'अंग्रेजी सत्ता माने सौ टंच गुलामी' यह विचार इन शूर वीरोंके अंतःकरणपर पूर्णरूपसे अंकित होनेके पहलेही, १८५७की क्रांति फूट पड़ी। भारतीय राजनीतिमें जब एक अनोखी क्रांति करवट ले रही थी उसी समय अंग्रेजोंकी गुलामी की जंजीर भारतके पांवोंमें जकड़ी जा रही थी। सदियोंसे कोनेमें सड़ते हुए राष्ट्रीय जीवनके कई सोते अपने बाँधोंको तोड़कर एक महानदी में मिल रहे थे। यह महानदी

है सभी इकाइयोंको अपने में समानेवाली भारत की राष्ट्रीय एकताकी गंगा! संसार के सभी बडे और संगठित राष्ट्र, ऐसी एकता के पहले,–या यों कहिए कि उसी एकता के लिए, गडबड, मतभेद तथा आपसी वैरभाव-बीच की इन अनिवार्य अवस्थाओं से गुजरे हुए हैं। जब इटली, जर्मनी और इंग्लैंड क्रमसे रोमनों, सॅक्सनों और नॉर्मनों के अधिकार में थे तब वहाँ कितने आपसी झगडे थे इसपर ध्यान दिया जाय तथा उन राष्ट्रोंके वंशों, धर्मों तथा प्रांतोंके बीच चलनेवाली घोर शत्रुता को देखा जाय तथा आपसी प्रतिशोधमें होनेवाली राक्षसी यंत्रणाओं पर गौर किया जाय तो इनके सामने भारत की फूट तो एक छिछोरी बात मालूम होती है। उपर्युक्त देशोंने उनमें रहनेवाले भिन्न भिन्न लोगों की एकता आपसी झगडों की भट्टीमें तथा अत्याचारी विदेशी शासन की आगमें गला कर, अब अटूट बना डाली और वे शक्तिशाली राष्ट्र बन गये हैं इस वास्तविकतासे कौन इनकार कर सकता है?

इसी ऐतिहासिक विकास–प्रक्रियासे भारतभूमिमें भी, यहाँ बसनेवाले भिन्न मानव वंश तथा वर्ण एक साँचेमें ढलकर एक–राष्ट्रीयत्वका उदय हो रहा था। अंग्रेजी पराधीनताकी घटीमें उत्तर भारतीय जनताकी आपसी फूट चकनाचूर हो गयी, और उसीसे अत्याचारी शासनको उखाड फेंकनेको उसमें प्रेरणा हुई। किन्तु उस समय इस राजकीय दासताका रूप तथा उसका घोर परिणाम पूरीतरह जॅंच जानेके लिए दस वर्षोंका समय भी पर्याप्त न हुआ। और इसीसे सिक्ख तथा जाट उस महान् राष्ट्रीय बनावकी प्रक्रियाको समझ न सके, जिससे संयुक्त भारतीय राष्ट्रके निर्माणमें उन्होंने कुछ भी भाग न लिया। *

---

* (स.२६) सर जॉन लॉरेन्स २१ अक्तूबर १८५७ के एक पत्रमें लिखता है:–" सिक्ख यदि हमारे विरुद्ध क्रांतिकारियोंसे मिल जाते तो हमें बचाना मानवी पहुँचके बाहरकी बात होती। किसीको आशाही न थी, कोई इसे भॉंप नहीं सकता था, कि अपनी गॅंवायी हुई राष्ट्रीय स्वाधीनताको हडपनेवालोंका प्रतिशोध लेनेके मौकेसे लाभ न उठाया जायगा, ये लोग इस लोभको संवरण करेंगे।"

पञ्जाबके अंग्रेजी शासकोंने क्रांतिकी इस कच्ची कडीको ठीक पहचाना और बडी चतुरतासे उन्होंने इस बातसे पूरा लाभ उठाया। उन्होंने सिक्ख और जाटोंको मुसलमानोंके विरुद्ध उभाडनेकी कुटिल कारवाई की। सिक्खोंमें किसी समय फैली हुई भविष्यवाणीका स्मरण जान बूझकर उन्हें कराया गया। भविष्यवाणी यह थी कि, जिस स्थानमें मुगल सम्राटोंने सिक्खोंके गुरुओंका कत्ल किया, उसी राजधानी दिल्लीपर सिक्ख एक दिन चढाई करेंगे, वहाँके सिंहासनको मटियामेट करेंगे। अंग्रेजोंने 'खाल्सा'ओंको यह बताना शुरु किया कि वह दिन अब आ लगा है, भविष्यवाणी सच निकलेगी। किन्तु, हाँ यदि अकेले सिक्खही दिल्लीपर चढाई करें और उसे जीतें, तो अंग्रेजोंको क्या लाभ? हाँ, बहादुरशाहके स्थानपर रणजीतसिंह आ-जायगा बस! किन्तु बहादुरशाह और रणजीतसिंह दोनोंको अंगूठा दिखाकर स्वयही दिल्लीके सिंहासनपर बैठनेका जिनका प्रमुख मन्तव्य था, उन्होंने इस भविष्यवाणीमें और थोडा घुसेड दिया हो तो वह स्वाभाविक था। यह परिवर्धित भविष्यवाणी कहती थी सिक्ख दिल्लीपर हमला करेंगे मुगल सिंहासन मटिया मेट हो जायगा। किन्तु हाँ, खाल्सा सिक्खों और ताम्रमुखों (गोरे) अंग्रेजोंके संयुक्त यतन हीसे होगा! वाहवा! क्या भविष्यवाणी है! सिक्ख इस जालमें फँस और भविष्यवाणी सच्ची निकली। धूर्त अंग्रेजोंने 'गुरुके खाल्सा' की भावुकतासे पूरा लाभ उठाया। दिल्लीके बारेमें सिक्खोंका द्वेष भडक उठे इस लिए झटमूट यह बात फैला दी कि बहादुरशाह की पहली आज्ञा थी, सभी सिक्खोंको कत्ल किया जाय। बेचारा बूढा बहादुर शाह! क्या दुर्भाग्य है। इन्हीं दिनों, सम्राट दिल्लीकी गली गलीमें जाकर पुकारता फिरता था कि 'यह युद्ध फिरंगियोंके खिलाफ है इसमें किसी भी हिंदी आदमीका बाल्भी बाँका न हो' ●

क्रांतिदलके तनतोड प्रयत्न करने परभी सिक्ख अंग्रेजोंसे मिल गये। किन्तु पञ्जाबमें और भी पल्टनें थीं जो केवल हिंदी सिपाहियोंकी बनी थीं। उन्होंने अंग्रेजोंसे लोहा लेनेका निश्चय किया था और योग्य अवसर की ताकमें थे। इन पल्टनोंके सिपाही ही केवल स्वातन्त्र्यके लिए प्रतिज्ञाबद्ध

● मेटकॉफ

न थे, वरच-सेना के बाहर के हजारों लोग क्रातिका मत्र सब ओर फैलाने को कटिबद्ध थे इसीसे, मियॉमीर के सिपाहियोंको निःशस्त्र बनाने पर भी, अग्रजोको बहुतही जल्द मालूम हो गया, कि जिस भूमिको कडी जान कर वे उस पर डटे हैं वह अदरसे सेध लगकर पोली बन गयी है। लाहौर तथा अमृतसर के दो किले यद्यपि सुरक्षित थे, फीरोजपुरका गोला-बारूदका केन्द्र बहुत ही असुरक्षित था। कही विद्रोही सिपाही उसपर कब्जा करनेके जतन तो नहीं कर रहे हैं? इसे आजमानेके लिए १३ मईको सिपाहियोका एक सचलन तय हुआ। किन्तु सचलनके समय सैनिक इतनी शान्तिसे पेश आये कि उनके कलेजेको चीरनेवाले ज्वलन्त प्रतिशोधका सुराग अंग्रेजोंको रचभी न मिला। इसलिए उन्हे निःशस्त्र करने का विचार रद हुआ। हॉ, दो पलटनोंको अलग किया गया। एक पलटनको सचलन करते हुए बाजारोंमे घुमाया गया। हॉ, इन बाजारोंमे आजकल क्या सौदा हो रहा है इसकी अग्रेजोको थोडेही कल्पना थी? ग्राहक और व्यापारी दोनोंके प्रचारसे सिपाहियोंमे स्वाधीनताकी लहर खूब जोर मार रही थी। बाजारोंसे सचलन करते हुए निकल जानेपर सिपाहियोंने अपनी हिचकिचाहट, सदेह-शीलता आदि तजकर एकही पक्का निश्चय कर लिया। उसी क्षण 'हर हर महादेव 'का नारा बुलद हुआ और तब फीरोजपुरका शस्त्रागार सँभालना असम्भव हो जानेसे अंग्रेजोंको उसे जलानेके बिना कोई चारा न रहा। इसके बाद जिस दिल्लिका राष्ट्रीय झण्डा सब भारतवासियोको उसके नीचे खडे हो जानेका निमत्रण देनेके लिए लहरा रहा था, उसी दिल्लीकी ओर द्रुतगतिसे दौड पडे। इसी समय फीरोजपुरकी जनताने बलवा कर दिया ओर अंग्रेजोंके बगलों, डेरो, क्लबघरो तथा गिरजाघरों को जला दिया गया। गोरोंका शिकार करनेके लिए लोग घूमने लगे। किन्तु मेरठसे तारद्वारा चेतावनी मिलनेके कारण सब गोरे बारिकोंमें छिपे रहे। सिपाहियोकी टोहपर रहे गोरे सैनिकोंने जो मिले उसे तलवारके घाट उतारा और कुछ दूरी तक उनका पीछा कर अपनी अविचारी कत्लेआम तथा पैशाचिक अत्याचारोंकी शेखी बघारते हुए गोरे सैनिक लौट पडे।

क्रातिकारी सेनाके समान सीमोत्तर प्रातके अफगानी जगली गिरोहोंकी भी धाक अंग्रेजोंपर जमी थी। १८५७ की क्रातिका प्रचार

गुप्तरूपसे बहुत जोरसे होता था तब लखनऊकी एक गुप्त संस्थाने काबुलके अमीरसे सहायताकी प्रार्थना की थी। १८५५ में फॉरसीथके हाथ लगे एक पत्रसे यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि लखनऊके मुसलमान अमीर दोस्त मुहम्मदसे संबंध जोडनेमें मगन थे। उस पत्रमें लिखा है "अवधपर तो अब दखल हो चुका, हैदराबादकी भी यही गत होगी, तब मुसल्मानी आधिपत्यके नामपर कुछ भी न बचेगा। समयपर ही इसका इलाज होना चाहिये। यदि स्वराज्यके लिए लखनऊके लोग बलवा करें तब,अमीरसाहब, हम आपसे किस प्रकारकी सहायतापर भरोसा रख सकते हैं?" लखनऊके इस पत्रके उत्तरमें राजनीतिज्ञ अमीरने इतनाही कहा कि उसपर विचार होगा। किन्तु अनुकूल अमीरसे इंग्लैंडने पहलेही मित्रता की संधि कर ली थी। अमीर से अधिक पेशावरके पास मुसलमानी गिरोहों का ही भय अंग्रेजोंको लगता था। इस सीमान्तर प्रदेशमें कुछ मुल्लाओं को भेज दिया गया। इनका काम था, उन टोलियोंमें उस विचार को फैला देना कि अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह न किया जाय। पेशावरके पास होनेवाले सभी अंग्रेज अफसर तबतक सब धैर्यशील, राजनीतिज्ञ तथा मँजे हुए सिपाहीये उन्होंने इस आगामी संकटको भाँप लिया और बड़े कष्ट उठाकर ही जॉन लॅरेन्सके पिट्ठू निकल्सन, एडवर्डस् तथा चेम्बरलेन, इन अंग्रेज अफसरोंने तुरन्त इलाज कर उस संकटको टाला। पहले उन्होंने उन पठानोंके गिरोहोंको अपनी सेनामें भरती करनेकी ठानी। ये पठान पैसेके लालची होते हैं इस लिए अंग्रेजोंने उन्हें रिश्वत देना चाहा। इस तरह इन गिरोहोंको खरीद कर पंजाबमें भुखमरी अशान्तिको दबानेके लिए इनकी गश्ती पलटनें बनायीं।

पेशावरके साहसी गोरे अफसरोंने पहली चोट करनेकी दृष्टिसे सैनिकोंको निःशस्त्र करनेका दाँव किया। किन्तु अंग्रेज सेनानी तथा अन्य सेनाधिकारियोंको अपनी पलटनोंके सिपाहियोंपर लद जानेवाले अपमानके बारेमें बड़ा दुख होता रहता था। कारण यही था, कि १८५७की क्रांतिका संगठन इतने गुप्तरूपसे किया गया था कि गोरे अफसर भरोसा नहीं कर सकते थे कि उनके मातहत कोई क्रांतिदलके सिपाही होंगे फिर भी कॉटन

और निकल्सनने २१ मईको गोरी पलटनके पहरेमें इन हिंदी सिपाहियोंको खडाकर शस्त्र रख देनेको कहा। इस अचानक अडचनमें फँस जानेके कारण सैनिकोंने चुपचाप हथियार डाल दिये, उनके अफसर इस अकारण अत्याचारको चुपचाप देखना सहन न कर सके। उन्होंने भी अपने हथियार तथा अपने तमगे और फीतें फेंक दीं और सरकारको गालियाँ देते हुए सिपाहियोंके साथ हो गये।

पेशावरकी पलटनके हथियार डलवानेपर होतीमर्दानकी ५५ वीं पलटनपर यही प्रयोग करनेका मौका अंग्रेजोंके हाथ लगा। पंजाबके प्रांताधिकारी पूरी तरह जान गये थे कि यह पलटन क्रांतिदलके फँदेमें फँस चुकी थी। किन्तु स्थानीय सेनाधिकारी स्पाटिस्वुड सरकारी संदेहको ठीक न मानता था। वह आग्रहसे जताता कि उसके सिपाही कभी विद्रोह न करेंगे। किन्तु, तिसपर भी, सरकारने सैनिकोंको निःशस्त्र बनानेके लिए उसे दबाया। कर्नल स्पाटिस्वुड इससे बडा चिढ गया, और जब मई २४ को सैनिकोंके नेताओंने उसे पूछा कि "पेशावरसे गोरी पलटन हमपर चढ कर आ रही है क्या?" तब उसने यों ही अगड बगड उत्तर दिया जिससे सैनिक कुछ नाराजसे हुए और लौट पडे। पेशावरका दृश्य दुहरानेके लिए, इन सिपाहियोंके हथियार डलवानेके लिए, सचमुच पेशावरसे एक गोरी पलटन चल पडी थी। सिपाहियोंकी मानहानिका यह दुष्ट और क्षोभकारी प्रसंग देखना पसंद न होनेसे कर्नल स्पाटिस्वुडने अपने कमरेमें जाकर आत्महत्या कर ली! इसकी खबर पहुँचतेही ५५ वीं पलटनने सरकारी खजानेपर हमलाकर अपने शस्त्र और झण्डे उठाये, और पैसा लूट लिया तथा पराधीनताके बानेको लाथसे ठुकराकर दिल्लीके रास्ते चल पडे। किन्तु दिल्ली पास थोडेही था! गोरे सैनिकोंकी नाकाबंदीको तोडते हुए, पूरा पंजाब रौंदते हुए चले जाना था। साथ एक अंग्रेजी पलटन उनका पीछा करती थी, सो अलग! इस दशामें विजयकी आशा समाप्त मानकर वे आपसमें कहने लगे 'पेशावरके सैनिकोंके समान उन्होंने भी हथियार रख दिये होते तो अच्छा होता।' किन्तु सलाह हुई कि पराधीनताकी जंजीरसे जकडे रहनेकी अपेक्षा फाँसीकी रस्सी गर्दनमें कस जाना अच्छा है। फिर यह नारा लगाते हुए कि, 'हम लडते लडते मरेंगे' पीछा करने

मारे अंग्रेजोंका ललकारा और सचमुच ५८ वीं पल्टनके वीरवरों ने स्वदेश और स्वातंत्र्यके लिए हँसकर मौतको गले लगाया। ५५ वीं पल्टनकी हौतात्म्य–कथा अंतःकरणको दहला देनेवाली परम शोक भरी है। अंग्रेजी पल्टनने इनका पीछा इतना बारबार किया था, कि पीछेकी पकड ढीली न करते हुए निरन्तर चौबीस घंटे पीछा दौडाता रहा। सैंकडों सिपाही खेत रहे और बचे हुए लडते लडते सीमाप्रांतके बाहर हट गये। किन्तु वहाँभी उन्हें कौन आसरा देता? पठान गिरोहोंने भी उन्हें बहुत सताया। एक दुका सिपाही मिलनेपर उसे बलात् मुसल्मान बना दिया जाता। इस तरह ये सिपाही स्वधर्मकी रक्षाके लिए लडते हुए, कश्मीरके महाराज गुलाबसिंहजीके आसरेकी आशासे कश्मीरको भागे। पेटमें अनाजका एक कण नहीं, ठंडीसे बचनेको आवश्यक कपडे नहीं तापनेको आग नहीं इस दशामें इन सैंकडों हिंदू सिपाहियोंके लिए सारे भूपृष्ठपर अपने पवित्र धर्मका त्राता कोई न रहा। इस दुःखसे आँसू बहाते और पहाडी प्रदेशको लाँघते कश्मीर जा रहे थे, तब अंग्रेजोंने स्थान स्थानपर आयोजनपूर्वक जंगली जानवरोंके समान बडी निर्दयतासे उनका शिकार किया। तिसपर भी हिंदु तथा हिंदुधर्मका कोई न कोई तारनहार अपनी पुकार सुनेगा इस भोली आशासे कुछ सिपाही इस शिकारसे भी किसी तरह बचकर कश्मीर चले गये। किन्तु हाय सिपाहियोंका यह भ्रम भी अब दूर हो जायगा। कश्मीरके राजपूतवंशी गुलाबसिंहको जब पता चला कि स्वधर्म व मानकी रक्षाके लिए प्रत्यक्ष कालके गालमें कूदनेको सिद्ध ये सिपाही उसके पास आ रहे हैं तब उसने आज्ञा की कि उन सिपाहियोंको कश्मीरकी सीमामें पाँव न धरने दिया जाय! यहाँ तक, कि उस हिंदू नरेशने अंग्रेजोंको अपनी इस महान् करतूतकी खबर दी कि 'यहाँ भी कोई सिपाही कश्मीरकी सीमामें मिले उसे गोलीसे उडा दिया जाय,'—यह घोषणा उसने की है। ओ सैनिको! अब या तो अपने धर्मको छोडो, या गुलामी या मौत पसंद करो। शाबाश वीरो! तुमने मौतही पसंद कीया! इन सैनिकोंकी इतनी क्रूर कत्ल अंग्रेजोंने चलायी थी कि मैदानोंमें गडे हुए फाँसीके तख्ते, हिंदूरक्तके लगातार अभिषेकसे भीगे, सडने लगे थे तब भी अंग्रेजोंकी पिपासा शान्त न हुई। कायम बन वधस्तंभभी इस कामसे ऊब गये, तब

तोपोंने अपने मुँह आगे बढाये और ५५ वी पलटनके जिन सिपाहियोंने अंग्रेजी खूनका एक बिंदुभी नहीं गिराया था, उनसे बचे हुओंको तोपके आगे बॉधकर उडा दिया गया! " हजारो हिंदू इसतरह एक क्षणमे जमराजके घर पहुँचाये गये, किन्तु आखिर दम तक "—उस भयकर रक्तपातसे लज्जित अंग्रेज इतिहासकार गवाही देता है–" ये क्रातिकारी अत्यत धीरज तथा शान्तिसे हँसते हँसते मर जाते, हॉ, अग्रेज जल्लादोंसे आग्रहसे कहते कि फॉसीके फदेमे लटकाकर कुत्तेकी मौतसे मारनेकी अपेक्षा वीरोके समान हमे तोपसे उडा दो। "

असभ्य जगली जाति भी जिसपर लज्जित हो, उस तरीकेसे शूरवीरोका कत्ले आम अंग्रेजोंने किया। इसपर यह स्पष्ट सम्मति देते हुए भी, कि 'यह काम निःसदेह क्रूरताका था' सब अंग्रेज इतिहासकार शेखी बघारते है कि, " यह तात्कालिक क्रूरता केवल मानवताकी सदाके मगलके हेतु थी। " वाह! मानवताके मगलमें यह राक्षसी क्रूरता थी! अग्रेज इतिहासज्ञो, इस अपने वाक्यको फिर न भूलना! 'घडीभरकी क्रूरता और सदाका मानवताका मगल!' इस वाक्यका सच्चा अर्थ तुम्हे ज्ञात है? किन्तु, ध्यान रहे, आगे चलकर इस अर्थको भूल न जाना। हॉ, तो मानवताके मगल की शुभकामनाके हेतु यह बर्बरताका बरताव किया था, तुमने? बहुत अच्छा। किन्तु तुम जानते हो न, उधर कानपुरका हिंदुवीर नानासाहब है?

और एक बात कहना आवश्यक है। जो अग्रेज ग्रथकार क्रातिकारियोंसे हुई हत्याओंको भडकीले रगमे रगानेमें एक दूसरेसे, मानों, होड लगाते है, वेही महाशय, उनके ही देशबधुओंसे किये अक्षम्य और अमानुष अत्याचारोंके बारेमे कुछ भी न लिखते हुए जानबूझकर निर्लज्ज मौन रखते है। इन अभागे, किन्तु देशप्रेमसे छलकते, सैनिकोंको कत्ल करनेके पहले अग्रेजोंने उनको और क्या क्या यत्रणाएँ दी होगी भगवान् जाने? क्यों कि अग्रेज इतिहासज्ञोंने इस प्रसग ही को इतिहाससे काट दिया, जानबूझकर उसका जिक्र टाल दिया। 'के' स्पष्ट कहता है " अग्रेज अफसरोंके किये भयकर क्रूर करतूतोका पूरा प्रमाण देनेवाले अनगितन पत्र मेरे पास हैं; फिर भी आगे चलकर यह विषयही ससारके सामने न रहे इस लिए एक

भी अक्षर न लिखना ही अच्छा रहेगा।" क्या खूब! इसे कहते हैं इति-हासकार! जिन गोरोंने दिल्लीके मार्गपर मिलनेवाले हर देहातीके मुँहमें बलपूर्वक गोमांस ठूँसा, उन्होंने इस ५५वीं पल्टनके सिपाहियोंको तोपोंसे उड़ा देनेके पहले उनके मुँहमें बलपूर्वक गोमांस ठूँसकर उन्हें भ्रष्ट न किया हो, इसका हमारे पास क्या प्रमाण है?

पेशावरकी ओर जब ये क्रूर और अमानुष घटनाएँ हो रही थीं तब इधर जालन्धरमें क्रान्तिकी ज्वाला भड़क उठी थी। जॉन लॉरेन्सने पंजाबके आम सिपाहियोंको निःशस्त्र करनेका क्रम जारी किया था। फिलौर और जालन्धरमें अबतक यह काम हो जाना चाहिये था, किन्तु वहाँके सैनिकोंका सराहनीय संयम तथा संगठनक्षमताके कारणही यह संकट दूर रहा था। जालन्धर छावनीके इन सिपाहियोंने अपने अन्य पंजाबी भाइयोंके समान षड्यंत्रकी सिद्धता कर रखी थी। दिल्लीकी चढ़ाईमें भर्ती बने एक देशभक्त हविल्दारके कथन तथा अन्य सरकारी कागजपत्रोंसे स्पष्ट होता है कि 'जालन्धर छावनीमें एकही क्षण सार्वत्रिक बगावत कर देनेकी सिद्धता हो चुकी थी। योजना यह थी, जब जालन्धरसे एक दल होशियारपुर भेजा जायगा तब ३६ वीं पैदल पल्टन बगावत कर फिलौरकी ओर जाय इसके वहाँ पहुँचते ही फिलौरकी ३री पल्टन विद्रोह करे और दोनों मिलकर दिल्ली चल पड़ें। अन्य स्थानोंमें भी यही तरीका निश्चित था। किन्तु दुर्भाग्यवश शत्रुको पहले सूचना मिल जाती। हाँ, फिलौरवाली पल्टनने अन्ततक अनोखी गुप्तता रखी थी। दिल्लीके घेरेवाली कंपनी तथा उसकी सामग्रीकी धज्जियाँ उड़ा देना फिलौरवालोंके लिए आसान था। किन्तु सर्वसम्मत कार्यक्रममें किसीतरह बाधा पैदा न हो इस लिए योग्य समयकी राह देखते हुए अन्ततक यह पल्टन चुप रही। निदान सर्वसम्मतिसे निश्चित ९ जून का दिन आते ही जालन्धर क्वीन्स रेजिमेंटके प्रमुख कर्नलका बंगला जला दिया गया। इस इशारेसे जालंदरके सिपाहियोंने आधी रातको बलवेकी तुरही बजायी। वैसे तो उस समय कुछ गोरी पल्टनें और तोपें तैयार थीं, किन्तु इस आकस्मिक और सर्वसम्मत सार्वत्रिक बलवेने तथा सैनिकोंकी भीषण घोषणाओंने अंग्रेजोंके होश उड़ गये। अंग्रेज पुरुष, स्त्री, बच्चा सुरक्षित स्थानमें पहुँचनेके लिए भागा।

ऐसे मामूली लोगोंकी हत्या करनेका अवकाश जालंदरके सिपाहियोंके पास था ही कहाँ ! दिल्लीपर नये फहराये स्वातंत्र्यके झण्डेपर अंग्रेजी तोपे निशाना साधे खडीं होनेसे हरएक दिल्ली जानेको छटपटा रहा था। जब ॲडज्युटट बॉगशॉने अकारण मुँह/चलाया तब एक सवार दौड ,आया और उसने उसे गोलीसे उडा दिया। अंग्रेजोंका अन्ततक सैनिकोंपर भरोसा था और अपने प्राताधिपतिको उनके शस्त्र डलवानेकी आवश्यकता न होनेकी बात भी लिख भेजी थी। और यह विश्वास उचित भी था। क्यों कि, सिपाहियोंने कत्ले आम करने का तो टालही दिया, साथ साथ जो अंग्रेज अबतक वहाँसे भाग न सके थे उन्हें भी न छेडा। इस तरह जालंदरकी सेनाने अपना कार्यक्रम सुयोग्य रीतिसे पूरा किया। जिन अंग्रेज अफसरोंने उनका भरोसा किया था उनके प्राणोंको कोई धक्का नहीं पहुँचाया गया। इस तरह अपनी सभ्यता का सैनिकोंने परिचय दिया।* यद्यपि सरकार

---

* अंग्रेजोंने एक कल्पित अत्याचारकी कहानी गढकर उसे 'कलकत्तेकी काली कोठरी' (ब्लॅक होल) का नाम दिया है और इसपर विश्वास कर भोला संसार अंग्रेजोंके कुटिल मस्तिष्ककी इस उपजपर सिराज उद्दवलाको शाप देता रहता है। हाँ, एक काली कोठरीकी सच्ची कहानी सुनकर आपके काटो तो खून नहीं वाली दशा होगी और वह भी उस दुष्टके शब्दोंमें है जिसने उसका आविष्कार किया। "हथियार डालने पडेंगे इस भयसे भागनेवाले कुछ सिपाही, जो अंग्रेजोंके निशानेसे बचकर भागे थे, पंजाबमें अजनालेके पास एक टापूमें छिपे हुए थे। इन २८२ अभागोंको पकडकर श्री. कूपर अजनाले ले आया। अब इनका क्या करें, उसके सामने यह प्रश्न था। उनका न्याय करनेके लिए उनको केन्द्रमें पहुँचानेके साधन उसके पास कहाँ थे? उसने स्वयं सबको देहान्तका दण्ड दे दिया होता तो अन्य पलटनें तथा विद्रोही क्रांतिकारियोंपर आतंकछा जाता और आगामी रक्तपात टल जाता, इसलिए 'एक बडे दायित्वको उठा लेनेका ज्ञान उसे होते हुए भी उसने सबको कत्ल करनेका फैसला कर डाला। उसके अनुसार दूसरे दिन सवेरे दस दसके जत्थेमें बंदियोंको खडाकर सिक्खोंद्वारा उनपर गोलियाँ चलायीं। इस तरह २१६का तो काम तमाम हो गया।

और सरकारी कर्मचारियोंने इन सिपाहियोंसे सभ्य बर्ताव किया था और सिपाही भी इसके लिए कृतज्ञता प्रदर्शित करते थे, फिरभी इन संबंधोंको उन्होंने राष्ट्रीय कार्यमें आड़े कभी न आने दिया और स्वदेश और स्वाधीनताकी बुलावा आनपर इन्हीं सिपाहियोंने राष्ट्रकार्यमें अपना सर्वस्व हवन कर दिया।

रातही रात, बलवा करनेके पहले फिलौरके सैनिकबंधुओंको सूचना देनेके लिए एक सवारको भेजा था। जालन्दरसे इस सवारके पहुँचते ही फिलौरने विद्रोह कर दिया। अब जालन्धरवाले फिलौर पहुँच जानेकी बाट रही थी। हाँ, यह कोई आसान काम नहीं था। क्यों कि, अंग्रेज रिसाले तथा तोपखानेको बुलावा देकर उन्हें निकलना चाहिये था। किन्तु अंग्रेजी सेनामें यह गड़बड़ी और जलदी मची थी, वहाँ क्रांतिकारियोंका कार्यक्रम निश्चित तथा अनुशासनपरक था, जिससे जालन्धरवाले सैनिक किसी अशान्तिके बिना फिलौर पहुँच गये। अपने हजारों साथियोंको स्वागत करनेको फिलौरके सैनिक बहुत बड़ी संख्यामें आगे बढ़े। एक दूसरेसे गले मिलनेके बाद अपने हिंदी अफसरोंके नेतृत्वमें

किन्तु फिर भी अबतक ६६ लोग तहखानेके कच्चे जलमें ठूँस पड़े थे। प्रतिकार होनेकी सम्भावनाको महसूस करते हुए भी कूपरने उस बलफ द्वार खोलनेकी आज्ञा दी। किन्तु, आश्चर्य! कोठरीसे किसी हलचलके चिन्ह न देख पड़े। अंदर झाँकनेपर मालूम हुआ कि ६६मेंसे ४५की लाशें जमीनपर फड़क रही थीं। कूपरको इसका कारण अज्ञात था कि उस कोठरीके सभी झरोखे पक्के बंद थे, जिससे यह कोठरी सचमुच काल कोठरी (ब्लॅक होल) बनी थी। बचे हुए लड़नेवाले २१को गोलियोंसे मार दिया गया (१–८–५७) " कूपरने स्वयं दायित्व उठाकर किये इस महत्त्वपूर्ण कामपर अज्ञानी दयावान् सज्जनोंने बहुत शोर मचाया और घोर निंदा की। किन्तु, रॉबर्ट मौंटगॉमेरीने निश्चयपूर्वक कहा कि कूपरके इस कार्यसे लाहौरकी पल्टनोंमें विद्रोहकी भावना फैलनेसे रुक गयी कूपरका काम बिलकुल ठीक था!—होम्सकृत हिस्टरी ऑफ दि इंडियन म्यूटिनी पृ ३६१

यह सयुक्त सेना दिल्लीको चल पडी। बीचमें एक नदी थी उसके परले काठे इन शूर वीरोंके चरण चूमनेको लुधियाना नगरी तडप रही थी। उसी दिन सबेरे अग्रेज अधिकारियोंको जालदरके विद्रोहकी खबर तारद्वारा पहुँचायी गयी थी, किन्तु वह उन्हे बडी देरीसे मिली। वहाँ के अफसर महसूस कर रहे थे, कि सिपाहियोंको काबूमे रखना दूभर है। क्यों कि, उन्हे तारसे खबर मिलनेके पहले सिपाहियोंको जालदरवाले अपने साथियोंके निकलनेकी खबर पहुँच चुकी थी। फिलौरसे आनेवाले इस टिड्डीदलको लुधियानेके इस ओर सतलजपर रोके रखनेका चतुर इरादा लुधियानेवाले अग्रेज अफसरोंने किया। और उसके अनुसार पुलको उध्वस्त कर, अग्रेज, सिक्खों और नाभानरेशके सहायक दलोंके साथ, नदी किनारे पहरा भरने लगे। क्रातिकारियोंको यह खबर पहुँच गयी तब ४ मील ऊपर जाकर रातमे उन्होंने नदी पार करना शुरू किया। नावोंमे कुछ पार पहुँच पाये थे कुछ आ रहे थे, कुछ अपनी बारी की राह देख रहे थे, तब अग्रेजों और सिक्खोंने उन-पर तोपोंकी बौछार की। रातको लगभग १० बजे क्रातिकारियोंको गोरे सैनिकोंके ठिकानेका पत्ता ही न लगने पाया। ऐसी बाँकी दशामें अग्रेजों तथा सिक्खोंने तोपों की आडमे धावा बोल दिया। आक्रमणका जुस्सा धीमा पड जानेपर क्रातिकारियोंने रचभी न हटते हुए शत्रुओंपर गोलियोंकी वर्षा कर दी। अंग्रेजोंके अनपेक्षित हमलेसे सिपाहियोंमें कुछ अस्तव्यस्तता आ गयी थी, फिर भी दो घटोंकी लडाईके बाद अपनी पाँतको सिपाहियोंने ठीक कर लिया। इतनेमें एक सैनिककी गोली सीधी अग्रेज सेनापतिकी छातीमें घुस गयी और विलियम वहाँ ढेर हो गया। उसी समय आधी रातके घनघोर तम–पटलको चीरकर इन स्वातत्र्योपासकों के सिरपर अपने हिमशीतल ज्योत्स्नारसकी वर्षा करनेके लिए धवल चद्रमा आकाशमे प्रकट हुआ था। इस चादनीमें अंग्रेजोंके सभी डाँवपेंच क्रातिकारियोंके सम्मुख खुल गये; तब उन्होंने गोरोंपर जोरदार धावा बोल दिया। इस प्रखर प्रहारके सामने डटे रहना असम्भव होनेसे अग्रेजसेना तथा उनके निष्ठावान् सिक्ख सैनिकोंने तुरन्त पिछे हटकर अपनी खैर मनायी।

अग्रेजों तथा सिक्खोंकी सयुक्त सेनापर प्राप्त विजयसे उत्साहित होकर क्रातिकारी सिपाही दो पहरतक लुधियाना नगरमें पहुँच गये। यहाँ एक

मौल्वी 'अंग्रेजोंकी दासताकी शृंखलाको तोड़कर स्वराज्यकी स्थापना करो' यह मंत्र लोगोंको पढा रहा था। मौल्वीके प्रचारके कारण लुधियाना पंजाबके क्रांति-रक्का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। 'पराधीनताकी बेडियोंपर अब आखिरी प्रहार करनेको आगे बढो' यह सूचना पातेही सारे नगरमें 'जय क्रांति'की गर्जनाएँ गूँज उठीं। सरकारी गुदाम लूट, जलाकर भस्मसात् कर दिये गये। गोरोंके गिरजाघर, बंगले, समाचार पत्रके कार्यालय तथा मुद्रणालय-सब कुछ जला दिया गया। अंग्रेजोंके मकानों तथा खासकर अंग्रेजोंके सामने दुम हिलाकर पेट पालनेवाले देशी लाचार 'कुत्तों' सिपाहोंको ठीक बता देनेके लिए यहाँके नागरिक सिपा हियोंके साथ चलनेमें स्पर्धा कर रहे थे। धर्मशालाएँ तोड दी गयीं। जो चीज सरकारी या अंग्रेजोंके अधिकारकी मिले उसे जला दिया जाता था। जो जल नहीं सकती थीं उन्हें समतल कर दिया जाता। मतलब, सारी लुधियाना नगरी क्रांतिकी ज्वालासे चमक उठी थी।

हाँ, किन्तु क्रांतिकारियोंका दिल्ली जाना बहुत आवश्यक था। लुधि यानेका किला तो पंजाबकी कुंजी ही थी और उसपर पूरा कब्जा रखना सैनिक दाँवपचों तथा नैतिक विषयकी दृष्टिसे बडा हितकर साबित होता और दिल्लीके समान लुधियानाभी क्रांतिका केन्द्रीय कार्यालय बनता, तो उससे अंग्रेजी राजसत्ताको बडा धक्का पहुँचता। सिपाही इन सब बातोंको अच्छीतरह जानते थे, किन्तु उस परिस्थितिको देखते हुए उनका यहाँ रहना बड़ा कठिन हो गया था। क्यों कि, यहाँ उनका कोई नेता न था और ये रहे सीधे सिपाही। उनके पास गोलाबारूद भी न था। ऐसे बाँके समयमें लुधियानेमें नानासाहब, खान बहादुर खाँ या मौल्वी अहमदशाह जैसा कोई नेता होता तो किसीभी दशामें लुधियानेको कब्जेमें रखा होता। किन्तु, अब यहाँसे दिल्ली जानेके बिना कोई दूसरा चारा न था। इसीसे, यह नारा लगाते हुए, कि 'स्वाधीन या पराधीन'? इस प्रश्नका उत्तर अब दिल्लीकी किलाबंदी देगी वे दिल्लीको चल पड़े। अंग्रेजोंके तो हाथ पाँव फूल गये थे। सिपाही दिनदहाड़े दिल्लीका मार्ग तय कर रहे थे, फिर भी उनका पीछा करनेकी सूचना करनेकी हिम्मत भी किसीने न दिखायी।

मेरठके भलवेके बाद लगभग तीन सप्ताह तक क्रांतिदलमें जो शिथि

लता, अवश होनेसे, आ गया थी उससे पूरा लाभ पजाबके अंग्रेजोंने उठाया। क्यों कि उस समय पजाबमे अंग्रेजोंकी प्रबल सेना होनेसे सिपाहियोंसे हथियार डलवाना या कठिन स्थल-काल-स्थितिमें विद्रोह करनेको मजबूर करना अंग्रेजोंके लिए आसान हो गया। यह देखकर, कि सिक्ख नरेश तथा उनकी रियाया क्रातिकारियोका साथ न देकर अपनी सहायता कर रही है, पजाबके सभी भारतीयोंको सीमाप्रान्तसे अंग्रेजोंने भगा दिया और उस दिशामें क्रातिका बीज व्यर्थ कर डाला। इस समय, न केवल सिपाहियोंको, बल्कि देहातियो, हजारो सभ्य तथा प्रतिष्ठित भारत-वासियोंको मात्र अफसरोंकी सनकपर ही सीमापार किया गया। इस प्रकार सब पंजाब निरापद हो गया तब दिल्ली की दिशामे गोरी सेनाको बडी मात्रामे भेजा जाने लगा। पजाब अग्रेजके अधीन क्यों रहा? इसके दो कारण है। एक सिक्खोंने उनकी अनमोल सहायता की। सिक्ख यदि तटस्थ रहते तो अग्रेज एक दिनके लिए भी पजाबको अपने हाथमें न रख पाते! ऐसे तो क्रातिकारियोने भी सिक्खोंको अपनी ओर कर लेनेके लिए अनथक जतन किये थे। दिल्लीके स्वतत्र होते ही सम्राटके एक विश्वासपात्र सेवकने पजाबके उस समयकी गतिविधिका चित्र खडा कर देनेवाला बडा लम्बा, ब्योरेवार तथा आकर्षक पत्र भेजा था। इस पत्रमे यह विश्वासी ताजुद्दीन लिखता है "पजाबके सभी सिक्ख सरदार आलस् तथा कायर होनेसे क्रातिदलमें उनका आ जाना असम्भव-सा है। वे फिरगीके इशारोपर नाचते है। मैंने स्वय उनसे अलग अलग बातचीत की और मेरा दिल निकालकर उनके सामने रखा। मैंने स्पष्ट पूछा 'तुम लोग फिरगीके पक्षमे होकर स्वराज्य और स्वदेशके द्रोही क्यों बनते हो' क्या, तुम स्वराज्यमे अधिक सुखचैनसे न रहोगे? और तो और, तुम्हारे स्वार्थके लिए ही सही तुम्हें दिल्लीके सम्राट्के पक्षमे रहना चाहिये।" उन्होंने कहा 'देखोजी हम मौका देख रहे है।' सम्राटसे आज्ञा पातेही हम एक दिनमें इन फिरगियों का सफाया कर देगे। मेरी रायमे ये सभी लोग भरौसा करनेको सर्वथा अपात्र है।" और हुआ भी वैसा ही। जब सिक्ख नरेशोंके पास बादशाही खरीता लेकर सवार पहुँचे तों उन्होंने सीधे उन्हें कत्ल कर डाला और इस तरह अग्रेजोको पजाब अपने पजेमें रखना इतना आसान

क्यों हुआ इसका यही पहला तथा महत्त्वपूर्ण कारण है। फिर भी हम कह सकते हैं कि सिक्खोंके इस विरोधका मुकाबला कर अंग्रेजोंको पंजाबसे निकालना असम्भव न था। मई महीनेमें अंग्रेजोंमें जो भी ढीलापन, क्रांतिके अचानक धड़ाकेसे घबरा जानेके कारण, आ गया था, उससे लाभ उठाकर तथा निश्चित कार्यक्रमके अनुसार, एकही समयमें, सब ओर से बलवे की आग पजाबमें भड़क उठती तो सिक्खोंको भी उस धाकसे क्रांतिदलमें शामिल होना पड़ता, कमसे कम उनमें फूट तो न पड़ती तथा हजारों सिपाहियोंको अलग अलग गाँठ कर उन्हें कुचलनेका अवसर अंग्रेजोंके हाथ न लगता। यह कथन, कि पजाबमें स्वराज्य की लगन न थी, बिलकुल ठिक नहीं सकता। थानेसर के विद्वान् ब्राह्मण, लुधियानेके मौल्वी, फीरोज पुरके दूकानदार एव पेशावरके पठान सभी हर गाँवमें जाकर स्वधर्म और स्वराज्यके लिए लड़े जानेवाले इस पवित्र युद्धका प्रचार करते थे। उप युक्त ताजुद्दीन लिखता है, "यदि सम्राट्की ओरसे कोई सेनापति सेनामें आ जाय तो पजाब एक दिनमें स्वतत्र हो जायगा। हर स्थानके सिपाही बलवा कर सम्राट्के झण्डेके नीचे खड़े हो जायँगे और अंग्रेजों को जी बचाना भारी हो जायगा। मुझे विश्वास है कि हिंदु और मुसल्मान दोनों आपके सिंहासनकी वदना करेंगे। और क्रांतिका उत्थान जूनमें होगा तो और अच्छा रहेगा। क्यों कि जेठकी चिलचिलाती धूपमें लड़नेमें तो अंग्रेज गोरोंकी नानी मर जाती है। तलवार की चोटके पहले जल्दे सूरजकी प्रखर किरणों ही से वे तुरन्त मर जायँगे। इस पत्रको देखते ही एक सरदारके मातहत कुछ सेना भेजियेगा।" इस तरह पजाबी जनता का मन दिल्लीकी ओर होते हुए भी क्रांतिकारी उससे लाभ उठा न सके। इसका एक मात्र कारण है, दिल्ली स्वतत्र होनेके बाद तीन सप्ताह तक क्रांतिकी लहरही रोकी गई थी। यदि निश्चित कार्यक्रमके अनुसार सब जगह एक साथ विद्रोह होता तो अंग्रेज इधर उधर कुछ न कर सकते। पजाबमें अकली पड़ी निर्बल पलटनोंसे कभी हथियार न डलवा सकते, क्रांतिकी लहर और ऊँची उठती और हिचकिचाते तथा किनारा कसने सिक्खों जैसे लोग उस रेलामें बह जाते क्रांतिके ऐसे वैभवशाली और यशस्वी प्रारभसे चौंधिया कर अबतक, क्रांतिसे सहानुभूति रखने परभी

जो लोग अपनी जान लडाकर उसमे शामिल नहीं हुए थे उन्हें भी क्राति युद्धमें हाथ बँटाने की हिम्मत हो जाती और भारत स्वतत्र बन गया होता ! !

मतलब, सिक्खोंके देशद्रोह तथा मेरठके अचानक विद्रोहसे पजाबमें क्रातिकी जडे खोखली हो गयीं। और पजाब तो दिल्लीकी रीढसा होनेसे क्रातिकारियोंकी हिम्मत पस्त हो गयी !

अबतक हम क्रातिकारी सैनिको तथा अग्रेजोंकी पजाब तथा दिल्लीकी गतिविधिका तीन सप्ताहोका वर्णन कर चुके हैं। इन सप्ताहोंमे जो भी हो सके, सिद्धता करनेपर अग्रेज तुले हुए थे। इसीके अनुसार कलकत्तेसे इलाहाबादकी ओर सहायक गोरी पलटनोंका ताँता बध गया था। बहुत बारीकीसे जॉच हो रही थी कि बम्बई, मद्रास, राजपूताना तथा सिंधमे क्रातिदलके विद्रोहको सहानुभूति रखनेवाला कोई है या नहीं। और पजाबके समान ठीक समयपर ही उन सहानुभूति रखनेवालोंका सिर कुचल देनेका प्रबध हो गया था। क्रातिकी सूचना पहलेसे मिल गयी इसके लिए ईसाको धन्यवाद देते हुए अग्रेजोंका यह विश्वास था कि कई स्थानोमे क्रातिकी ज्वालाको बुझानेमें उन्हें सफलता मिली है। इस प्रकार इन तीन सप्ताहोमे अग्रेज अपना सगठन कर रहे थे। जहाँ क्रातिकारियोकी तरफ इधर उधरकी मामूली हलचलको छोड ऊपरसे शेष सब ठढा मामला था। ३० मईको दोनों पक्षोंकी यही हालत थी, किन्तु अब ? परिस्थितिने करवट बदली और अग्रेजोंका आत्मविश्वास चूर चूर कैसे हो गया तथा तीन सप्ताह तक असीम अत्याचार तथा हानिको सहकर भी क्रातिकी ज्वालाएँ फिरसे कैसे भडक उठीं, इस आगामी इतिहासकी ओर अब ध्यान देना चाहिये। **निश्चित नियमोंसे किसीभी क्रांतिका नियमन आज तक नहीं हुआ है।** क्राति कोई अचूक चलनेवाली घडी थोडे ही है ? उसकी गतिविधिकी रीति कुछ और ही होती है। हाँ, एक मोटे सिद्धान्तसे क्रातिका नियमन होता है, बस। छोटे मोटे नियम तो उसके एक धमाकेसे तितर बितर हो जाते है। क्रातिको सूचित करनेवाला एक ही नारा होता है, 'रुकना तेरा काम नहीं, चलना तेरी शान !' कभी तो एकदम अनोखी तथा अनपेक्षित घटनाएँ

क्रांतिके ज्वारमें भी हा सकती है, फिर भी 'आगे बढे कदम' उस अनपेक्षित स्थितिपर सवार हो, लगातार कदम कदम बढाये जाओ। क्रांति एक अजीब पछी है। जिस स्थानमें वह लम्बे अरसेसे बद रहा हो, वहाँसे छूटनेपर अपने मुकाम पर पहुँचनेके पहले, कुछ समयतक आकाशमें चक्कर काटना उसके लिए आवश्यक होता है। इस पछीके परोंपर बैठकर जिसे अपना मन्तव्य पूरा करना हो उसे अपना आसन इस पछी की पीठपर पक्का जमा लेनेकी सावधानी रखनी चाहिये। क्यों कि पहला मुक्त चक्कर काटनेपर जब उसकी पाँखें अपनी स्वाभाविक गतिपर स्थिर हो जाती हैं तब वही उनकी गतिका नियंत्रण कर सकता है, जिसने अपना आसन दृढ जमा रखा हो। मेरठवालोंने भलेही इसे समयसे पहले पिंजड़ेसे मुक्त कर दिया था किन्तु इससे क्रांतिके प्रणेता जरा भी डिगे नहीं थ। हाँ, तो इतिहास–देवता! तुमही बताओ कि नानासाहब, लखनऊ का मौलवी, झाँसीवाली तथा अन्य महान् वीर योद्धा इस गरुडपक्षी की पीठपर इतना दृढ आसन असाधारण कौशलके साथ कैसे जमा सके? और इतिहासदेवता, यह भी बताते न भूलना कि इन वीरोंके समान अन्य भारतीय लोगोंने इस पछीको कसकर न पकडनेसे वह छूट कर कैसे आकाशमें चला गया। पूर्वार्धमें हमारे साथ रहो और उनके उज्ज्वल यशके गीत गाओ; इसी तरह उत्तरार्धमें भी आओ और हमारे साथ, इतिहास–देवता, तुम भी आँसू बहाओ!!

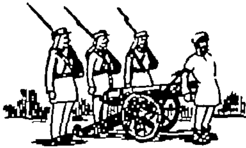

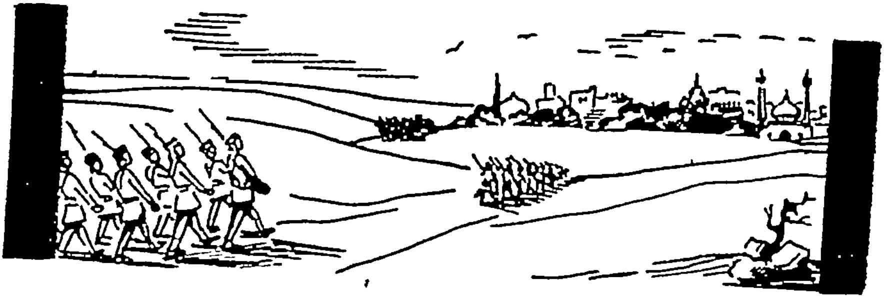

अध्याय ५ वॉ

अलीगढ तथा नसीराबाद

उत्तर–पश्चिमी प्रात, अबाला, पंजाबके अन्यस्थान जिस तरह क्रातिके प्रचड धमाकेसे थर्रा उठे थे, उसी तरह दिल्लीके दक्षिणका भी एक प्रात इस धमाकेसे उत्पन्न लहरियोसे हिल रहा था। दिल्लीके दक्षिणमें अलीगढ ९वीं हिंदी पैदल पलटनकी छावनी थी। इस पलटनकी कुछ कपनियॉ मैनपुरी, इटावा तथा बोलदमें थीं। अंग्रेजोंको इन कपनियोंपर पूरेपूर भरोसा था। भारतभरके सिपाहियोंके विद्रोह करनेपर भी इन कपनियोंके सैनिक बलवा नहीं करेंगे यह वे दावेसे कहते थे। यद्यपि बोलदके बाजारमें गुप्त क्रातिकारी सस्थाओंका दौरदौरा होनेकी खबरें सैनिक अधिकारियोंको मिल जातीं, फिर भी ९ वीं पलटन की राजनिष्ठापर पूरा भरोसा रखकर, उस भ्रममें वे बेखबर सोते रहे।

मई महीनेके प्रारभमें, बोलदके आसपासके गॉवोंने एक वदनीय, सत्यप्रिय तथा स्वातन्त्र्यभक्त ब्राह्मणको चुनकर उसे बोलदकी ओर भेजा। लम्बे डग भरते हुए यह ब्राह्मण जा रहा था किन्तु बोलदकी छावनीमें होनेवाली सफलताको सदेहके हिदोलेपर चढी हुई देखता, तो कभी उसे आशाके पाखोंपर बैठ स्वतत्र सैर करती देखता, इन परस्परविरोधी भावोंसे उसका हृदय बोझल हुआ था। जहॉ अग्रेजोंको बोलदके सैनिकोंपर अनहद विश्वास था, वहॉ मातृभूमि इन्ही सैनिकोंसे बहुत कुछ आशा करती थी। "ये सैनिक मेरे देशबधु है, मातृभूमिको उबारने और स्वधर्मकी रक्षा

करनेके लिए उन्नेकी मेरी बातपर कान नहीं धरेंगे ? स्वराज्यके स्वर्गीय वातावरणमें विहार करनेकी क्षमता वाले इनके विचारोंकी पाँखें पुख्ता है ? भविष्यकी मेरी आशाको टुकराकर क्या ये फिरसे उस गदे काले भीषण पराधीनताके नदीमें चूर आलोटते रहेंगे ? आगामी वैभवशाली हृदयको इनके सामने खोलने मैं आ रहा हूँ किन्तु कहीं ये सैनिक, उनके नशाको तोड देनेके अपराधमें, मुझे दण्ड देनेके लिए अपनही देशबन्धुओंपर हथियार तो नहीं उठाएँगे ? " इस प्रकारकी विषण्ण भावनाएँ अंतःकरणमें उमड पडती थीं तो भी जिसके मुखपर शान्तिका अनोखा तेज लहरा रहा था, वह ब्राह्मण क्रांतिके महान संदेशको लेकर छावनीमें चला गया। वहाँ उसकी अच्छी आवभगत हुई, उसका दिव्य क्रांति–संदेश सुननेमें बडी आस्था प्रकट हुई। बलवे का कार्यक्रम बताते हुए ब्राह्मणने कहा, किसी ब्याहकी धूमधामका मौका देखकर बलवा किया जाय वहाँके अफसरों का कत्ल कर सीधे दिल्लीका मार्ग लिया जाय। अंग्रेजी शासनका अन्त करनेके बारेमें सबकी एक राय होते हुए भी प्रस्तावित कार्यक्रमका अमलमें लानेके विषय पर चर्चा छिडी। दुर्भाग्यवश, उसी समय कंपनीके तीन सिपाहियों द्वारा यह बात मालूम हो जानेसे उस ब्राह्मणको बंदी बनाया गया और उसे पाईंटकी पलटनके केन्द्रमें याने अलीगढको भेज दिया गया। वहाँ उसे सैनिकोंके समक्ष फाँसीकी सजा सुनाई गई। इधर भेदिये तीन राजनिष्ठ इमानदार सिपाहियोंकी मिट्टी पलीत कर गालियाँ देकर निकाल बाहर कर दिया गया। और भोलदके सभी सैनिक, अपने मुख्याधिकारीसे आज्ञा न लेते हुए, असलमें उन्हें लाखों गालियाँ गिनते हुए, उस क्रांति–संदेश–दाता ब्राह्मणके यहाँ, अलीगढको, आ धमके। २० मई सायंकालको ब्राह्मण फाँसी पर लटकनेवाला था। अंग्रेजों की आज्ञा थी, कि सभी सैनिकोंको वहाँ उपस्थित रहना चाहिये। अब इसका क्या इलाज किया जाय? ११ मईतक यदि सिपाही चुप बैठते हैं तो यहाँ ब्राह्मण फाँसीके रास्ते स्वर्ग सिधार जायगा। इस उधेडबुनमें ही सिपाही रह गये और उधर ऊपर उस ब्राह्मणकी आत्मा स्वर्गके मार्गपर चलती हुई दिखायी पडी। और नीचे वधमंचपर उसका जड शरीर, प्रतिशोध का भयकर तथा वक्तृतापूर्ण संदेश देते हुए, लटक रहा था। क्या ही ओजपूर्ण वक्तृता थी! वह धाराबाही धम्टके खोखेके बदले यहाँ

लहूकी बिंदुओंकी धारा बह रही थी। ध्वनि मुँहसे निकलती नहीं थी। ऐसी प्रभावी वक्तृता, वधमचपर मरे हुए ब्राह्मणके मुखसे उसके जीते जी कभी न निकली होगी। क्यों कि, एक क्षणमे उन सैनिकोंसे एक सिपाही आगे आया और अपनी तलवारसे उस कलेवरको चीन्हते हुए बोला " मित्रो। देखते हो यह हुतात्मा खूनसे कैसा नहाया है। " इस शूर सिपाही के मुँहसे निकला यह शब्द–तीर उपस्थित हजारो सैनिकोंके अतस्तलमें गहरा घुसा। बारूदके अबारपर पडी चिनगारीसे प्रस्फोट होनेकी क्रिया भी इसके सामने कुछ मद–सी मालूम होती थी। और उन्होंने अपनी तलवारे उठायीं, क्रोधसे वे पागल हो उठे, और उस धुनमें चिल्ला उठे 'फिरगी राज का अन्त करो'।

इस भयकर ताण्डवको देख अंग्रेज अधिकारियोका कलेजा मुँहमें आ गया हो तो क्या आश्चर्य ! ९वीं पलटनके सबसे अधिक राजनिष्ठ सैनिक केवल उठेही न थे, वे साफ साफ कह रहे थे, कि " यदि अग्रेज अपनी जानसे हाथ धोना न चाहते हो तो वे तुरन्त अलीगढ छोडकर चले जायँ "। इस उदारतासे लाभ उठाकर सब अंग्रेज अफसर, उनके परिवार तथा सपरिवार अन्य गोरे तथा श्रीमती ऑर्टम भी चुपचाप अलीगढसे रवाना हुए। आधी रातमे अलीगढमें अग्रेजी सत्ताका कोई चिन्ह न रहा।

२२ मईकी शामको अलीगढ स्वतत्र होनेकी खबर मैनपुरी पहुँची। हम कह चुके हैं कि ९ वीं पलटनकी एक कपनी वहाँ भी थी। अलीगढके बनावसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मैनपुरीके उन्हींके भाइयोंमें क्या विचार काम कर रहे थे। मैनपुरीके अग्रेज अधिकारियोंको खबर मिली कि कोई राजनाथ सिग, जो अग्रेजोंके विरुद्ध मेरठमें लडा था, जीवती गाँवमे पहुँचा है। इसलिए उन्होंने कुछ सिपाहियोंको उसे गिरफ्तार करने भेजा। किन्तु इन सिपाहियोंने उसे पकडनेके बदले उसे जीवतीसे सुरक्षित बाहर भेज दिया और 'साबको रपट दी' कि उस नाम का कोई आदमी वहाँ नही रहता। रामदीनसिग नामक सिपाहीको अग्रेजोंने अनुशासनभगके अपराधमें, सशस्त्र सैनिकोंके कब्जेमें अलीगढ भेजा था। जब आधे रास्तेपर पहुँचे तो पहरेदारोने उसकी बेडियाँ तोड

जनता की
स्वराज्य निष्ठाने

अिन क्रांतिवीरों को
पैदा किया।

दी और उस जान देकर चुपचाप मैनपुरी लौट पड़े। यह ऊँचे दर्जेके देशभक्त सैनिक पत्रक निश्चित इशारेकी राह देख रहे थे। किन्तु इतनेही खबर अंग्रेजोंको पहुँचकर कहीं वे एकसाथ विद्रोह करनेके पहले उन्हें अशक्त न बना डालें, इसलिए बाहरसे वे इतने शान्त थे कि भारतभरमें सबसे अधिक राजनिष्ठ होनेका प्रमाणपत्र अंग्रेजोंने उन्हें दे दिया था। किन्तु उस ब्राह्मणके दौरेसे पलटन सिपाही ही नहीं अलीगढ़ तहसीलकी प्रजा भी क्रोधसे भड़क उठी थी। इस पलटनीको तहसीलकी बढ़ती अशान्ति दबा देनेके लिये ही मैनपुरी भेजा गया था। जब यह अलीगढ़ लौटी तब वहाँके कसाई और म्यानापन्नाश भी बाजारमें सैनिकोंसे पूछते " फिरंगीका पतला कब करोगे ! स्वाधीनताके लिए कब लड़ना करोगे ? " जिसे कसाई और गुंडे भी करनेको उतावले हो रहे हों उस कामको स्थगित रखना कैसे हो सकता था ?

अलीगढ़ स्वतंत्र हो जानेकी खबर पाते ही मैनपुरी भी उसी दिन उठा। वहाँके क्रांतिकारियों ने भी उनके हाथ लगे अंग्रेजोंको प्राणदान देकर अनगिनत गोला बारूद और शस्त्र हथिया कर ऊँटपर लाद लिये और २१ मईको दिल्ली चल पड़े।

इसी समय इटावेके जिलेमें भी उसी तरह की हलचल हो रही थी। इटावेके कलेक्टर तथा प्रमुख मॅजिस्ट्रेट ॲलन् ओ ह्यूमको मेरठ का संवाद मिला, तब उसने अपने मातहत सहायक मॅजिस्ट्रेट डेनियल की सहायताद्वारा इटावेके इर्दगिर्द मार्गोंकी सुरक्षा साधनेके लिए चुनिंदे लोगोंका एक दल बनाया। १९ मईको मेरठसे आये मुट्ठीभर सैनिकोंसे इस दलकी मुठभेड़ हुई। ठीक ही था, कि मेरठके सिपाही घेरे गये, उन्हें हथियार डाल देनेकी आज्ञा हुई। इस आज्ञापर अमल करने का नाटक उन्होंने पहले स्वीकार किया और एक साथ हथियार उठा कर उन्हें घेरनेवालोंके टुकड़े टुकड़े कर डाले! यह संवाद सब नगर फैल जाय, इसके पहले मेरठवाले सिपाही अपने शस्त्रास्त्रों सहित एक हिंदु मन्दिरमें जा छिपे। इटावेके कलेक्टर ह्यूमको जब पता चला तब डेनियलके साथ कुछ हिंदी सैनिकोंको लेकर उस मन्दिरपर हमला करनेको वह चल पड़ा। ह्यूमको विश्वास था कि छोटी सैनिक टुकड़ीके साथ वहाँ पहुँचनेके पहलेही गाँववालोंने उन मुट्ठीभर सैनिकोंका कचूमर निकाला होगा। किन्तु मंदिरके

पास पहुँचनेपर देखता क्या है, कि गाँववाले उन्हें मार डालनेके बदले उनकी बहादरीकी प्रशसाके पुल बाँध रहे है और उन्हें रसद पहुँचा रहे हैं ! गाँववालोंने यह निमकहरामी की, पर्वाह नहीं हमारे सिपाही और पुलीस तो अब कटिबद्ध होंगे—डॅनियलने सोचा। उसने उन्हें जोरदार हमला उस मदिरपर करनेकी आज्ञा दी और स्वय आगे बढा। किन्तु उसके पृष्ठपोषक कौन है ? हाँ, एक-मात्र एक-सिपाही उसकी आज्ञा मानकर चला ! इस गोरे अफसर तथा उसके 'काले' दासको मदिरके सैनिकोंकी बदूकोंने कबका भुन डाला और गरजते हुए आये ह्यूमसाब मदिरवाले सिपाहियोंको वहीं छोड सिरपर पैर रख कर भाग गये।

मई १९ को, इटावेकी सेनाके विद्रोहकी एक जोरदार अफवाह उठी थी। किन्तु क्रातिदलका प्रमुख केन्द्र अलीगढ होनेके कारण वहाँसे सूचना मिलनेतक इटावेके सैनिक चुप रहे ! ओर मई २१ तक इसे वह निबाहते भी, किन्तु उस ब्राह्मण हुतात्माके लहूने क्रातिकी ज्योति अचानक जला दी। २२ मईको अलीगढके बलवा करनेका सवाद पहुँचते ही इटावेमे विद्रोह हुआ। इस भीषण स्थितिमें अग्रेज अपने बालबच्चोंके साथ जहाँ रास्ता मिले वहाँ भागे। स्वय ह्यूम महाशय भी, केवल सिपाहियोंकी हिंदी उदारतासे हिंदी महिलाके वेशमें भाग सके। * जब ह्यूम के भागनेकी खबर मिली तब इटावा स्वतत्र होनेका समाचार ढिंढोरा पीटकर घोषित किया गया और उसके बाद वहाँके सब सैनिक दिल्लीको जानेवाली अपनी पलटनमें मिल जानेके लिए मार्गस्थ हुए।

इस तरह सारी पलटन एकसाथ उठी। अलीगढ, बोलद, मैनपुरी, इटावा आदि बिलकुल दूरके स्थानोंमें भी खजाना लूटना, स्वातत्र्यकी घोषणा करना, शरणमें आये अग्रेजोंको प्राणदान देना और गोलाबारूद, शस्त्रास्त्र तथा अन्य रसदको जमाकर दिल्लीकी ओर चले जाना आदि कार्यक्रम अत्यत अनुशासनपूर्वक तथा पूरी तरह सपन्न किया गया। अग्रेज जिन पलटनोंको सबके अन्तमें विद्रोही बननेकी सम्भावना मानते थे वेही सबसे पहले बलवा कर मुक्त हो गयीं ! सो किसी, भी परिस्थितिमें अग्रेजोंको शान्ति का विश्वास न रहा।

* रेड पॅम्फलेट खण्ड २, पृ: ७०

अजमेरसे १७ मीलपर नसीराबाद एक गाँव है। यहाँ एक गोरी पल्टन, १० वीं हिंदी पैदल सेना तथा तोपखाना इतना सेनाक्षेमार था। इसी गाँवमें मेरठसे अभी अभी लायी हुई बम्बईके भालाबरदारोंकी पहली पल्टन तथा १५ वीं पल्टन भी यहाँ थीं। इस आखरी पल्टनमें अंग्रेजोंका द्वेष तथा उन्हें भारतसे बाहर भगा देनेकी भावना बहुत गहरे होते जा रहे थे। मेरठके हजारों राजनैतिक प्रचारकोंने मेरठकी क्रांतिस्थापनेके सभी प्रस्ताव नसीराबादके सिपाहियोंको स्वयं आकर समझा। इनका अवसर खो दिया होता तो यह एक अचरजकी बात होती। बम्बईके भालाबरदारों को छोड अन्य सभी सैनिकोंकी एक राय थी। सभी ठीक मौकेकी ताकमें थे। उन्हें २८ मईको यह अवसर मिला। क्यों कि, उसी दिन तोपखानेके सैनिकविभागमें काफी ढिलाई उन्हें दीख पडी। इस लिए इशारा पातेही मेरठकी १५ वीं पल्टनने धावा कर तोपखानेपर कब्जा जमा लिया। उसको वापस लेनेके लिए गोरे अफसर और बम्बई भालाबरदारोंमेंसे कुछ सैनिक टूट पडे किन्तु थोडेही समयमें भालाबरदार समझदारीसे लौट पडे और अंग्रेज अधिकारी वहीं ढेर हुए। न्यूबरीकी तो धज्जियाँ उडीं। कर्नल पेनी और के. स्पाटिस्वुड दोनों मारे गये। जब गाँव हाथमें रहनेका संदेह हुआ तो अंग्रेज लोग ब्यावरको भाग गये। क्रांतिकारियोंने खजानेपर कब्जा किया और सर्व सम्मतिसे चुने सेनापतिने सम्राट्के नामसे सैनिकोंको वीर-पारितोषिक बाँट दिये। अंग्रेजोंके घरबार जलाये गये। फिर हजारों सिपाहियोंकी सेना रणगीतोंको तालपर गाते और अपने अस्त्रशस्त्र उछालते दिल्लीकी ओर चल पडे।

अध्याय ६ वॉ

रुहेलखण्ड

बरेली रुहेलखण्डकी राजधानी थी। अंग्रेजोंने यह प्रात उसके पुरा शासकों–रुहेले पठानों–से हडप लिया था। इस प्रातमे शूर, बलवान औ आनपर जान देनेवाले मुसलमानोंकी बस्ती थी। ये सब अपने अपमानक बदला लेनेके अवसरकी ताक ही में थे। स. १८५७ के लगभग जि स्थानोंसे अंग्रेजी शासनके विरुद्ध राजनैतिक क्रातिका प्रचार जोरोंसे किय जाता था उनमें रुहेलखड और खासकर उसकी राजधानीका महत्त्वपूर्ण स्थान था। इस समय बरेलीमें ८ वॉ अनियमित (इरेग्युलर) रिसाला, पैदल सेनाका १८ वॉ तथा ६८ वॉ विभाग और हिंदी तोपखानेकी एक टुकडी छावनीमे थी। इनका नेतृत्व ब्रिगेडियर सिब्बाल्ड कर रहा था। अप्रैलमें कुछ सैनिकोंने काडतूसोंके बारेमें अपना सदेह प्रकट किया था, किन्तु सरकारने इसपर ध्यान न देकर सबको उन्हे बरतनेको मजबूर किया था। बीचमें एक दो बार खलबली मची और सैनिक भी उत्तेजितसे होने लगे, फिर भी आगामी सकटको वहॉके अफसर भॉप न सके।

मेरठके बलवेकी खबर १४ मईको बरेली पहुँची। तब अंग्रेजोंने अपने परिवारोंको नैनिताल भेजकर रिसाले को होशियार रहनेकी आज्ञा दी। यद्यपि रिसालेके सैनिक हिंदी थे, तो भी अंग्रेजोको उनपर पूरा भरोसा था। रिसालेके साथ सभी सैनिकोंको १५ मई को सचलन के लिए बुलाया गया। सचलनके समय वहॉके अग्रेज मुख्याधिकारीने 'राजनिष्ठा तथा अच्छे बरताव' पर एक लम्बाचौडा भाषण दिया। उसने कहा, 'आजसे

नये काडतूस बरतना बद किया जाता है, और उन पुराने काडतूसोंको तुम्हे दिया जायगा, जिनके बारेमें किसीको कोई आपत्ति नहीं है।" साथ साथ उसने स्पष्ट बताया, "यदि ऐसे नये काडतूस कहीं मिल जायँ तो उन्हें पहलेही मिट्टीमें गाड देंगे।" उसने इस नाटकीय भाषणसे सैनिकोंके संदेहको साफ करनेका जतन किया। असलमें काडतूसोंके बारेमें अब कुछ कहना व्यर्थ था। क्यों कि, स्वातन्त्र्यका झण्डा गगनमें ऊँचा फहराते रखनेके लिए रुहेलखण्डकी जनताको दिल्लीके स्वदेशी सिंहासनसे त्वरा (अर्जंट) निमंत्रण अभी आ पहुँचा था। तो ऐसे शाही निमंत्रणको महानेमानोंसे थोडेही टाला जा सकता ? निमंत्रण पत्र यों था —

दिल्लीके सिपहसालारसे बरेलीके सेनापतिको अंतःकरणपूर्वक प्रेमालिंगन। *भाइसाहब, दिल्लीमें अंग्रेजोंके साथ युद्ध जारी है। परमात्माकी कृपासे* पहली चोटमें हमने अंग्रेजोंको हार दी, जिससे बादमें दस बार हरानेपर भी न होते, उतने पस्त-हिम्मत हम उन्हें कर सके हैं। दिल्लीको स्वदेश और स्वाधीनताके लिए जूझनेवाले राष्ट्रवीरोंका तो ताँता बँध गया है। ऐसे मौकेके समयमें आप यदि वहाँ खाना खाते हो, तो हाथ धोनेको यहाँ पहुँचिये। दिल्लीके शाहेनशाह सम्राट आपका स्वागत कर आपकी सेवाकी पूरी कद्र करेंगे। आपकी तोपोंके धडाके सुननेको हमारे कान तथा आपके दर्शनको हमारे नयन बहुत प्यासे हैं। चलिये, रवाना हो जाइये! क्यों कि, भाई साहब, बसंत आने तक गुलाबका पौधा क्योंकर फूल पैदा करेगा ? बिना दूधके बच्चा कैसे जीएगा ! "

ऐसा निमंत्रण क्योंकर टाला जा सकता है ? जब यह निमंत्रण मार्ग तय कर रहा था, तब यहाँ हाफिज रहमतके वंशके रुहेलोंका अन्तिम स्वतन्त्र नेता खान बहादुर खाँ गुप्त क्रांतिकारी संस्थाका जाल बुननेमें मगन था। चूं कि, खाँ साहब हाफिज कुलके थे और अंग्रेजी न्याय-विभागमें मॅजिस्ट्रेट रहे थे, अब अंग्रेजोंसे पेन्शन पाते थे। समूचे रुहेलखंडमें उन्हें अंग्रेजोंके कृपापात्रकी हैसियतसे लोग जानते थे, किन्तु बरेलीमें सभी गुप्त क्रांतिसंस्थाओंके तो वे प्राणरूप थे। हाँ, उपर्युक्त निमंत्रणपर ३१ मई तक, जैसा कि पहलेसे निश्चित था, अमल स्थगित करनेकी सलाह हुई। यहाँके सभी सिपाही किसी तरह आज्ञाभंग न करते हुए अंग्रेजोंके हुक्मकी तामील

करते थे, अपने काम ठीक तरह सपन्न करते थे। कुछ दिन पहले मेरठ-वाले क्रातिकरियोसे लगभग सौ सिपाही गुप्तरूपसे इस छावनीमे आ बसे, और मेरठका सब किस्सा ब्योरेवार बता कर तथा सैनिकोमे क्रातिभावको उभाडकर चल दिये। फिरभी ऊपरसे सैनिकोंने सपूर्ण शान्तिका पालन किया था। यहॉतक कि कुछ सूबेदारोंने तो अपना टव्यर ले आनेकी अनुज्ञा अंग्रेज अफसरोंसे मॉगी। किन्तु इस प्रार्थनाका निर्णय होनेके पहलेही मई २९ को अफवाह उडी कि "नदीपर नहाते समय सवेरे सिपाहियोंने यह शपथ की है कि दो बजनेके पहले अंग्रेजोंको काट डालेंगे।" अंग्रेजोने तुरन्त अपने राजनिष्ठ रिसालेको सिद्ध किया। रिसालेके सिपाहियोंने रेंचभी आनाकानी न की। दिन डूबने आया फिर भी विद्रोहका कोई चिन्ह दिखायी न पडा, तब अंग्रेज अफसर शान्तिसे सोनेको घर लौटे। हॉ, अफवाह भलेही झूठी निकली, रिसाला तो दगा करेगा नहीं, उन्होंने जाते जाते कहा। ठीक इसी समय अत्यत प्रामाणिक समाचार उनके पास पहुॅचा कि "अपने भाइयोंके विरुद्ध हथियार उठाएँगे नहीं और अग्रेजोंकी सहायता करेगे नहीं' इस प्रकारकी सौगध रिसालेके सैनिक ले चुके है। अब अग्रेजोके काटो तो खून नही! किसका विश्वास करें? इस दशामे दिनाक २९के साथ ३० मई भी शान्तिसे गुजर गया। और खासकर ३० के दिन तो सिपाहियोंका बर्ताव इतना अच्छा, अरे, इतना 'राजनिष्ठ' था, जिससे मुलकी तथा सैनिक गोरोंने मनही मन ठान ली कि न अब किसी प्रकार धोखा होगा, न डरका कोई कारण है।

३१ मईको सवेरा हुआ। सवेरे सवेरे कॅप्टन ब्राउनलो का बगला जला। फिरभी अग्रेज मानते रहे कि कोई डरावनी बात नहीं हुई। इस दिन इतवार था। साप्ताहिक सैनिक सचलन बेखटके पूरा हुआ। और हिंदी अफसरोंने बाकायदा अपनी 'रपटें' (रिपोर्टस्) पेश कीं। उस दिन तो सिपाही अधिक अनुशासनपूर्वक तथा शान्तिसे काम करते हुए अग्रेज अधिकारियोंने देखा। गिरजाघरमें जाकर गोरोंने अपनी प्रार्थनाएँ भी पूरी कीं। मतलब, सूरजदेवके सामने किसी प्रकारका कोई उत्पात न हुआ।

घडीने रातके ११बजाये और छावनीसे तोपोकी गडगडाहट सुनायी दी। उसके वातावरणमे विलीन होनेके पहले ही राइफलों तथा सगीनोंकी खन-

सनाहट तथा कानके परदे फाड़नेवाल पुकारसे आकाश गूँज उठा। बरेलीका बलवा इतनी बारीकीसे रचा गया था, जिसमें यह भी मुकर्रर था कौन किस गोरेको चलता करे। ११बजे ६८वीं कंपनी छावनीके अंग्रेजोंपर टूट पड़ी। ब्रिगेडियर सिबाल्ड पहलीही दगलमें हना गया। कॅ. किर्बी, ले फरेजर, सार्जंट बॉल्टन, कनल टप, कॅ. रॉबटसन तथा इनके साथ कातिका रियोंके हाथ लगे गोरे मार डाले गये। हाँ, ३२ गोरे इस हत्याकाण्डमे बचकर नैनिताल पहुँच पाये। इस तरह केवल छ घटोंमें बरेलीसे अंग्रेजोंका राज उठ गया।

यूनियन जॅकको नीचे खींचकर स्वातन्त्र्यका झण्डा जब बरेलीमें चढाया गया तब तोपखानेके सूबेदार बख्तखाँने सेनाका आधिपत्य स्वीकार किया। दिल्लीके घरेक समय इस बख्तखाँका बारबार जिक्र करना पडेगाही। उसने सिपाहियोंके जमघटके सामने इस विषयपर अत्यंत उत्साहवर्धक भाषण किया, कि स्वाधीनता प्राप्त होनेके बाद सिपाहियोंको कैसा बरताव रखना चाहिये तथा स्वराज्य प्रस्थापित करनेके बाद उसे बनाये रखनेके लिए किन दायित्वपूर्ण कर्तव्योंका भार उठाना पडता है।* इसके बाद यह स्वदेशी ब्रिगेडियर गोरे ब्रिगेडियरकी गाडीमें सवार हो कर शहरभरमें घूमा। उसके पीछे उसके मातहत नये नियुक्त हिंदी अधिकारी, उन उन श्रेणिके अंग्रेज अफसरोंकी गाडियोंमें बैठे जा रहे थे। सम्राट्के प्रतिनिधिके रूपमें सारे रुहेलखण्डके अधिपतिके नाते खानबहादुर खाँ का गौरव जनताने जयध्वनिसे किया। बरेलीके गोरोंके घरबार पहलेही जलाये जा चुके थे। खान बहादुरने उन अंग्रेजोंको अपने सामने पेश करनेकी आज्ञा दी, जो बन्दी बनाये गये थे। खान पहले अंग्रेजी शासनकालमें न्यायाध्यक्षका काम कर चुका था जिससे अंग्रेजोंके दण्डविधान (पीनलकोड) से वह अच्छी तरह परिचित था। इसीसे इन अंग्रेज अभियुक्तोंके मुकद्मेमें पंचायत (ज्यूरी) बुलायी गयी। अभियुक्तोंमें उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांतके लेफ्टनेंट गवर्नरका दामाद एक डॉक्टर, बरेलीके सरकारी महाविद्यालय (कॉलेज) का प्राचार्य (प्रिन्सिपल) तथा बरेलीका सबसे बडा न्याया

* चार्लस बॉल कृत इण्डियन म्यूटिनी खण्ड १

ध्यक्ष इतने लोग थे। अभी कलही राजनिष्ठ खान बहादुर खॉं एक माननीय मित्रकी हैसियत अभियुक्तोंकी कुर्सीसे कुर्सी सटाकर बैठा था, आज वह सिंहासनपर अधिष्ठित है तो दूसरे अपराधी बदीके कटघरेमें खडे थे! पचोंने शपथे लीं और, सदाके जैसे, फैसला देनेको बैठ गये। अभियुक्तोंको राजद्रोहसे सबधित कई अपराधोंके लिए दोषी ठहराया गया और सबको फॉसी का दण्ड दिया गया। इनमेंसे छः अपराधियोंको तो वहीं फॉसीपर लटकाया गया। रुहेलखण्डका कमिश्नर अपनी जान बचानेके लिए भाग गया था, उसे मरा या जीवित पकडनेके लिए एक सहस्त्र मुहरोंका पारितोषिक खान बहादुर खॉंने घोषित किया। इस तरह, अग्रेजी खूनसे अपना सिंहासन पक्काकर रुहेलखण्ड स्वतत्र हो जाने का सदेश लेकर शामके पहले दिल्लीके राजदूत चल पडे।

रुहेलखण्डके स्वतत्र होनेकी घोषणा कोई योंही डींग नहीं मारी गयी थी। बरेलीके तोपची जिस समय अग्रेजी शासनका कचूबर निकाल रहे थे उसी समय शहाजहॉंपुरमें भी अग्रेजी लहू सींचा जा रहा था। निश्चित कार्यक्रमके अनुसार ३१ मई के सूरजको साक्षी कर शहाजहॉंपुर स्वतत्र हो गया था।

बरेलीके उत्तर-पश्चिममे ४८ मीलोंके फासलेपर मुरादाबाद है। यहॉं २९ वीं पैदल पलटन तथा देशी तोपखानेकी आधी पलटन छावनीमें थी! मेरठकी खबर मिलनेपर प्रथम बार यहॉंके सैनिकोंकी 'राजनिष्ठा'की कसौटीका समय आया था। १८ मईको, मेरठके कुछ सिपाही मुरादाबादके पास आ रहनेका समाचार गोरे अफसरोंको मिला। तब, २९ वीं पलटनको आज्ञा हुई कि मेरठवालोंपर हमला किया जाय। आज्ञाके अनुसार जगलोंमें सोये मेरठवाले क्रातिकारियोंपर ये सिपाही टूट पडे। किन्तु इस जोरदार हमलेकी पर्वाह न करते हुए सबके सब वहॉंसे छटक गये। रात तो काले-कलूटे अधकारसे व्याप्त थी, तब अग्रेज अफसरोंने भी माना कि सब ओरसे घेरे जानेपर भी केवल रातके अधेरेके कारणही क्रातिकारी छटक सके। किन्तु बादमें पता चला कि हमला करनेका केवल अभिनय किया गया था और सबसे विशेष बात तो यह थी कि मेरठवाले क्रातिकारी असलमें मुरादाबादकी छावनीहीमे चुपचाप सोये हुए थे। हॉं, २९ वीं पलटनने पूर्ण राजनिष्ठासे

हमलेका काम किया और अंग्रेजोंने उनके प्रति विश्वास प्रकट किया। मईके अन्ततक इसको डाँवाडोल करनेवाली कोई घटना न हुई।

३१ मईको सवेरे सब सैनिक संचलनभूमिपर जमा होते नजर आये। बिना हुक्मके ये क्यों कर यहाँ आये, इसका जवाब तलब करनेको जब गोरे अफसर आ पहुँचे तो उन्हें उत्तर मिला "कपनी सरकारका कारोबार अब समाप्त हो चुका है। अब तुम अपना बोरिया-बिस्तरा उठाकर इस देशसे तुरन्त चलते बनो। न मानोगे तो तुम्हे जानसे हाथ धोना पड़ेगा। ध्यान रहे, दो घंटेमें तुम यहाँसे रवाना हो जाओ और मुरादाबादसे अपना मुँह काला करो।" मुरादाबादके पुलीस दलने भी घोषणा की कि अबसे अंग्रेजोंकी आज्ञा वे नहीं मानेंगे, नागरिकोंने इसका अनुमोदन किया। इस तरह ताबड़तोड़ इन तीन चेतावनियोंको पातेही मुरादाबादके सभी न्यायाधीश, कलेक्टर, डाक्टर तथा अन्य गोरे लोग अपने बालबच्चोंके साथ, निश्चित समयके पहले चुपचाप भाग गये। और जो गोरे दो घंटोंके बाद भी यहीं टालमटूल करते रहे मिले, उन्हें क्रांतिकारियोंने खतम कर डाला। कमिशनर पॉवेलने अन्य कुछ गोरोंके साथ, इस्लामको कुबूलकर अपनी जान बचायी। सैनिकोंने सरकारी संपत्ति हथिया ली और सूरज भगवान अस्ताचल पहुँचनेके पहले मुरादाबादपर क्रांतिकारियोंका स्वाधीनताका झण्डा लहराने लगा।*

बरेली और शाहजहाँपुरके बीचमें बदायूँ पड़ता है। यहाँका कलेक्टर और मजिस्ट्रेट कोई एडवर्डस् था। रुहेलखण्डमें अंग्रेजी राज शुरू होतेही यहाँके पुराने जमींदार बेशुमार करोंके बोझ तथा अन्य डाँट डपटसे ऊब उठे थे। बड़े बड़े रईस और उनकी असामियोंमें परस्पर असंतोष फैल रहा था। बदायूँमें लगान इतना अधिक था कि उससे चिढ़कर बदायूँकी जनता संगठित होकर अंग्रेजी सत्ताका खात्मा करनेका मौका ही ढूँढ रही थी। एडवर्डस् भी इसे जानता था और इसीसे उसने बरेलीसे सैनिक सहायता भी माँगी थी। किन्तु बरेलीकी स्थिति, जैसा कि हम बता चुके हैं, पहले ही बिगड़ गयी थी। यहाँसे सहायता मिलना दूभर था। तो भी बरेलीसे

* चार्ल्स् बॉल कृत इंडियन म्यूटिनी

सदेश मिला, "१ जूनको गोरे अधिकारियोके नेतृत्वमें एक पलटन रवाना होगी"। इस आश्वासनसे एडवर्डस्को धीरज बधाया और १ जून को तो बरेलीके मार्गपर ऑखे बिछाये वह बैठा था! इतनेमे एक सरकारी आदमी बदायूँकी दिशासे दौडता हुआ दीख पडा। इधर आनेवाली सहायक सेनाका अग्रदूत समझकर एडवर्डस्ने उसे रोका और पूछताछ की। बात करनेके बदले उसने यह स्यापा सुनाया कि बरेलीसे अग्रेजी राजही उठ गया है। बदायूँमे सरकारी कोषकी सुरक्षाके लिए कुछ सैनिक थे। उनके कमाडरसे एडवर्डस्ने पूछा "बरेली स्वतत्र हो गया, अब बदायूँका क्या होगा?' उत्तर मिला, चिंताका कोई कारण नहीं है उसके मातहत सभी सिपाही राजनिष्ठ हैं। किन्तु शामकोही बदायूँमे बलवा शुरू हुआ। खजानेके रक्षक पुलीस और अन्य नागरिक नेताओंने ढोल पीटकर ढिढोरा पीटा, "अग्रेजी शासन समाप्त है।" इसतरह अपनी इच्छासे सारा जिला खान बहादुरखॉके अधीन हो गया। खजाना बटोरकर सैनिक दिल्ली को चल पडे। बदायूँके गोरे अफसर रातमे प्राण बचानेके लिए जगलकी ओर भागे। कई सप्ताह भूखो मरते, कभी किसानोंके बाडेमें तो कभी उजाड धरोंमें छिपते, अग्रेज कलेक्टर, मॅजिस्ट्रेट तथा स्त्रीपुरुष अपने प्राण बचानेके लिए मारे मारे फिर रहे थे। उनमें से कुछ मारे गये, कुछ मरे और कुछ एक 'काले' आदमीकी शरण पाकर बच गये।

इस प्रकार एकही दिनमे सारा रुहेलखण्ड उठा! बरेली, शहाजहॉपुर, मुरादाबाद, बदायूँ तथा अन्य गॉवोमें सैनिक, पुलिस, तथा नागरिकोंने मिलकर घोषणापत्र बनाकर कुछही घटोमे अग्रेजी शासनको गलबाही देकर निकाल दिया। अग्रेजी शासनको पटककर उसकी जगह स्वदेशी सिंहासन रचे गये। ब्रिटिश झण्डोंको उतार कर टुकडे टुकडे करे दिया गया। न्यायालय, थानो तथा अन्य कार्यालयोंपर क्रातिध्वज चढाये गये। अब शासकका स्थान हिंदुस्थानने ले लिया था और अभियुक्तके कटघरेमें इग्लैडको खडा किया था। यह अनोखी क्राति सारे प्रातमे कुछ घटोंमें ही हुई! और अचरजकी बात है कि स्वदेशी रक्तकी एक बूँद भी न गिरी और रुहेलखण्ड स्वतत्र हो गया।

बरेलीके तोपखानेके मुख्याधिकारी बख्तखॉके मातहत सब सैनिक

दिल्ली को रवाना हुए। तब प्रांत तथा राजधानीमें सुप्रबंध रखनेके लिए खान बहादुरने नये लोगोंका दल बनाया। अब तो हर एक नागरिक सैनिक बना था। मुलकी महकमोंको सुधारकर लगभग पुराने कर्मचारियोंका ही रख लिया गया। ऊंचे पदोंपर, जो पहले अंग्रेजों न अटका रखे थे, हिंदी लोगोंको नियुक्त किया गया। लगान अब दिल्ली सम्राटके नाम जमा होने लगा। न्यायालय तथा कचहरीका प्रबंध वसाही रहा जैसा पुराने समयसे चल रहा था। मतलब, क्रांतिके कारण किसी भी कामकाजम न गडबडी पडी, न किसी महकमेको बंद करना पडा। भेद यही था कि अंग्रेज अधिकारियोंके स्थानपर देशी लोग दिखायी पडे। खान बहादुरखाँन अपने प्रांतके बनावोंका विवरण सम्राटके पास भेज कर समूचे रुहेलखण्डमें प्रसिद्ध करनेके लिए एक घोषणापत्र भी बनाया। वह यों था-—" भारतीयो! तुम जिसकी प्रतीक्षा आतुरतासे करते थे वह स्वराज्यका मंगल क्षण अब समीप आ पहुँचा है! क्या, तुम इसका स्वागत करोगे या उसे गवाएँगे! इस अपूर्व अवसरसे तुम लाभ उठाओगे या उससे हाथ धो बैठोगे? हिंदु तथा मुस्लिम भाइयो! अच्छी तरह जान लो कि अंग्रेजोंको भारतमें टिकने देोगे तो निश्चित, वे तुम्हारा कत्लेआम कर तुम्हारे धर्मका नष्ट भ्रष्ट कर देंगे। अंग्रेजोंने बहुत पहलेसे ही भारतवासियों को खूब धोखा दिया है, जिससे हम अपनीही तलवारसे एक दूसरे की गर्दन रेत रहे हैं। इसलिए, हमको चाहिये कि हम इस स्वदेशद्रोहको रोकें और इस पापका प्रायश्चित्त करें। आज भी उसी धोखेबाजीकी कुटिल नीतिसे अंग्रेज हमसे पेश आयेंगे। हिंदूको मुसलमानके खिलाफ भडका देनेको कभी न चूकेंगे। दत्तक पुत्रके गद्दीपर बैठनका अधिकार क्या उन्होंने नहीं उड़ाया है? हमारे राज तथा प्रदेश उन्होंने हड़प लिया है कि नहीं? हमारे नागपुरका राज किसने छीना? अवधका राज कौन हड़प गया? हिंदु और मुसलमान दोनोंको पैरोंतले किसने कुचला? मुसलमानो! यदि तुम्हें अपने कुरानपर गर्व हो, और, हिंदुओ! यदि तुम्हें गोमाता पूजनीय हो, तो आपसके छोटेमोटे भेदोंको भूलकर इस पवित्र धर्मयुद्धमें एक होकर खडो! एकही झण्डेके नीचे लडनेके लिए समरांगणमें कूद पडो और खूनकी नहरें बहाकर उनमें अंग्रेजोंका नाम तक इस भारतभूसे धो डालो।

यदि इस युद्धमें हिंदु--मुसलमानोंमे सहयोग हो और स्वदेश और स्वाधीनताके लिए शत्रुको रोकें तो उनकी देशभक्तिके गौरवके हेतु गोवधको मनाही कर दी जायगी। इस पवित्र धर्मयुद्धमें जो स्वय लडेगा, तथा जो लडनेवालेकी सहायता पैसेसे करेगा उसे इस देशमें स्वातन्त्र्य और परलोकमे मोक्ष प्राप्त होगा! किन्तु, यदि कोई स्वदेशी युद्धका विरोध करेगा तो वह अपनेही पॉवपर कुल्हाडी मारेगा और आत्महत्याके पापसे नर्कमें जायगा।"

नये प्राप्त स्वराज्यका अनुशासनयुक्त प्रबध कर उसकी रक्षा करनेके लिए रुहेलखण्डको अवसर देकर अब हम काशी और प्रयागकी ओर ध्यान देंगे।

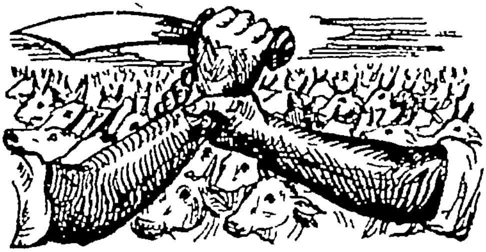

अध्याय ७ वाँ

काशी और प्रयाग

कलकत्तेसे ४८० मीलोंपर परमपावन भागीरथीके तटपर अपने ऐतिहासिक वैभवसे पूर्ण काशीकी पुरातन पुण्यनगरी बसी हुई है। पुण्यसलिला गंगामैय्याके किनारे बसी हुई सभी नगरियोंमें काशी सचमुच सम्राज्ञीके समान सर्वश्रेष्ठ लगती है। गंगाकिनारेसे दृष्टिपथमें आनेवाले एकसे एक ऊँचे भव्य प्रासाद, गगनमें दमकते हुए मन्दिरोंके ऊँचे ऊँचे सुवर्ण कलश, गर्वसे गगनको छूने जानेवाली घनी वृक्षराजी, मन्दिर मन्दिरमें निनादित अनगिनत घंटोंकी एक सम्मिलित प्रचंड ध्वनि और इन सबमें बढ़कर सुन्दर बाबा विश्वनाथका परमपावन भव्य मन्दिर—काशी नगरीकी अपूर्व शोभा देखतेही बनती है। इस नगरीमें, सुख-विलासके लिए ठगों, पूजाआराधनाके लिए भक्तों, ध्यानधारणाके लिए योगी-मुनियों, तथा मुक्तिसुखके लिए परमहंसों का ताँता सदाही लगा रहता है। इस तरह हर कोई इस पुण्यनगरीमें अपने मनोरथोंको पूरा कर लेते हैं। क्यों कि, ऐहिक सुख-भोगोंसे आकण्ठ तृप्त होनेसे जिन्हें अरुचि हुई हो उनके लिए यह नगरी सात्त्विक आरामकुटीके समान शान्त मालूम होती है जहाँ जिनकी आशा आकांक्षाएँ, संसारके दुष्ट घातकियोंके तीव्र द्वेष या छलपूर्ण असूयासे भग्न हुई हों, उन अभागे जनोंको काशी नगरी तथा गंगाके अमृततुल्य शीतल तुषार स्वर्गसुखका अधिराज्य अर्पण करते हैं।

सचमुच, अंग्रेजोंको धन्यवाद देने चाहिए कि, १८५७ में भी इस स्वर्गतुल्य शांतिनगरीमें अपनी बची हुई कष्टमय आयुको बितानेके लिए आनेवाले अभागोंकी कमी न रही। दिल्लीके राजप्रासादों तथा भव्य भवनों

से जुटा हुए कई दीन–दरिद्र हिंदु-मुसलमान सरदार और मराठों तथा सिक्खोंके लुटे हुए राजपरिवार काशीके हर मदिर तथा मस्जिद–दर्गाहमें अपनी आप बीती सुनाते बैठे नजर आते है। इसमे क्या आश्चर्य, कि ऐसी धर्मनगरीमे स्वधर्मकी अवनति तथा स्वराज्यके अस्तके विषयमे हिंदु-मुसलमानोमे गहरी बहस छिडती होगी? इस प्रातका प्रमुख सैनिक-केन्द्र प्रयागके पास सिरकोलीमें था। यहॉ ३७ वीं पैदल सेना, लुधियानेवाली सिक्ख कपनी तथा रिसालेकी एक पलटन थी। हॉ, तोपखाना मात्र गोरोंके अधीन था। स्वधर्म और स्वराज्यके लिए उत्थानकी चेतावनी सैनिकोंको भिन्न भिन्न तरीकोंसे दी गई थी। १८५७ के प्रारभमें काशी की आम जनतामे भी कुछ विशेष अशान्ति धुधवाती होनेके लक्षण दीख पडने लगे। काशीका मुख्य कमिशनर टकर, न्यायाधीश गब्रिन्स, मॅजिस्ट्रेट तथा अन्य नागरी अधिकारी और कॅ. ऑल्फर्टस्, कर्नल गॉर्डन तथा अन्य सैनिक अधिकारीगण पहलेही से काशीके अग्रेजोंकी सुरक्षामें दत्तचित्त थे। क्यों कि, कई बार नागरिकोंकी अशान्ति प्रकट रूपसे उमड पडती और कभी कभी तो उसे काबूमें रखना कठिन हो जाता। पुरबिए तो प्रकट रूपसे और जोरसे यह प्रार्थना मदिरोंमें करते कि "हे भगवान्! हमें इस फिरंगी राजके चुगलसे छुडाओ।"* अन्य स्थानोंमें क्या हो रहा है इसे जाननेके लिए काशीमें गुप्त दलोंका सगठन भी हुआ था। जब मई महीना आ लगा, तब छावनीमें प्रचार करनेमें कई मुसलमान लग गये। नगरकी दीवारोंपर तथा चौराहोंमें लोगोंको उत्तेजित करनेके लिए विज्ञापन भी चिपकाए जाते थे।+ आगे चलकर तो हिंदु धर्मोपदेशक अंग्रेजोंके सत्यानाशके लिए तथा स्वराज्यकी सिद्धिके लिए मदिरोंमें सामूहिक प्रार्थनाऍ भी करने लगे। इन्हीं दिनों अनाजकी दरें भी बहुत चढीं और जब अग्रेज अधिकारी आकर लोगोंको जतलाते कि, "राजनैतिक अर्थशास्त्रके हिसाबसे अब यदि अनाजके भाव बढेंगे तो जथाबद गल्लेके व्यापारी पहले मर जायेंगे" तो लोग उनके मुँहपर साफ कहते, "इस महँगाई का एक

---

* रिपोर्ट ऑफ दि जॉइट मॅजिस्ट्रेट श्री. टेलर।

\+ रेड पॅम्फ्लेट

मात्र कारण तुम्ही हो और ऊपरसे हमें पढ़ाने आये हो!" जनसाम का इस तरह ज्वलन्त प्रमाण मिलनेपर अंग्रेजों व विलोम एसा डर समाया कि बलवा होनेके पहले ही बनारस छोड़ जानेका आग्रह के आलटन् और के मॅटसन् गोरोंसे करने लगे। तब गबिनसूने गिड़गिड़ाकर कहा "मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, किन्तु कृपया इस समय बनारस छोड़नेकी बात न सोचो।" तिसपर काशी छोड़ने का विचार कुछ समयके लिए स्थगित रहा। और हाँ, अब नगरमें रहनेमेंभी क्या भय था? क्यों कि, सिक्खोंने अंग्रेजों की रक्षा का भार उठानेके लिए स्वयंदि एक स्वयंसेनिकदल भी संगठित किया था! और जिनको वॉरन हेस्टिंग्ज़ने टोकरोंसे उड़ाया था उसी खेत सिंगके खानदान ही तो अंग्रेजोंकी ढाल बने हैं न! अबतक भी इस तरह 'राजनिष्ठा'में उफान आता था, तब भला बनारस को छोड़ जाने की अंग्रेजोंको क्या आवश्यकता थी?

आजमगढ़ बनारससे ६० मीलकी दूरीपर है। यहाँ १७वीं हिंदी पलटन थी। मई ११ से इसमें भीषण गर्जनाएँ उठ रही थीं।

आजमगढ़में ३ जूनको, रातका अंधकार चुपकीसे आक्रमण कर रहा था। हिंदी पलटनके गोरे अधिकारी, सब मिलकर प्रथम खाना खा रहे थे, उनके बालबच्चे आसपास खेल कूदमें मगन थे। सहसा भयंकर गाड़ियोंकी आवाज उनके कानपर पड़ी। जूनके पहले सप्ताहसे ऐसी गाड़ियोंकी आवाजका मतलब अच्छीतरह उन्हें परिचित था। उनके नाचरंग, खानेपीनेके मनोरंजनके कार्यक्रमके लिए इकट्ठे हुओंमें एकाएक सन्नाटा छा गया। आपसमें कानाफूसी हुई 'कहीं सिपाही तो नहीं उठे हैं?" इसी समय ढोल तथा तुरहियोंकी भयसूचक गंभीर ध्वनि सुनायी दी। मेरठके प्रसंगको याद कर हर एक गोरा अपनी जान बचानेके लिए इधर उधर दौड़ने लगा। अफसर, औरतें तथा बच्चे तो अपने प्राणोंकी आशाही छोड़ बैठे किन्तु यमराजको प्रत्यक्ष देखकर भी न होनेवाली बिलबिलाहट उन अभागोंमें देखकर सिपाहियोंने प्रतिशोधका खयाल अपने मनसे निकाल दिया। और कोई अनकटोटा उन्हें आकर न सताये इस लिए उन्हें आश्वासन देकर आजमगढ़से चले जानेको कहा। किन्तु अब उन अति उत्साही क्रांतिवीरोंको कैसे समझाएँ, जिन्होंने अंग्रेजी खून

चहानेकी सौगध उसी दिन ली थी? हाँ, ले. हचिन्सन और क्वार्टर सार्जंट लुइसके दो शरीर तो हमारी गोलियोंके निशाने अवश्य बनने चाहिये। बस! अब दूसरे सब यहाँसे भलेही भाग जाँय। यदि भागनेमे उनके पाँव भारी हो जाते हो तो गाडियोंमे भी जा सकते हैं। किन्तु अफसर और मेमे कुडबुडाने लगीं कि अब उन्हे गाडियाँ कौन देने लगा है? हिंदी सिपाहियोंने अपनी उदारताके ज्वारमें कहा, "चिता न करो, हम तुम्हें सवारियोंका प्रबध कर देते हैं।" और सचमुच गाडियाँ आयीं और अंग्रेजोंकी हथकडियाँ निकालकर उन्हें गाडियोंमे बिठा दिया और रक्षाके लिए साथ कुछ घुडसवार भी कर दिये। इस तरह अपने झण्डे तथा सत्ताके सब मानचिन्ह साथ लेकर यह टोली बनारसको चली। इधर सात लाखका कोष, गोलाबारूदका अबार, ब्रिटिश शासनकी शान दिखानेवाला जेल, कार्यालय, सडकें, बारिकें, सबके सब सिपाहियोंके हाथ लगे।

दूसरे दिनके उदयपर सूरज भगवान्‌ने जब आँखे खोली तो अपनी एक रातकी अनुपस्थितिमे, शासनमें इतनी बडी शुभ क्राति देख, आनदसे, आजमगढपर गर्वसे लहरानेवाले क्रातिके नूतन झण्डेपर अपनी सुनहली किरणे उडेल दीं। जो आजतक अपने मनमदिरमे फहराता था, वह क्रातिका झण्डा आज अभिमानसे अपने मस्तकपर प्रत्यक्ष लहराता देख, विजयानद के जोसमे सिपाहियोंने एक बहुत बडा जुलूस निकाला और रणसगीतके सुरोंपर क्रातिध्वजके चौफेर नाचते हुए वे फैजाबादको चले।

आजमगढ स्वतत्र होनेके समाचार बनारस पहुँचे, किन्तु वहाँके अंग्रेजोंको आशा थी कि वहाँ वैसा धोखा कुछ न होगा। मेरठके बलवेकी खबर पातेही पजाबसे सर जॉन लॉरेन्सने तथा कलकत्तेसे लॉर्ड कॅनिंगने क्रातिके प्रमुख केन्द्रोंको अधिकसे अधिक गोरी पलटनें भेजनेकी तनतोड चेष्टा की। दिल्लीके मुहासरेमें उत्तरकी सब सेना अटक पडी थी, जिससे दिल्लीके दक्षिण विभागकी बडी दयनीय दशा थी। उसीसे वहाँके अंग्रेज अफसर गिडगिडाकर प्रार्थना करते थे "कृपया हमारी सहायताके लिए कुछ गोरे लोगोंको भेजो।" हम पहले बता चुके है, कि तब तक लॉर्ड कॅनिंगने बम्बई, मद्रास तथा रगूनकी गोरी पलटनोंको कैसे मगवाया था तथा चीनकी चढाई की सेनाको भारतहीमे कैसे रोक रखा था। इसी

सिलसिलेमें मद्रास फ्युजिलियर्सकी पल्टनको लेकर जनरल नील इन्हीं दिनों बनारस पहुँच गया था। सहायतार्थ लिए गोरी पलटन पहुँच जानेसे और विशेषतः नील जैसा धीर, समर्थ तथा कट्टर सेनापति उन पल्टनोंको प्राप्त होनेसे बनारसके अंग्रेजोंको धीरज बंधाया। इसी समय दानापुरसे गोरी सेना बनारस आ पहुँची। जब काशीमें असीम असंतोष फैला हुआ था और क्रांतिका प्रचार करनेमें सिपाहियोंके हाथ बँटानेका प्रत्यक्ष प्रमाण अंग्रेजोंके हाथ लगा, तब उनको विचार हुआ कि क्रांतिको उसके गर्भमें ही कुचल देना चाहिये। वे मानते थे कि नीलकी पल्टनों, सिक्खों तथा तोपखानेकी संयुक्त चेष्टासे यह काम आसान होगा। आजमगढ़की खबर ४ जूनको बनारस पहुँची, उसपर बहुतसी बहस होनेके बाद मलयेके पहलेही सिपाहियोंको निःशस्त्र करनेका निर्णय पक्का हुआ। उसके अनुसार उसी दिन दो पहरको सामूहिक संचलन होनेकी आज्ञा जारी हुई।

तुरन्त सिपाहियोंको अपनी मौतका भान हुआ। उनको पहलेही पता लगा कि गोरोंने तोपखानेको खूब तय्यार रखा है। संचलनके मैदानमें अंग्रेज अधिकारियोंने हथियार डाल देनेकी आज्ञा दी तो उन्हें पूरा भान हुआ कि निःशस्त्र कर देनेपर उन्हें तोपोंसे उड़ा दिया जायगा। इसीसे हथियार डालनेके बदले उन्होंने शस्त्रागारपर हमला किया और भीषण रणगर्जनके साथ वे अफसरोंपर टूट पड़े। तुरन्त इन सिपाहियोंको धमकानेके लिये सिक्खोंकी एक कंपनी आगे आयी। इस समय अंग्रेजोंके साथ राजनिष्ठ होनेका भाव प्रकट करनेका ज्वार सिक्खोंमें इतना चढ़ गया था कि कुछ समयके लिए क्यों न हो, क्रांतिकारियोंसे भिड़नेका मौका देनेके लिए वे अंग्रेजोंसे प्रार्थना कर रहे थे। एक हिंदू सिपाहीने गाईस नामक कमांडरपर हमला कर उसको तत्काल धराशायी कर दिया। ब्रिगेडियर डॉयसन् अपने स्थानपर पहुँचा नहीं कि एक सिक्ख सिपाहीने उसे गोलीसे उड़ा दिया नहीं। किन्तु उस महान अपराधको सहन न करनेसे अन्य सिक्ख सैनिकोंने उस सिक्खके टुकड़े उड़ा दिये। अपनी राजनिष्ठाका अब अवश्य पारितोषिक मिलेगा इस आशासे राह देखनेवाले सब सिपाहियोंको तोपखानेने भुन डाला। हिंदु और सिक्ख सैनिकोंमें पड़ी इस गड़बड़ीसे

अग्रेजोंको भय हुआ कि कहीं सिक्ख तो क्रातिकारियोंसे मिल नहीं गये! और इसी अपसमझ (गलतफहमी) के कारण गोरोंने तोपखानेसे सबको भुन डाला। इस प्रसगमें अभागे सिक्खोंको क्रातिकारियोंसे मिलनेके बिना कोई चारा ही न था। तब सब मिल गये और उन्होंने तीन बार तोपचियोंपर धावा बोला। १८५७में यही एक अवसर था जब हिंदू, मुसलमान तथा सिक्ख सब मिलकर अग्रेजोपर टूट पडे थे। किन्तु इसी समय इस पापका प्रायश्चित्त करनेका अनथक जतन सिक्खोंद्वारा हो रहा था। अग्रेजोंके साथ क्रातिकारियोंकी यह लडाई बारिकोंके पासही हो रही थी, तब गॉववालेभी उठनेका भय था। इस डरसे अग्रेज अफसर तथा उनके बालबच्चे इधर उधर भाग रहे थे। तब सरदार सुरतसिंग उनकी रक्षाके लिए दौड पडा। बनारसके खजानेमें लाखों रुपयोंके साथ साथ अग्रेजोंसे लुटे हुए सिक्खोंकी रानीके कीमती अलकार भी थे, और इस खजानेकी रक्षा अग्रजोंके लिए, सिक्खही कर रहे थे। भूलसे भी यह विचार सिक्ख सैनिकोंके मस्तिष्कमें आनेकी सम्भावना न थी कि अपनी निर्वासित रानीके अलकार, खजानेपर दखलकर, लौटा लिए जायँ! राजनिष्ठ सूरतसिंगने खजानेको ऑच न पहुँचानेका उपदेश अपने धर्मबधुओंको दिया और फिर सिक्खोंकी जगह गोरे सैनिक तैनात हुए। इस समय कोई पडित गोकुलचद अग्रेजोंका पक्षपाती बना था। इस विप्लवमें काशीके राजाने अपना प्रभाव, सपत्ति तथा सत्ता सब कुछ अपने प्रभुके—काशी विश्वनाथके नहीं, अग्रेजोंके—चरणोंमें चढा दिया था। केवल क्रातिकारी सैनिक अकेले तोपखाने की आगकी पर्वाह न करते हुए लडते रहे और लडते लडते ही हटकर प्रातभरमें फैल गये।

बनारसकी सिक्ख पलटनके जो सैनिक जौनपुर में थे वे तो तुरन्त क्रातिकारियोंके साथ हुए और नगरभरमें क्रातिकी ज्योति फैल गयी। यह देख जॉइट मॅजिस्ट्रेट कपेज लोगोंको भाषण देने खडा हो गया, तो श्रोताओंसे—उसकी वक्तृताकी कद्र थी वह!—एक गोली सनसन करती आयी और मॅजिस्ट्रेट साहब वही ढेर हो पडे। कमाडर ले. मारा भी दूसरी गोलीका शिकार बना! इसके बाद क्रातिकारियोंने खजानेपर धावा बोला और अग्रेजोंको जौनपुरसे 'चले जाओ' की आज्ञा दी। इतनेमें बनारससे रिसालाभी वहॉ पहुँच गया। उसने तो हर गोरे को मार डालनेकी प्रतिज्ञा

ही की थी। एक बूढ़ा डेप्युटी कलेक्टर रास्तेमें दीख पड़ा। सवारोंने उसका पीछा किया तब जौनपुरके कुछ लोगोंने सिफारिश कर कहा 'खान साहबने हमारा बड़ा उपकार किया है इसने।" किन्तु सिपाहियोंने कहा "चाहे जो हो यह अंग्रेज है, उसे मरनाही चाहिये।"*

जहाँ एक ओर इतना ऊधम मचा रहा था तो भी जिन अंग्रेजोंने शरण माँगी और अपने शस्त्र रख दिये उनको जीवित जाने दिया गया। इस सहूलियतसे लाभ उठाकर बहुतेरे अंग्रेज थोड़ेसे समयमें जौनपुर छोड़ भाग गये। बनारस पहुँचनेके लिए गंगापार होनेके लिए कुछ स्त्रियोंने भी किश्तियाँ लीं। किन्तु मझधारमें मल्लाहोंने उन्हें लूटा और बालूपर ला छोड़ दिया। सारा जौनपुर क्रांतिके नारे लगाते हुए जमा हुआ और गोरोंके घरबार लूट तथा जलाकर अंग्रेजी हुकूमतके सभी चिह्न मिटा दिये। सैनिक, जितना साथ लिया जा सके उतना खजाना लेकर, अयोध्याको चल पड़े और बचा हुआ खजाना उन गरीब मुन्शियों तथा भिखमंगोंको सौंपा गया, जिन्होंने आयुभरमें कभी रुपया नहीं देखा था। उन्होंने जीवन भर मजेमें गुजारा कर दिल्लीके सम्राट तथा स्वराज्यको अंतःकरणपूर्वक धन्यवाद दिये।

सो, जून ३ को आजमगढ़ ४ को बनारस तथा ५ को जौनपुरमें बलवा हुआ। प्रांतका प्रमुख नगरही शत्रुके हाथ लगे तो प्रांतभरमें क्रांतिका जोर ठंडा पड़ जाता है, यह नियम है। किन्तु क्रांतिकालमें सारे प्रांतको राजधानीपर अवलम्बित रहना, क्रांतिशास्त्रकी दृष्टीसे बड़ी भारी भूल तथा धोखा है। इटलीके क्रांतिशास्त्रके प्रणेता मॅझिनी कहते हैं "जहाँ हमारा झण्डा फहरे, वहीं हमारी राजधानी है।"[1] राजधानी क्रांतिके पीछे चले, क्रांति उसके पीछे नहीं। विद्रोहकी रूपरेखा शुरूमें चाहे जितनी चतुरता तथा सूक्ष्मतासे बनायी गयी हो, प्रत्यक्षमें सब कार्यक्रम निश्चित सिलसिलेसे नहीं चलता। इससे, राजधानीमें भलेही क्रांतिकी जीत न हुई हो, प्रांतके अन्य स्थानोंमें उसका दबाव जरा भी ढीला न होने देना चाहिये। सचमुच, इस सिद्धान्तका सुंदर उदाहरण बनारसने दिखा दिया

* चार्लस् बॉल कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १ पृ २४५

है। क्यों कि, प्रांतकी प्रधान नगरी, काशी, अंग्रेजोंके हाथ रही, फिरभी प्रांतभरमें क्रांतिके बवडरने सारा वातावरण व्याप्त कर दिया। जमींदार, किसान, सैनिक हर कोई अंग्रेजी शासनको गोमासके समान अपवित्र मानने लगा। छोटेसे गॉवको पता लग जाता कि कोई अंग्रेज गॉवकी सीमासे गुजर रहा है तो गॉववाले उसे पीटकर भगा देते।* जब ४ जूनका बनारसका यत्न असफल हुआ, और वहॉ गिरफ्तारीका दौरा शुरू हुआ तब एक महत्वपूर्ण बात पहले पहल खुल गयी।+ ऐसेही कुछ प्रसंगोंसे क्रांतिके संगठनका यंत्र कैसे चालू किया जाता था इसकी पर्याप्त पहचान हो जाती है। काशीके करोडपति सर्राफ तथा तीन महान् आंदोलक गिरफ्तार हुए। जब उनके घरोंकी तलाशी हुई तो सांकेतिक भाषामे लिखे कुछ भयंकर पत्र, जो क्रांति–केन्द्र–कार्यालयसे आये थे, बरामद हुए। उनमेंसे एक पत्र, जो 'नेताका' लिखा हुआ था, यों था "अब बनारसवालोंको एक साथ विद्रोह कर देना चाहिये। गबिन्स, लिंड तथा अन्य गोरोंको पहले मार डालो। इस काममें खर्च हो तो सर्राफ उसे पूरा कर देगा।" इस सर्राफ का घर जब जब्त किया गया तो वहॉ दो सौ तलवारें और कुछ बंदूकें मिलीं।

यह है थोडेमें बनारसका वृत्तान्त। यहॉ मेरठ या दिल्लीके समान अंग्रे-

---

* सं २७ "सिपाहियोंके बलवेकी बढती अवस्थामें, गहरा और चारों ओर फैला हुआ द्वेष और तथाकथित अन्यायके प्रतिशोधका कभी शान्त न होनेवाला भाव बढता गया, यह बात स्पष्ट दीख पडती है। लूटखसोट की इच्छा तो उस द्वेष तथा प्रतिशोधके भावकी उपज थी, जिससे भिन्न भिन्न स्थानोंके अंग्रेजोंपर बडी विपत्तियॉ आ गिरीं।–चार्लस् बॉल कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड पृ. २४५

+ सं. २८ बनारसमें विद्रोह होनेकी बात जिलोंमें फैली नहीं कि सारा प्रांत एक साथ उठा। आसपासके स्थानोंसे यातायातके मार्ग तोड दिये गये; (तार तोडे गये, रेलें उखाडी गयीं)। मालूम होता था कि सिपाहियोंसे जो काम पूरा न हो सका, उसे सफल कर दिखानेकी चेष्टा जनता और जमींदार (मिलकर) कर रहे थे।"–रेडपॅम्फलेट पृ. ११

जोंकी हत्या बिलकुल न हुई। प्रतिमरमें एककभी मेमको नहीं मारा गया। जनताके हृदयमें धधकती राष्ट्रीय क्रोधकी ज्वाला जब 'बदला, प्रतिशोध' की ध्वनिके साथ फट पड़ती तब भी अंग्रेजोंको गाँव बाहर कर, लोग मुक्त त्राससे पेश आते कभी कभी तो उनके गाड़ीमें बैठ या घाटे जोत देनेमें सहायता देते। यह चित्र देखो और अब आनवाला यह चित्र भी देखो!

हम इस की चाह नहीं करते कि स्वराज्यप्राप्तिके लिए बनारसके लोगोंने जो जतन किये उसमें अंग्रेजोंको सहानुभूति होनी चाहिये। किन्तु इस बातको हम जोर देकर बार बार बताएँगे कि बनारस प्रान्तमें किये अंग्रेजोंके अत्याचारोंका मण्डन किसी दशामें किया नहीं जा सकता। क्यों कि, सिपाहीं और जनताने जिस मात्रामें कुछ किया और उससे बढ़कर अंग्रेजोंने जो भयंकर अत्याचार किये इनमें किसी प्रकार का समपरिमाण मिलना असम्भव-सा है। क्रांतिकारियोंने—अर्थात् हिंदी जनताने—जो 'क्रूर' काम किये उनके विषयमें अत्यंत नीच तथा झूठे अभियोग लगानेमें अंग्रेजोंने कोई कमी न रहने दी। सभ्य तथा सुधरी हुई जाती की डींग हाँकनेवाले एक अंग्रेज अफसरने बनारसके लोगोंसे किस तरहका बर्ताव किया इसका वर्णन देंगे और ध्यान रहे, अंग्रेजोंने स्वयं लिखे हुए सत्य बातोंके सबूतके साथ देंगे तब उसकी आलोचना अनावश्यक होगी—व्यर्थ भी। संसार स्वयंही उसका निर्णय करे।

बनारसके विद्रोहके बाद आसपासके देहातोंमें शान्ति स्थापनेके लिए जनरल नीलने अंग्रेजों और सिक्खोंको मिलाकर एक सेनाविभाग बनाया। इन सैनिकोंकी टोलियाँ असहाय तथा निहत्थे देहातोंमें घुसतीं और जो भी मिले उसे या तो तलवारके घाट उतारा जाता, या फाँसीपर लटका दिया जाता। इन फाँसी जानवाले अभागोंकी संख्या इतनी अधिक बढ़ी, कि रातदिन चालू रहनेपर भी एक वधस्तंभसे काम पूरा न होता था। तब फाँसीके खम्भोंकी एक पंक्तिही खड़ी कर दी गयी। इनपर से अफसरों ही को पकड़कर फेंक दिया जाता फिरभी मरनेवालोंकी संख्या घटतीही न थी। पेड़ काटकर उससे वधस्तंभ बनानेकी बचकुफीकी कल्पनाको सकार मान कर, अंग्रेजोंने पेड़ोंकोही वधस्तंभ बना डाला। अरे, हाँ, एक पेड़में एकही आदमीको लटकाया जाय तो फिर करवानेवाले पड़ोंमें डालें क्यों कर पैदा

थीं ? तब डालडालको रस्सेसे गर्दने कसे हुए ' काले ' आदमियोंकी लाशें हर पेडमे लटकती दीख पडती थीं। यह सैनिक कर्तव्य तथा ' ईसाई शान्तिधर्मके प्रचारका कार्य ' दिनरात चालूही रहता था, आश्चर्य नहीं, अग्रेज बहादरभी उससे तग आ गये ! इससे इस उदात्त और धार्मिक कर्तव्यके लिए आवश्यक गभीरताके साथ, कुछ मनोविनोदका सामान भी वाछनीय था ! किसी किसानको पकडकर उसे पेडमे लटकाना तो अनाडी ढग है, उसमें कुछ कलात्मकता चाहिये। सो, लोगोको पहले हाथीपर चढाया जाता, फिर हाथियोंको डालोके नीचे खडाकर लोगोंकी गर्दनें डालोंसे कसकर बाधी जाती और फिर हाथीको भगाया जाता। * जब अनगिनत लाशें पेडके डाल डालमें बेढब लटकती रह जातीं, और इस एकही ढर्रेका दृश्य अंग्रेज राहियोंको अच्छा न लगता था, वे ऊब जाते थे ! तब तरकीब सोची गयी कि ' नेटिवों ' को खडे फॉसी देनेके बदले उनके शरीरकी कुछ चित्राकृतियॉ बनाकर लटकाया जाय। अंग्रेजी 8 और 9 की आकृतियॉ बनाकर पेडोंमे लटकाया जाने लगा ! × (स. २९)

किन्तु स्थान स्थानपर होनेवाले इस हत्याकाण्डकी पर्वाह न करते हुए सैकडो हजारों 'काले' आदमी अब तक जीवित ही रहे। अब इतनोंको फॉसी चढानेके लिए रस्सी भी नहीं मिलेगी ! अत्यत सभ्य और ईसामसीहके दया धर्मकी अनुयायी इग्लैंड इस अडचनके कारण बडी जिचमे पड गया ! अहा ! ईसाकी परम कृपासे इग्लैडको नयी सूझ प्राप्त हुई और इसका प्रथम प्रयोग इतना यशस्वी ठहरा, कि तबसे इस नूतन तथा वैज्ञानिक ढगको अपनाकर फॉसीके पुराने ढर्रेको त्याज्य माना गया ! इस नये आविष्कारने गॉवके

---

* मिलिटरी नॅरेटिव्ह पृ. ६९

× फॉसी देनेवाली स्वयसेवक टोलियॉ जिलोंमें जाती, जहॉ शौकीन जल्लादोंकी कमी न होती थी। एक महाशय शेखी बघारते, थे, कि उन्होंने जितनोंको लटकाया ' सब कलात्मक ढगसे ' था—आमके पेडको टिकटी और हाथीको पटरी बनाकर ! इस जगली न्यायके शिकारोंको, दिलबहलावके लिए, आठके अक (8) के आकारमें टागा जाता " के ॲन्ड मॅलिसन कृत हिस्टरी ऑफ दि इडियन म्यूटिनी खण्ड २, पृ. १७७

गाँव सहसनहस कर दिये गये। आगकी पेंचदार लपटोंसे किसानोंकी गर्दन जकड़कर, ऊपरसे तापसानका सम्पाग रहनसे, क्या मजाल, कि कोई चूँ तक करे। 'काले' नटिवांको भस्म कर डालनेमें क्या देरी! समूचे गाँवको आग लगाकर उसमें सभी जीवोंको एक साथ जला देनेका कार्यक्रम कई अंग्रेजोंको इतना मनोरञ्जक मालूम होता, कि वे इसके विनोदपूर्ण वर्णन लिखकर इंग्लैंडमें अपने नातेदारोंको भेजते। इस सर्वदहनका काम इतनी सफाईसे तथा झटपट होता, कि देहातियोंको उससे बाहर पड़नेका कोई अवसर ही न मिलने पाता। गरीब किसान, विद्वान् ब्राह्मण, दीन मुसल्मान, पाठशालाके लड़के, नन्हे मुन्नोंको अंचल देती हुई स्त्रियां, मासूम लड़कियाँ, मूले, अंधे, लूले, गाय जानवर सभी एकसाथ आगकी भेंट बनते। धुआंपर कारण एक डग भरना जिन्हें दूभर था, वे स्त्री पुरुष बिस्तरहीन जलकर खाक हो जाते * और इस सफाईसे भी भागनेमें कुछ सफलता कोई प्राप्त करे तो! तो— एक अंग्रेज अपने पत्रमें लिखता है —"हम आदमियोंसे भरे भरे गाँवको जला देते चारों ओरसे गाँवको घेरे हुए हम बैठ जाते और जब कोई देहाती चीखता—चिल्लाता आगकी लपटसे बाहर आता तो उसे हम गोलियोंसे छलनी बना देते!" *

यह शायद, इस तरह भुना हुआ, एकाध गाँव होगा? प्रांतके भिन्न भिन्न हिस्सोंमें गाँव जला देनेको कई टोलियोंको भेजा गया था। इन टोलियोंके कई अफसरोंसे एक अधिकारी, कई गाँवोंको जलानेके दौरेमें से एक दौरेके बारेमें लिखता है "आपको संतोष होगा, कि हमने कुल बीस देहातोंको जलाकर भस्म कर दिया है।"

ध्यान रहे, उपर्युक्त विवरण उन इतिहासकारोंके ग्रंथोंमें इधर उधर छूट गये उल्लेखोंका संक्षिप्त रूप है, जो स्पष्टरूपसे कहते हैं, 'जनरल नीलने जो बदला लिया उसके बारेमें कुछ न लिखना ही अच्छा है।'

बस! अपनी ओरसे एकाध शब्द इसमें जोड़ना तो अंग्रेजोंके इस अमानुष, असभ्य क्रूरताके नग्न चित्रको बिगाड़ना होगा! और इसलिए

* चार्ल्स् बॉल कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १, पृ २४१ ४४

दे भयाकुल नेत्रो । इधर, अब, जान्हवी और कालिंदीके प्रीति-संगमकी प्रेम लहरोंकी ओर देखो ! प्रयाग नगरी त्रिवेणी–संगमके सुशात, सुभव्य सलिलसे सुस्नात होती है । त्रिवेणीका पुण्यपावन तीर्थक्षेत्र तथा अकबरके समयमें बना वहाँका दुर्ग प्रयागकी शोभा औरही बढाते है । कलकत्तेसे पंजाबको जानेवाले सभी प्रमुख मार्गोंका यह नाका है । प्रांतकी सभी हलचलोंपर नजर रखने योग्य ऊँचा, दृढ और भव्य है प्रयागका किला ! १८५७ मे यह दशा थी कि, जिसके हाथमें यह किला हो, उसके हाथ सारे प्रांतकी बागडोर रहती । इससे दोनों ओरसे इस महत्त्वपूर्ण किलेको हथियाने या अधिकारमें बनाय रखनेकी चेष्टाओंकी पराकाष्ठा की जा रही थी । क्रांतिदलका आयोजन था, कि प्रयागके सैनिक तथा नागरिक एक साथ उठे । इस समय हिंदू मुसलमान दोनों स्वदेश की स्वाधीनताको प्राप्त करनेके प्रयत्न इतनी तीव्रतासे चला रहे थे कि सरकारी नौकर बने न्यायाधीश तथा मुन्सिफ भी गुप्तरूपसे क्रांतिदलके सदस्य थे । *

इलाहाबादके अंग्रेज अधिकारी अपने सभी सैनिकोंको राजनिष्ठाकी प्रत्यक्ष मूर्तिही मानते थे । विशेषमें, ६ वी पलटन तो राजनिष्ठोंकी प्रथम श्रेणी थी । एक दिन दिल्लीके समाचार सुनकर उन सैनिकोंने अपने अफसरोंसे प्रार्थना की, "साब, दिल्ली जाकर इन बागियोंका सिर कुचलनेकी हमें आज्ञा दीजिये । हम इसके लिए बेचैन हो उठे है ।" राजनिष्ठाकी बलिहारी ! आज्ञा हुई, कि गवर्नर जनरलकी ओरसे, ६वीं पलटनको इस अजोड निष्ठा तथा विश्वासके लिए धन्यवाद दिये जायँ । किन्तु इसी समय किसी चुगलखोरने बताया कि यह ६ वीं पलटन तो क्रांतिकारियोंके साथ घनिष्ठ मित्रता रखती है । तब ६वीं पलटनके सिपाहियोंने दो क्रांतिकारियोंको पकडकर अंग्रेजोंको सुपुर्द कर दिया । अब किसी तरह संदेहको स्थानही कहाँ ? तिसपर भी सरकार हमारी राजनिष्ठा पर शंका करती हो, तो हमारे हृदयोंको टटोलकर उसकी शुद्धताकी निश्चिति क्यो न की जाय ! ६ जूनको बडे अंग्रेज अधिकारी स्वयं आ पहुँचे । देखते क्या है, कि वहाँ तो राजनिष्ठाका महासागर लहरें मार रहा था, यहाँतक, कि कुछ सिपाहियोने

---

* चार्लस् बॉल कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १. पृ. २८८

दौड़कर बड़े प्रेमसे अंग्रेज अफसरोंको गले लगाया और दोनों गालोंके चूमे लिये। *

और उसी रातको ६वीं पल्टनके सब सिपाही तलवारें उछालते और 'मारो फिरंगीको' नारा लगाते बाहर आते हुए दीख पड़े।

इधर क्रांतिकारी सैनिक इस लिए आकाश पाताल एक कर रहे थे, कि उनकी योजनाओंका पता शत्रुको लगकर बनारसके सैनिकोंके समान उन्हें निःशस्त्र न होना पड़े उधर अंग्रेज, सिक्ख सैनिकों तथा रिसालेकी सुरक्षामें अपने अपने परिवारोंको किलेमें पहुँचा रहे थे। ५ जूनको बनारसके समाचार इलाहाबाद पहुँचे। उस दिन नगरमें इतनी चहल पहल थी कि अंग्रेजोंने बनारसके मार्गमें पड़नवाले पुल्पर अपनी तोपें ताककर किलेके द्वार भी बंद कर लिये थे। उस रातको सिपाहियोंने अंग्रेज अफसरोंको क्वार्टरमें छिपाकर बोले लिए थ वे जब भोजनके लिए मेसमें जमा हुए तब कुछ दूरीपर तुरहीकी डरावनी आवाजें आने लगीं। मानो यह सूचित किया जा रहा था, कि ६ वीं 'राजनिष्ठ' पल्टनही अब विद्रोह कर रही है।

उस शामको, आज्ञा हुई कि बनारसके पुलपर रोकी हुई तोपोंको किलेके अंदर ले जाया जाय। किन्तु अंग्रेजोंकी हर आज्ञाको सिर आँखोंपर रखनेकी प्रथा आज एकाएक टूट-सी गयी दीख पड़ती थी। क्यों कि, सैनिकोंने आज्ञा जारी की कि तोपें किलेमें नहीं, बाहर छावनीमें रखी जायँ। गोरे अफसरोंने सैनिकोंको इस उद्दंडताका दण्ड देनेकी अवधके रिसालेको आज्ञा दी। ले अलक्सांदर और ले हारवर्ड इन दोनों नौजवानोंने रिसाला ठीक कर सैनिकोंपर हमला किया। इस समय पौ फट चुकी थी। इन बागी सिपाहियोंके सामने पहुँचकर वे दोनों युवक अंग्रेज आगे इस आशा पर घुस पड़े, कि उनका इशारा पातेही रिसाला दौड़कर *जोरसे हमला करेगा और इन मुठ्ठीभर सैनिकोंका कचूमर निकालेगा।* किन्तु महान् आश्चर्य! स्वदेश-बंधुओंके विरुद्ध हथियार न उठानेके निश्चयसे, वैसे ये वहीं सवार डटे रहे! बागियोंने उनकी प्रशंसामें नारे लगाये। ले अल-

---

* मिलिटरी नॅरेटिव्ह

क्सादरकी छातीपर वार हुआ और वह नीचे गिरकर मर गया। तब सिपाहियोंने एक दूसरेको गले लगाया और सब मिलकर छावनीको चल पडे। दो सवार पहले दौड गये थे, जिन्होंने छावनीमे सिपाहियोंको सब किस्सा सुनाया। इस समय सचलन भूमिपर जो दृश्य था, वह अवर्णनीय था। अंग्रेज अफसरोंके मुँहसे आज्ञाका शब्द निकलतेही सॉय सॉय करतीं गोलियॉ चली आतीं। ॲडज्युटट स्टयुअर्ड प्लकेट, कार्टर मास्टर प्रिगल, मनरो, बर्च, ले. इनीज सबके सब ढेर हो गये। अब सचलन–भूमिसे उत्तेजित सिपाही अंग्रेजोंके घर जलाते घूमने लगे। जब उन्हें पता चला कि कुछ गोरे मेसमे छिपे बैठे हैं तो वहाँ जाकर सबके सब गोरोंका काम तमाम कर दिया। हम पहले बता चुके है, कि इलाहाबादके किलेपर कब्जा रखना महत्त्वपूर्ण चाल थी। इसी किलेमे अंग्रेजोंके परिवार थे तथा गोला बारूद का भडारा भरा पडा था। इन सबकी रक्षा का भार सिक्खोको सौपा गया था। सब सिपाही अब तोपके धडाके के इशारेकी राह देख रहे थे। क्यो कि, वहॉके सिक्ख तथा अन्य सिपाहियोंने यह निश्चय किया था, कि बलवा कर अंग्रेजोको किलेके बाहर कर देने की खबर तोपोंके धडाकोंसे दी जायगी।

किन्तु किलेके सिक्खोंने ऐन मौकेपर विश्वासघात किया। अंग्रेजी यूनियन जॅकको किलेसे हटानेसे इनकार करही दिया, साथ साथ अभी आये सैनिकोंको निःशस्त्र कर निकाल बाहर कर देनेमे अंग्रेजोकी सहायता की। आजभी अंग्रेजोंको इस बातपर अचभा होता है, कि ऐसे वॉके समयमें क्रातिकारियोंको धोखा देनेपर सिक्ख क्योंकर उतारू हुए? यदि धोखा न होता तो केवल आध घटेमे इलाहाबादका यह प्रचड किला क्रातिकारियोंके कब्जेमें आ जाता। याने, घडीभरमें अंग्रेजी शासनकी रीढही टूट जाती। किन्तु, हाय, यह अनमोल आध घटा अपने देशबधुओं और अपनी मातृभूमिको रौंध डालनेमे सिक्खोंने बिताया। किलेके विद्रोहियोंने बार बार बलवा किया किन्तु सिक्खोंने अंग्रेजोंका ही साथ दिया और अपने देशभाइयोंके हथियार छिनकर उन्हे अंग्रेजोंकी आज्ञासे किलेके बाहर कर दिया। इस तरह किला फिरसे अंग्रेजोंके आधिपत्यमे रहा।

किन्तु, सौभाग्यसे ये चारसौ देशद्रोही सिक्खही कोई सारा प्रयाग न

था। मल्वेका निश्चित समय आ पहुँचनेपर सारा प्रयाग उठा। संचलन भूमिक भयानक नारोंस सारा नगर गूँज रहा था। पहले गारोंक बगलोंमें आग लगायी गयी। फिर सिपाहियों और नागरिकोंने मिलकर जलोंको ताड़ दिया। उनमें बद पड़े सैकड़ों बंदियोंसे अधिक गारोंक प्रति कट्टर इस दूसरे किसी मानवमें शायदही मुश्किल होगा। इनसे मुक्त होवेही भीषण गर्जन करते हुए य सबस पहले गारोंके निवासोंका चल पड़ा। तार और रेलपर क्रांतिकारियोंकी तीव्र नजर रहती। रेलवे कार्यालय, पटरियाँ, तारके खम्भ, तार, इंजन सब चकनाचूर कर दिये जाते। गोरोंने बहुत कुछ सावधानी रखनेपर भी कुछ गोरे क्रांतिकारियोंके हाथ लग ही, जिनका तुरन्त सफाया कर दिया गया। उसके बाद शामत आयी उन कर्नटोंकी—धमभ्रष्ट फिरंगियोंकी—जो अंग्रेजोंके बूतेपर कूदते और हिंदी लोगोंसे अति उद्दंडतासे पेश आते। क्रांतिविरोधी देशद्रोहियोंके घरोंपर हमला हुआ। केवल उनका जीवित रखा गया, जिन्होंने 'दिल्लीके सम्राटसे राजनिष्ठ रहेंगे और अंग्रेजोंसे लड़ेंगे' की सौगन्ध ली। दिनांक १७ को सबेरे क्रांतिकारियोंने लगभग ३० लाख रुपयोंका खजाना हथिया लिया। और फिर दो पहर, नगरभरमें क्रांतिके झण्डे का जुलूस घूमा और पुलिस थानेपर उसे गाड़ा गया। इस तरह सारा नगर और किला दोनों क्रांतिकी स्वर्गीय डँके आनेके बाद नागरिकों तथा सिपाहियोंने उस क्रांति स्वधर्मकी सामूहिक वंदना की।

लगभग एकही समयमें समूचा इलाहाबाद प्रांत एक प्राण होकर भड़क उठा। हर स्थानमें एकाएक इतना बदल हो गया था कि कुछ समय के बाद यहाँ अंग्रेजी राज कभी था इस बातपर शायदही लोगों को विश्वास होता। हर गाँवमें चरा हुआ क्रांतिध्वज लहरा रहा था भूले भटके कोई गोरा हाथ आता, तो देहाती उसे मार भगाते या जानसे मार डालते। क्या ही आश्चर्य है, कि पराधीनता की जड़ें कई सदियोंतक गहरी स्थानेकी चेष्टा करनपर भी कितनी छिछली होती हैं! हाँ, पराधीनताके अप्राकृतिक बीजमें जड़ें पैदा होना ही तो अचरज है। संसार, तुझे अबभी यह पाठ सीखनाही बाकी है!

इलाहाबाद प्रांत के सब ताल्लुकदार मुसलमान थे और उनकी रियाया

हिंदू। अंग्रेज मानते न थे कि ये दो समाज एकमन होकर विद्रोह करेंगे। किन्तु, जून १८५७ के उस सस्मरणीय प्रथम सप्ताहमे कई असभव बातें प्रत्यक्ष होकर दिखाई पडीं। प्रयागके बलवेका समाचार मिलनेकी राह न देखते हुए, प्रातभरके देहात उठे और वहमी एक साथ; और उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता घोषित की। एकही माताके जाये हिंदू और मुसलमान एक साथ उठे और अंग्रेजी सत्तापर टूट पडे। हट्टेकट्टे सैनिकही नहीं, बूढे सैनिक बदी भी राष्ट्रीय स्वयसेवक बनकर आगे आनेमे होड करने लगे। अपनी पकी मूछोंमें बल देते हुए सैनिक-दलोंका सगटन करने लगे। जो स्वय रणमैदानमे बुढापेके कारण या दुबलेपनके कारण जा न सकेते थे, वे नौजवानोंको युद्धके दॉवपेंचोंकी जानकारी देते थे और युद्धशास्त्रकी खूबियोंको खोलकर बताते थे। फिर क्या आश्चर्य, कि स्वधर्म और स्वराज्यके ऊँचे ध्येयकी लगनके कारण बूढे सैनिकोंमें भी जवानीका जोश उमडा पडा हो, उस ध्येयसे सब जातियो तथा श्रेणियोंके लोगोके मनको भी छा दिया हो।*

मारवाडी बनिये भी इस प्रचड आदोलनमे हाथ बॅटते थे और वह भी इतना महत्त्वपूर्ण था, कि जनरल नीलने भी अपने विवरणमे गोरोंके विरुद्ध द्वेषभावनाका जानबूझकर जिक्र किया है। "बहुतेरे प्रमुख व्यापारियो तथा अन्य लोगोंने हमसे कट्टर शत्रुभाव प्रकट किया और उनमें से कुछ लोगोंने तो हमारे विरुद्ध लडे जानेवाले युद्धमे भाग भी लिया"। फिर भी अंग्रेजोंको घमण्ड था कि कमसेकम किसान तो हमारे पक्षमें होंगे। किन्तु इस भ्रमकी कलाइ खोलकर इलाहाबादने खासी ठोकर लगायी। १८५७ के क्राति युद्धमें इसके पहिले किसीभी राजनैतिक आदोलनमें किंचित् भी भाग न लेनेवाले किसान पहली हरावलमें थे। पुराने-अंग्रेजोंको नियुक्तोंके पहलेके-ताल्लुकदारोंके झण्डेके

* (स. ३०) कल हमारे हाथ चाटनेवाले सिपाही आज उन पेन्शन पानेवाले बूढोंके साथ, जो मैदानमें जानेके योग्य न रहे थे, अन्य लोगोंको कायरता तथा क्रूरताके कार्य करनेमें बढावा बडी लगनसे दे रहे थे।—के कृत इडियन म्यूटिनी खण्ड २ पृ. १९३. रेडपेम्फ्लेट भी देखो।

नीचे अपने हलोंको खेतोंमें छोड़ उनके किसान रियाया स्वातन्त्र्य युद्धमें शामिल होनेके लिए बिजलीकी गतिसे दौड़ पड़ी। उन्होंने चालू अंग्रेजी राजनीतिको पुराने स्वामियोंकी राजनीतिसे मिलानकर देखा, तब उन्हें निश्चय हुआ कि इस धोखेबाज फिरंगी शासनसे अपने स्वराज्यका कारोबारही हजार गुना अच्छा था। जब सब घटनाएँ पराकाष्ठाको पहुँच गयीं तब गत कई शतकोंके अकथनीय दुष्कर्मोंका बदला लेनेकी सिद्धता करने लगे। हर स्थानमें स्वराज्यकी जय आरोंसे तथा आनंदसे पुकारी जाती और नन्हे बच्चेभी मार्गमें पराधीनता पर थूकने लगे! यह अक्षर अक्षर सत्य है, कि १२–१४ सालके बालक क्रांतिका झण्डा फहराकर मार्ग मार्गमें जुलूस निकालते। ऐसेही एक जुलूसपर हमलाकर अंग्रेजोंने उन बच्चोंको देहान्तका दण्ड दिया। यह समाचार सुनकर एक अंग्रेज अफसर लज्जासे अपने अंदर बहुत गड़ गया वह सेनापतिके पास पहुँचा, उसकी आँखोंमें आँसू छलक रहे थे, बालकोंको मुक्त करने उसने प्रार्थना की। हाँ, यह प्रार्थना किसी काम की न थी। जिन बालकोंने स्वातन्त्र्यध्वजको ऊँचा करनेका अपराध (!) किया था उन सबको सबके सामने फाँसीपर लटकाया गया! देवदूतके समान निष्पाप बालकोंकी हत्या, कौन कह सकता है, करनेवालोंके ही सिरपर फिर और जोरसे न आ गिरे! सारा प्रांत क्रोधसे थर्रा गया! किसान, ताल्लुकदार, बूढा, जवान, स्त्री, पुरुष सभी दासताकी शृंखलाको तोड़ देनेको 'हर हर महादेव' के नारे लगाते हुए उठे। "केवल गंगापार नहीं, गंगा और जमुनाके दोआबके सभी प्रांतके देहाती उठे और ऐसा एकभी मानव, दोनों धर्मोंमें, न बचा जो हमपर वार करना न चाहता हो।" *

भारतीय इतिहासमें इतनी उत्तेजक, वेगवती तथा सर्वव्यापी दूसरी क्रांति मिलना सर्वथा असम्भव है। भारतीय इतिहासमें यह तो आजतक न बनी हुई घटना थी, कि स्वदेश और स्वातन्त्र्य के लिए जागरित जन शक्तिका उत्थान हुआ और जिस तरह गड़गड़ानेवाले मेघोंसे जलधारा बह निकलती है, उसी तरह धधक रक्तकी नदियाँ बहने लगीं! इससे बढ़

* के कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड २ पृ १९५

कर वह दृश्य अत्यंत उदात्त तथा स्फूर्तिप्रद था, कि अपने सच्चे कल्याणको पहचान, बंधुभावसे प्रेरित हिंदू और मुसलमान कंधेसे कंधा मिलाकर लड रहे थे। इस प्रकार प्रचंड और अनोखा बवंडर पैदा करनेके बाद हिंदुस्थान उसे अपने काबूमें न रख सका, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अचरजकी बात हो तो वह है, इस प्रकार प्रलयंकर प्रभंजनको भारत किस तरह पैदा कर सका! ऐसे तो कोई भी राष्ट्र क्रांतिके बहावको एकाएक नियंत्रित नहीं कर पाया है। फ्रेंच राज्यक्रांतिसे यदि १८५७के विप्लवका मिलान किया जाय तो मालूम होगा कि अराजक, अत्याचार, गोलमाल, स्वार्थपरकता, तथा लूटखसोट आदि क्रांतिकालमें अनिवार्य रूपसे होनेवाली बातें भारतमें फ्रान्स की अपेक्षा बहुत कम मात्रामें हुईं। जमींदारोंका परंपरागत आपसी वैर, राजनैतिक पराधीनताका आवश्यक परिणाम वीस बिसवा दारिद्य, हिंदुमुसलमानोंका सदियोंका पुराना द्वेषभाव और दूर करनेकी सभी चेष्टाओंके बावजूद बीचबीचमें उमडनेवाले अपसमझ (गलतफहमियाँ) इन सब बातोंके कारण क्रांतिका पहला प्रचंड धमाका हो जानेके बाद अराजक (अनार्की) न होनेकी आशा पूरी न हो सकी! उत्पत्तिके बाद तुरन्त जलप्रलय होता है, करतारभी इसे नहीं रोक सकता। क्रांतिके सवारको जहाँ भी अडचन आय, उसका सामना करनेकी सिद्धता रखना अनिवार्य है। अस्तु।

लूटखसोट और आगके दौरेका प्रथम सप्ताह समाप्त हुआ, तब अराजकका संकट और भय टल गया और इलाहाबादमें क्रांतिकार्यका रूप सुघटित-सा हो गया। जहाँ भी जनताके असंतोषका विस्फोट होकर विप्लव होता है वहाँ पहले झटकेमें सुयोग्य नेता पाना दूभर होता है। किन्तु प्रयागमें यह अडचन तुरन्त दूर हो गयी। एक कट्टर स्वातंत्र्यप्रेमी सज्जन मौलवी लियाकत अली आगे आये और नेता बने। इनकी जानकरी हमें इतनीही मिलती है, कि ये जुलाहोंमें धर्मप्रचार करते थे; और एक मदरसेमें पढाते थे। उनके पवित्र चरित्रके कारण लोग उनका बडा आदर करते थे। इलाहाबाद स्वतंत्र हो जानेपर चोवीस परगनेके जमींदारोंने उन्हे इलाहाबादका मुखिया तथा सम्राटका प्रतिनिधि मानकर सम्मानित. किया। मौलवीने खुश्रूबागके सुरक्षित आहातेमें अपना डेरा डाला और वहाँसे समूचे प्रांतके

क्रांतिकायका संचालन करने लगे। थोड़ेही दिनोंमें राज्यप्रबंध को ठीक कर दिया। सम्राटके सूबेदारके नाते प्रांतमें होनेवाली हर घटनाका विवरण सम्राट्के पास पहुँचानेकी प्रथा चालू की।

सबसे पहले आवश्यकता थी प्रयागके किलेपर दखल करना। जन हर नीलके बनारस से प्रयागकी ओर चल देनेकी खबर पातेही मौलवी लियाकत अलीने सेनाको सुसंगठित कर किलेपर धावा बोल देनेकी सिद्धता की। इस समय भी यदि किलेके अंदर होनेवाले चार सौ सिक्खोंकी अक्ल ठिकाने आती, तब भी बिना एक गोली चलाये तोपों और गोलाबारूद समेत किला क्रांतिकारियोंके हाथ आता। जनरल नीलको निराश इस भयने अभिभूत किया था, जिससे वह गोरी पल्टनोंको साथ लिये प्रयागको दौड़ पड़ा था, वह ११ जूनको वहां पहुँचा। घमासान लड़ाईके बाद १८ जूनको अपने राजनिष्ठ सिक्ख पिट्ठुओं समेत वह इलाहाबादमें पैठ पाया।

बनारसके समान लड़ाईके बाद इलाहाबाद अंग्रेजोंके हाथमें चला गया, फिरभी क्रांतिकारी पस्तहिम्मत न हुए। किलेमें शत्रुने उसका आसन जमा लिया देख, प्रांतकी जनता औरही भड़क उठी। हर देहातने प्रतिकारकी सिद्धता कर अपनी रक्षाका प्रबंध कर लिया। इस तरह बिके हुए लोगोंको रिश्वत देकर बश करनेका समय कबका समाप्त हो चुका था। यह लड़ाई एक सिद्धांतके लिए लड़ी जा रही थी। नीलने छोटेसे छोटे नेताको भी पकड़ा देनेके लिए हजारोंका इनाम घोषित किया, किन्तु दरिद्र खेतीहर भी उसमे न ललचाये! एक अंग्रेज अफसरने, केवल सिद्धान्तके लिए लड़ी जानेवाली गहरी लड़ाईकी इस उदात्ततापर, आश्चर्य प्रकट किया है। "मॅजिस्ट्रेटने किसानोंकी जानमें हानेवाले एक मशहूर नेताका सिर ला देनेके लिए एक हजार रुपयोंका इनाम घोषित किया। किन्तु हमसे (गोरोंसे) उन्हें इतना कट्टर द्वेष था कि एक भी जीव उसे पकड़ा देनेको आगे न बढ़ा! *

अपने नेताको पकड़ा देनेका हीन काम तो दूर, पैसे लेकर भी गोरोंको कुछ सौदा देना बड़ा पाप माना जाता। और कहीं लालचमें आकर ऐसा

* चार्ल्स बॉल कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १

पाप करे तो उसके जातवाले उसे कठोर दण्ड देते। "एक पाउँ रोटी-वालेने हमे गोरोको पाउँरोटी भेजी, तब उसके हाथोंके साथ उसकी नाकभी कटी दीख पडी," यह समाचार २३ जूनका है। केवल रोटी बेचनेके अपराधमे किसानोने यह दण्ड दिया था। जब इस तरह सशस्त्र बहिष्कार पुकारा गया तो फिर अंग्रेजोकी बुरी दशाका क्या वर्णन करें? गोरोंने इलाहाबादका किला लिया सही; किन्तु उन्हे इधरसे उधर हिलना असम्भव–सा हो गया। उन्हे सवारी, गाडी, बैल, दवा दारूभी मिलना दूभर हो गया। बीमार सैनिकोंके लिए डोली तथा उसे उठानेवाले कहार न मिलते थे। कई जगहोंमे बीमार पडे हुए थे, उनकी आर्त चिल्लाहट इतनी भयावनी थी कि कुछ अंग्रेज स्त्रियाँ उन्हे सुनकरही मर गयी। गरमी तो साँयँ साँयँ कर रही थी। अब कहीं अंग्रेजोंके मस्तिष्कमे क्रांतिकारियोंका यह दाँव आया कि जूनमें विद्रोह करनेसे मात्र गरमीहीसे गोरे मर जायँगे। अपना सिर ठंढे पानीमें डूबो रखनेमें हर गोरा सैनिक व्यस्त था। ऊपरसे अनाजदानेकी कमी थी ही। उन्हें अनाजका एक कण भी बेचनेवाला देशद्रोही न मिलता था। "ठेठ आजतक हमे बिलकुल थोडे अनाजपर गुजारा करना पडा, कलके मेरे कलेवेसे एक कुत्ताभी अपना पेट न भर सकता।" इलाहाबादके एक अंग्रेज अफसरका यह कथन है। इस तह गरमी और भूखके कारण अंग्रेजोके डेरेमे हैजा फूट पडा। इस दुःखसे छुटकारा पानेको अंग्रेज सोजीर हर दिन शराब पीकर बेहोश होने लगे। तब अनुशासन ढीला पड गया। ये पीक्कड सैनिक जब नीलकी आज्ञा भी ठुकराने लगे तब नीलने कॅनिंगको लिखा 'इनमेंसे कुछको मै फाँसी देने जा रहा हूँ,' यह दशा थी इलाहाबादमें पडी गोरी सेनाकी। कानपुरको सहायता भेजनेके लिए लगातार त्वर्य (अर्जंट) सदेश जा रहे थे, फिर भी नील जैसे मक्कम सेनापति को भी दिनाक १ जोलाई-तक प्रयागहीमें सडना पडा।

ध्यान रहे, नील तथा उसके मातहत फ्युजीलियर्सकी पलटनको मद्राससे खास बुलाया गया था। उस समय मद्रासमें क्रांतिकी एक छोटी लहर भी उठती तो अंग्रेज उसका दबाव एक दिन भी सह न सकते। किन्तु, इलाहाबादके कट्टर हिंदी सैनिकोंने अंग्रेजोंको किलेमे बंद रखनेका, चाहे

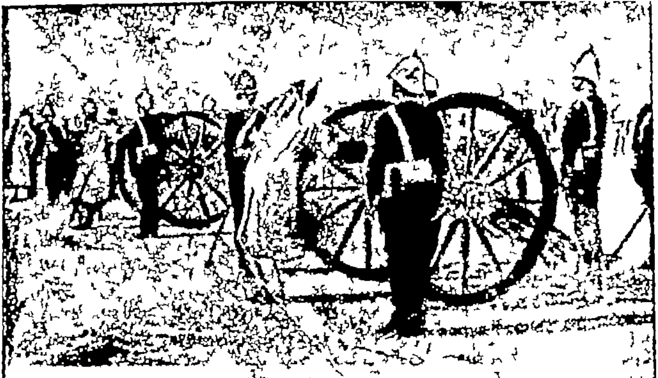

VICTIMS OF BRITISH BRUTALITY

Indian Revolutionaries blown from the mouth of guns

(From the painting of the great Russian painter Vereshchagin)

जितनी चतुरतासे, सुन्दर आयोजन किया हो, अंग्रेजोंका दिल उससे बैठ जानेका कोई कारण नहीं था। क्यों कि, मद्रास, बम्बई, राजपूताना, नेपाल तथा अन्य प्रदेश अधमी प्रेतकी तरह ठठे थे और इस तरह इस राष्ट्रीय आंदोलनके गलेमें अपने निकम्मेपनका भारी अड़गोड़ा अटकाकर रुकावटें पैदा कर रहे थे।

सचमुच, अंग्रेजोंकी गुलामीके विरुद्ध विप्लव करनेके अपराधमें इन देशभक्तोंको बहुत कुछ भुगतना पड़ रहा था। बनारस और इलाहाबाद प्रांतोंमें नीलकी पैशाचिक क्रूरताने जो कुहराम मचाया था उसका सानी जंगली जातियोंके इतिहासमें भी मिलना असम्भव है। यह हमारा कथन अलंकारिक भाषाका नमूना नहीं है जो चाहे अपनी निश्चिति कर ले सकता है कि हम केवल सत्यही बता रहे हैं। बनारसके अमानुष अत्याचारोंका विवरण हम दे चुके हैं। अब यहाँ एक बहादुर ब्रिटिशन, इलाहाबादके अपने करनामोंका जो वर्णन गर्वके साथ, किया है उस पत्रका उद्धरण यहाँ देते हैं:– हाँ, यह मुहीम तो मुझे बहुत पसंद आयी। जब सिक्ख सिपाहियोंके साथ फ्युसिलियर्स सैनिक नगरपर धावा बोलने गये तो हम बंदूकोंके साथ एक बहाबम चढे। उसके चलते चलते हम दाएँ बाएँ किनारों पर गोलियों की बौछार करते जाते थे। अब हम खराब जगहमें आ गये तो हम गोलियाँ चलाते हुए किनारेपर उतरे। मेरी दोनाली बंदूकके शिकार कई 'काले' आदमी (निगर्स) बन रहे थे मैं तो बदला लेनेको पागलसा हो गया था न! दाएँ बाएँ पासेपर जब हम लोगोंने आग बरसायी तो पवनसे भड़क उठीं ज्वालाएँ आकाशको चूमने लगीं। तब राजद्रोही दुष्टोंका पूरा बदला लिया जा रहा है, यह देख कर हम आनंदसे बौखला गये। प्रतिदिन बागी देहातोंको जलानेके लिए हमारे दौरे निकलते तब हम पूरेपूर बदला लेते थे। जिन बदमाशोंने सरकार तथा अफसरोंके अपराध किये, उनकी तहकिकात के लिए जो समिति नियुक्त थी उसका मैं प्रधान था। हर दिन हम आठ दस आदमियोंको अवश्य फँसाते। लोगोंके प्राण हमारे चंगुलमें थे मैं दावेसे कहता हूँ कि हमने किसीके साथ जरासी रियायत न की। पैरवीका

काम तो मामूली था। दण्डित अपराधीको गलेमें फंदा डालकर, एक गाडी-पर खडा कर, पेडसे बॉध दिया जाता, गाडी को आगे धकेला कि वह लटक गया!" * नीलने न देखा बूडा, न अधेड, न जवान; न बालक, न बच्चा; अरे, मॉ के ऑचलमें दूध पीते नन्हे तकको जीवित न छोडा! के महाशय ने स्पष्ट शब्दोंमें माना है कि इलाहाबाद प्रांतमें कमसे कम छः हजार हिंदी लोगोंको कत्ल किया गया। सैकडो स्त्रियों, कोमल बालिकाओं, माताओं, लडकियोंकी गिनति भी न करते हुए उन्हें जीवित जला डाला! हम पर-मात्मा तथा सारी मानवजातिको स्मरण कर उपर्युक्त कथन लिख रहे हैं और हम आव्हान करते हैं कि इसके विरुद्ध किसीके पास कोई प्रमाण हो तो परमात्मा और संसारके न्यायासनके सामने एक क्षण तो खडा रहनेका साहस करे!

और ये सब अत्याचार सचमुच किस अपराधके बदले किए गये? **यही अपराध, कि सब लोक स्वदेशकी स्वाधीनताके लिए सब कुछ सहन करनेको सिद्ध थे!**

और कानपुरका हत्याकाण्ड? किन्तु कहना चाहिये कि नीलके इस अमानुष पैशाचिक क्रूरताके परिणाम और प्रतिशोधस्वरूप वह हत्या-काण्ड था।

समूचे क्रांतिकालमें हिंदुस्थानभरमें जितनी अंग्रेज औरतें और बच्चे मर गये, उनसे अधिक संख्यामें अकेले नीलने इलाहाबादके एकही नगरमें हत्याऍं कीं। और ऐसे कई नील, भारतभरमें सैंकडों स्थानोंपर ऐसे कई हत्याकाण्ड करते घूम रहे थे। एक अंग्रेज जीवके बदलेमें पूरा देहात जला दिया जाता था। प्रभु ऐसे करतूतोंको कैसे भूल सकता है? और हम? इसे कभी नहीं भूलेंगे!

और इन सब हत्याकाण्डोंके विषयमें अंग्रेज इतिहासकार क्या कहते है? प्रायः ऐसी घटनाओ का जिक्र वे करतेही नहीं, और वह भी आड-म्बरी ढंगके साथ! कहीं कभी विशेष विवरण दिया भी गया, तो वह नील की वीरताकी प्रशंसा करनेके हेतु। ठीक समयपर अपनायी इस क्रूरता (!)

* चार्लस् बॉल्स् इंडियन म्यूटिनी खण्ड १.

से बढ़कर दयालुता कौनसी हो सकती है ! कुछ इतिहासकार तो कहते हैं "नीलकी क्रूरतासे उसके अंतस्तलमें भरा हुआ मानवताका प्रगाढ प्रेमही अधिक चमक उठता है।" 'के' महाशय नि संदेह जानते थे कि कान पुरका हत्याकाण्ड इसी क्रूर करतूतोंकी प्रतिक्रिया थी, फिर भी वह गमी रताका ढोंग रचकर कहता है, "काले आदमियोंने हमपर हाथ उठानेकी जो धृष्टता दिखायी उससे ब्रिटिशोंके प्राकृतिक, सिंहको शोभा देनेवाले, शौर्य गुणका प्रभाव प्रकट होना स्वाभाविक था। नीलकी दुँखार प्रवृत्तिके बारेमें 'के' ने एक अक्षर न लिखा, ऐसे प्रश्नोंपर मानव विवाद करे यह बात वह पसंद नहीं करता उसने इसका विचार करना आध्यात्मस्य पिता को सौंप दिया है। हाँ, नानासाहबके बारेमें लिखते समय के महाशयकी लेखनी कीचड़ उछालती इतनी निरंकुशतासे दौड़ती है, कि कुछ न पूछो। चार्ल्स् बॉल तो मुँह फाड़कर नीलकी प्रशंसामें पुल बाँधता है। किन्तु स्वय नील अपने बारेमें क्या कहता है !:—

प्रभुको सिरपर रखकर कहता हूँ, मैंने जो कुछ किया, न्यायबुद्धिसे किया। हाँ, मैं मानता हूँ कि मैंने कुछ अधिक क्रूरता दिखायी, किन्तु सब बातोंको एक साथ सोचनेपर वह क्षमाके योग्यही है। मैंने जो भी किया इंग्लैंडके—मेरे स्वदेशके—कल्याणके हेतु किया हमारी साम्राज्यसत्ताका आतंक तथा स्थैर्य फिरसे प्रस्थापित करनेके लिए किया न भूला जाय कि उस जंगली अमानुष विप्लवका नाश करनेके लिए किया।" देशभक्तिकी यह अंग्रेजकी परिभाषा सचमुच असाधारण है !!

दूसरे एक इतिहासकार होम्स साहब कहते हैं "बूढे व्यक्तियोंने हमें जरा भी न सताया था। असहाय अबलाओं तथा उनके आंचलमें छिपे अभर्कोंको इस बदलेकी लपटने उतनीही प्रखरतासे चाटा, जितनी कि नीचतम अपराधीको। किन्तु उस महामना नीलके बारेमें यह स्मरण रखना चाहिये कि ऐसी कड़ीसे कड़ी सजा देनेमें उसको जरासी आनंद न आता था, वह तो केवल अपने कठोर कर्तव्यको निभाह रहा था।" *

* होम्स कृत सिपॉय वॉर पृ २२९-२३०

हमे दृढ विश्वास है, कि उपर्युक्त उद्धरणोंका मर्म जानकर तथा सच्चे प्रभुको—नीलके प्रभुको नहीं—स्मरण कर निष्पक्ष इतिहास, अंग्रेजोंके किये इस आम तथा बेदर्द कत्लकी अपेक्षा, क्रातिकारियोंको करनी पडी कुछ थोडी हत्याओ को निःसदेह कुछ सहानुकम्पा तथा क्षमाशील दृष्टिसे देखेगा। स्वदेशके लिए की हुइ हत्याएँ न्यायपूर्ण होती हैं क्या? "इस प्रश्नको परमात्मापर छोड देंगे, मैंने जो भी किया, मुझे उसके लिए परमात्मा क्षमा करे मैंने अपने राष्ट्रका हित करनेके लिए ही सब कुछ किया।" ऐसे वाक्य नीलकी अपेक्षा नानासाहबके मुँहमें हों तो अधिक शोभा देंगे। "स्वदेशके लिए लडने" का प्रण तो क्रातिकारियोंनेही किया था, नीलने नहीं। और हत्याएँ करनेसे जिन किन्हींने अपना कर्तव्य पूरा किया हो, वे थे स्वधर्म और स्वराजके लिए झूझने की आकाक्षासे पागल तथा अपनी मातृभूमिपर सौ सालोंतक होनेवाले लगातर जुल्मोंका प्रतिशोध लेनेको सचमुच तडपनेवाले क्रातिकारी, यह त्रिवार सत्य है।

खैर, इस सादे ज्ञान का अब क्या उपयोग? क्रूरता और वहशतका बीज नीलने इलाहाबादमें अच्छीतरह बो रखा था और उसकी अच्छी फसल अब कानपुरके खेतमे लहरा रही थी। तो फिर चलो फसली मौसममें वहाँकी शोभा देखने कानपुर चलें।

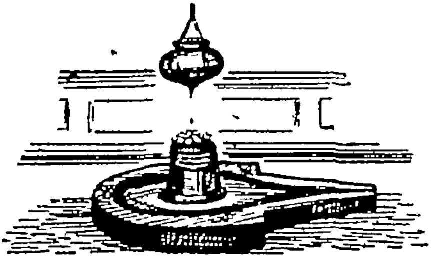

अध्याय ८ वाँ

कानपुर और झाँसी

पराधीनताके अतल पातालमें सड़नेवाले अपने पुरखाओंका उद्धार करनेके पवित्र ध्येयसे प्रेरित होकर, भारत उत्तरके प्रदेशमें असीम वेगसे बहनेवाली क्रांतिगंगाके रक्तप्रवाहको कुछ समय आँखकी ओट कर, 'दरबार'की घटनाओंकी आहटको सुनना आवश्यक है। मेरठके धमाकेके समय लखनऊके राजमहलमें, या बरेलीके सूबेमें या दिल्लीके दिवान-ई-खासमें जितने क्रांतिनेता जमा हुए हों, उनसे बढ़कर नेतागण उस समय नानासाहबके राजप्रासादमें जमा थे। १८५७ की क्रांतिका बीज-धारण सबसे पहले ब्रह्मावर्तके राजप्रसादही में हुआ था। और वहीं क्रांतिका गर्भपिंड बढ़कर उसे निश्चित आकार भी प्राप्त हुआ था। और, सचमुच, बिठूरके इस राजप्रसादमें ही क्रांतिबालकका जन्म होता, तो निःसंदेह वह अल्पायु न होता। किन्तु गर्भके पूरे दिन भरनेके पहलेही मेरठके धड़ाकेसे क्रांतिका अधकचरा बालकही दुर्भाग्यसे जन्म पाया। हाँ, फिरभी उसे अपने भाग्यपर न छोड़ा गया। उलटे, प्रतिकूल परिस्थितिमें भी उसे पालपोस कर पुष्ट करनेकी शीघ्रता तथा यत्न ब्रह्मावर्तमें किया जा रहा था।

स्वातंत्र्यके प्रत्यक्ष देवदूतके समान फबनेवाले नानासाहबकी धीर वीर मूर्ति उच्चासनपर विराजमान थी। पासही में अपने नेताकी महान् साधनाकी पूर्तिके लिए अपना जीवित, धन, स्वास्थ्यका होम करनेपर उतारू उनके भाई बालासाहब और भतीजे रावसाहब भी बैठे हुए थे। उनके पड़ोसमें

वह महान् व्यक्ति विराजमान था, जो अपने महान् कर्तव्र तथा उद्योगके बूतेपर एक छोटीसी हैसियतसे बढते हुए आज अपने महान् नेताका कृपा-पात्र बना था जिसने युरोपकी युद्धनीति तथा राजनीतिका गहरा अध्ययन कर उसका उपयोग अपने देशको पराधीनताके शापसे मुक्त करनेके प्रणमे किया था, जिसने सबसे पहले अपने मनःचक्षुओके सामने आगामी क्रातिकी पूरी रूपरेखा खीची थी, जो स्वय इस्लामका बदा होते हुए भी अपनी मातृभूमिकी स्वाधीनताके लिए एक राजपुरुषकी सेवामे उसने अपनी आयु अर्पण कर दी थी, जिसे महाभारतका वह महान् सिद्धात—आपसी झगडेमें हम १०० और ५ भलेही हों, किन्तु किसी विदेशीके सामने १०५ हैं—प्रत्यक्ष व्यवहारमें सर्वोपरि होनेका पूरा भान हो चुका था और जिसने अपनी पितृभूकी सभी सतानोंके लिए तथा स्वराज्य, स्वधर्म और स्वातन्त्र्यके ऊँचे तथा उदात्त ध्येयको प्राप्त करनेके लिए अपनी क्षमता, जीवट, राजनीतिकुशलता, ज्वलन्त देशाभिमान, पराधीनताका कट्टर द्वेष और गाढा बधुभाव आदि सदगुणोंका उपयोग करनेका प्रण किया था। पाठक जान गये होंगे, कि ऐसा महान् देशभक्त, श्रेष्ठ बुद्धिमान् व्यक्ति अजीमुल्लाके बिना और हो ही कौन सकता है? उसी राजमहलमे, अपनी उज्वल प्रतिभासे क्रातिनेताओंके अनुभवोंमे नयी सूझ जोडते, स्वदेश तथा उसकी प्रतिष्ठाके असीम प्रेमसे उन्हे उत्तेजित करते हुए झाँसीकी बिजली महारानी लक्ष्मीबाई भी वहीं दमक रही थीं। किन्तु इस महान् मेलमें शस्त्रागारकी ओर मुँह किये, अपनी तलवारको पैनी करते, वह कौन वीर दिख पडता है?

पाठक! वह शस्त्रभडारका वीर है सुविख्यात मराठा तात्या टोपे! शिवाजी महाराजकी रणनीतिकी परपरामें मँजा हुआ वह अन्तिम लडाका रणवीर! केवल शूर बहुत योद्धा मिलेंगे, किन्तु यह तो स्वय मातृभूमिने अपने स्वातन्त्र्यके लिए अपने हाथों निष्कोषित किया हुआ साक्षात् खड्ग! वह खड्ग शात हुआ, किन्तु आजभी उसकी प्रभा अमर है!

तात्या टोपेका जन्म स. १८१४ के लगभग हुआ। उनके पिता पाडुरग भट्टके आठ सतानें हुई। उनमेंसे दूसरा पुत्र रघुनाथही भारतीय वीरवरोंकी तेजमालामे दमकनेवाला तेजस्वी तारा तात्या टोपे था। तात्याके

पिता ब्रह्मावर्तमें धमादाय विभागके प्रमुख थे। यहींके ओसारेमें नाना साहब, लक्ष्मीबाई तथा तात्या टोपे बचपनमें क्रीडा करते थे। नानासाहब और तात्या टोपे बचपनही से अभिन्न मित्र थे। बडे होनेपर जिन महान् प्रसंगोंके वे प्रमुख वीर थे, उस वीर कार्यको पुष्ट करनेवाली शिक्षा प्रकृति की, बचपनहीमें, देन थी। दोनोंने एक साथ भारत रामायण पढा था। उन प्राचीन हिंदु वीरोंकी वीरगाथायें सुन सुनकर कोमल दोनों बच्चोंकी भुजाएँ एक साथ फडकती थीं। ऐसी पाठशालाएँ इन शतीमें जुल्थी नहीं, जहाँ नाना, तात्या राव और लक्ष्मीय जैसे विद्यार्थि एक साथ पढते हों। और यहभी मात नहीं, कि ऐसे असाधारण बन्ध एकही समयमें समरांगणपर अपने वीर चरित्रका लेखन करें, ऐसी लिखित परीक्षा भी प्रत्यक्ष देशमें ली जाती हो! इस तरहके अद्वितीय विद्यालय तथा असाधारण कसौटियों का सम्मान और सौभाग्य उस समय केवल ब्रह्मावर्तके भाग्यमें बदा था।

अप्रैलके अन्तमें नानासाहब तथा अजीमुल्ला, गुप्त संस्थाओंके कार्यमें संगठनपरक एकता पैदा करनेके लिए, उत्तर भारतके प्रमुख नगरोंकी यात्रा कर आये थे। अब वे निश्चित महूरतकी राह देख रहे थे। सहसा मई १५ को मेरठके बलवे और उसके पश्चात् दिल्लीके छुटकारेका समाचार कानपुरमें पहुँच गया। इस आकस्मिक बलवेके कारण ब्रह्मावर्तमें जरा भी गडबडी मचने के चिन्ह न दिखायी दिये। क्रांतिके पथमें अनगिनत कल्पुर्जे होते हैं। उनमेंसे कुछ अत्यत वेगसे, तो कुछ अत्यत मद गतिसे, घूमते हैं। यह स्थिति प्राकृतिक है। कुछ पुर्जे निश्चित समयपर ही, तो कुछ सहसा घर घराहटके साथ चलेंगे, यह भी निश्चित होता है। बिठूरवासी नताओंने तुरन्त सारी स्थितिको भाँपकर मेरठके विस्फोटसे योग्य लाभ उठाना तय किया। हाँ, किन्तु इसका तरीका क्या होगा? तुरन्त दिल्लीको चल दिया जाय, या जैसे कि पहले निश्चित हो चुका है, जूनके प्रथम सप्ताहतक रुका जाय? इन दोनोंसे दूसरा तरीका ही अधिक पसंद हुआ और अंदर ही अंदर क्रांतियत्र घूमने लगा।

कई वर्षोंतक कानपुर अंग्रेजोंकी एक महत्त्वपूर्ण छावनी बन बैठी थी। यहाँ १ ली, ५३ वीं तथा ५८ वीं हिंदी पैदल सैनिकोंकी पल्टनें तथा

एक रिसाला–विभाग था; कुल मिलाकर ३००० हिंदी सिपाही थे। रिसाला पूरी तरह अंग्रेजोंके कब्जेमें था और साथ १०० गोरे सैनिक भी। इनका सबका कमांडर बडा जनप्रिय था। सिक्ख युद्ध तथा अफगान युद्धमें इस रिसालेने बहुत सराहनीय काम किया था। सरकारको दृढ विश्वास था, कि सब सिपाही इस कमांडरकी आज्ञापर आकाशके तारे तोड लाएँगे। तब किसीको भी यह संदेह न हुआ कि कानपुरकी छावनीमें कोई गुप्त क्रांति-संस्था काम करती होगी।

१५ मई को समूचे कानपुरमें एक विशेष खलबलीके लक्षण दिखायी दे रहे थे। मेरठवाले सिपाहियोंकी करतूतोंकी कहानी सुननेसे कानपुरके सैनिक भाईबंद अपनी सदाकी अलसेट झाडकर जागरितसे दीख पडे। किन्तु अंग्रेज अफसरोंको यह समाचार १८ मईको मालूम पडा। दिल्लीके साथ तारका संबंध कट जानेसे, लोगोंमें फैले असंतोषकी मात्राको आँकनेके लिए उन्होंने गुप्त दूतोंको रवाना किया। उनको दिल्लीसे आते हुए एक सैनिक मिला, किन्तु उसने साफ कह दिया कि फिरंगियोंको किसी प्रकार की खबर नहीं दी जायगी। अंग्रेजोंको अभी तक यह बात एक पहेलीही बनी रही है, कि तारके उत्तम प्रबंधके होते हुए भी जो समाचार अंग्रेजोंके पास न पहुँच सकते थे, वे इतनी दूरीपर क्रांतिकारियोंको ठीक ठीक और तुरन्त कैसे मालूम पडते होंगे। * मेरठके बलवेके बारेमें सिपाहियोंको कुछ जाननेका न बचा था, क्यों कि, प्रत्यक्ष घटना घटित होनेके पहले दिन, मानवी तारयंत्र–द्वारा हरएक छोटी मोटी बात उनके पास पहुँच जाती। इधर अंग्रेजोंको मेरठके विस्फोटकी खबर मिलनेपर कानपुरके सिपाहियोंमें धुँधुवाते असंतोषके बारेमें विशेष गंभीरतासे सोचनेकी बारी आयी। किन्तु सर ह्यू रोजको अब भी विश्वास था कि यह सभी खलबली

---

* (सं. ३१) सचमुच इस विद्रोह की एक अत्यंत स्मरणीय बात यह है कि अतिशय निश्चिती तथा वेगसे दूरदूरके स्थानोंके महत्त्वपूर्ण सभी समाचार हिंदी लोगोंके पास पहुँच जाते थे। प्रायः इसका प्रबंध हरकारों द्वारा होता था, जो संदेश पहुँचानेका काम अत्यधिक फुर्तीसे करते और एक स्थानसे दूसरे स्थानको उन्हें पहुँचाते "–मिलिटरी नॅरेटिव्ह पृ–२३

मेरठकी अकस्मात् गदरका परिणाम है, और समय जाते सब कुछ शान्त हो जायगा। किन्तु कानपुरकी छावनी तथा नगरमें अंग्रेजी राजके पैर उखड़ जानेके चिन्ह स्पष्ट दीख पड़ने लगे। हिंदुमुसलमानोंकी विराट सभाएँ होतीं, जहाँ सैनिकभी गुप्त भेस्में जमा होते। शिक्षक तथा विद्यार्थि भलेबुरी चर्चा करते हर हाटमें बाजारभरमें, विद्रोहकी योजनाओंकी खुली चर्चा हो रही थी। जनक्षोभकी अब तक दबी पड़ी आग अब प्रकट होने लगी थी। फिरंगियोंको भगा देनेकी बातें लोग आपसमें खुलकर कर रहे थे और सिपाही स्वदेशी ऊँचे अफसरोंके बिना और किसीकी भी आज्ञा ठुकराने लगे। * एक अंग्रेज औरत अपनी सवारी पालकीमें जब हाटमें सामान खरीदने चली थी तब एक चपरासीने उसे रोककर, तेवर बदलकर, कहा 'अरी अब यह पालकी छोड़ दे। अब तुझे तो भारतके बाजारसे निकाल बाहर कर दिया जायगा, समझी!" जनजागरणका यह कुछ खुदुरासा अनुभव (असभ्य कभी नहीं!) अंग्रेजोंको पहले पहल हुआ। इस दशामें जानबूझकर चुप रहना निरी मूर्खता होगी इस लिए सर व्हीलर आत्मरक्षा की सिद्धता करने लगा।

उसे सबसे प्रथम चिंता थी, संकट पैदा हो जाय तो किस सुरक्षित स्थानका आसरा लिया जाय। एक स्थानपर उसकी नजर पड़ी, जो गंगा की दक्खिन की ओर, छावनीके पास ही था। उस स्थानके इर्दगिर्द खाइयाँ खोदकर मिट्टीके चबूतरे मोर्चे बाँधकर, अनाज आदि सब सामग्रीकी सिद्धता कर रखनेकी उसने आज्ञा दी। किन्तु, कहा जाता है कि, ठेकेदारने सर व्हीलरको सुराग न लगने दिया, कि वहाँ बहुतही थोड़ी सामग्री भर दी है। इधर सर व्हीलर तथा अन्य अंग्रेज अधिकारी प्रसन्न थे, कि कहीं सिपाही विद्रोह कर भी बैठे, तो बिना किसी हानिके यह स्थान उनकी पूरी रक्षा करेगा। क्यों कि, सिपाही अपने अन्यस्थानीय सैनिक भाइयोंके पदचिन्हों पर चलकर दिल्ली चले जायँ तो फिर अनायास गंगापार होकर इलाहाबादकी सेनामें मिल जानेका थोड़ी अवसर मिल जायगा। सो बात नहीं, कि केवल विद्रोह की हालतमें अंग्रेजोंको इस सुरक्षित जगहमें रखनेकी सिद्धता कर सर व्हीलर चुप रहा। तो लखनऊसे

* नानकचंदकी डायरी

सहायक सेना भेजनेकी सूचना सर लॉरेन्सको भी दे रखी थी। किन्तु लखनऊमें क्रातिप्रचारका सैलाव इतने वेगसे बह रहा था, कि सर लॉरेन्स तो अपनेही लिए अधिक सेना मॉगनेसे वेजार था। तिसपर भी उसने ८४ सोजीर, अंग्रेज तोपखाना और कुछ सवार ले. ॲशके नेतृत्वमे कानपुरको भेज दिये। अंग्रेजोंकी सुरक्षाके लिए उसने कोइ विशेष योजनाऍ नहीं घडी थीं। हॉ, अंग्रेजी शासनकी हस्तीपर आनेवाले सकटको टालनेके लिए जो एक खास आयोजन किया था, वह तो सचमुच अजीब था।* किन्तु ऐसी अजीब योजनाको भी तोडनेका इलाज करनेवाली उस समयकी क्रातिकारी सस्थाकी चतुरता हैरान कर देती है। इस प्रकारकी घटना अन्यत्र इतिहासमे पाना कठिन है। सर व्हीलरने ब्रह्मावर्तके ‘ राजा ’से कानपुरकी रक्षा करनेको चले आनेकी प्रार्थना की थी। मेरठवाले समाचारसे सैनिकों तथा जनतामें भयकर खलबली मची हुई थी, फिर भी ब्रह्मावर्तमे सब प्रकारसे पहलेके समान शान्ति तथा मौन था। अदर धुॅधुवाते असतोषकी एक भी लहर उसकी सतहपर दिखायी देना असम्भव था। कानपुरके सैनिकोंकी मची खलबलीसे सर व्हीलरकी ऑखें तो खुल गयी थीं; किन्तु ब्रह्मावर्तके ‘ राजा ’ कभी विरोधी होनेकी आशका तक उसके मनमें न थी। कुछही समय पहले जिसका राजमुकुट अंग्रेजोंके पैरोंतले रौंदा गया था और जिस नागके फनपर पॉव देकर छेडा था, उसीसे अपनी सकटग्रस्त स्थितिमें आज वही अंग्रेज सहायता मॉग रहा था! और इसमें उसने कोई भारी भूल न की थी। नानासाहब एक ‘ सुसभ्य ’ हिंदु था, कीना रखनेवाला ‘ सॉप ’ तो बिलकुल न था, क्यों कि अंग्रेजोंके बूटकी एडीसे कुचले जानेपर भी किसी प्रकार प्रतिशोधकी न सोचते हुए नम्रतासे पेश आनेवाले कायर ‘ हिंदु ’ हिंदुस्थानमें कई थे हीं न? इस सरल किन्तु भ्रमपूर्ण मनोगतिके नापसे नानासाहबको तोलकर सर व्हीलरने असलमें, काले नागके दीमक ही मे, हाथ डाला! और बिठूर के राजाको इससे बढकर कौनसा अच्छा अवसर था? दिनाक २२को दो तोपों, तीन सौ अपने अंगरक्षक सैनिकों, कुछ पैदल सिपाहियों तथा रिसालेको लेकर नानासाहबने कानपुरमें प्रवेश किया। कानपुरमें नागरी तथा सैनिकी अधिकारी काफी सख्यामें थे। उनकी अंग्रेजी बस्तीही में

उन्होंने अपना डेरा डाला। अब कानपुरमें बलवा होगा तो खजाना लूटा जायगा यह तो स्पष्ट था, तो फिर उसकी रक्षा सर्वोत्तम पद्धतिसे कैसे हो? हाँ, नानासाहबके सैनिकोंपर इसका दायित्व क्यों न सौंपा जाय? नानासाहबके दो सौ सिपाही खजानेकी रक्षाके लिए तैनात हुए। फलस्वरूप हिल्सडिनने नानासाहब तथा तात्या टोपेको बहुत धन्यवाद दिये साथ यह भी तय हुआ कि बुरा समय आनेपर गोरे स्त्रीपुरुषोंको नानासाहबके बिठूरके राजमहलमें आसरा दिया जाय!

हाँ, यही थी राजनीति! अंग्रेजोंके बुलावेपर अपनी सेना के साथ कानपुरकी रक्षाके लिए नानासाहब चले जायँ और स्वाधीनताके लिए उठे अपने स्वबन्धुओंसे लड़ें! अंग्रेजोंकी छावनी ही में डेरा डाले रहें! लाखों रुपयों वाला खजाना अधिक सावधानीसे रक्षा करनेके हेतु अपने हाथमें लें और ऊपरसे अंग्रेज उनकी इस सहायताके लिए उन का धन्यवाद दें! इसीमें राजनीतिका अनोखा दाँव था। नानासाहबने चालको बढ़िया चालसे तोड़ा! 'शठ प्रति शाठ्य—ठगके साथ महाठग बनो—इस न्यायको नाना साहबने चरितार्थ किया और यह सब उस महान विस्फोटके पहले मात्र एक सप्ताह! इससे यह सिद्ध हो गया '१८५७ में अंग्रेज अंधेरेमें टटोल रहे थे और उन्हींके बनाये कगारेसे ही हड़हड़ाकर वे गिर पड़े'। स्वाधीनता ही एकमात्र ध्येय और सशस्त्र युद्धही उसका एकमात्र प्रभाव पूर्ण साधन उस समयकी जनताके अंतस्तलमें यह बात अच्छी तरह बिठ गई थी। किन्तु क्रांतिके नेता, विद्रोहका दिनांक, प्रमुख केंद्र, आदि सभी बातें इतनी गुप्त रखी गयी थीं, कि अंग्रेज तो क्या, क्रांतिसंस्थाओंके सदस्यभी इस विषयमें कुछभी न जानते थे। केवल इस कार्यके सर्व प्रमुख और उनके विश्वासपात्र सहायकही इन बातोंको जानते थे! हम पहले बता चुके हैं, कि हर पलटनमें एक गुप्त-समिति रहती थी, इसका मर्म अब पाठकोंके ध्यानमें आ गया होगा। बनारसमें अंग्रेजोंके हाथ जो पत्र लगा था उसके नीचे केवल इतनाही लिखा था—"एक बड़े नेताकी ओरसे"! ऊँचे दायित्वपूर्ण सब अधिकारी गुप्त कामके योग्यही बरताव करते थे। बलवेके अगले दिन तक भी अंग्रेजोंको, बहादुरशाह, नाना साहब तथा लक्ष्मीबाईकी गतिविधिका, जरा भी सुराग न मिल सका था।

और ब्रह्मावर्तने तो असीम गुप्तताका पालन किया था। 'के' साहबका कथन है, "मराठी साम्राज्यका निर्माण करनेवाले श्री शिवाजीका इतिहास नानासाहबने यों ही नहीं पढा था।"

क्रांतिकारियों की बैठकका मुख्य सांकेतिक स्थान था सूबेदार टिक्कासिंग का घर। गुप्त संस्थाओंकी सभाका और एक स्थान था सिपाहियोंके नेता शमसुद्दीन खॉं का मकान। इन सभाओंमें नानासाहबके ब्रह्मावर्तके राजमहलमें दो प्रतिनिधि—ज्वालाप्रसाद और महम्मद अली—उपस्थित रहते थे। सूबेदार टिक्कासिंग और ज्वालाप्रसाद दोनों शूर, स्वातन्त्र्य—प्रेमी तथा बडी लगनवाले देशभक्त होनेसे सभीपर उन्होंने अपनी छाप तुरन्त जमा ली और सारी सेना उनकी आज्ञा सिर ऑंखोंपर रखनेको शपथबद्ध हो गई। यह संकेत बन गया, कि टिक्कासिंग का मतही सेनाके प्रत्येक व्यक्ति का मत हो। अब इन अगुआओंमे नानासाहब का मशविरा होना आवश्यक था। पहलेही मेरठवाले बलवेने सब कार्यक्रम अस्तव्यस्त कर दिया था, जिससे और ही गडबडी मच गई थी। अब बदली परिस्थितिके अनुसार कार्यक्रममें बदल करना अनिवार्य होनेसे टिक्कासिंह और नानासाहबका साक्षात् निश्चित हुआ। * प्रथम भेंटमें खूबही चर्चा हुई। सूबेदार टिक्कासिंहने नानासाहबको जॅंचा दिया कि स्वधर्म और स्वराज्यके लिए हिंदु मुसलमान एक—मनसे उठनेको सिद्ध हैं और मात्र नानासाहब की आज्ञाकी राह देख रहे है। और कुछ नाजुक बातोंपर विचार करनेके लिए इसमें भी गुप्त तथा काफी समय चलनेवाली बैठकका निश्चय कर टिक्कासिंग चला गया। १ जूनकी संध्याको भाई बालासाहब तथा मंत्री अजीमुल्लाखॉंको लेकर नानासाहब गंगामैय्याके पवित्र कूलपर आ पहुँचे। वहॉं टिक्कासिंग तथा गुप्त संस्थाओंके कुछ प्रमुख नेता उनकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। सब एक किश्तीमें चढे। गंगाकी परमपवित्र धारामें जानेपर हर एकने गंगाजल हाथमें लिया और स्वदेश तथा स्वाधीनताके लिए लडे जानेवाले रक्तयुद्धमें कूद पडनेकी शपथ ली। फिर दो घंटोंतक

* फॉरेस्टकृत 'स्टेट पेपर्स' तथा ट्रेव्हेलियानकृत 'कानपुर'.

चर्चा होकर आगामी कार्यक्रमकी रूपरेखा निश्चित की गयी और सब लौट आये। उनकी गुप्त बातें एक गगामाई ही जान और सचमुच उसीके पास वे सुरक्षित रह सकती हैं! किन्तु एक बात प्रसिद्ध है, कि दूसरे ही दिन शमसुद्दीन अपनी माशुका अजीजानके घर गया और उसे यह खबर सुनायी कि पचास दो दिनोंमें फिरंगियोंका खात्मा कर हिंदुस्थान स्वतंत्र हो जायगा। शमसुद्दीनने यह कुछ शराबी नहीं बघारी थी, क्यों कि, हिंदुस्थानकी स्वाधीनताके लिए इस वीर प्यारेके हृदयमें टीस थी, उसी तरह उस रूपसुन्दरी प्यारीका भी हृदय मचलता था। अजीजान एक नर्तकी थी सैनिकोंकी चहेती थी। अपने प्रेमको बाजारू चीज बना कर टकासेर बेचनेवाली यह औरत न थी; स्वदेशप्रेमके पारितोषिकके रूपमें स्वाधीनताके लिए अपना प्रेम समर्पण करती थी। हम अभी बताएँगे, कि अजीजानके मुखके हास्यकी एक रेखा लड़ाकू वीरोंकी देहमें उत्साहकी उमगें उठाती थीं, तो उसकी कान्ति भौंहोंके सिकुड़नेसे घृणाका एक तीर छूटनेपर समरांगणसे भाग खड़े होनेवाले कायर भी फिरसे घनघोर युद्धमें जुट जाते।

क्रांतिकारियोंकी योजना सब पूरी होनेको थी, तब अंग्रेजोंकी छावनीमें घबराहटकी धूम मच गयी थी। लखनऊसे जब सहायक सेना पहुँच गयी तब कहीं सर व्हीलरने छुटकारेकी साँस ली, खजाना और गोलाबारूद जब नानासाहबकी रक्षामें कर दिया तब कहीं उसका कलेजा अपनी जगहपर आ गया। फिर भी अंग्रेजोंका दिल तो बैठही गया था। २४ मई को बकरी ईदका दिन था। हर अंग्रेज मानता था कि ईदहीको बलवा होगा। किन्तु १८५७ के स्वातंत्र्यसमरके नेता, सहसा ताडे जानेवाले दिनको बलवा करने योग्य महान् मूर्ख न थे। जिस दिन निश्चितरूपसे विद्रोह होनेकी आशंका शत्रुको हो, उसी दिन जानबूझकर शांति रखें और शत्रु जिस दिन निश्चितरूपसे विद्रोहकी सम्भावना न मानता हो, ठीक उसी दिन बलवेका धड़ाका उड़ाया जाय, यह तो क्रांतिकी यशस्विताका मर्म है। कानपुरमें भी ईदके त्योहारको कुछभी दगा न हुआ। उस दिन अंग्रेजोंके तो छक्के छूट गये थे, सर व्हीलरने तो लखनऊको तार भी दे दिया कि 'आज अवश्य कुछ ऊधम होगा'। किन्तु उस दिन

शामको जब मुसलमान सदाके अनुसार मिलने, गले लगाने लगे; तब कहीं सर व्हीलरको कुछ शान्ति हुई ! विक्टोरिया महारानीकी वर्षगाठके उपलक्ष्यमें हमेशा तोपें दागी जाती थीं, किन्तु, सिपाही बिगड जाऍंगे यह मानकर इस वर्ष उसे मनाही कर दी गयी। महारानीकी वर्षगाठ हो और तोपें न दागी जायॅं ? यह सुनकर कुछ अग्रेज अफसर बहुत सिटपिटाये, पर बेचारे क्या कर सकते थे ? यदि उस जगहपर ध्यान दिया जाय, जो अंग्रेजोंने किलाबदी कर अपनी सुरक्षाके लिए बनायी थी, जिसका जिक्र हम पहले कर चुके हैं, तो पता चलेगा, कि अग्रेजोंकी इतनी दुबली दशा क्यों हुई थी। ईसाप की उस कहानीके अनुसार (लोमडी और गडरियेका लडका) कोई योंही यह गप उडाता कि 'सिपाही उठे' और गोरोंके झुडके झुंड सिरपर पॉव रखकर मार्गमें दौडने लगते। एक अंग्रेज अफसर लिखता है, "मैं जब वहॉ था तब देखा, कि बग्घियों, गाडियो, डोलियों आदि सवारियोंकी धूम मच जाती और उनमेंसे लेखक, व्यापारी, औरतें छातीसे लगे बच्चोंकी माताऍं, बच्चे, आयाऍं तथा अफसर आदि सबको वहॉ पहुॅचाया जाता। मतलब, यदि बलवा कहीं हो जाता, या अब होता, तो हमसे और, कोई हमारा अभिनदन करनेकी सम्भावना न थी। क्यों कि उपर्युक्त दृश्यसे हम् भारतीयोंको बता रहे थे कि हम कितने बुजदिल हैं और हमारी कितनी दयनीय दशा है।" इस अफसरका कहना ठीक था, जनताने अग्रेजोंकी कायरताका नगा रूप देख लिया था। जब वह किलाबदीवाली गढी बनायी, तब क्या अजीमुल्लाने हंसते हसते एक लेफ्टनटका मखौल नहीं उडाया था ? सदाकी मीठी भाषामें अजीमुल्लाने पूछा "क्यों साहब, आपकी बनायी इस गढीका नाम क्या रखा है जी ?" लेफ्टनटने जवाब दिया "मैंने अब तक सोचा नहीं।" तिसपर वह चाणाक्ष अजीमुल्ला ऑखे मटकाते, धीरेसे बोला, "अजी साहब, इसका नाम 'फजीहत–गढी' क्यों न रखा जाय ?"

एक दिन शामको एक नौजवान गोरेने शराबके नशेमें एक सिपाहीपर गोली चलायी। निशाना तो चूक गया, किन्तु सिपाहिने उस अपराधीके विरुद्ध फरियाद की। सदा की पद्धतिसे अपराधीको बेगुनाह साबित कर रिहा कर दिया गया ! कारण बताया गया, गोरा शराबके नशेमें था, जिससे

उसकी बंदूक अपने आप चल गयी! यह ढकोसला सदासे ऐसाही चलता था, किन्तु अब उसके दिन लग गये थे। *

इस अपमानसे सारी सेनामें कानाफूसी होने लगी, "अच्छा, ध्यान रहे हमारीभी बंदूकें आपसे आप लग जायेंगी।" और हर सिपाहीके मुँहसे यही सुनाई देन लगा। अब सैनिक एक दूसरेसे मिलते तब कहते, "अच्छा, हमारी भी बंदूकें अपने आप चलेंगी, है न?" और सारी सेनामें एक दूसरेसे मिलनेपर यही त्याग 'नमस्ते' के स्थानमें रूढ हो गया। फिर भी कुछ समयतक अपने क्रोध को काबूमें रखनेका निश्चय कर कानपुर वालोंने मेरठवालोंके समान उतावली न करनेकी ठानी।

आगमें घी उँडेलनेके लिए अंग्रेज स्त्रीपुरुषोंकी दो नावें गंगाकी धारामें बहकर कानपुरके किनारे लगीं। कानपुरपर ऊपर कहीं घलवा होनेका यह प्रमाण मिल जानसे कानपुरमें इस प्रकार भयकर बातें सुनायी पडने लगीं "गंगामैय्या! सागरके अतल तलमें पहुँचानेके लिए तुझे पापके कितने गहर अपनी पीठपर ढोने पडते होंगे?" अब तक 'भेडिया, 'भेडिया आया' वाली मिसाल होकर कइ बार अंग्रजोंकी फजीहत हो चुकी थी। और अब सचमुच, भेडिया आ जाता तब ये गडरियेंके भेष बेखबर सोये पडे मिलते। १ जूनको सर व्हीलरने कॅनिंगको लिखा, "अशान्तिका भय अब टल गया है, अब कानपुरमें कोइ खतरा नहीं! यहाँ तक, कि अब मैं लखनऊको भी यहाँसे सहायतार्थ सैनिक भेज सकूँगा!" और सच, प्रयागसे आयी गोरी कंपनियाँ अब लखनऊकी ओर चल भी पडीं! और ३ जूनका क्या ही आश्चर्य! जिस क्रांतिमें तीन हजार सिपाही, नवाबियाँ, और सारी कानपुरकी जनता सभी सहयोगी बने उस

* (पृ ३२) ट्रेव्हेलियन कहता है "इल्फे युरोपियनोंकी क्रूरता तथा सैनिक अधिकारियोंके न्यायकी छीछालेदरसे सिपाही परिचित थे। अन्य समय पर इस अत्याचार तथा उसके निर्णयपर शायद ही उन्हें आश्चर्य होता। किन्तु अब उनका खून उबल रहा था, उनका आत्माभिमान जागरित हो चुका था, जिससे किसी ॲंग्लो-सॅक्सन वंशीयके इक तथा सैनिक न्यायालय की दानाईको तरजीह देनेके लिए वे सिद्ध न थे।"—कानपुर पृ ९१

-क्रांतिकी आहट तक अंग्रेजों तथा उनके नानकचंद जैसे सहायक कुत्तोंको न मिले ?

निदान जून ४ की रातमें सब कुछ भडक उठा। निश्चित कार्यक्रमके अनुसार रातको अंधेरेमें तीन 'फायर' हुए, और चीन्ही हुई इमारतोंमें आग लगायी गयी। रक्तपात, संहार, मौतका समय आ लगनेके ये चिन्ह थे। पहले पहल टिकासिंहने अपना घोडा दौडाया और पीछेसे हजारों घोडे उसके पीछे पुरजोशमें दौडने लगे। कुछ एकने अंग्रेजोंके घर जलाये, अस्तबलोंमें आग सुलगायी, कुछ सवार दूसरी टुकडियोंको गाँठने गये, जहाँ और कुछ सैनिक ध्वज पताका आदि सम्मान चिन्होंको छीनने दौड पडे। एक हिंदी सूबेदार मेजर इस सम्मान-चिन्होंका रक्षक था, जब वह क्रांतिकारियोंसे विवाद करने लगा, तब, तलवारके एकही झटकेसे उसका सिर तनसे अलग होकर, लाश धूलमें लोटने लगी।

"पहली पैदल पलटनके सूबेदारसाहबको टिकासिंगका रामराम! अब फिरंगियोंके विरुद्ध सारा रिसाला उठा हो, तब पैदल सेना क्योंकर देरी कर रही है?" दो दौडते सवारोंने यह संदेशा पहुँचाया और समूची पहली पैदल पलटन स्वदेश-स्वातंत्र्यकी जय पुकारती हुई बाहर निकली। यह देखकर प्रमुख कर्नल एवर्टने फटकारा, "मेरे बच्चों, यह तुम क्या कर रहे हो? अरे, तुम अपनी राजनिष्ठामें कालिख जो पोत रहे हो! ठहरो, भाईयो, ठहरो! किन्तु यह बकवाद सुनने किसे अवकाश था? एक क्षणमें रिसालेको मिलनेके लिए सभी पैदल सैनिक अनुशासन-पूर्वक चलने लगे और फिर सारा सेना-संभार नवाबगंजकी नानासाहबकी छावनीकी ओर रणगीतोंके तालपर संचलन करता हुआ कूच करने लगा। नानासाहबके अपने सैनिक नवाबगंजके राजकोषपर सिद्ध थे। अपने भाइयोंसे वे गले मिले और गोलाबारूदका सारा भंडार क्रांतिकारियोंके सुपुर्द किया गया। नवाबगंजमें यह बनाव बन रहा था, तब दो टुकडियाँ कानपुरही में थी। उनको तो अपने काबूमें रखा जाय इस हेतु अंग्रेजोंने उन्हें संचलन-भूमिपर जमा होनेकी आज्ञा दी। अंग्रेजोंके हाथमें तोपखाना था, जिससे अपने मुख्याधिकारियोंके साथ ये दोनों टुकडियाँ, अपने शस्त्रों समेत संचलन-भूमिमें रातभर राह देखती रहीं। पौ फटनेपर अंग्रेजोंको

विश्वास हुआ, कि कमसे कम ये लोग तो भागी नहीं है। उन्हें अपनी बारिकोंमें जानेकी आज्ञा देकर गोरे भी जाते रहे। सैनिकोंने देखा यह अच्छा अवसर है। उनके दो अधिकारी, एक ओर हटकर, कुछ कुछ बुदबुदाये और उनमेंसे एक दौड़ते आकर चिल्लाया, "प्रभु सत्यका सहाय है, भाइयो! चलो, उठो!" इस आदेशके साथ चारों ओरसे तलवारें चमकने लगीं, और झाँका समय देखकर अंग्रेजी तोपोंके धमाके सुनायी पड़े। किन्तु सभी सैनिक उनके निशानेके बाहर चल चुके थे। ऐसे समयमें अपने सभी अफसरोंको मार डालनेका काम सिपाहियोंके लिए बायें हाथका खेल था, किन्तु इसमें समय गँवानेकी अपेक्षा अपने सैनिक भाइयोंमें जा मिलना अधिक योग्य जानकर वे तुरन्त वहाँसे चल पड़े। इस प्रकार जून ५को नानासाहबके डेरेके पास ही तीन हजार सिपाहियोंने अपना पड़ाव डाला। सर व्हीलर इसीमें प्रसन्न था, कि एक भी गोरा नहीं मारा गया। वह मनके मोदक खा रहा था, कि अन्य स्थानोंके समान ये सैनिक भी दिल्लीकी ओर चले जायँगे और कानपुर यों ही संकट-मुक्त हो जायगा! हाँ, और यदि कानपुरमें कुशल नेताओंकी कमी होती तो व्हीलरका खयाल ठीक निकलता और अन्य स्थानोंके समान यहाँके सैनिक भी दिल्लीको चल पड़ते। किन्तु उस समय नवाबगजमें कट्टर और सुयोग्य नेताओंकी रत्ती भी कमी न थी। यहाँ नानासाहब थे, उनके भाई बालासाहब, बाबासाहब और रावसाहब भी थे तात्या टोपे थे, और सबसे बढ़कर अजीमुल्ला खाँ थे। इस तरह तेजस्वी और बुद्धिसागर नेता यहाँ होनेपर अन्य अगुआ ढूँढनेको दिल्ली जानेकी सिपाहियोंको क्या पड़ी थी? सबकी सब शक्ति दिल्लीमें बंद कर रखनेसे प्रभावपरक काम कर दिखाना असम्भवसा था। अंग्रेजोंको स्थान स्थानपर सतानेका काम ही सफल योजना थी। और महत्त्वपूर्ण बात तो यह थी, कि कानपुर दिल्ली, पंजाब और कलकत्तेकी यातायातका लगभग केन्द्रबिन्दु होनेसे उसपर जोरदार हमला कर उसे हथियाना आवश्यक था। जब सूबेदारों तथा नानासाहबके विश्वासी कर्मचारियोंने सिपाहियोंको इस परिस्थितिको ठीक तरह समझा

दिया, तब सिपाहियोंने भी एकस्वरसे कानपुर लौटनेका निश्चय किया। तीन हजार सैनिकोंने नानासाहबको अपना राजा घोषित किया और उनके दर्शनका हठ ले बैठे। नानासाहब जब उनके सामने आ खडे हुए तब बडी उमगसे उनकी जयकी गर्जनाएँ की गयी और उन्हें राजसम्मानकी वदना (सॅल्यूट) दी गयी। नेताजीका उसकी अनुमतिसे इस तरह चुनाव होनेपर, सिपाहियोंने मुख्य अधिकारियोका निर्वाचन शुरू किया। कानपुरके क्राति–सगठन–केद्रके प्राणस्वरूप सूबेदार टिक्कासिगको रिसालेका प्रमुख चुना गया और उसे 'सेनापति'की उपाधी दी गयी। सैनिक अनुशासनके नये नियम बनाये गये। जमादार दलगौजनसिग (५३ वीं पलटन) और सूबेदार गगादिनको (५६वीं पलटन) कर्नल बनाया गया। फिर हाथीपरसे स्वतत्रताके झण्डेका प्रचड जुलूस निकाला गया और डकेकी चोटसे घोषित किया गया, कि अब नानासाहबका राज प्रारभ हो गया है।

निर्वाचन, नियुक्ति आदिका यह कार्यक्रम सपन्न होनेपर नानासाहबने एक क्षणभी व्यर्थ न जाने दिया। अंग्रेजोंको जब पता चला, कि दिल्ली जानेके बदले सिपाही वहीं रहे हैं, तब वे अपनी नयी सुरक्षित गढीको चल दिये और अपने तोपखानेको प्रस्तुत किया। औरतें, बच्चे मिलकर लगभग एक हजार अग्रेज वहॉ थे। इस सुरक्षित गढीको हथियाना सबसे पहले आवश्यक था, उसीसे उसपर हमला करनेकी आज्ञा नानासाहबने दी। अग्रेजोंको विश्वास था कि क्रातिकारी उनपर हमला करनेकी हिम्मत नहीं करेंगे, किन्तु जून ६ को सवेरेही सर व्हीलरको एक खरीता मिला। नानासाहबके भेजे हुए इस पत्रका आशय यह था:–"हम अब चढ आ रहे हैं, आपको पहलेसे सूचित कर रहे हैं।" युद्धका यह निमत्रण था, सर व्हीलरने सब अधिकारियों, सैनिकों, तथा तोपखानेको प्रस्तुत कर युद्धकी आवश्यक सिद्धता की।

युद्ध प्रारभ करनेके पूर्व, किसी तरहकी आवश्यकता न होनेपर नानासाहबने अग्रेजोंको अग्रिम सूचना दी, इस बातका बडा महत्त्व है। नानासाहबके स्थानपर अग्रेज होते, तो निश्चय, इस तरहकी उदारता कभी न दिखलायी जाती। जो कोई नानासाहबकी बदनामी करनेकी ओछी चेष्टा समय–असमय करते हैं उन्हें नानासाहबके हृदयका यह प्राकृतिक औदार्य

का गुण देखकर स्वभावसे अपनी गर्दन नवानी ही चाहिये। बलवेके प्रसंगमें अंग्रेजोंके प्राणोंकी रक्षा करना, और बारह घंटे पहले उन्हें खतरेकी पूर्व सूचना देना—इन दो बातोंको ध्यानमें रखकर यदि हम अब इन अन्तिम घटनाओंको जानेंगे तभी कानपुरकी स्थितिका ठीक तरह समझ पायेंगे।

अंग्रेजोंको युद्धकी पूर्वसूचना देकर सूबेदार (अब 'कर्नल') टिकासिंग, सबेरेका सारा समय, गोलाबारूदके भंडारमें आकर अस्त्रशस्त्रोंका ठीक प्रबंध करने तथा उन्हें मार्केके स्थानपर पहुँचानेमें मगन रहा। नदी तथा भूमिसे, अंग्रेजोंकी गढीकी दिशामें तोपोंके मोर्चे बांधे गये। यह योजना युद्धशास्त्रके अच्छे दाँवपेंचोंकी थी। उस समय कानपुरमें बहुत गड़बड़ी मची हुई थी। कोरी, जुलाहे, तलवारोंके कारीगर लुहार, हाटके लोग, मुसलमान और रोजगारवाले चाँदीके बेपारी सबके सब हाथ लगे हथियारसे लैस होकर अंग्रेजोंकी राह देख रहे थे। न्यायालय, कचहरियाँ नये पुराने अंग्रेजी कारोबारके खत-पत्र सब जला दिये। गढीमें जो जा न सके उन अंग्रेजोंको कत्ल किया गया। अब दोपहर हो चली थी। १ बजे अंग्रेजोंकी गढीको घेरनेका प्रारंभ हुआ और शामको तोपें चली, तब भिड़न्त हो गयी।

अंग्रेजोंके पास आठ तोपें थीं किलेमें गाडी हुई गोलाबारूदकी अनगिनत निधि भी थी। क्रांतिकारियोंने गोलाबारूदका भण्डार हथियाकर बडी बडी तोपेंभी हथिया ली थीं, जिससे उनके पास सामग्रीकी कमी न थी। सेनापति टिकासिंगने पहलेही से तोपखानेका प्रबंध बढिया कर रखा था। इन तोपोंने गढीकी इमारतोंको चकनाचूर कर दिया। ७ जूनको क्रांतिकारियोंके तोपखानेने जब कुहराम मचा दिया, तब आजतक ऐसी युद्धशाला परिचय न होनेवाले अंग्रेजोंके बालबच्चे भयग्रस्त होकर तितर बितर भागने लगे। किन्तु अभ्याससे, मौतका डर भी चला गया सिरके ऊपरसे सरकनेवाले तोपके गोले गगनविहारी पंछियोंके समान मामूलीसे मालूम होने लगे। चढाईके दो दिन बीते और गढीमें पानीकी कमी महसूस होने लगी। अंदर केवल एकही कुआँ था। किन्तु अंग्रेज सोल्जरोंकी अपेक्षा क्रांतिकारियोंका उसपर अधिक ध्यान था। घाम और ऊमस अति प्रखर थे अंग्रेजोंको धूपमें भुन जानेकी बारी आयी। सबके हृदय उस समय पत्थरसे कठोर बने थे।

स्त्री–पुरुष भेद भी भूला गया था, लज्जा लुप्त हो गयी। दूध न मिलनेसे बच्चे मर गये और उस दुःखसे माताओंने भी शरीर छोडे। मृतोंको दफनानेकी कौन कहे, कौन मरा, कौन बचा इसकी पूछताछ करना भी दूभर हो गया। जिंदोंकी सूचीमें लिखा हुआ नाम तुरन्त काटनेकी बारी आयी। उस प्रसगका ठीक वर्णन करनेके लिए एक अनुभव लिपिबद्ध करनाही अच्छा है। कॅप्टन थॉमस आप–बीती सुनाता है, "जब आर्मस्ट्राग घायल होकर गिरा तो उसे देखने ले. प्रोल आया। उसके मुँहसे धीरज बँधानेकी दो बातें पूरी निकली भी न थीं, तभी एक सिपाहीकी गोळी उसकी रानमे आरपार गयी और प्रोल हडहडाकर नीचे गिर पडा। उसका हाथ मेरे कधेपर रखकर और मेरा हाथ उसकी कमरमे लपेटकर सार्जटके पास ले जानेको मैं उठानेही लगा था, कि सॉय सॉय करती एक गोली मेरे कधेमे आ लगी जिससे मै और प्रोल दोनों गिर पडे। यह देखकर गिल्बर्ट बक्स हमारी ओर दौड पडा, किन्तु शत्रुकी गोलीभी उसका पीछा करती आयी और उसकी देहसे आरपार निकल गयी, वह भी मौतकी राह देखता नीचे गिरा। एक घटेका यह विवरण २१ दिनोंकी उस लडाईका भान करानेको काफी है! सर व्हीलरका लडका घायल हुआ। एक कमरेमें उसकी मॉ और दो बहनें उसे दवादारू दे रही थीं किन्तु दवा गलेके नीचे उतरनेके पहलेही एक भयकर धडाका हुआ और उसका सिर तनसे अलग हो गया! मॅजिस्ट्रेट हिलर्सडेन अपनी पत्नीसे बरामदेमें बोल रहा था तब बीस पौडवाला तोपका गोला उसके सिरपर ही आ फटा और साहबकी बोटी बोटी कट गयी, कुछ दिनोंके बाद उसकी वेवा जिस दिवारसे उठॅग कर खडी थी, वही हडहडाकर गिर पडी और वह उसके नीचे दबकर मर गयी। गढीके पासकी खाईमें सात औरतें थी, वहॉ एक बम फटा और उन सातोंके साथ एक गोरा सोजीरभी, वही जिसने बलवेके पहले एक सिपाहीको योंही गोली मार दी थी और बेगुनाह करार देकर बरी हुआ था, खतम हो गया। हॉ तो, इस तरह सिपाहियोंकी बदूकें अपने आप चल पडीं!! और ऐसे धडाकेके साथ, कि अग्रेज सोल्जरोंकी आगामी पीढी शराबके नशेमे भी उसे भूल न सके!!

इस भीषण घोरी समाचार स्टोंने भी कुछ भयानक दृश्यन किये गांवोंका अग्रगामी दस्तापर गनका। गांवों। पश्चम गवर्नमेंटने लिए ग गोरोंकी गर्दन पर थ। अन्तमें भी यहा कानपुरकी एक टिनी गाँरवाक टेनो हाथ पमर पटाकर कर रहे। मकान मालिकोंका गला गला कसा सिपाहियोंकी टोलपूरमें कर 'लूट' तथा लोग समाचार तर हो गये। अंग्रेजोंका पानी सिपाहियों लिए किसी किस्मका भरती थान अनतर्मे डाल। पानी डालना चाहता था कि एक गोरोंकी सवारीके पृथक गदन। ऐसा अनिमाय, दोनों ओर भी अंग्रेजोंका प्रतिशोध ... रहे थ। मार डाला पाकर, कमाण्डर सिल्विस, और ... कैमाणिम मर गये। मारक गण्णे गया बीमारीम जा दा ... इस शीतल समानता भीषण पीड़ाग्रस्त हुए ... ही पागल हो गये। इस तरह यहाँ कुहराम मच गया था। एक तरफ, एक मशीन अन्धाधुन्ध ... ... मिलाप लिए माला प्रतिशोधका मुखिमान ... अन्न ... मीच का सिर उग फैला, इधीर सिपाही भीषण अत्याचार करते हुए उधम मचा रहा था।

गर्मीमें यह दशा थी, किन्तु वादमें मार्चोंरा गर्मी अपनी ताकत अवश्य अच्छा काम किया। अब, के. मूर, के. श्रीमगन् और अन्य मुर यादा अनुम पगपगग ... । ... या ... ... पानकी अग्रसेना पहुंच आयी थी। क्रांतिकारियोंके सुविधा विभागकी कड़ी निगरानीके कारण चिट्ठी-पत्रीका व्यवहार असम्भव हो गया था। फिर भी किसी किसी तरह, भाषा ..., पाप ... और ... अंग्रेजोंमें लिखा ... पत्र ... रैनामें ... पहुँचाया, जिसमें लिखा था—"... हो नहीं तो हमारी ... इसमें सहायता मिले तो हम आपके ... करेंगे" आदि। किन्तु क्रांतिकारियोंकी निगरानी इतनी कड़ी थी, कि ... यहाँ उसकी ... सकता। ... रुपयों तक की रिश्वत ... लेकर क्रांतिकारियोंमें उस ... पहुँचानेके लिए अंग्रेज अपने पिट्ठुओंको रवाना करते; किन्तु ... मुश्किलसे एक भी जीवित न बच पाता। इस बातकी पुष्टिके लिए ऐसी एक पिट्ठुका कथन हम यहाँ

देते हैं:– " जब शेफर्डसकी औरत और बेटी मर गयी तब क्रातिकारियोंके पडावसे भेद जानकर कानपुरमें फूट डालनेका काम उठाया। देसी रसोइयाका भेष बनाकर वह चल पडा। कुछही अंतर जाने नहीं पाया था, कि उसे पकडकर नानासाहबके सामने खडा किया गया। अग्रेजोंकी हालतके बारेमें जब उससे पूछा गया तो उसने, जैसा कि निश्चित था, झूठी और बे-सिरपैरकी बातें कहकर उडने लगा। किन्तु जब उसे पता चला, कि उसके पहलेही दो औरतोंको पकड लिया गया है, तब उसने सच्ची करुण कहानी कह सुनायी और वह शरमाया। उसे बदी बनाया गया और १२ जुलायको न्यायासनके सामने खडाकर तीन सालकी कडी सजा दी गयी। इससे ज्ञात होगा कि लडाईके अदाधुदमें भी नानासाहब न्याय देनेपर कितना ध्यान देते थे। जहाँ अग्रेज गुप्तचरोंकी इस तरह फजीहत होती, वहाँ क्रातिकारियोंके जासूस पूरी तरह सफलता पाते थे। एक बार एक भिश्ती अग्रेजोंकी गढीके पास एक टीलेपर खडा होकर चिल्लाने लगा " मै अग्रेजोंका हितू हूँ, इससे जानपर खेल कर मैं तुम्हें एक खुशीकी खबर सुनानेको खडा हूँ! गोरी सेना, मय तोपखानेके, गगाके परले कॉठे आ खडी है। कलसे तुम्हारे छुटकारेका काम शुरू होगा। इस बनावसे कमीने बागियोंकी कमर टूट गयी है, हम 'राजनिष्ठ' लोग अभीके अभी अग्रेजोंको मिलने तैयार हैं। " यह सुनकर अग्रेजोंने यह अदाजा लगाया कि, हो न हो, उनके जासूसोंने शत्रुके पडावमें फूट डाली है और लखनऊवाली गोरी सेना उनकी सहायताके लिए आ पहुँची है। दूसरे दिन वही भिश्ती आकर फिर चिल्लाने लगा, " अग्रेजोंकी जय हो! गगामें बाढ आनेसे गोरी सेनाको देरी हो गयी है, किन्तु अब कोई अडचन नहीं है, वे आ रहे हैं। सूरज डूबनेके पहले हमारी सरकारकी विजय देखेगा!! " वह रात गयी, दूसरा भी दिन बीता। ऑखे बिछाएँ अग्रेजोंको वह सहायक सेना कहीं नजर न पडी, न वह भिश्ती भी दीख पडा। अग्रेजोंकी गढीके सभी समाचार अजीमुल्लाको ज्ञात हो जानेसे 'भिश्ती' को अपनी जान खतरेमें डालनेकी आवश्यकता ही न रही। इस प्रकारकी कई धूर्त चालोंसे क्रातिकारी गुप्तचर अग्रेजोंको बरगलाते थे।

घेरा डालनेकी पूर्व सूचना अंग्रेजोंको ६ जूनको देनेके बाद नाना साहबने अपना डेरा रणभूमिपर व्हीलरके डेरेके पास ही लगवाया। कानपुरके स्वतंत्र होनेके बाद शहरमें क्रांतिकी भारी लहर उठी। हर दिन जमींदार और राजा महाराजा, अपने अपने अनुयायियोंके साथ आकर नानासाहबके पक्षमें शामिल हो जाते। अब उनकी सेना चार सहस्र हुई। उनमें, तात्या तो अपने कमरमें बैठे हुए थे। इधर एक ओर क्रांतिका ध्वज लहरा रहा था और उसकी रक्षाके लिए नाना साहब दिन-रात अपने कमरमें बैठे रहते थे। जब सन्ध्या हुआ तब उनका परधान जमा करनेकी आज्ञा हुई थी। किन्तु कुछ समझौता हुआ और स्वाधीनताके पवित्र युद्धमें उनका बहुत भाग्यशाली हुआ। नानासाहबके तात्या पूरे सेनानिवृत्त (पेन्शनर) सिपाही थे। गदर्में इमारतोंको जलानेकी चेष्टा क्रांतिकारी कर रहे थे, तब एक नौजवान सैनिकने एक नूतन स्फोटकद्रव्यका आविष्कार किया। उसका उपयोग सबसे पहले उन बारिकोंपर किया गया, जो अंग्रेजोंके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण थीं। प्रयोग अत्यंत सफल हुआ। बारिकें तुरन्त भस्मसात् हुईं। अग्निशामकोंको बुलवानेके लिए तथा वीरोंकी सहायता करनेमें औरतों और बूढ़ोंमें होड़ सी लगी। ऊँचे आनन्द और उत्तेजनासे इस प्रसंगमें लोगोंमें कितनी स्फूर्ति पैदा हुई थी इसका अंदाजा केवल एकही उदाहरणसे लग सकता है,— जब मुसल्मानका भेष बनाकर मैं चबूतरेपर बैठा था तब मेरे सामनेसे, युद्धमें थके लोगोंको पानी पिलानेके लिए, लोग गुजरते थे। सहसा उनमेंसे एक जन मेरेपास आकर कहने लगा "अरे भाई, अपने देशबंधु युद्धमें जुटे हुए हैं और तुम ऐसे जवान यहाँ हाथपर हाथ धरे बैठे रहें! सचमुच तुम्हें इसपर लज्जा आनी चाहिये! चलो उठो, तोपखानेके काममें लग जाओ।" उसीने बादमें करीमअलीके बेटेकी, उस दिनकी, बहादुरीका बखान मेरे सामने किया। "उस लड़केने नया आविष्कार कर अंग्रेजोंकी इमारतें जला दी थीं और उस कामपर उसे एक शाल और नकद नब्बे रुपये पारितोषिकमें दिये गये थे।" स्वदेशकी सेवा न कर चुप बैठे रहना, उस समय, तरुणोंके समान युवतियोंको भी लाञ्छन लगता था। इसीसे परदोंको फेंक कर कानपुरकी महिलाएँ रणमैदानकी ओर दौड़ पड़ीं। किन्तु इन सब शूर युवक युवतियोंको जिसकी लगन

और उत्साहके आगे लज्जासे सिर झुकाना पडता था वैसी एक रूप-सुदरी थी। और वह थी, पहले बताई हुई, नर्तकी अजीजान। उसने वीरवेश चढाया था। नाजुक गुलावी गालों और हसोड ओंठोंकी वह नर्तकी सशस्त्र, घोडेपर चढी, घूम रही थी और तोपखानेके सिपाही उसके दर्शनसे अपनी थकावटको भूल जाते। नानकचद अपनी दैनदिनीमें (डायरीमें) लिखता है, " सशस्त्र अजीजान जा–ब–जा लगातार बिजलीके समान कौंध रही है। कई बार थके और घायल सिपाहियोंको मार्गमें मेवामिठाई तथा दूध देती हुई दीख पडती है।"

इधर घमासान युद्ध ठन गया था फिरभी, नानासाहब, साथ साथ, अतर्गत शासनपरक छोटी मोटी बातोंको अनुशासनमें बाधनेके विचारमें मगन रहते। वस्तुतः क्रातिकी अदाधुधमे, लगान और पुलीस इन दो महकमोंको ठीकसे चलाना अत्यत कठिन कार्य था। तो भी नानासाहबने सबसे पहले न्याय और सरक्षणका लाभ जनताको मिलनेका प्रबध किया। कानपुरके लब्धप्रतिष्ठ नागरिकोंको निमन्त्रित कर, उनसे श्री. हुलाससिगको बहुमतिसे चुनकर प्रधान न्यायाध्यक्ष नियुक्त किया और उसे आज्ञा दी, कि उद्दड सिपाहियों तथा गुडे देहातियोंसे नागरिकोंकी रक्षा करे। सेनाको रसद पहुँचानेका काम मुल्ला नामक व्यक्तिको सौंपा। दीवानी और फौजदारी मुकदमोंके लिए एक न्यायसभा नियुक्त हुई। ज्वालाप्रसाद और अजीमुल्लाने न्यायाध्यक्षका काम उठाया और बाबासाबहको उसका प्रधानपद दिया। इस न्यायसभाके जो सलेख आज प्राप्त है, उनसे यही मालूम होता है, कि जुलम तथा फसाद करनेवालोंको कडीसे कडी सजा दी जाती थी, सुप्रबध और शान्तिकों स्थिर रखनेपर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता था। एक बुरी चोरीके मामलेमें अपराधीका दाहिना हाथ काटा गया था। गौहत्या करनेवाले एक मुसलमानको भी वही दण्ड दिया था। बेकार गुडों तथा उच्चक्कोंको गधेपर चढाकर सडकोंसे घुमा, अपमानित कर, फिर दण्ड दिया जाता। * फ्रेंच राजक्रातिमे स्थापित सार्वजनिक सुरक्षा–समितिके समान, यह न्यायसभा अन्य विभागोंके कार्य भी

* थॉमसनकृत ' कानपुर '

पूरा करखानेमें ध्यान देती। कमी होनेपर गोलाबारूद दिल्वाना, सेनाको कपडे देना अंग्रेज गुप्तचरोंकी टोहमें रहकर उन्हें पकडवाना, गुंडे, चोर मया स्त्रियोंको दण्ड देना आदि कई काम इस न्यायसभाद्वारा होते थे। मगोडे अंग्रेजोंका पकडा देनेवालोंको पारितोषिक देनेका काम भी किया जाता था।

अंग्रेजोंकी गढीपर १२ जूनको क्रांतिकारियोंने चढाई की। एक साथ चारों ओरसे हमला कर किलेपर दखल करनेकी अथवा चारों ओरसे दिनरात तोपोंसे आग उगलते रहकर अंग्रेजोंकी नाकों दम कर उनको शरण माँगनेपर मजबूर करनाही क्रांतिकारियोंकी नीति थी। एस तो बीचबीचमें हमले चढाये जाते ही थ उसमें जब दोनों ओरके युद्ध लोग त्रस्त रहते तब चढाई रोकी जाती। तोपखानकी क्षमताकी बराबरी रिसाला या पैदल सेना न कर पायी। इस कमीका अनुभव आगे चलकर लखनऊ तथा दिल्लीके घरोंमें होगा ही। किन्तु कानपुरके मुहासरेमें प्रत्यक्ष मुठभेडकी अपेक्षा तोपोंपर ही अधिक भरोसा था। इसका मतलब यह नहीं कि सिपाही मौतसे डरते थे। १८ जूनको गढीपर हुई चढाईमें सैनिकोंने जो पराक्रम प्रगट किया था वह निःसंदेह भूषणरूप बना रहेगा। उस दिन शत्रुकी तोपोंके आग उगलते रहनेपर भी शत्रुकी हरावलमें सैनिक तीरके समान घुस पडे और तत्पर चढकर उन्होंने शत्रुकी तोपोंपर दखलकर उनके मुंह घुमा दिये और कुछ समयके लिए ऐसा मालूम होने लगा कि अब क्रांतिध्वजको कमी हटना न पडेगा। किन्तु इसी समय इन सूरमाओंकी सहायता करनेके बदले, बोही, जानबूझकर, सभी सेना विभागोंमें गडबडी पैदा करनेका इरादा कुछ दुष्टोंने किया था, और इसी कमजोरीके कारण सारी सेनाको पीछे हटना पडा। अथथक सूरमाओंके समान कानपुरके विशाल हृदयों, मस्तकों तथा भुजाओंने भी, दूसरे क्या करते हैं इसपर ध्यान न देते हुए, अपना कर्तव्य वीरोंके समान निभाहा। एकबार चढाई करनेवाली टुकडी जब लौट रही थी तब एक सिपाही राहमें मरा'सा पडा रहा। जब शूर, पराक्रमी और साहसी योद्धा होनेकी नामवरी पैदा किया हुआ कॅप्टन जेंकिन्स वहाँसे निर्भीक गुजर रहा था तब उस सिपाहीने बाजके समान झपटकर उसकी गर्दनसे गोली पार कर दी और जेंकिन्स की लाश धूल चाटने लगी।

२३ जूनका सवेरा हुआ। उसी दिन ठीक सौ वर्ष पहले पलासीकी रणभूमिपर अंग्रेजोंने भारतमें अपनी हुकूमतकी नींव डाली थी। २३ जूनको अंग्रेजोंका भाग्यसूर्य आकाशमध्यको जा रहा था। उसी दिन भारतमाताकी स्वाधीनताका राजमुकुट टूट पडा और उसने करुण पुकार मचायी। उस काले अशुभ दिनके अपमानके शल्यकी कसक बहुत गहरी घुसकर हिंदुस्थानके अंतस्तलको छेद रही है। ऐसा भासता है, कि आज सौ वर्ष बीतनेपर भी वह पापी काला दिन और उसकी अशुभ स्मृतियाँ हर भारतीयके मनमें हरे है। उस दिन पराधीनताके गहरे और भयानक घाव आज सौ वर्ष बीतनेपर भी रुझे नहीं। उन घावोंको रुझानेवाला कोई मरहम अबतक प्राप्त नहीं हुआ है। अत्यंत शान्तिप्रेमी और क्षमाशील भारतके हृदयमें कितनी भीषण द्वेषभावना उबल रही है? पलासीका प्रतिशोध लेनेकी भारतभूमिकी तडपन सौ वर्षोंके बाद भी धीमी नहीं पडी है। मरनेवाली हर पीढीकी अन्तिम साँसमें और पैदा होनेवाली प्रत्येक पीढीके प्रथम निश्वासमें पलासीके प्रतिशोधकी एक फूँक आजतक भारतमाता मिलाती रही है। सौ वर्षोंतक यह काम चलता रहा और अब २३ जूनका दिन आया तो, निदान, आज मातृभूमिकी पराधीनताका पूरा बदला लिया जानेका आगम ज्योतिषियोंने कथन किया। नानासाहब! आगमका सच निकलना भलेही प्रभुके अधीन हो, अन्तिम साधनाकी दृष्टिसे तुम्हें अपना कर्तव्य निबाहना होगा।

और २३ जूनके परबको साधनेके लिए नाना साहबके पडावमें उस दिन बडी खलबली मच गयी थी। सबकी सब टुकडियाँ आज असाधारण वीरताके साथ चढाई करनेको सिद्ध दीख पडी। तोपखाना, रिसाला पैदल सेना सबके सब पलासीकी ऐतिहासिक स्मृतिसे उत्तेजित होकर रणमैदानमें उतरे थे। हिंदू सूरमाओंने गंगाजल तथा मुसलमानोंने कुराणको सामने रखकर सौगंद ली 'आज हम सब मिलकर स्वाधीनता प्राप्त करेंगे या शत्रुओंको मारते मारते मरेंगे।' रिसालेने अंग्रेजी तोपोंकी तमा न रखते हुए गढीके परकोटेतक चढाई की, अन्य दिशाओंसे पैदल सेना कपास लदे बोरोंकी आडमें, जिनको वे आगे धकेल रहे थे, गोलियोंकी बौछारें शुरू रखी। आसपासके देहाती भी अपने भाइयोंकी सहायताके

लिए इकट्ठ हुए थे। गंगासे अंग्रेजमी अभियाया कर ही रहे थे। क्रांतिकारियोंके दबावको अंग्रेज रोक न सके, किन्तु गढीके अंदर न आने देनेमें वे सफल रहे। यथासमय रणोत्साह धीमा पड गया। पलासीका प्रतिशोध कुछ हिस्सेमें लिया गया।

किन्तु कानपुरकी अंतिम लड़ाई व्यर्थ न हुई। उस दिनकी मुठभेडसे अंग्रेजोंके दिल बैठ गये, जयकी आशा छोड दी। उनको अनुभव हुआ कि नानासाहबकी शक्तिके आगे गढीको सुरक्षित रखना असम्भव है। २१ जूनको न सही, २८ जूनको अंग्रेजोंने गढीपर सफेद झण्डा लगा दिया। शरणके इस चिन्हको देखकर नानासाहबने लड़ाई स्थगित करनेकी आज्ञा दी और एक बदी औरतके हाथ सर व्हीलरको एक पत्र भेजा। * इस पत्रका मतलब था, "डलहौसीकी राजनीतिसे जिनका कोई संबंध न हो और जो शस्त्र डालकर शरणमें आनेको सिद्ध हों उन, महाराणी विक्टोरियाके प्रजाजनोंको इलाहाबाद पहुँचा दिया जायगा"। यह पत्र नाना साहबकी आज्ञासे अजीमुल्लाखाँने लिखा था।

पत्र पातेही उसपर अमल करनेका अधिकार जनरल व्हीलरने कॅप्टन मूर तथा व्हाइटिंगको सौंप दिया। उसके अनुसार शरणागति की रीति निश्चित हुई। दूसरे दिन सबेरे किलाबदीके बाहर नानासाहबके प्रतिनिधि ज्वालाप्रसाद और अजीमुल्लासे अंग्रेजोंकी ओरसे मूर, व्हाइटिंग और रोच मिले। बातचीतका प्रारंभ अंग्रेजीमें हुआ, किन्तु ज्वालाप्रसाद और अजीमुल्लाने अंग्रेजोंको हिंदीमें बातचीत करनेपर मजबूर किया। संधिकी शर्तें ये रहीं, कि अंग्रेज अपनी तोपें, शस्त्रास्त्र, गोलाबारूद और खजाना नानासाहबको सौंप दे और नानासाहब उन्हें इलाहाबादको पहुँचा देनेका प्रबन्ध करें। ये शर्तें एक कागजपर लिखकर अजीमुल्लाके साथ सब लोग नानासाहबके हस्ताक्षर करानेके लिए उनके पास पहुँचे। दोपहरमें, अंग्रेजों को उसी रात या दूसरे दिन सबेरे रवाना करें इस विषयमें मतभेद हुआ।

* रेड पॅम्फ्लेट

तात्या टोपे अपने कथनमें कहते हैं—अंग्रेज जनरलने शान्तिका झण्डा ऊँचा किया और लड़ाई बंद हुई।

बहस होनेपर तय हुआ कि उसी रातको गढी नानासाहबके सुपुर्द की जाय और पौ फटतेही अग्रेजोंका पौरा वहॉसे निकल जाय। सधिकी शर्तें मान्य हुई और दोनोंके हस्ताक्षरवाली प्रति लेकर टॉड (जो पहले नानाका रीडर रह चुका था) आया। नानासाहबने उसकी कुशल पूछकर अच्छा स्वागत किया। उस शामको अग्रेजोंने हथियार डाले और सब कुछ नानासाहबके सुपुर्द कर दिया। तुरन्त दो अफसरों के साथ ब्रिगेडियर ज्वालाप्रसादने गढीमें अपना अड्डा जमा लिया। उसी रातको कानपुरके मॅजिस्ट्रेट हुलाससिग तथा तात्या टोपेने मल्लाहोंको ४० किश्तियॉ तैयार रखनेकी आज्ञा दी। किश्तियोंका प्रबध देखने हाथीपर जो अग्रेज आये थे उन्होंने किश्तियॉ बेडौल तथा आवश्यक सुविधाओंसे खाली होनेकी शिकायत की। तुरन्त सौ मजदूर लगाकर बॉसकी छतें और चन्दवे लगाकर बैठनेकी जगह ठीक कर दी गयी तथा आवश्यक खाद्य वस्तुओंसे भरपूर कर दी गयीं।

इस तरह कानपुरसे निकल जानेकी अग्रेजोंके लिए सिद्धता पूरी हुई। किन्तु, उस ओरसे वे कौन लोग आ रहे हैं? जाने आनेवाले पर निगरानी अवश्य रखी जाय, नहीं तो आगेकी घटनाओंका मर्म हम समझ नहीं पायॅगे। नानासाहबके कानपुरपर स्वाधीनताका झण्डा फहरानेके समाचार जब चारों ओर फैले, तो लडाके वीरोंका कानपुरकी ओर आनेमें एक तॉता-सा बॅध गया! हर स्थानसे तरुण राष्ट्रीय स्वयसैनिक कानपुर आ रहे थे। जो गॉव जवानोंको न भेज सका उसने धन भेजा। किन्तु हाय! केवल स्वयसैनिकोंके झुण्डही वहॉ नहीं आ रहे थे। जो लोग अपने यत्नोंमें असफल रहे और जो अंग्रेजी पराधीनतासे ऊब उठे थे उन असहाय लोगोंके झुण्डके झुण्ड भी कानपुरको आ रहे थे। गत सप्ताहहीमे काशी और प्रयागके हजारों सिपाही, अग्रेजोंके उनके बालबच्चोंपर किये क्रूर अत्याचारोंके समाचार लेकर, आ पहुँचे थे। सैंकडों युवक—जिनके पिताओंको अग्रेजोंने रोमन ८ और ९ के अकोंकी आकृतियॉ बना कर फॉसी दिया था—वहॉ आ धमके थे। जिनकी औरतों तथा नन्हे मुन्नोंको भी नीलने जला डाला था, वे पति और पिता भी वहॉ आये थे। जिनकी लडकियोंके बालों तथा कपडोंमें आग लगाकर गोरे सोजीरोंने तालियॉ पीटी थीं, उनके जन्मदाता भी वहॉ आ पहुँचे

थे। जिनकी संपत्ति अंग्रेजोंने खाकमें मिला दी थी, जिनका धर्म पैरोंतले कुचला था, जिनके राष्ट्रको गुलाम बनाया था, वे सब क्रांतिप्रवणके पास जमा होकर 'प्रतिशोध! बदला!' की चिल्लाहटसे कानपुर गूँजा रहे थे। और विजयका दिन जब समीप आ पहुँचा और जब नानासाहबने अंग्रेजोंको इलाहाबाद पहुँचा देना स्वीकार किया, तब सिपाहियोंकी प्रतिशोधकी सभी उमंगें धूलमें मिल जानेसे वे अपनी अप्रसन्नता प्रकट करने लगे। नावोंके प्रबंधका निरीक्षण करनेवाले अंग्रेजोंने कानम, गंगाके घाटपर सिपाहियोंकी 'कत्ल' की कानाफूसी की भनकार पड़ गयी थी। कहते हैं, कि दाबदरबारके एक पण्डितने सिपाहियोंसे स्पष्ट कहा था "अपने राष्ट्रका विश्वासघात कर उसे गुलाम बनानेवालोंके सिर उड़ा देनेमें धर्मकी दृष्टिसे कोई पाप नहीं है" *

ऐसी अशान्तिके साथ २७ जूनका दिन आया। सतीचौरा घाटसे अंग्रेजोंका रवाना करनेका निश्चय हुआ था। रिसाला और पैदल सेनाने घाटको घेर लिया था, तोपखाना भी तैयार था। कानपुरके हजारों नागरिक सबेरेसे अपनी कल्पनासे बनाये गंगाघाटके दृश्यको प्रत्यक्ष होते देखनेको जमा हुए थे। अजीमुल्ला, बालासाहब तथा सेनापति तात्या टोपे घाटके पास एक मंदिरके कोठेसे देख रहे थे। मंदिरका नाम भी उस प्रसंगके योग्य ही था। अंदर भी 'हर' की मूर्ति थी, मानो उस समय आसपास सब ओर उस रुद्र भैरव महादेवकी सत्ता स्थापित थी। अंग्रेजोंका गंगा किनारे लानेको बढ़िया सवारियोंका प्रबंध नानासाहबने किया था। सर व्हीलरके लिए सुंदर सजाया गजराज नानासाहबके महावतके साथ गढ़ीके द्वारपर खड़ा था। ऐसे अपमानस्पद प्रसंगमें हाथीपर चढ़ना उसे ठीक न लगा, सो, वह पालकीमें चला। अंग्रेज औरतोंको भी पालकियाँ दी गयी थीं। गढ़ीका अंग्रेजी झण्डा नीचे खींचकर उस स्थानपर स्वातंत्र्य तथा स्वधर्मका ध्वज फहराया गया। अंग्रेजोंकी प्रतिष्ठा धूलमें मिलनेसे होनेवाले अपमानसे अंग्रेजोंका हृदय दहलाया नहीं, उलटे मंत्रियोंने 'बान

* ट्रेवेलियनकृत 'कानपुर'

बनाना आसान हो गया है न ? नानासाहबकी आज्ञा पहुँचते ही हत्याकाण्ड एकदम बंद हो गया। और १२५ औरतों - बच्चोंको पानीसे निकालकर किनारे लाया गया और बंदी बनाकर सौदाकोठीमें भेज दिया गया। बचे अंग्रेज पुरुषोंको एक पंक्तिमें खडाकर उनको देहान्त दण्डकी आज्ञा पढकर सुनायी गयी। उनमेंसे एकने प्रार्थना–पोथीसे कुछ भाग अपने बांधवोंको, सजा मिलनेके पहले, सुनानेकी अनुज्ञा मांगी और वह उसे दी भी गयी।* प्रार्थना समाप्त होतेही सिपाहियोंने सबको कत्ल कर डाला।

४० नावोंमेंसे एक नाव क्रांतिकारियोंके हाथसे छटक गयी थी, उससे केवल तीन चार अंग्रेज बचे और वह भी जमींदार दुर्विजयसिंहकी दयासे! उसने इन नंगेधडंगे तथा मरणोन्मुख अंग्रेज पुरुषोंको एक महीनाभर रखकर फिर इलाहाबाद पहुँचा दिया।

साराश, कानपुरमें ७ जूनको जीवित एक सहस्र अंग्रेज स्त्रीपुरुषोंसे केवल ४०० पुरुष और १२५ स्त्रिया–बच्चे जून ३० को बचे पाये गये। बच्चे और स्त्रियाँ नानासाहबकी बंदिशालामें थे और चार अधमुवे अंग्रेज दुर्विजय-सिंगके महेमान थे। स्त्रियों बच्चोंको जिस तरह नानासाहबने बंदी बना रखा था उसका भी थोडेमें वर्णन देना चाहिए। ऐसे तो इसकी आवश्यकता हम न मानते, किन्तु अंग्रेज लेखकोंने 'विश्वस्तसूत्रसे प्राप्त जानकारी' की पोथी पर पोथी रंग डाली है। "स्त्रियोंपर अत्याचार हुए, आम सडकपर स्त्रियोंकी लाज लूटी गई, नानासाहबभी इसमें शामिल थे" ये निर्लज्जतापूर्ण अभियोग उन्होंने लगाये हैं, और ऐसे घृणित, अधम, सफेद झूठ कथनों पर विश्वास करनेको, अंग्रेजी राष्ट्रभी, अंधा और नीच बना था, इससे हमे इसका विवरण मजबूरीसे देना पड रहा है। इस काण्डकी तहकिकात करनेके लिए अंग्रेजोंने ही एक विशेष समितिको नियुक्त किया था और उसीने निर्णय दिया था कि (उपर्युक्त) 'ये सभी अभियोग सरासर झूठ है'।×

* के और मॅलेसनकृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड २, पृ. २६३

× म्यूरकी रिपोर्ट तथा विलसनकी रिपोर्ट देखो, के और मॅलेसन कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड २, पृ २०७

श्रीमत नानासाहब पेशवा

['लंडन टाइम्स' में उस समय प्रकाशित, नानासाहब के रीडर टॉड का बनाया चित्र
(श्री वि मा देशमुख, पुणे, के सौजन्य से)

कॉपी राइट
निर्मल साहित्य प्रकाशन, पुणे ९

किन्तु इससे क्या होता है ? नानासाहब ने हत्याकाण्ड से स्त्रियों को बचा कर नील, रेनाल्ड और हॅवेलॉक की गर्दनें लज्जासे झुका दीं और ऊपर से १८५७ के भीषण प्रलय में जिन विश्वासघाती नीच शत्रुओं ने व्यक्ति, राष्ट्र और धर्म का मटियामेट कर डाला था उनके साथ नाना साहबने सौवाँ हिस्सा भी उग्रता या क्रूरता न दिखायी। समान परिस्थिति में और ऐसे ही उत्तमता से स्वयं इग्लैंडने हिंदुस्थान, आस्ट्रिया ने इटली, स्पेन ने मूरों एवं यूनान ने तुर्कों के साथ इस से सौ गुना क्रूरता का बरताव किया था; यह अंग्रेजोंके लिखे इतिहाससे ही सिद्ध होता है।

कानपुर के हत्याकाण्ड के पहले हमले में कुछ सवारोंने चार अंग्रेज लुगाइयों तथा कुछ इसाई बनी औरतोंको भगाया था, किन्तु इस की खबर पाते ही नानासाहब ने उन सिपाहियोंको पकड मंगवाया और उन्हें खूब फटकारा। उन्हें कडी आज्ञा दी, कि भगायी औरतों को तुरन्त पेश करें।* बन्दियों को बार बार रोटियाँ और गोश्त दिया जाता + किसी काम के लिये उन्हें मजबूर न किया जाता, बच्चों को दूध पिलाया जाता। एक बेगम उन की निरीक्षिका थी। कारागार में हैजा और अतिसार का प्रकोप हो जाने से शुद्ध वायुसेवन के लिए दिन में तीन बार घूमने दिया जाता।× इसी स्थान पर एक किस्सा यहाँ दर्ज करना अयोग्य न होगा, कि अंग्रेजोंका केवल नाम छेनेसे लोग कितने भडक उठते थे। एक सबेरे एक ब्राह्मणने बन्दीगृहके दिवारसे झाँककर देखा, कि दो अंग्रेज मेमें, बिना पालकीके, पग न धरती थीं वे स्वयं कपडे धो रही हैं। ब्राह्मणने कुछ दुखित होकर अपने साथीसे कहा, 'इनको कपडे धोनेको एक धोबी क्यों नहीं

---

* ट्रेव्हेलियन कृत कानपुर पृ. २२

+ मॅरिव्हिक पृ. ११२

× नील स्वयं अपनी रिपोर्टमें लिखता है–"शुरूमें उनको (बन्दियोंको) ठीक खाना नहीं मिलता था; किन्तु बादमें उन्हें अच्छा खाना, साफ कपडे और सेवाके लिए नौकर दिये गये।"

दिया जाता ?' मानवताके असीम प्रदर्शनको समयपर ही रोकनेके लिए साथीने एक तमाचा ब्राह्मणके मुँहपर जमाया! इनीगिनी स्त्रियाँ कारागारमें चक्की पीसतीं और इसके लिए हर एकको एक रोटीका आटा मुफ्त दिया जाता। हाँ, इस तरह जीनेके लिए क्या क्या कष्ट उठाने पडते हैं इसका पाठही उन्हें मिल जाता! इस जेलका अन्त कब, कैसे और किस कारणसे हुआ इसका वर्णन योग्य स्थानपर किया जायगा। इन स्त्रियों और बच्चोंको जेलमें छोडकर अब हम अन्य महत्त्वपूर्ण विषयको देखेंगे।

अंग्रेजी शासनके सभी मानचिन्होंको कानपुरसे उखाड फेकनेके बाद २८ जूनके शामको ५ बजे नानासाहबने एक बडा दरबार लगाया। इस राजसभाके उपलक्ष्यमें वहाँ उपस्थित सैनिकोंका एक स्नेहसम्मेलन भी रखा गया था। इस समारोहके लिए छः पैदल पलटनें, रिसालेकी दो कपनियाँ और स्वातन्त्र्य–समरमें हाथ बँटानेके लिए स्थानस्थानसे आये हुए क्रांतिकारियोंके, अपने अपने झण्डे लिये, स्वयसैनिक दल आदि उपस्थित थे। जिसके बूतेपर कानपुर जीता गया था, उस तोपखानेको उसके पराक्रमके योग्य सम्मानका स्थान जानबूझकर दिया गया था। बालासाहब पहलेसे सेनामें बडे सर्वप्रिय थे, जिससे उनके आते ही सैनिकोंने सम्मानपूर्वक जयगर्जना की। कार्यवाही का प्रारभ होनेके पहले दिल्ली सम्राटके सम्मानमें १०१ तोपोंकी वदना की गयी। इससे स्पष्ट है, कि हिंदुमुसलमान पूरी तरह एक हो चुके थे। जब नानासाहब सैनिक-शिविरमें पधारे तब सैनिकोंने उनकी जयके नारोंसे आकाश गूँजा दिया और उनके सम्मानमें २१ तोपें दागीं, २१ दिनोंके घेरेके स्मरणार्थ यह सख्या होनेका अनुमान लगाया जाता है। नानासाहबने अपने इस सम्मानके लिए सबको धन्यवाद दिये और कहा, "इस विजयमें सबका हिस्सा है; हर एकके समान जशका जोड ही यह विजय है।" फिर पारितोषिकके रूपमें एक लाख रुपये सैनिकोंमें बाँटे जानेकी नानासाहबने घोषणा की। सचलनभूमिपर नानासाहब पधारे तब और एक बार २१ तोपोंकी बाढसे उनका सम्मान किया गया। फिर नानाके भतीजे रावसाहब तथा उनके भाई बालासाहब तथा बाबासाहबको १७ तोपोंका सम्मान दिया गया। ब्रिगेडियर ज्वालाप्रसाद और सेनापति तात्या टोपेको ११ तोपोंका सम्मान

मिला। इस तरह तोपोंकी गड़गड़ाहट तथा स्वाधीनताके गीतोंकी गूँजको सुनते हुए सायंकालमें सूर्य अस्ताचलकी ओरमें विश्राम करने गये और सब सेना छावनीको लौट पड़ी।

सैनिक संचलनका निरीक्षण करनेके बाद नानासाहब बालासाहबके साथ ब्रह्मावर्तके सुप्रसिद्ध तीर्थक्षेत्रको चल पड़े। १ जुलैका दिन राज्याभिषेकके लिए निश्चित हुआ था। राजमहलकी शोभा देखतेही बनती थी। पेशवाका पुराना ऐतिहासिक सिंहासन समारोहके साथ सभाभवनमें रखा जानेपर, माथेपर मराठा राजतिलक लगा, तोपोंकी गड़गड़ाहट और हजारों प्रजाजनोंकी जयध्वनिकी गर्जनामें जनताकी अनुमतिसे और धर्मके आशीर्वादयुक्त स्वतंत्र, स्वकष्टार्जित, सिंहासनपर नानासाहब बैठे। उस दिन कानपुरमें हजारों लोगोंने अनमोल बढ़िया उपहार भेंट किये थे।* हिंदू जनता प्रकटरूपसे कह रही थी—उस दिनसे, मानो, राजा रामचन्द्रजी विजयी होकर फिरसे रामराज्यका प्रारंभ हो गया है। लम्बे समयके बाद फिर एकबार स्वधर्म और स्वराज्यकी सुगंधसे वातावरण भर गया। मराठोंका जो सिंहासन अंग्रेजोंने रायगढ़से उठा लिया था वह फिर ब्रह्मावर्तमें अंग्रेजोंके रक्तपर ही प्रस्थापित किया गया।

स्मरण रहे, पाठकगण, दो साल पहले बिठूरके राजमहलके एक कमरेमें बोये हुए क्रांतिके बीजका एक विशाल वृक्ष बनकर उसमें स्वाधीनताके फल भी लगने लगे थे। भला, इस समय नानासाहबके मनमें कौनसी भावनाएँ उमड़ रही होंगी?

किन्तु अपना छिना राजमुकुट फिरसे खींच लानेके लिए नानासाहब इधर अपने प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा कर रहे थे, तब अश्वारोहण तथा गजारोहणके समय स्पर्धा करनेवाली वह उनकी बालसखी भी चुप न थी। जब नाना साहबने कानपुरमें पेशवापदकी प्रकट घोषणा की, तब लक्ष्मीबाई भी अपनेको 'झाँसीकी महारानी' घोषित करनेमें पीछेही पिछड़नेवाली थीं? जब कानपुरके युद्धकी चौपड़पर उसके भाईने स्वाधीनताका पाँसा फेंका तब उसने

* ट्रेवेलियन कृत कानपुर पृ. २१२

भी झॉसीमें वहीं किया। बचपनके समान क्रातिके इस खेलमे भी इस उनके जोडकी श्रेष्ठ तथा तुल्यबल हरीफ बन रही थी। क्रातिके वह रक्तमेघोंसे कानपुरका आकाश ४ जूनको आरक्त हुआ, उसी दिन झॉसीकी महारानीकी बिजली कौंधकर रणसग्रामको सिद्ध हुई।

४ जूनको झॉसीमे बलवा हुआ। इसके पहले ब्रिटिश कमिशनरके हाथ कुछ पत्र लगे थे जिससे यह मतलब निकाला गया, कि रानीके सेवकोंसे लक्ष्मण-राव नामक कोई ब्राह्मण क्रातिकार्यका सगठन कर रहा है, और पूर्वप्रयोग (रिहर्सल) के रूपमे कुछ प्रमुख सैनिक अफसरोंका काम तमाम करनेका उसका इरादा था। किन्तु इधर अग्रेज अफसर बलवा हो जाय तो क्या प्रबध करना चाहिए, इसका मशविरा कर रहे थे, उधर उसी दिन क्रातिकारियोंने किलेपर कब्जा जमा लिया। तब अग्रेजोंने शहरके किलेमें आसरा पाने को भागना शुरू किया। किन्तु क्रातिकारी उनके पहले वहॉ पहुँच गये और उस परभी दखल कर लिया। ७जूनको रिसालदार कालेखान तथा झॉसीके तहसील-दार महमद हुसेनने अन्य शूर सैनिकोंके साथ चढाई कर झॉसीके किलेपर स्वाधी-नतका झण्डा लहराया। इधर अग्रेजोंने सफेत झण्डा ऊँचा कर शरणागतिकी याचना की। झॉसीके एक, लब्धप्रतिष्ठ नागरिक साले मुहम्मदने यह आश्वासन दिया कि अग्रेज बिनाशर्त शरण मॉगे तो उन्हें प्राणदान दिया जायगा। अग्रे-जोंने हथियार डाल दिये और तुरन्त किलेके द्वार खोल दिये गये। अग्रेजोंके बाहर आतेही सिपाहियोंने 'मारो फिरगीको' का हो हल्लामचाया। ८ जूनको एक बडा जुलूस शहरके सडकोंसे निकाला गया, जिसमें बदी अंग्रेजोंको चलाया गया। एक सप्ताह पहले जो अग्रेज झॉसीमे ऊँचेसे ऊँचे अधिकारपद पर थे, उन्हींको आज गॉवमें बदी की दशामें घुमाया गया। जोगनबागके पास पहुँचनेपर सिपाहियोंने अपने सरदारसे पूछा 'रिसालदारसाहब, अब क्या आज्ञा है?' रिसालदारने आज्ञा दी "जिन फिरंगियोंने रानीको पदच्युत करनेके राजद्रोह तथा हमारे देशपर कब्जा जमानेका अपराध किया है, उन्हें बिलकुल क्षमा न की जाय, इसलिये स्त्रियॉ, पुरुष और बच्चे तीन पक्तियोंमें अलग अलग खडे कर दिये जायँ, और जेलका दारोगा पुरुषोंकी पॉतीमे कमिशनरका सिर काट देगा, तब तुरन्त सभीको तलवारके घाट उतारा जाय।" थोडीही देरमें खूनकी नदी बहने

लगी। रानीके दत्तकपुत्रके अधिकारको मान्यता न देनेवाली क्रूर नीतिके कारण इन गोरोंकी हत्या हुई।

लगभग ७५ पुरुष, १२ स्त्रियाँ और २१ बच्चे क्रांतिकारियोंने काट डाले और अंग्रेजोंके उत्तराधिकारका दावा करनेवाली औरस या दत्तक संतान यहाँ न होनेसे क्रांतिकारियोंने अंग्रेजोंके झाँसीके राज्यपर दखल किया और राजकुमार दामोदरकी पालनकर्त्री रानी लक्ष्मीबाईके सुपुर्द कर दिया और घोषणा की - ' खल्क खुदाका, मुल्क बादशाहका और राज रानी लक्ष्मीबाई का।"

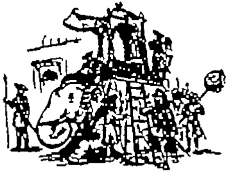

अध्याय ९ वॉ

अवध

अवध प्रांतपर डलहौसीने दखल की और तबसे वहॉंकी प्रजा दिनोदिन अधिकसे अधिक कष्ट पाती गयी। नवाबके राजमें आमदनी, सम्मान और अधिकारवाले सभी पदोंपर गोरोंकी नियुक्ति हुई, देसी भाइयोंको बेकार बनाया गया। नवाबकी सेना तोड दी गयी, उसके सरदार कंगाल कर दिये गये, नवाबके मंत्री तथा बडे अधिकारियोंको उनके स्थानोंसे हटाकर कुली-कबारीकी श्रेणिमें बिठाया गया। इससे, जिस पराधीनताके कारण उनका स्वदेश वीराना हो गया और उन्हें ऐसी हीन दशा प्राप्त हुई, उस परायी दासताके बारेमें ज्वलन्त द्वेष उनके मनमें ओतप्रोत भर गया था। पराधीनताका यह कोडा मात्र राजधानी तथा राजमहलके कर्मचारियोंपर ही पडा हो, सो बात नहीं है। पीढी दर पीढीके राजा तथा जमींदारोंकी जागीरें भी अंग्रेजोंने हडप ली थीं। तब इन राजाओं और जमींदारोंको पता चला, कि सभ्यताके शिखरपर पहुँचे पराये दास्यकी अपेक्षा अच्छा बुरा, ऊबडखाबड स्वराज्य ही बहुत श्रेष्ठ, सम्मानित और सुखपूर्ण होता है। लगानमें वृद्धि होनेसे किसानोंमें अशान्ति फैल गयी। अंग्रेजी सेनाके बहुतेरे सैनिक अवध प्रांतसे भरती हुए थे। वे भी अपनी मातृभूमिकी पराधीनता और उसकी हीन दशा देखकर, अंग्रेजोंपर खार खाते थे। नवाब वाजिदअलीशाहको जिन्होंने दुष्ट विश्वासघात तथा कमीनी ठगबाजीसे मटियामेट कर दिया था, उन अंग्रेजोंकी याद आतेही हर व्यक्ति दॉंत किटकिटाकर तलवारपर हाथ रखता। कुलाभिमान, शौर्य

उदारता, कृतज्ञता आदि गुणोंके आश्रय बने ये अवधके बडे बडे जमींदार राजपूत थे। अपने राजाके अंग्रेजोंने नीच बर्ताव किया है इसका पता लगनेपर उनका राजपूती खून खौलने लगा। अवधपर दखल करनेके बाद अंग्रेजोंने इन जमींदारोंको नयी राजसत्ताकी सेवा करनेके लिए निमंत्रित किया। इन सैकडों स्वातन्त्र्यप्रेमी तथा तेजस्वी लोगोंने उत्तरमें कहा था, 'हमने स्वराज्यका निमक खाया है। परायोंके दिये टुकडे चबानेको हम कभी न जायँगे।'

इस नये अवध प्रांतपर सर हेन्री लॉरेन्सको नियुक्त किया गया। क्रांतिका बीज पंजाबमें उन्मूल होनेके पहलेही, जिसकी कूट-नीतिज्ञता तथा सावधानीसे, विफल कर दिया गया, उस जॉन लॉरेन्सका यह बडा भाई था। जिसतरह पंजाबके प्रधान कमिशनरने उस प्रांतकी रक्षा की, उसी तरह, उन्हीं उपायोंद्वारा अवधकी रक्षा उसका भाई करने लगा। हिंदुस्थानमें ब्रिटिशोंकी सत्ता गहरी नींवपर गाडी करनेमें लॉरेन्स परिवारने सबसे अधिक, निःसंदेह, हाथ बँटाया था। अवधमें पग धरतेही सर हेन्री लॉरेन्सने वहाँकी स्थितिका तुरन्त और पूरा आकलन किया और दूसरे किसी भी अंग्रेजके पहले क्रांतिकी सम्भावनाका डर प्रथम प्रकट किया। सर हेन्रीने अवधकी राजधानी लखनऊहीमें अपना डेरा डाला। प्रारंभमें असंतुष्ट जमींदारोंको मीठे वचनोंसे पुचकारकर वशमें करनेकी नीति जारी की। लखनऊमें एक दरबार लगाया उसमें मान-सम्मान, उपाधियाँ तथा पारितोषिक वितरण कर लोगोंको अपने लुप्त स्वराज्यको भुलानेके लिए उसने अनथक चेष्टाएँ कीं। हाँ, अशान्तिको दबानेके लिए इन शान्तिमय उपायोंपर अवलम्बित न रह कर, साथ साथ उन योजनाओंको बनाना जारी रखा जो बलवाके विद्रोहके फूट पडतेही उसे दबानेमें सफल हों। क्यों कि, सर हेन्री लॉरेन्स उसके भूतपूर्व अधिकारियोंसे कुछ अच्छा भलेही दिखाई पडता, अवधके प्रजाजन अंग्रेजोंके अच्छे तथा बुरे शासनसे पूरी तरह ऊब उठे थे। अब उनको तभी चैन होगी जब स्वराज्य प्राप्तकर वाजिदअलीशाहको अवधके सिंहासनपर फिरसे विराजमान देखें। अंग्रेजी पराधीनताकी शृंखलाओंको तोडकर भारतको स्वतंत्र करनेकी ही लगन लगी थी। आजतक उनका धर्म सिंहासनपर अधिष्ठित था, क्यों कि,

राजा और राज्यका वह धर्म था। अब धर्मकी अप्रतिष्ठा हो रही थी। येही असतोषके कारण थे। और इसका इलाज अंग्रेजी हुकूमतका सुप्रबध कभी नहीं था; अंग्रेजोंका आधिपत्य नष्ट करना ही उसका एकमात्र उपाय था। मानसिंहके समान महापराक्रमी हिंदु नरेश तथा मौलवी अहमदशाह जैसे प्रभावी मुसलमान नेताने हिंदुमुसलमानोंके धर्मके लिए अर्थात् स्वाधीनताके लिए लडे जानेवाले पवित्र युद्धमें अपने सर्वस्वकी बलि चढाने का निश्चय किया था। प्रकट या गुप्त रूपसे, सुविधानुसार, हजारों पडित और मौलवी समूचे प्रांतमें दौरा कर, इस पवित्र धर्मयुद्धका प्रचार करने लगे। सैनिक शपथबद्ध हुए, पुलिसने शपथ की, जमींदार प्रतिज्ञाबद्ध हुए। मतलब, सारी जनता अंग्रेजोंके विरुद्ध होनेवाले युद्धके षडयत्रमें शामिल थी। और देशभरमें असतोषकी आग भडक उठी। मौलवी अहमदशाहको गिरफ्तदार कर राजद्रोह तथा जनताको बहकानेके अपराधमें फॉसीकी सजा सुनायी गयी। किन्तु उसपर अमल करनाही असम्भव हो गया। ७ वीं पलटनको नि:शस्त्र किया गया। १२ मईको एक बडा दरबार लगाकर सैनिकोंको काबूमें रखनेकी सर हेन्री लॉरेन्सने चेष्टा की। उस दरबारमें जनताकी भाषामें एक लम्बा भाषण दिया, जिसमें राजनिष्ठाके महत्त्वका बखान किया, रणजीतसिंहने मुसलमानोंके तथा औरगजेबने हिंदुओंके धर्मका कैसे अपमान किया और अंग्रेजोंने हिंदु-मुसलमान दोनोंको सहायता देकर इन अत्याचारोंसे कैसे बचाया, इसीका वर्णन रसभीनी भाषामें किया, फिर जो सैनिक अंग्रेजोंको वफादार रहे थे, उन्हे अपने हाथों तलवारों, शालों, पगडियो तथा अन्य वस्तुओंको भेटमें दिया। इधर ७ वीं पलटनके सैनिकोंसे हथियार डलवाकर, पलटनहीको तोड दिया गया। किन्तु भावीके गर्भमें कैसी विचित्र घटनाऍ समाई थीं। थोडेही समय पहले वफादारीके कारण सम्मानित किया गया था, उन्हींको, क्रांतिकारियोंसे सॉठ गॉठ करनेके अपराधमें, फॉसी लटकाया जानेवाला था।

राजनिष्ठाका दरबार १२ मईको सपन्न हुआ, १३ मईको मेरठके बलवेका समाचार आया और १४ मईको दिल्लीपर क्रांतिकारियोंने कब्जा जमा लेने तथा भारतके स्वाधीन होनेकी घोषणाका हर्षपूर्ण समाचार लोगोंने सुना!

सुरक्षाकी दृष्टिसे, सर हेन्रीने लखनऊके पास माचीभवन और रेसिडेन्सी इन दो स्थानोंको चुना और वहाँ किलाबंदी करनेके काममें वह लग गया। अंग्रेज औरतों और बच्चोंको वहाँ ले आया गया और अंग्रेज पुरुष, क्लर्क, मुल्की अधिकारी, व्यापारी, सभीको सैनिक अनुशासन, सामूहिक संचलन तथा राइफल चलानेकी शिक्षा दी गयी। मेरठमें भी बलवेके बाद सब नागरी गोरोंको उसी तरह सैनिक शिक्षा देकर दस दिनोंके अंदर युद्ध-भूमिमें टिकनेके योग्य बना दिया गया था। सर लॉरेन्स अब प्रांतका प्रधान सेनापति बना था! अवधसे नेपाल पास होनेसे सर हेन्रीने वहाँ एक शिष्टमंडल भेजकर सहायताकी याचना की। सूचना यह थी, कि जगबहादूर अपनी सेनाको अवध भेजे। इस तरह सब प्रकारसे सावधानी रखी जानेपर भी हरदिन सर हेन्रीको 'विश्वासयोग्य' संवाद मिलता, कि 'आज बलवा होगा' यह भी अपनी शक्तिभर इस 'प्रामाणिक' समाचारके आधारपर, सतर्क रहता दिन डूब जाता किन्तु बलवेका कोई चिन्ह न दीख पड़ता। कई बार इस तरह धोखा हुआ। ३० मईको भी एक अफसरने सर हेन्रीके कानमें डाला कि 'आज रातको ९ बजे बलवा होनेवाला है।'

३० मई को सूरज डूब गया। अपने अधिकारियोंके साथ खाना खानेमें सर लॉरेन्स जुटा हुआ था। नौ की तोप दगी। तब जिसने यह संवाद सुनाया था और इसके पहले भी एकबार जो झूटा साबित हुआ था, उसकी ओर झुककर सर हेन्री व्यंग करते हुए बोला, क्यों जी, तुम्हारे मित्र समयके पक्के नहीं मालूम देते।

"समयके पक्के नहीं" ये शब्द पूरे कहे न गये थे, तभी ७१ वीं पलटनकी बन्दूकोंकी धाटकी गड़गड़ाहट सुनायी पड़ी। निश्चित निर्णयके अनुसार नौ की तोपके साथ इस पलटनके कुछ लोगोंने अंग्रेजोंके बंगलोंपर धावा बोल दिया। ७१ वीं पलटनके भोजनगृहमें आग लगा दी गयी और वहाँके गोरोंपर गोलियाँ चलाइ गयीं। मगोडा छे ग्रँट किसीकी सहायतासे एक गादीमें जा छिपा; किन्तु किसी दूसरेके बतानेपर वह पकड़ा गया तब उसे घसीट लाकर कत्ल किया गया। ले. हार्डिंज अपने सवारोंके साथ मार्गोंमें गश्तपर घूम रहा था। उसे भी तलवारका एक वार लगा। छावनियोंमें आग

लगा दी गयी। ब्रिगेडियर हॅड्स्कॉब भी मारा गया। अग्रेजी झण्डेके वफा-दार गोरे सोजीर और कुछ सिपाही रातभर खडे, बलवेको काबूमे रखनेकी शक्तिभर चेष्टा कर रहे थे। ३१ मई को सवेरे, सर लॉरेन्स कुछ गोरे सैनिकों तथा अब भी राजनिष्ठ हिंदी सिपाहियोंके साथ, क्रातिकारियोंपर हमला करने चला। किन्तु कुछ दूर जानेपर उसके साथवाली ७ वीं रिसालेकी टुकडीने बलवा किया, उसे क्रातिकारियोंसे जा मिलनेको छोड-कर वह लौट पडा। तोपखानेके साथ अग्रेजोंके पास ३२ वीं पलटन लखनऊके अड्डेपर थी, किन्तु सूर्यास्तके पहले ४८ वी तथा ७१ वीं पैदल, ७ वी रीसाला पलटनों तथा अन्य अस्थायी टुकडियोंने स्वतन्त्रताका झण्डा फहराया।

लखनऊसे ५१ मीलोंपर सीतापुर है, वहॉ ४१ वीं पैदल पलटन तथा ९वी और १०वीं अस्थायी पलटनें थीं। सीतापुर कमश्नरीका थाना था, जिससे और भी कुछ बडे अफसर वहॉ रहते थे। २७ मईकों कुछ अग्रेजोंके घरोंमे आग लगी थी। किन्तु वहॉके गोरोंको पता न था, कि ये आग आगामी अधेडकी पूर्वसूचना देनेकी सैन थी। इसीसे उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया, और तो और, स्वय सिपाहियोंने इन आगोंको बुझानेकी अन-थक चेष्टा की। इस आगसे दो काम हुए। एक, गुप्त सस्थाके सदस्योंको सूचना मिली कि 'समय समीप है,' और अग्रेजोंके आत्मविश्वास तथा भोलेपनकी कसौटी हुई। २री जूनको एक असाधारण घटना घटी। सिपाहियोंने यह शिकायत की, कि उन्हें दी जानेवाली आटेकी थैलियोंमे हड्डियोंका आटा भरा हुआ मिला और उसे लेनेसे इनकार किया, तथा यह हट पकडा कि उन थैलियोंको गगामे फेक दिया जाय। अग्रेजोंने चुपचाप वैसाही किया। उसी दिन दो पहरमे, सहसा, सिपाही अग्रेजोंके बगीचोंमे घुसे और अपनी इच्छासे वहॉके फल तोडकर खाने लगे। गोरोंने उन्हें रोककर खूब फटकारा, किन्तु सिपाहियोंके कानोंपर जू तक न रेंगी और वे मजेमे फलोंपर हाथ साफ करते रहे। मीठे फलोंका नाश्ता पेटभर खा चुकनेपर सिपाहियोंने और एक अजीब तथा भयकर ऊधम शुरू किया। जून ३ को सिपाहियोंकी एक टुकडीने हमला कर खजानेपर कब्जा जमाया, और अन्य सिपाहियोंने चीफ कमिश्नरके घरपर हमला किया। मार्गमे मिले कर्नल बर्च तथा ले.

प्रेग्हको नरकमें भेज दिया गया। ९ वीं अस्थायी पल्टनने भी अपने प्रधान अधिकारियोंको मार डाला। सब सैनिक, जो भी मिले उस अंग्रेजपर टूट पड़ते और 'फिरंगी राजका खात्मा' के नारे लगाते। कमिश्नर, उसकी पत्नी और बच्चा नदीपार होनेकी कोशिशमें मारे गये। थॉर्नहिल उसकी सुगाइके साथ गोलीका शिकार हुआ। सिपाहियोंने प्रतिशोधके आवेशमें लगभग २४ गोरोंको मार डाला। कुछ गोरे चमत्कार, मितौली के जमींदारोंके पास भाग गये। यहाँ ८।१० महीनोंतक टायर्स गिलाफर लखनऊको पहुँचा दिये गये। इसके बाद सीतापुरके सब सैनिक फरुखा-बाद गये। वहाँके किलेमें अंग्रेज भागकर आये थे। घमासान युद्धके बाद सिपाहियोंने उसे जीत लिया और वहाँके सभी गोरोंको कत्ल कर डाला। नवाब तफज्जुल हुसेन खाँको फिरसे, अंग्रेजोंसे छिने सिंहासनपर, बैठाया। उसने अपने सल्तनतकी सीमामें मिलनेवाले हर अंग्रेजको खत्म कर डाला। इस तरह जुलाई ९ तक फर्रुखाबादके टापूमें अंग्रेजोंका नामलेवा एक भी न बचा। सीतापुरके उत्तर ४८ मीलों पर इसनवाले मल्लन गाँवके सिपाहियों तथा जनताने कुछ षड्यन्त्र करनेकी भनक अंग्रेजोंके कानमें पड़ी। सीतापुर के बलवेकी खबर पातेही, मल्लनके अंग्रेज अधिकारीभी घोड़ोंपर चढ़कर भाग गये और पूरा जिला अंग्रेजी रक्तकी एक बूँद भी न गिराते हुए स्वतंत्र हुआ। तीसरा जिला था महमदी। वहाँके गोरोंने अपने बालबच्चोंको मितौलीके राजाके पास भेज दिया था। राजाने साफ बताया कि 'प्रकट रूपसे रह सका तो बगलमें रहा।' क्योंकि, अवधके सभी सैनिकोंने बलवा करनेकी सौगन्ध ली थी। निदान, गोरी स्त्रियोंको राजासाहबके पास भेजकर महमदीके अमन अधिकारियोंने किलेका आश्रय लिया। उसी दिन रुहेल-खण्डके शाहजहाँपुर से भागे हुए गोरोंने, महमदीमें हर क्षण प्राणोंका भय जतानेसे, सीतापुरके अधिकारियोंको इन गोरोंकी रक्षाका प्रबंध करनेको लिखा सीतापुर अबतक शान्त था, सो, महमदीके निराश्रितोंको लिवा लानेको कुछ गाड़ियोंके साथ सीतापुरके सिपाही रवाना हुए। किन्तु उनमें भी क्रांतिका कीड़ा घुस चुका था। सभी गोरोंको गाड़ियोंमें बिठाकर सीतापुरका रास्ता आधा तय किया और सबको नीचे उतारकर उनका काम तमाम कर डाला। आठ औरतें, चार बच्चे, आठ लेफ्टनेंट, चार कैप्टन और कुछ

गोरे ढेर हुए। इस बातका पता लगतेही बचे हुए अंग्रेज अधिकारी महमदीसे भाग गये। और वह समूचा तहसील ४ जूनको ब्रिटिश सत्तासे मुक्त हो गया।

सीतापुरके पास और एक तहसील था बहराइच। यहाँका कमिशनर था विंगफील्ड। इस तहसीलमें सिकोरा, गोंडा, बहराइच और मेलापूर ये चार शासनकेन्द्र थे। सिकोरामें २ री पैदल पलटन तथा तोपखानेका एक विभाग था। यहाँ जब बलवेका भूत डराने लगा तब अंग्रेजोंने अपने परिवार लखनऊ भेज दिये। ९ जूनको सबेरे कई अंग्रेज अधिकारी स्वय जाकर बलरामपुरके राजासे पनाह माँगने लगे। बस, एक बोनहॅम, तोफखानेका प्रधान अधिकारी, था जिसने सिपाहियों पर पक्का भरोसा होनेसे वहाँसे जाना अस्वीकार किया। किन्तु, शामको सिपाहियोंने उससे स्पष्ट कहा, महाशय, व्यक्तिके नाते हम आपको कष्ट नहीं देंगे, फिर भी हम अपने देशबंधुओंके विरुद्ध लडनेको बिलकुल सिद्ध नहीं है, क्यों कि, अब अंग्रेजी शासन टूट चुका है। तब बोनहॅमको वहाँसे हटना ही पडा। सिपाहियोंने उसे कुशलसे लखनऊ पहुँचने दिया। सिकोरा स्वतत्र हो जानेका समाचार गोंडा पहुँचतेही वहाँभी बलवा हुआ। कमिशनर विंगफील्ड उस समय अन्य गोरोंके साथ बलरामपुर गया था। वहाँके राजाने २५ गोरोंको आसरा देकर, मौका पाकर, उन्हें अंग्रेजोंकी छावनीमें पहुँचा दिया।

सिकोरा और गोंडा स्वतत्र होनेकी खबर बहराइच पहुँच गयी। वहाँके अंग्रेजोंने बलवा होनेतक राह न देखकर बहराइच छोड दिया और १० जूनको लखनऊ भाग गये। किन्तु अवधभरमें क्रांतिकारियोंका जाल फैला हुआ था. तब हिंदी वेश बनाकर किश्तियोंद्वारा गोरोंने घाघरा नदीपार जानेका जतन किया; पहले किसीका ध्यान न गया, किन्तु मझधारमें पहुँचतेही 'फिरगी; फिरगी' की चिल्लाहट सुन पडी। मल्लाह नीचे कूद पडे और गोरोंको कत्ल किया गया। इसतरह बराइचसे अंग्रेजी शासन उठ गया।

मेलापुरमें कोई सैनिक अड्डा न था, फिर भी, वहाँकी जनताने अंग्रेज अधिकारियोंको वहाँसे भाग जानेको मजबूर किया। वहाँके जमींदारने भी

उनकी सहायता की। फिर भी, उनमें से कुछ क्रांतिकारियोंने काट डाले और कुछ जंगलके कष्टोंसे मर गये।

फैजाबाद अवधके पूर्वभागमें है। वहाँ गोल्डने कमिशनर था। फैजाबाद तहसीलमें सुल्तानपुर, सलोनी, और फैजाबाद प्रमुख केन्द्र थ। फैजाबाद में २२ वीं पैदल पल्टन, ६ वीं अस्थायी पैदल पल्टन, रिसाले तथा तोपखानके कुछ विभाग थे। इन सबका अधिपति कर्नल लेनॉक्स था। फर्रुखाबाद जिलेमें अंग्रेजोंके अत्याचारोंने धूम मचायी थी। सर हेन्री लॉरेन्स स्वयं लिखता है "ताल्लुकदारोंपर, मैं मानता हूँ, बड़ी सख्ती बरती गयी थी। मैं समझता हूँ, कुछ ताल्लुकदारोंके आधसे अधिक गाँव छिन गये थे जहाँ, कुछ तो बिलकुल बरबाद हो गये।"* मेरठके बलवेके बाद तुरन्त अंग्रेज अधिकारियोंको डर लगने लगा, ये ताल्लुकदार कहीं अब प्रतिशोध न लें। इस डरसे वे बहुत बेचैन होकर अपनी रक्षाक उपाय ढूँढने लगे। क्रांतिकारियोंने सब मार्ग रोके रहनेपर वे अपने परिवार लखनऊ न भेज पाते थे और फैजाबादकी सब सेना हिंदी होनेसे वहाँ भी प्रतिकारकी कोई योजना न बना सकते थे। इस चिन्तामें पड़नेसे, निदान, अंग्रेज अधिकारी राजा मानसिंहकी शरणमें गये। राजासाहब अवधके हिंदुओंके माननीय मुखिया थे। नवाबके कार्यकालमें उनकी तलवार हिंदुधर्मकी रक्षाके लिए सदा तैयारी रहती थी। १८५७ की मईमें मालगुजारीके किसी झगड़ेमें मानी मानसिंहको अंग्रेजोंने गिरफ्तार किया था। किन्तु मेरठवाले बलवेसे अंग्रेजोंकी सत्ता ढीली हो जानेके कारण, मानसिंहको अपनी ओर कर प्रसन्न रखनेके लिए मुक्त कर दिया गया था।

बड़ी हिचकिचाहटके बाद राजासाहबने औरतों और बच्चोंको अपने किलेमें आसरा देना स्वीकार किया तब भी वे कुड़कुड़ाते थे, कि लोग इतना भी पसंद न करेंगे उस बहाने किलेपर धावा बोल देनेसे भी बाज न आयेंगे! किसी तरह, १जून को अंग्रेजी परिवार राजा मानसिंहके शाहगंजके किलेमें रखे गये।

---

* के और मॅलेसन कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १, पृ २६६

इधर, इसतरह अंग्रेज अपनी रक्षाकी सावधानी रख रहे थे, उधर फैजाबादमें क्रांतिकी ज्वालाएँ अधिक तीव्रतासे भडक उठीं। भारतीय इतिहासमें अमर बने मौलवी अहमदशाह उन तालुकदारोंसे एक थे, जिनका सब कुछ अंग्रेजोंने छीन लिया था। हिंदुस्थानके देशभक्तोंमें उनका नाम सदा चमकता रहेगा। उन्होंने अपनी तालुकदारी ही नहीं, भारतकी स्वाधीनता प्राप्त करनेकी सौगंध ली थी। स्वदेशके राजद्वारपर उन्होंने कई कष्टपूर्ण दिन और आँखोंमें रातें काटकर जागरित रहकर प्रहरीका काम किया था और अंदर घुसे हुए पराये शासनको निकाल बाहर कर देनेके लिए हथियार उठाया था। अवधका राज्य अंग्रेजोंने जबसे हडप लिया था, तबसे अहमदशाहने देश और धर्मकी सेवामें अपना सब कुछ लगा दिया था। वे मौलवी बने और क्रांतिधर्मका प्रचार करनेको हिंदुस्थान भरमें घूमने निकले। जहाँ जहाँ ये राष्ट्रीय संत पहुँचे, जनतामें जबरदस्त जागरण जाग उठा। क्रांतिदलके नेताओंसे वे मिले। उनका वचन अवधके राजघरानेमें ईश्वरका आदेश माना जाता। आगरेमें गुप्त संस्थाकी एक शाखा खोली गयी। लखनऊमें भी ब्रिटिश राजको उलट देनेका खुला प्रचार किया। अवधकी जनता उन्हें असीम प्यार करती थी। तन, मन, धन, बुद्धि, वाणी सब एकही आदर्शकी प्राप्तिमें लगाकर स्वाधीनताके प्रचार तथा क्रांतिके निर्दोष संगठित जालेको बुननेके लिए वे दिनरात लगे रहते थे। आगे चलकर वे लेखक बने और क्रांतिपत्रों को लिखने लगे, जो अवध प्रांतभर में वितरित होते थे। एक हाथमें हथियार, दूजेमें लेखनी, उनके असाधारण व्यक्तित्वकी दीप्तिसे स्वतंत्रताकी ज्योति और तेजसे दमक उठी। यह देखकर अंग्रेजोंने उन्हें पकडनेकी आज्ञा दी। किन्तु इस जनप्रिय नेताको छूने अवधकी पुलीसका हाथ आगे न बढा; तब एक खास सैनिक टुकडी इस कामपर तैनात हुई और राजद्रोहके अपराधमें फाँसीकी सजा सुनायी गयी। कुछ समयतक उन्हें फैजाबादके कारागारमें भी रखा था। * किन्तु अब अंग्रेज और मौलवीमें एक तरहसे यह चढाऊपरी शुरू हो गयी थी, कि कौन किसे फाँसी

* स. ३३–मॅलेसन–खण्ड ५ पृ. ३७९, तथा गब्बिन्स

लटकायगा । इधर यह अंग्रेजी शासनका उखाड फैंकनेकी सिद्धता कर रहा था, उधर ब्रिटिश राज उसे फाँसी लटकानेके लिए टिकटिकी बनानेकी उतावली कर रहा था। किन्तु इस मल्लयुद्धमें मौलवीको फैजाबादहीके कारागारमें बंद रखा, अंग्रेजोंने अपना वधस्तंभ खडा किया। क्यों कि, मौलवीकी गिरफ्तारीकी चिनगारीसे ही क्रांतिके गोलाबारूदके अंबारमें भडाका हुआ। सेनासमेत सब नगर 'हर हर' की गर्जना कर उठा। जब सिपाहियोंको दाबनेके लिए अंग्रेज अधिकारी सचमुच भूमिपर पहुँचे, तब सिपाहियोंने करारा शब्दोंमें बेधडक जताया 'अबसे हम देसी अधिकारियोंकी ही आज्ञा मानेंगे, और हमारा नेता सूबेदार दिलीपसिंह होगा'। इसपर दिलीपसिंहने अंग्रेज अधिकारियोंको बंदी बनाया। इधर उस जनप्रिय वीरके पदरजसे पवित्र बन बंदीगृहकी ओर सिपाही और नागरिक सभी उमड पडे। जनताके प्रेमपूर्ण उद्गारोंकी कलध्वनिमें कारागारका द्वार चरमराया और अभी सोयी हुई भुसलाओंको लतियाकर मौलवी अहमदशाह जनसंमर्दके सामने आये। मौलवीका यह पुनर्जन्म था। जो अंग्रेज शासन मौलवीको फाँसी लटकानेको आतुर था उसीका गला आखिर मौलवीने कसकर पकडा। मौलवी मुक्त होतेही फैजाबादके क्रांतिदलके नेता बने। और सबसे पहले उन्होंने कर्नल लेनॉक्सके पास, जो अब बंदी था, धन्यवादका संदेसा भेजा इसलिए कि उसने मौलवीसाबको जेलमें हुक्का रखनेकी अनुज्ञा दी थी। देहान्तके दण्डका यह बदला था! *

और धन्यवादके बाद मौलवीने तुरन्त फैजाबादसे चले जानेकी अंग्रेजोंको चेतावनी दी। लूटपाट या ऊधम, जैसे कि अन्य स्थानोंमें हुआ था, न होने पावे, इस लिए सिपाहियोंके रक्षक दल भेजे गये थे। मॅगजीन तथा अन्य इमारतोंपर भी सैनिकोंका पहरा था। १५ वीं पलटनके सिपाहियोंने एक युद्धसमिति बनायी और उसके निर्णयके अनुसार अंग्रेज अधिकारियोंको कत्ल करना तय हुआ। किन्तु उनके प्रधानने यह फैसला किया कि, 'प्राण जाय पर वचन न जाय'—अंग्रेजोंको जीवित जान दिया गया। अपने साथ व्यक्तिगत सामान ले जानेकी भी छूट दी गयी। हाँ, अवधक-

* चार्लस बॉलकृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १, पृ ३°४

स्वामित्वकी अर्थात् जनताके कामकी कोई वस्तु न ले जा सकेंगे। फिर क्रातिकारियोंने स्वय अग्रेजोके लिए नावें सजायीं, उन्हें कुछ नकद पैसा भी दिया और अग्रेजोने सिपाहियोंसे बिदा ली और घाघरा नदी पार कर गये। ९-जूनको सबेरे एक घोषणापत्र प्रकाशित हुआ, जिसके अनुसार कंपनीकी सत्ता समाप्त होकर फैजाबाद स्वतत्र हो गया और वाजिद-अलीशाहकी राजसत्ता फिरसे शुरू हुई।

अग्रेज जब नदीपार हो रहे थे, तब १७ वीं पलटनके सिपाहियोंने उन्हे देखा। इन्हें फैजाबादसे इस मतलबका पत्र मिला था, 'इधरसे आनेवाले अग्रेजोंको खत्म करो,' जिससे उन्होंने किश्तियोंपर हमला किया। चीफ कमिश्नर गोल्डने, ले. थॉमस, रिची, मिल, एडवर्डस्, करी आदि गोरे मारे गये। मोहदाबा जो भागे थे उन्हे पुलीसने मार डाला। केवल एक किश्तीके लोग मल्लाहोकी सहायतासे छटककर गोरोंकी छावनीतक पहुँच पाये। राजा मानसिंहके घरके लोग पहले ही अपने शरणमें आये अग्रेज परिवारोंको सुरक्षित रखनेमें तंग आ गये थे, ऊपरसे और कुछ लोग पनाह मॉगने आये। मानसिंग तब अयोध्यामें था। उन्होने अपने घरवालोंको लिखित सूचना दी थी, 'किसी भी दशामे अग्रेज पुरुषोको आसरा न दिया जाय, उनके परिवारवालोको भलेही रख लिया जाय और वह भी अपनी शर्तोंपर। उनके पालनमे जरा भी आनाकानी होनेका सदेह हो तो तुरन्त सबकी तलाशी ली जाय' इस प्रकारका इकरार क्रातिकारी तथा मान-सिंहके बीच हुआ था तब उनके किलेसे अग्रेज पुरुष घाघरापार जानेको निकले। मार्गमें उन्हे बहुत कष्टों तथा अडचनोंका सामना करना पडा। उनसे जो बच पाये वे गोपालपुरा पहुँचे। वहाँके राजाने गोरोंको २९ दिनतक अच्छीतरह मेहमान बनाया और सकुशल अग्रेजी अड्डेपर पहुँचा दिया। १८५७ के बवडरमें जो अग्रेज बचे थे उन्होने अपने अनुभवोंके ब्योरेवार और लम्बे चौडे वर्णन लिख रखे है। इनसे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं; भारतके लोगोंकी उदात्त मनोगतिके ये परिचायक, जीवीत स्मारक है। अवधमें अग्रेजोंके विषयमें असीम द्वेषभावना भडकी थी, फिरभी क्रातिकारियोंकी सहायता करनेवाले राजा महाराजाओंकी शरणमें जो अग्रेज गये उन्हे आसरा देकर उनका अच्छा आतिथ्य किया गया।

अवध का युवराज

और ऐसे उदाहरण कुछ कम नहीं है। मुधर लिखता है—अन्तमें, मैं अकेला बचा। भागते भागते रास्तेमें एक देहात मिला। पहले आदमीसे मेरा हुए वह ब्राह्मण था, उससे मैंने पीनेको पानी माँगा मेरी बुरी दशा देखकर उसे दया आयी उसने बताया कि उस देहातमें ब्राह्मण अधिक हैं तब मेरे लिए कोई भय नहीं बलीसिंग मेरा पीछा करते वहाँ पहुँचा। तब मैं भाग कर एक गलीमें घुसा एक बुढियान मेरे पास आकर एक झोपड़ेमें घुसने का इशारा किया और घासमें जा छिपा। थोड़ेही समयमें बलीसिंग और उनके साथी वहाँ आये और अपनी तलवारोंकी नोकोंसे हर स्थानमें घोपकर देखने लगे। उन्होंने जल्दही मुझे खोज निकाला और बालोंको पकड़कर घसीटते बाहर खींचा। तब देहातके लोग इकठ्ठा हुए और फिर मियोंको अनगिनत गालियाँ देने लगे। फिर देहातियोंके कोलाहलमें बली सिंग मुझे दूसरी जगह ले गया। मेरे मरणका दिन हररोज आगे बढाया जाता। मैं पाँव पकड़कर दयाकी याचना करता जाता। निदान, बलीसिंग मुझे अपने घर ले गया और अन्तमें मुझे हमारी छावनीमें पहुँचाया गया। कर्नल ऑर्नॉक्स कहता है:— हम भाग रहे थे तब नजीम हुसेनखाँके लोगोंने हमें पकड़ा। उनमेंसे एक ने चक्र (रिवाल्वर) तान कर, दांत पीसकर, कहा कि फिरंगीको गोलीसे उड़ा देनेको उसके हाथमें कमकमहाट हो रही है। उसने कहा, किन्तु उससे ऐसा कोइ काम न हुआ। फिर हमे नजीमके सामने खड़ा किया गया। वह दरबारमें एक गांवतकियासे टेक लगा कर पड़ा था। उसन हमें शरबत पिलाया और निर्भय रहो कहकर धीरज बँधाया। हमें कहाँ टिकाया जाय इसपर विचार हो रहा था तब एक फौज मरे नौकरन घोड़ोंके अस्तबल सूचित किये, तो नवाबने उसे फटकारा। किन्तु दूसरा आगे होकर बोला, इसमें इतना सोचनकी क्या पड़ी है? इन सब फिरंगी कुत्तोंको मैं अभी खत्म किये देता हूँ, बस! नजीमने सबको डाँटा, और हमें प्राणदान देनेका आश्वासन दुहराया। क्रांतिकारियोंके डरसे हम बनानखानेके पासही छिपे रहे थे। हमें कपडे खाना सब कुछ ठीक मिलता।" इसके बाद एक दिन नजीबने उन्हे हिंदी वेश पहनाकर अंग्रेजोंकी छावनीमें पहुँचा दिया।

फैजाबादसे अंग्रेज अफसरोंके भाग जानेके समाचार मिलतेही अवधके अन्य तहसील भी स्वतंत्र हुए और स्वाधीनताका झण्डा फहराया गया। उसी दिन अर्थात् ९ जूनको सुलतानपुर उठा, दूसरे दिन सलोनीमें बलवा हुआ, तब वहाँके अधिकारी जानकी खैर मनाने तितर बितर भागे। उनमेंसे कुछ सरदार रुस्तुमशाह तथा कुछ राजा हनूमतसिंहको शरणमें गये। अवधके वीर तथा उदार राजा शरणमें आये हुओंको केवल प्राणदानही नहीं देते थे, वरञ्च इन अंग्रेजोंकी अच्छी तरह खातिर करते थे। वास्तवमें इन सभी जमींदारोंको अंग्रेजोंने बहुत अपमानित और बरबाद किया था। हाँ, वे कभी न भूले, कि उनका धर्म ठुकराया गया और उनके स्वराज्यका सत्यानाश कर दिया गया था। अपने सिपाहियोंको लेकर वे स्वातन्त्र्य-समरमें हाथ बँटाते थे। और इनमेंसे कुछ तो यह प्रण कर चुके थे, कि अंग्रेजोंको भारतसे निकाल बाहर करेंगे तब कहीं आराम करेंगे। और इस वीरतायुक्त देशभक्ति और स्वाधीनताके प्रेमके साथ साथ मनकी महानता भी उनके पास थी। बहुसख्य जनता जब बदले तथा तेहेके जोशमें अंग्रेजोंको गाजरमूलीकी तरह काट रही थी, तब अंग्रेजी परिवारोंपर दया कर, उनका आतिथ्य तथा सरक्षण ही नहीं किया गया, वरञ्च जिन अधिकारियोंने बहुत सताया था उन्हें भी, शरण आनेपर, प्राणदान दिया। जनताने बारबार प्रार्थना की, कि 'इन अधिकारियोंको जीवित रखनेमें अपनी भलाई नहीं है, क्यों कि, ये फिरसे लडाईकी सिद्धता करेंगे—और १८५७के उत्तरार्धमें ठीक वही हुआ भी—तो भी जमींदारोंने उनके साथ उदारतासे ही बरताव किया। इस तरहकी उदारता तथा दानाई, जनताके क्रोधका कारण होनेपरभी, बरती जानेका उदाहरण भारतको छोड किस राष्ट्रमें, और वह भी विप्लवके विस्फोटमें, पाया जायगा?

कालाके जमींदार राजा हनुमतसिंग राष्ट्रसेवाके लिए लडनेकी लगनमें रत्तीभी किसीसे कम न होनेपर भी, केवल उनकी महान् उदारताने शत्रुको यों कहनेपर मजबूर किया:—"ब्रिटिशोंने मालगुजारीकी नयी पद्धति शुरू की, जिससे इस राजपूत सूरमाकी आमदानीका बहुत बडा हिस्सा छिना गया था। इस जुल्म तथा अपमानका शल्य यद्यपि उनके अंतस्तलमें

गहरा घाव कर चुका था, तो भी जिस राष्ट्रने उसे लगभग बरबाद किया था, उस राष्ट्रके शरणार्थी अधिकारियोंको, केवल विपत्तिमें फँसे लाचार जीव की उदार दृष्टिके बिना, अन्य किसी भी दृष्टिकोणसे देखनेको उनका महान् मन न मानता था। उस संकट–समयमें उन अंग्रेजोंकी सहायता भी की और उन्हें उनके सुरक्षित स्थान तक भी पहुँचा दिया। किन्तु बिदाईके समय कॅप्टन बरोने भगावतको हमारेमें राजासाहबकी सहायताकी इच्छा प्रकट की, तब वे तड़ाकसे खड़े रहे और कहा, "महाशय, तुम्हारे भाई इस देशमें आये और उन्होंने हमारे राजाको हटा दिया। उनके मौरूसी हकोंको जाँचनेके लिए तुमने अपने अधिकारियोंको तहसीलोंमें भेजा। कलमके घोंशेसे मेरे वंशके तावेमें अनादि कालसे रहे गाँवोंको तथा ग्राम दनीको तुम हड़प गये। मैं लाचार चुप रहा, किन्तु अब तुम्हारे भाग्यने एकाएक पलटा खाया। जिस मुझे लूटकर बरबाद कर डाला उसीके द्वार खटखटाने की बारी तुम्हें आयी; फिरभी मैंने तुम्हारी रक्षा की। बस, अब मैं अपनी प्रजाका नतृत्व करते लखनऊ जाकर तुम लोगोंको भारतवर्षसे भगा देनेके कार्यमें अपना जीवन लगा दूँगा।"*

अवध प्रांतके लोगोंने जो उदारता ऐसे समयमें दिखलायी वह किसी दुर्बलताके कारण न थी। ३१ मइसे जूनके पहले सप्ताहके अन्ततक समूचा अवध प्रांत किसी प्रचंड यन्त्रके समान सहसा जागरित हुआ था। अवधके सब जमींदार तथा राजा, ब्रिटिश पैदल सेना, रिसाले तथा तोपखानेके सहस्रों सैनिक, नागरी महकमोंके सभी सेवक, किसान, व्यापारी, विद्यार्थि हिंदु, मुसल्मान सब देशको स्वतन्त्र करनेके लिए एक प्राण होकर उठे। व्यक्तिगत बैर, वर्ण–जाति–धर्मके भेद सब कुछ एक देशप्रेममें गल गये। हरएकको यह श्रद्धा थी, कि वह धर्म तथा न्यायके युद्धमें कूद पड़ा है। केवल १० दिनोंमें जनताने वाजिद अलीशाहको फिरसे सिंहासनपर बिठाया। 'जनताके कल्याणके हेतु वाजिद अलीको हमने पदच्युत किया

* मॅलेसन कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १ पृ २७३–पाद टीका (फुट नोट)

है '–डलहौसीके इस ढकोसलेका कैसा मुँहतोड और मार्मिक उत्तर जनताने दिया! जुलाईके प्रथम सप्ताहके अन्तमे समूचे अवधप्रातमे एक भी गॉव ऐसा न था, कि जहॉ युनियन जॅकके टुकडे टुकडे कर डलहौसीको इसी तरहका मार्मिक उत्तर न दिया गया हो।

इस तरह सब स्थितिका सत्य विवरण देनेके पश्चात् श्री. फॉरेस्ट भूमिकामें लिखता है :–'इस प्रकार केवल दस दिनोंमे अवधका अंग्रेजी शासन किसी सपनेकी तरह विलाया और गया बीता हो गया! सेनाने बलवा किया, प्रजाने राजभक्तिको ठुकरा दिया, न उसमें प्रतिशोध न क्रूरताकी भावना थी! शूर तथा चिढी हुई जनताने शासक–वर्गके निराश्रित शरणार्थियोंको–अंग्रेजोंको–लगभग सभी स्थानोंमें, विशेष दयाबुद्धिसे रखा। जिन शासकोंने अपनी चले तबतक परोपकारके नामपर बहुसख्य जनतापर असीम कष्ट ढाये थे, उन हारे हुए शासकोंसे– अंग्रेजोंसे–अवधकी जनता जिस उदारता तथा शिष्टतासे पेश आयी वह तो कभी नहीं भुलाया जा सकता। * सुयोग्य तथा अनुभवी अंग्रेज अफसरोंको अवधके वीरोंके योग्य उदारतापूर्ण लोगोंने जीवित न छोडा होता, तो नौसिखिये अंग्रेजोंके लिए फिरसे अवध जीतना असम्भव हो जाता!

लगभग १० जून तक सारा अवध प्रात स्वतत्र होकर सब सैनिक तथा स्वयसेवक लखनऊको चल पडे, जहॉ प्रभावशील अंग्रेज नेता सर हेन्री लॉरेन्स अब–तब हुई अंग्रेजी राजसत्ताको होशमे लानेकी पराकाष्ठाकी चेष्टा कर रहा था। सारा प्रात हाथसे निकल जानेपर भी राजधानीका स्थान अबतक उसने तावेमे रख छोडा था। क्रातिका अदाज पहले लगाकर उसने माच्चीभवन तथा रेसिडेन्सीमे सरक्षक किलाबदीका प्रबध कर रखा था। ३१ मईको बलवा कर जब सिपाही चले गये, तब उसने सिक्खोंकी एक तथा 'अत्यत राजनिष्ठ' हिंदुस्थानियोंकी एक–दो मक्कम पलटनें खडी कीं। रहे सहे पुराने सिपाहियोंने १२ जूनके पहले विद्रोह किया, सर हेन्रीको इसपर आनदही हुआ। क्यों कि, उस समय उसके पास

* फॉरेस्टस् स्टेटपेपर्स खण्ड २ पृ ३७

चुनिंदे गोरे सैनिकोंकी एक पल्टन, तोपखाना, तथा कहींसे कही मशीनगनपर बिनकी राजनिष्ठा (!) खरी उतरी थी एम सिक्ख तथा हिंदुस्थानियोंकी दो पलटनें थीं। इस लिए यह तो एकाएक मौका टूट ही गया था।

सैनिक तथा अयधक नौजवान स्वयंसैनिक लखनऊके आसपास जमा हो रहे थे। दोनों दल जानते थे, कि इस मुठभेड़के पश्च इरादे यह फिरसे टकराना पड़ेगा। कानपुरके घेरेकी लड़ाई अब टोंचपर पहुँच चुकी थी। ऐसे समयमें कानपुरके समाचारके बिना, अंग्रेज या क्रांतिकारी चढाई करनेको राजी नहीं थे। २३ जूनको सर हेन्रीने लॉर्ड कैनिंगको लिखा, "कानपुर यदि टिका रहे तो लखनऊ शायदही परा जायगा।" २८ जूनको लखनऊमें समाचार पहुँचा कि कानपुरमें एक भी अंग्रेज जीवित न रखा गया, इस संवादसे उत्साहित होकर क्रांतिकारियोंने अंग्रेजोंपर धावा बोलनेके लिए चिनहटकी राह ली।

कानपुरकी करारी तथा भयंकर हारसे अंग्रेजोंके रोबको हर जगह बड़ा धक्का पहुँचा। इससे सर हेन्रीने अपने मनमें ठान ली थी, कि इससे दुगनी करारी हार जब तक क्रांतिकारियोंको न दी जाय, तब तक लखनऊकी रेसीडेन्सी तो क्या, कलकत्तेका फोर्ट विलियम भी असुरक्षित रहेगा। कानपुरका अपमान क्रांतिकारियोंके खूनसे धो डालनेका निश्चय कर ३० जूनको अंग्रेजी सेना लोहा-पुलके पास जमा हो गई। ४०० गोरे सैनिक, ४०० भारतद्रोही सिपाही और १० तोपोंके साथ सर हेन्री लखनऊसे चल पड़ा। शत्रुकी हलचल कहीं नजर न आनेसे यह दूरतक चलता ही गया। निदान, यह क्रांतिकारियोंकी हरावलके सामने आ खड़ा हुआ। सर हेन्रीने अपने दाहिने पासेके एक महत्त्वपूर्ण टहाडपर दखल करनेकी सिपाहियों को आज्ञा दी और उसके अनुसार यह गाँव हाथ आया इधर गोरे सैनिकोंने बाएँ पासे पर इस्माइलगंजपर दखल कर लिया। तोपखानेके हिंदी और अंग्रेज तोपचियोंने क्रांतिकारियोंपर गोलोंकी बौछार इतनी जोरोंसे की, कि उनका तोपखाना मंद पड़ा। उस दिन चिनहटमें गोरोंका पल्ला लगभग भारी रहा। किन्तु एकाएक क्रान्तिकारियोंने बाएँ पासेके एक गाँवपर छुपा हमला करनेकी खबर आयी; अचानक अंग्रेजोंपर

धावा बोल, उन्हें भगा दिया और गाँव जीत लिया। क्रांतिकारियोंने अंग्रेजोंकी पिछाडी तथा बीचके विभागपर एकसाथ चढाई की! ज्योंही गोरे हटने लगे त्योंही क्रातिकारियोंने अपना दबाव बढाया! अंग्रेजी सेनामें गडबडी पडी! और अब लडनेका अर्थ सारी सेनाका सत्यानाश करना है, यह ताडकर सर हेन्रीने पीछेहटकी आज्ञा दी। इस पीछेहटमें भी गोरोंको बडी यत्रणाएँ सहनी पडीं। क्यों कि, चिनहटमें अंग्रेजोंको हराकर ही क्रातिकारियोंने दम न लिया, उन्होंने ताबडतोड गोरोंको खदेडना शुरू किया, जिससे अनुशासन टूट गया और गोरे तितर-बितर हो गये और जान बचाते हुए भाग खडे हुए। हारी हुए अंग्रेज सेना लखनऊ की ओर भाग रही थी। ४०० गोरोंसे १५० चिनहटमें मारे गये। हिंदुस्थानी राजनिष्ठोंकी गिनतीसे क्या लाभ? दो बडी तोपे तथा एक हावित्झर खेतमें छोड अंग्रेज भागे, और साथ कानपुरके प्रतिशोधका विचार वहीं छोड देना पडा। सर हेन्री, यह मार पडनेपर, रेसिडेन्सीमें लौट आया, फिरभी क्रातिकारी उसका पीछा कर रहे थे। चिनहटकी लडाई तभी समाप्त हुई, जब बचे हुए अंग्रेज, सिक्ख और 'राजनिष्ठ' सिपाही रेसिडेन्सीकी तोपोंकी छायामें दम लेने लगे। हाँ, किन्तु उस लडाईका प्रभाव कहाँ समाप्त हुआ था? क्रातिकारियोंने माचीभवन और रेसिडेन्सी दोनोंको घेर लिया। तब एकही स्थानका प्रतिकार पूरा बलवान करनेके हेतु सर हेन्रीने माचीभवन खाली करना तय किया। अनगिनत गोलाबारूदसे भरे वहाँके कोठारमें आग लगाकर सब गोरे रेसिडेन्सीमे आ गये! इस स्थानमें अनाज, शस्त्रास्त्र, गोलाबारूद आदि सामग्री घेरेके समयमें आवश्यकतासे अधिक थी। अब रेसिडेन्सीमें लगभग एक सहस्र गोरे सैनिक तथा ८०० हिंदी सिपाही थे। बाहर क्रातिकारियोंकी असीम सेना खडी थी, उससे भिडनेकी सिद्धता अंग्रेजोंने की। चिनहटकी लडाईके बाद भी रेसिडेन्सी झुझानेका अंग्रेज सेनापतिका निश्चय देखकर क्रातिकारियोंको भी तेहा आ गया। विदेशी तानाशाही तथा पराधीनताका सदाके लिये अन्त कर देनेके विचारसे वे क्रोधसे मनमें जलने लगे!

इस तरह भड़क उठे अवधने अंग्रेजी शासनको कुचलते, पीटते और पीछा करते हुए लखनऊकी छोटीसी रेसिडेन्सीमें बंदी बना दिया।*

* सं १४। रेड पैम्फ्लेटका सुप्रसिद्ध लेखक लिखता है:—"समूचा अवध प्रांत हमारे विरुद्ध हथियार लेकर उठा था। केवल स्थायी सेनाके सैनिक ही नहीं, भूतपूर्व नवाबके ६० सहस्र सिपाही, जमींदार तथा उनके सिपाही और २५० किले, जिनमें बहुतेरे बड़ी तोपोंसे लैस थे, हमारे विरुद्ध थे। ईस्ट इंडिया कंपनीके राजके साथ लोगोंने अपने पुराने राजाओंके शासनसे मिलाया और, लगभग एकमत होकर, अपनेवालोंको अच्छा घोषित किया। सेनासे पेनशन लिए हुए निवृत्त सैनिक प्रकट रूपसे हमारी निंदा कर बलवेमें शामिल हो गये हैं।"

अध्याय १० वॉ

उपसंहार

दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, बरेलीके मरे हुए या अब–तब करते हुए राजसिंहासनोंमें फिरसे प्राण फूंककर जिस स्वातन्त्र्य–लालसाने उन्हे जीवित किया, उसीसे कुछ कुछ धुकधुकी लिए हुए अन्य सस्थानोंपर वस्तुत: क्या प्रभाव पडा था ?,

१८५७ में सर्वसाधारणको यह विश्वास था, कि विदेशियोंका जुआठा जबतक भारतकी गर्दनपर चढा हुआ है, तबतक ये सस्थान केवल चेतनाहीन कलेवरोंके समान ऐसेही सडते रहेंगे। १८५७के मानवी महासागरमें किसी राजा महाराजा या उनके उत्तराधिकारियोंके लिए थोंडेही तूफान आया था ? वह तो स्वाधीनताके परम पवित्र ध्येयसे प्रक्षुब्ध हो उठा था। राजा या रक, हर कोई मानव मरनेवाला है, किन्तु राष्ट्र कभी न मरना चाहिये, उसे मरने नहीं देना चाहिये। पराधीनताकी भीषण श्रृखलाओंको तोडकर स्वदेशको स्वाधीन रखनाही उस समयका ध्येय था। और इसीसे उस साधनाका मार्ग राजप्रासाद या घर–झोंपडोंको स्मशान बनाते हुए बढनेवाला होनेपर भी, उस साधनाकी पूर्तिके लिए सार्वदेशिक युद्धकी तुरही फूंकी गयी। अन्य राजा तो मृतकके समान ही थे।

गवालियर, इदौर, राजपूताना, तथा भरतपुर आदि रियासतोंकी जनताभी इस स्वातन्त्र्य–समरके आवेशमें, ब्रिटिशोंने जिन्हें दास बनाया था उनके समान ही, प्रक्षुब्ध हो उठी थी। ‘ अपनी रियासत तो सुरक्षित है, फिर क्यों इस व्यर्थके झगडेको मोल लें ’ यह क्षुद्र विचार किसीके मनमें

भूलसे भी न आया। उसी तरह 'हमारा संस्थान भलेही छ्यली जितना हो, यह एक स्वतन्त्र राष्ट्र है या ब्रिटिश प्रांतोंकी जनतासे हमें कोई सरो कार नहीं, ये स्वशासित तथा पूर्णतया अलग देशविभाग हैं ' इस प्रकारकी संकीर्ण भावना भी किसीके मनमें न थी। एकही मातृभूमिकी संतान और एक दूसरेसे परायोंके समान दूर! छि नहीं कदापि नहीं! अब १८५७ है सारा भारत अब एकप्राण, अखण्ड, एकही मायिकी रस्सीमें पिरोया हुआ दीख पड़ता है।

इस लिए, ओ ग्वालियरके शिंदे! अंग्रेजोंके साथ भिड़नेकी हमे अनुज्ञा दो हाँ, भयसे छूट नहीं, तुम हमारे नेता बन हमारे साथ रहो। 'स्वदेश' और 'स्वधर्म' ये महामन्त्रको जप कर, श्री महादजीका अधूरा कार्य पूरा करनेको अपनी सेनाके साथ रणमैदानमें चलो। सारा देश भी बयाजी शिंदेके नामपर आस लगाये बैठा है। लगाओ! युद्धका नारा जगाओ। तब आगरा तुरन्त शरण माँगेगा, दिल्ली स्वतन्त्र होगा, दख्खन गरज, उठेगा, विदेशियोंको निकाल बाहर कर दिया जायगा, स्वदेश पराधीनताके पापसे मुक्त होगा और तुम! तुम इस देशकी स्वाधीनताका वरदान देनेवाले नरश्रेष्ठ बनोगे। बीस करोड़ मानवोंका जीवित अब एक व्यक्तिकी हाँ या ना पर डाँवाडोल है। इतिहासने ऐसा प्रसंग कभी नहीं देखा!

हाय, किन्तु यह एक शब्द बोल्नेको शिंदेकी जीभ चिपक गयी और जब वह खुली, तब 'युद्ध' के बदले 'मित्रता' का बखान करने लगी। शिंदेने भारतसे नहीं, अंग्रेजोंसे मित्रता निबाहनेका निश्चय किया। यह मालूम पड़तेही जनता क्रोधसे भड़क उठी। शिंदे युद्धसे दूर रहना चाहते हो तो हम लड़ेंगे। मातृभूमिको मुक्त करने तुम न आना चाहो, तो तुम्हारे बिना, और ऐसाही समय आ जाय, तो तुम्हारे विरोधमें भी हम यह काम करेंगे। आजतक हम शिंदेके आ मिलनेकी राह देखते रहे खैर, आजके सूरजके अस्ततक हम समय देते हैं। सूरज गत होगा और फिर 'हर, हर, महादेव'! यह उधर गाड़ीमें कौन जा रहा है? श्री कूपलैंड और उनकी पत्नी! और उनके स्वागतके लिए कौन आगे बढ़ रहा है? १४ जून १८५७का बाद फिरंगीको नमस्ते! अरे, यह देखो यहाँ ब्रिगेडियर आ

रहा है, न किसीने उसे वंदना करनेको हाथ ऊँचा किया, न गर्दन झुकायी। ठीक है, वह ब्रिगेडियर साब है। अरे भई, किसने उसे ब्रिगेडियर बनाया? फिरगियोंने न? प्रासाद–शिखरपर बैठ जानेसे क्या कौआ गरूड बन जाता है? हॉ तो, ब्रिगेडियरके सामनेसे गुजर जाना; उसकी ओर झॉकना तक नहीं! ग्वालियरकी सेनाके सिपाहियोंने ब्रिगेडियरको माना न ध्यान दिया, सीधे चल पडे। * फिर भी शामतक सब शान्त रहा और तब एक बगलेमें आग लगी दिखायी पडी। हॉ, बलवेका महूरत आ लगा है शायद? तोपखानेवाले! उठो। पैदल पलटनवाले। एक हाथमें जलती मशाल, दूसरेमें चमकती करवाल लेकर, सिंहगर्जना करते हुए दश दिशाओंको गूँजा दो। भारतीय को गले लगाओ, गोरेका गला घोंटो। मारो फिरगीको! तुम घरमें छिपते हो? अच्छा, तो उस घरहीको जला दो। आगसे बचनेको बगलेसे कौन भागा? गोरा है! उडा दो उसका सिर! खबरदार, मत मारो, रुक जाए, हम औरतोंपर हाथ नहीं उठाते! +

रातभर इसीतरह वह पैशाचिक नृत्य जारी रहा। ग्वालियर नगरहीमें केवल नहीं, शिंदेके राजमहलमें भी अग्रेजोंका नामलेवा न रहना चाहिये। सभी गोरोंको शिंदेके प्रदेशसे ठेठ आगरे तक भगा दिया गया। गोरी मेमोंको बदी बनाया गया। परायी स्त्रीसे बोलना अच्छा नहीं! किन्तु वह देखो, एक मेम उधर धूपमें ज़ल रही है! पूछें तो! ‘ क्यों मेम साहब! यहॉकी धूप कैसी है? बहुत कडी है न? और इस समय तो आप उसे औरही कडी महसूस करती होंगी? आप अपने ठढे देशमें रहतीं तो ऐसी विपत्तिमें क्यों कर फँसतीं? ” इस ‘ शैतानी ’ सलाहको देते हुए सुनकर, वह दूसरा आदमी क्या कह रहा है? “ अजी, आपको आगरे पहुँचाना है क्या? ओ हो। तुम्हारे आदमी तो कबके मारे गये हैं! मैंने कहा, आगरा अब दिल्लीके सम्राटकी छत्रछायामें है? क्या, फिरभी आप वहॉ जाना चाहती हैं?” और हास्यकी एक लहर उठी! शिंदे तो मूर्तिके समान जम गया था! ग्वालियरकी सेनाने विद्रोह किया, सिपाहियोंने गोरे अधि-

---

* श्रीमती कूपलड कृत ‘ नॅरेटिव्ह ’

\+ श्रीमती कूपलड कृत ‘ नॅरेटिव्ह ’

कारियोंका भ्रम तमाम कर डाला। अंग्रेजी स्त्रीपुरुष, उनके ध्वज और सत्ता सब कुछ ग्वालियरकी सीमाके पार खदेडकर ग्वालियर स्वतंत्र कर दिया गया! इसके बाद क्रांतिकारियोंने शिंदेसे अपना नेतृत्व करनेको कहा। बताया गया, कि अपनी सारी सेनाके साथ आगरा, कानपुर और दिल्लीके टापूमें भारतीय स्वातन्त्र्य-समरमें हाथ बँटाने शिंदे आ जायँ। किन्तु शिंदे वादे करता गया (और तोडता भी!) और सिपाहियोंको रोकता गया। मालूम होता है, स्वयं तात्या टापे गुप्तरूपसे यहाँ पहुँचने तक ग्वालियरकी सेना वहीं हाथपर हाथ धरे बैठी रहेगी।*

और तभी तो आगरेके अंग्रेजोंको अबभी माया बँधी हुई है। आगरेमें रहनेवाला उत्तर पश्चिम सीमाप्रांतका ले. गवनर काल्विन तो मौतके डरसे हर समय काँपता रहता है। मेरठवाले बलवेके संवादसे बिगडे हुए सैनिकोंके सामने इसीने 'वफादारी' पर एक वक्तृता झाडी थी। क्षमाकी घोषणा भी इसीने की थी, किन्तु क्षमायाचना करनेवाला एक भी कायर सिपाही आगे तो न आया उलटे, इस क्षमाकी घोषणाके प्रत्युत्तर स्वरूप सिपाहियोंने ५ जुलायी को आगरेही पर चढाई की! नीमच तथा नसीराबादके विद्रोही भी आगरे पर चढ आये। तब धितौली और भरतपुरके नरेशोंकी 'राजभक्त' सेनाको उनका मुकाबला करने रवाना किया गया। इन सैनिकोंने साफ बता दिया, कि "अंग्रेजोंके विरुद्ध उठनेका हमारा विचार कभी

---

* सं ३५—शिन्देके लिए अपने राजको फिरसे स्वतंत्र करनेका बहुत बढिया मौका था। वह केवल बागियोंके प्रस्तावको स्वीकार कर लेता तो अंग्रेजोंसे बदला ले सकता। यदि वह बागियोंका नेता बनकर अपने मँजे हुए मराठा सैनिकोंके साथ रणमैदानमें चल पडता, तो हम अंग्रेजोंके लिए इसका परिणाम अत्यंत हानिकर सिद्ध होता। इसके साथ कमसे कम २० सहस्र सैनिक, जिसमें आधे अंग्रेजोंसे पूरी सैनिक शिक्षा पाये हुए होंगे, हमारे कच्चे मोर्चोंपर टूट पडते। आगरा और लखनऊ एकदम ले लिए जाते। हॅवलॉक इलाहाबादके किलेमें बंद हो जाता और या तो वह किला घेरा जाता, या उसे अलग रखकर, विद्रोही बनारसके रास्ते कलकत्तेपर जा पहुँचते।—रेड पॅम्फ्लेट पृ. १४१

न होगा, किन्तु हमारे देशबंधुओंपर हम कभी शस्त्र न उठायेंगे।" अंग्रेजोंके मुँहपर यह चपत पडी और वे निराश हो गये। हिंदी नरेश अंग्रेजोंसे वफादार थे, किन्तु उनकी प्रजा और सेना 'अपने देशबंधुओंपर हथियार उठानेको कभी सिद्ध न थीं।' इससे, केवल गोरी सेना लेकर ब्रिगेडियर पॉलव्हिल आगरेपर चढ आनेवाले विद्रोहियोंका सामना करने चल पडा। दोनोंकी मुठभेड सास्सिह को हुई। दिनभर लडाई चालू रही। किन्तु क्रातिकारियोंके सामने पैर जमाना दूभर होनेसे अंग्रेज हट गये। विजयसे उत्तेजित क्रातिकारियोंने भेडियेके समान अंग्रेजोंका पीछा किया। जब गोरी सेना आगरे पहुँची, तो उनके पीठपर विजयकी पुकार करते हुए क्रातिकारी भी दौड आये। वह सुअवसर, जिसकी ताकमें जनता थी, आज उनके हाथ लगा। यह ६ जुलाईका दिन था। पुलिसके नेतृत्वमें सारा आगरा नगर उठा! पुलीसके अधिकारी क्रातिकारियोंसे अच्छीतरह सधे हुए थे। हिंदु–मुसलमान धर्माचार्योंका एक बडा जुलूस निकला। आगे कोटवाल तथा अन्य पुलीस अधिकारी थे। 'स्वधर्म, और स्वराज्यकी जय हो' के नारे लगाये गये और यह घोषित किया गया, कि अबसे अंग्रेजी सत्ताका अन्त होकर दिल्लीके सम्राटकी सत्ता चालू हो चुकी है।

इस तरह आगराके स्वतंत्र हो जानेपर पराजय के अपमान से लज्जित, भावीकी चितासे त्रस्त कोलव्हिनने किलेका आसरा लिया। उसे यही कुरेद पडी थी कि शिंदे क्या करवट लेता है? शिंदे क्रातिकारियोंमें मिला–केवल इतने समाचारहीसे कोलव्हिन शरण जाता, किन्तु शिंदेकी 'वफादारी' के पत्रोंसे और उसकी सहायतासे यह स्पष्ट था कि शिंदे अंग्रेजोंके विरुद्ध खडा न होगा, और मालूम होता है इसीसे आगरेपर अंग्रेजोंका झण्डा टिक सका। किन्तु उसे बनाए रखनेकी चिताके बोझसे, हिंदुस्थानकी अंग्रेजी सत्ताको अत्यत दुःखित दशामें छोडकर ९ सितबर १८५७ को कोलव्हिन मर गया।

ग्वालियरकी जनता तथा सैनिकोंमें जो क्रातिकारी मनोगति दीख पडी थी, उसके दर्शन इदौरमें भी भयानक रूपमें हुए। मऊकी अंग्रेजी छावनीसे होलकरकी सेनाने गुप्त संबध प्रस्थापित कर लिया था और तय हुआ था कि दोनों मिलकर बलवा करें। १ जुलाईको इदौर दरबारके

सआदत खाँ नामक प्रतिष्ठित सरदारने रेसिडेन्सीकी गोरी सेनापर धावा बोलनेकी आज्ञा दी। उसने बताया कि महाराजा होल्करने उसे यह सूचना दी है। पर हिंदी सेनाको इस अनुरोधकी आवश्यकता ही न थी। उन्होंने स्वाधीनताका झण्डा फहराया और तुरन्त रेसिडेन्सीपर धावा बोल दिया। यहाँपर हिंदी सैनिकोंने अंग्रेजोंके लिए अपने भाइयोंपर बन्दूक तानेनेसे साफ इनकार किया, जिससे अंग्रेजोंके छक छूटे और वे इन्दौरसे भाग गये। रेसिडेन्सीवाले हिंदी सैनिकोंने गोरोंको जीवित रखना मान्य किया था और अन्ततक वे उनकी रक्षा करते रहे। अंग्रेज ग्रन्थकार हमेशा यही छानबीन करते रहे हैं कि 'महाराजा होल्करका झुकाव अंग्रेजोंकी ओर था, या क्रांतिकारियोंकी ओर'! किन्तु १८५७के इतिहास तथा उस समयकी स्थितिका बारीकीसे परीक्षण करनेवालेको पता चलेगा, कि बहुतेरे नरेशोंने इस ढुल-मुल नीतिका अवलम्बन किया था। मानवमात्रमें स्वाधीनताकी इच्छा स्वभावसे होती है। क्रांतिकी हार न चाहनेसे उन्होंने अंग्रेजोंकी सहायता न की, नहीं उनमें इस डरसे, कि यदी कभी अंग्रेज क्रांतिको दबानेमें सफल हो जाय तो इनके राज या जागीरें जब्त करनेका एक बहाना मिल जायगा। उन्होंने क्रांतिकारियोंकी कुछ विशेष सहायता न की। बहुतेरे नरेश, क्रांतिकी सफलताकी स्पष्ट सम्भावना दीख पडते ही, स्वाधीनताका झण्डा फहराना चाहते थे।

इस प्रकार उन्होंने अंग्रेजोंकी विजयका रास्ता साफ कर दिया! उनकी अक्ल मारी गयी थी वे इतना न समझ पाये, कि यदि वे क्रांतिकारियोंके पक्षमें जाते तो अंग्रेजोंको सफल होनेकी रत्तीभर भी आशा न रह पाती, और यदि वे तटस्थ रहते तो, क्रांति की सफलतामें संदेह पैदा हो जाता था। उस कठिन समयमें बहुतेरे हिंदी नरेशोंकी ढुलमुल नीति का यही सच्चा विश्लेषण है। जनता और सैनिक अंग्रेजोंको रेसिडेन्सीसे निकाल बाहर करते हों, तो भले करें! इसका मतलब केवल इतनाही होगा कि संस्थान स्वतन्त्र हैं! फिर भी, कहीं अंग्रेज विजयी हों तो जो कुछ अपना है उसपर आँच न आय इसलिए अंग्रेजोंसे मित्रताका राग वे सदा अलापते रहे। यही रुख सतारा, कच्छ, ग्वालियर, इंदौर, बुंदेलखण्ड, राजपूताना, आदि स्थानोंके नरेशोंने लिया था।

और हिंदी रियासतियोंके स्वामियोंने इस स्वार्थपरक मनोगतिके कारणही क्रांतिका गला घोंट दिया। दोनोंमें पॉव न रखकर यदि हिम्मत और एकही निश्चयसे——स्वाधीनता या मौत——वे आगे बढते तो अवश्य वे स्वतंत्र हो जाते। किन्तु स्वार्थसे अंधे बने और 'दुविधामें दोनों गये, माया मिली न राम' वाली गतिको पहुँचे। उनके मनमें भलाई की मात्रा बहुत कम और नीच स्वार्थकी मात्रा बहुत अधिक होनेसे उनकी भलाई बेकार गयी, हॉ, हीन वृत्ति संसारके सामने प्रकट हुई। पटियाला तथा अन्य कुछ नरेशोंके समान वे खुल्लम खुल्ला देशके दुश्मन न थे; फिरभी अप्रत्यक्षरूपसे उन्होंने विश्वासघात का काम किया। स्वतंत्र होनेकी उच्च आकांक्षा होते हुए हेय स्वार्थको उसपर हावी होने दिया और इसीसे उस पापके लिए उनकी घोर निंदा हुई। अब इस पातकका प्रायश्चित्त वे कब करेंगे? कब इस काले धब्बेको धो डालेंगे?

किन्तु जहॉ हीन स्वार्थपरक मनोगतिने हिंदी नरेशोंको इस हीन दशाको पहुँचाया, वह नीच स्वार्थ उनकी प्रजाके मनमें क्षणभर भी न जम सका। और मात्र इसी जनताकी शक्तिके प्रचंड, आक्रमक विद्रोहसे सारे भारतको लगे पराधीनताके शापको भस्म करनेको पेशावरसे कलकत्तेतक विप्लवकी आग भडकी और खूनकी नदियॉ बहीं! जनताहीके आपसी एके तथा बलके प्रभावसे और निःस्वार्थ लडाईसे कुछ समय तक सही, अंग्रेजी शासन एक बार उखाड कर उसे धूल चाटनी पडी।*

---

* स. ३६। जहॉभी हिन्दी नरेशोंने क्रांतिमें शामिल होनेमें ननु-नच किया, उनकी प्रजा बेकाबू हो जाती, अपने राजाका जुवाडभी फेंक देनेको सिद्ध हो जाती, यदि वह राष्ट्रीय युद्धमें न आय। प्रजाकी यह अनोखी मनोगति देखकर मॅलेसन कहता है :- "ग्वालियर, इन्दौरकी तरह यहॉ भी यह स्पष्ट दीख पडा, कि जब पूरबके लोगोंकी धर्मभावना पूरीतरह उभाडी जाय, तो उनका स्वामी, उनका राजा भी जिसे वे अपने पिताके समान मानते है, प्रभुका अंश मानते हैं, उनकी श्रद्धा के विरुद्ध उन्हे झुका नहीं सकता"

(पृ. २५५ पर चालू)

इस प्रलयकारी भूकपका अंदाजा कलकत्ता और इंग्लैंड भी ठीक तरहसे न लगा सके। वहाँकी सरकारके विचारमें तो मेरठवाले बलवेके पहले देशभरमें शान्तिका वातावरण था। मेरठके उठनेपर तथा दिल्लीसे स्वतंत्रताकी प्रकट घोषणा होनेपर भी इस भड़ाकेका अर्थ ही कलकत्तेवाले अंग्रेजोंकी समझके बाहर रहा। १० मई से ११ मई तक बलवेकी छोटी लहर भी न देखकर कलकत्तेके उस मतकी—भारतमें विशेष अशान्ति नहीं है—पुष्टीही हुई। २५ मईको गृहमंत्रीने प्रकट रूपसे कहा, 'कलकत्तेके केंद्रसे १०० मीलोंके बाबादमें पूर्ण शान्ति बनी रही है। बीचमें क्षणिक तथा कहीं कहीं स्वतरेख रूप दीख पड़ता था वह अब नष्ट हो गया है। हमें दृढ विश्वास है, कि अब थोड़ेही समयमें पूर्ण शान्ति और सुरक्षाका साम्राज्य हो जायगा'।

यह थोड़ाही समय कब का लद गया था। ११ मई की पहली किरणोंने भूमिको स्पर्श किया तब 'शान्ति और सुरक्षाका साम्राज्य' सबदूर स्थापित हो चुका था। लखनऊकी रेसिडेन्सीके चौफेर, कानपुरके मैदानमें, झाँसीके जोगनबागमें, इलाहाबादके बाजारमें, बनारसके घाटोंपर, सबठौर, "शान्ति और सुरक्षा' हीका साम्राज्य फैला हुआ था। तार टूटे हुए थे, पुल उड़ा दिये गये थे, रक्तकी नहरोंमें गोरोंकी लाशें बह चली थीं, फिरभी सर्वत्र शान्ति और सुरक्षाका राज था।

हाँ, तो अब जाकर कहीं कलकत्तेवालोंकी आँखें खुलीं। १२ जूनको अंग्रेज नागरिक स्वयंसेवक दल खड़े करने लगे। गोरे व्यापारी सौदागर, क्लर्क, लेखक, नागरी अधिकारी—मतलब हर एक गोरा बड़ी फुर्तीसे सेनामें अपना नाम लिखवाने लगे। इन सबको तुरन्त सामूहिक संचलन और रायफल चलाना सिखाया गया। यह काम इतनी फुर्ती तथा उत्साहसे पूरा किया गया, कि तीन सप्ताहोंमें इन नौसिखिये स्वयंसेवकोंकी एक स्वतंत्र पल्टन बनी। इसमें रिसाला, पैदलसेना एवं तोपखाना भी था। कलकत्तेकी रक्षाके लिए यह सेना पर्याप्त होनेका विश्वास हुआ, तब उसेही यह दायित्व

"जयपुर तथा जोधपुर नरेशोंके सिपाहियोंने अपने राष्ट्रके लिए लड़नेवाले अपने भाइयोंपर हाथ उठानेसे साफ इनकार कर दिया, स्वयं अपने राजाके कहनेपर भी। मॅलेसन कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड ३, पृ १७२

सौपा गया; और पेशावर तथा भेजे हुए सैनिकोंको उस स्थानमे भेजनेका अग्रेजोंको अवकाश मिला, जहाँ क्रातिका जोर बढा था।

१३ जूनको लेजिस्लेटिव्ह कौन्सिलकी एक बैठक बुलाकर लॉर्ड कॅनिंगने समाचारपत्रोंके विरुद्ध एक निर्बंध (अॅक्ट) सम्मत करा लिया। क्यो कि, क्रातिका श्रीगणेशा होतेही बगालके सभी हिदी समाचारपत्र क्रातिकारियोंसे सहानुभूति बताकर उन्हें प्रोत्साहित करनेवाले लेख लिखने लगे थे।

रविवार दिनाक १४ जूनको 'शान्ति और सुरक्षाका' एक खासा हगामा कलकत्तेमें भी जारी था। उस दिनके सभी दृश्य हम एक अग्रेज लेखककी लेखनीद्वारा अच्छीतरह पाठकोंको दिखाना चाहते है। "सर्वत्र गडबडी, हो हल्ला, अशान्ति मची हुई थी। भयकर समाचार तो लगातार आ ही रहे थे। 'बारिकपुरकी सेना कलकत्तेपर आ रही है! उपनगरोंकी जनता पहलेही बलवा कर चुकी है! अवधके नवाब अपनी सेनाद्वारा 'गार्डन-रीच'को लुटवा रहा है। ऐसी बातोंपर तो हर किसीका विश्वास हो गया था। बडे अधिकारियोंहीने जनतामे घबराहट फैलाना प्रारभ किया था। उनमें कौन्सिलके सदस्योंके पास जाकर दौड धूप करनेवाले तथा अपनी पिस्तौलें 'भर'कर, दरवाजोंके सामने ओटें बनाकर, सोफेपर सोनेवाले स्वय 'गवर्नमेंट सेक्रेटरी' थे। उसी तरह घरबार छोडकर बालबच्चोंके साथ जहाजपर आसरा लेनेवाले कौन्सिलके सदस्य इनमे थे। उनसे नीची श्रेणीके कर्मचारी झुडके झुड, अपने 'बडों'की करतूतसे आवश्यक सीख लेकर किलेकी तोपोंकी छायामे निर्भय बैठे रहनेके लिए अपनी घरकी सभी चीजें जमाकर, किलेके रास्ते चल पडे थे। भयकी कल्पनासे निर्मित क्रूर कसाइयोंकी कक्षासे दूर पहुँचानेके लिए इन कायरोंके लिए घोडे, गाडियाँ पालकियाँ, और अन्य सब प्रकारकी सवारियाँ मॅगवयी गयीं थी। उपनिवेशोंमे तो ईसाई बस्तीका लगभग हर एक घर खाली हुआ था। पाच छः आदमी, जान हथेलीपर लेकर जो आ जाते, तो लगभग पौना शहर जलाकर भस्म कर दे सकते— — —!" *

अग्रेजोंकी राजधानीमे केवल अफवाहोंका बाजार गर्म होते ही इतनी

* रेड पॅम्फ्लेट पृ. १०५

‘शान्ति और सुरक्षा’ बनी रही थी। सो, इस सारे हंगामेकी जड़ बारकपुरके सिपाहियों तथा अवधके नवाबको नष्ट करनेका इरादा ‘सरकार’ ने किया। बारकपुरके सिपाही १४ जूनको उठनेवाले हैं, यह संवाद देनेवाला व्यक्ति, उन्हीं सिपाहियोंसे, गोरोंको मिला। सब बागियोंको पहलेही तोपोंका भय दिखाकर, उन्हें पकड़कर उनसे शस्त्र रखवा लिये गये और १५ जूनको ‘राजकी सुरक्षाके हेतु’ नवाबको उसके मन्त्रीके साथ गिरफ्तार किया गया तथा जनानेके साथ सारे निवासस्थानकी तलाशी ली गयी। तलाशीमें आपत्तिजनक कुछ भी न मिला, तो भी नवाबको और उसके वजीरको कलकत्तेके किलेमें बन्द कर दिया गया। इस तरह ठीक चिनगारी पड़नेके ऐन मौकेपर कलकत्तेमें रचा हुआ ज्वालाग्राही कोठार धीरे धीरे खाली कर दिया गया।

कलकत्तेके एक बगीचेके मामूली घरमें रहनेवाले वजीर अली नकीखाँ ने अपने नवाबको अवधके सिंहासनपर फिरसे प्रस्थापित करनेके उद्देशसे सब सिपाहियों तथा बंगालभरमें क्रांतिकारी संस्थाओंका संगठन किया था। किन्तु उसीके पकड़े जानेसे, मानों, क्रांतिका मस्तिष्क ही चू पड़ा। किलेमें बन्द रहते हुए, एकबार क्रांतिकारियोंको भद्दी गालियाँ देनेवाले अंग्रेजोंको उसने खरी सुनायी—‘भारतभरमें भड़की हुई यह घनघोर क्रांति मेरे विचारमें पूरी तरह न्यायपूर्ण है। अवधको हड़प जानेका यह ठीक प्रतिशोध है। सत्य और न्यायके सीधे रास्ते चलनेके बदले तुम जानबूझकर स्वार्थ तथा झूठकी कपटपूर्ण पगडण्डी पर चले फिर जब उन्हीं काँटोंसे तुम्हारे पाँव लहूलुहान हो जायँ, तो इसमें अचरज क्या है? प्रतिशोधके बीज बोते समय तुम हँसते थे, फिर जब उन्हीं बीजोंमें, मौसम आतेही, कडुए फल लगे तो दूसरोंको कोसते और गालियाँ क्यों देते हो?’*

हाँ तो, १८५७ के विप्लवके विस्तारके बारेमें स्वयं कलकत्तेमें इस

* रेड पैम्फ्लेट

प्रकारकी अस्पष्ट तथा भ्रमपूर्ण कल्पना थी। फिर, जब इग्लैंडको भारतसे मिलनेवाले पत्रोंके समाचारोंपर निर्भर रहना पडता था, तब इग्लैंड प्रारभही से अज्ञानकी घोर निद्रामें लम्बी ताने सोता होगा और जागने पर भी घबराहटके कारण सिरफिरेके समान किस तरह पागल बनके काम करता होगा इसकी कल्पना, पाठक, तुम सहजमें कर सकते हो। बारकपुर, बहरामपुर, डमडम तथा अन्य स्थानोंके सवाद जब इग्लैंड पहुँचे, तब वहाँ सबके कान खडे हो गये और आँखें भारतकी ओर लगीं। किन्तु अल्प समयमें सब शान्त हुआ और मामला ठढा पड गया। ११ जूनको हाऊस ऑफ कॉमन्समे बोर्ड ऑफ ट्रेड (व्यापार समिति) के अध्यक्षने एक प्रश्नके उत्तरमें कहा "बगालमें अबतक प्रकट हुए अशान्तिसे इतना डर जानेका कोई कारण नहीं है, क्यों कि मेरे सम्माननीय मित्र लॉर्ड कॅनिगकी अडिग नीति, ताबडतोड इलाज तथा जीवटके कारण सेनामें फैलायी गयी अशान्तिको जडसे उखाड दिया गया है।" ११ जूनको पार्लियामेंटने यह शेखी सुनी और उसी दिन भारतमें ११ रिसालेके विभाग, ५ तोफखानेके दल और ५० पैदल विभाग तथा छप्पर मैनाके सभी कामगार खुल्लमखुल्ला विद्रोही बने थे। सारा अवध प्रात क्रातिकारियोंने हथिया लिया था, कानपुर, लखनऊ घेरे गये थे, सरकारी खजानेसे क्रातिकारियोंने लगभग एक करोड रुपये उडाये थे। और यह सब किस समय? जब कि "कॅनिंगकी अडिग नीति, ताबडतोड इलाज और जीवटसे सेनामें बोयी हुई अशान्तिको जडसे उखाडा गया था" तब!!

किन्तु क्रातिके बीजके असाधारण तथा आकस्मिक रूपसे फूट निकलनेके सवादसे फिर जल्दही इग्लडकी नींद खराब हुई। कानपुरके हत्याकाण्ड का सवाद किसी तरह इग्लैंड पहुँचा। तब १४ अगस्त १८५७को भयसे बेचैन, अभागे, बौखलाये अग्रेजोंने हाउस लॉर्डस्में यह प्रश्न पुछवाया— "क्या कानपुरके समाचार सही हैं?" अर्ल ग्रेनव्हिलने उत्तर दिया— "मुझे जनरल पॅट्रिक ग्रॅटसे व्यक्तिगत पत्र मिला, जिसके अनुसार कानपुरके हत्याकाण्डका सवाद एकदम बेबुनियाद तथा निश्चित बनावटी है। यह अफवाह किसी सिपाहीने उडा दी है। उसके इस कमीने उभमकी पोल खोलकरही अग्रेज चुप न रहे, बरच उस

सिपाहीको फाँसीपर भी लटकाया गया।"* कानपुरकी इस 'अफवाह' की चर्चा जब इंग्लैंडमें हो रही थी, तब उसका 'सत्य' स्याही प्रायः स्याहीसे, भयानक अभागमें लिखा जाकर एक महीना बीत चुका था! कानपुरकी 'गप' हांकनेवाले सिपाहीको फाँसीपर लटकाकर इंग्लैंडका राजनीतिज्ञ अभी आराम ही कर रहे थे, कि मूर्तिमान सत्यही इंग्लैंडके किनारे पर उतरा! अंग्रेजी प्रतिष्ठापर पड़े इस जोरदार चपतसे क्रोध, आवेग तथा बदलेकी भावना साथ इंग्लैंड पागलपनके दौरेसे चकराने लगा। इडकाये कुत्तेके समान समूचा इंग्लैंड मार्गमें कुहराम मचाने लगा! और यह पागलपनका दौरा आजतक जारी है। आज भी अंग्रेजी इतिहासकार हर पंक्तिमें लिखते आये है, कि क्रांतिकारियोंने जो हत्याएं कीं, वह निस्संदेह पैशाचिक क्रूरता थी तथा मानवताके पवित्र नाममें उनसे कालिख लगी है।

और इस अंग्रेजी चिल्लाहट तथा कोलाहलसे सारे संसारके कान बधिर हो गये। १८५७ का पन्ना स्मरणही हर एकके रोंगटे खडे कर देता है और लज्जासे अपनी गर्दन झुकानी पडती है! सशापनके क्रांतिवीरोंके नामोंका उल्लेख भी, न केवल शत्रुओंके, दुनियाके अन्य लोगोंके, बल्कि इन हुतात्माओंने अपना रक्त जिनके लिए बहाया उन भारतीयोंके, मनमें भी घृणा और अनादर पैदा करता है। उन वीरोंके शत्रु तो उन्हें राक्षस, पिशाच, खूंखार, नारकीय कीडे आदि विशेषण लगाते हैं! तटस्थ लोग उन्हें बागी, अमानुष, क्रूर, असभ्य कहते हैं, जहाँ भारतीय लोग उन वीरोंको स्वकीय कहते भी शरमाते है। और १८५७ के समय ही नहीं, आज भी यही स्थिति, यही पुकार जारी है। और इस अखण्ड आक्रोश से संसारके कान इतने बधिर कर दिये हैं, कि सत्य की आवाज उनके कानोंमें जा ही नहीं सकती! क्रांतिकारी "शैतान!,' नरपिशाच! 'स्त्री-बाल घातक!' 'खूंखार नारकीय कीडे!' हायरे संसार! यह भ्रम तेरे मनसे कब दूर होगा! सत्य तू कब समझेगा!

और यह सब क्यों! ये गालियाँ किस लिए? जानते हो? स्वदेश और

---

* चार्ल्स बॉल कृत इंडियन म्यूटिनी

स्वधर्मके लिए अंग्रेजोके विरुद्ध उठकर, 'प्रतिशोध'के नारे लगाते हुए, कुछ क्रातिकारियोंने कुछ अंग्रेजोकी निर्दयतासे हत्या की, इस लिए!

> अविवेकी हत्या सदाही घृणित पाप है। जिस समय सारी मानव जाति आत्यतिक न्याय तथा परमानन्दके विश्वात्मक आदर्शको पहुँच पायगी, जिस समय ईश्वरीय विभूतियों, पैगबरो तथा धर्मोपदेशकों से वर्णित रामराज्य इस भूलोकपर हर एकके अनुभवकी बात बन जायगी, जब ईसामसीहके उस देववाणीसे दिया उदात्त उपदेश—"जो कोई तेरे एक गालपर चाँटा मारे उसके आगे दूसरा गाल कर दे"—पर, इस आत्मसमर्पणके उपदेशपर, उस समय पहले गालपर मारनेवाला ही न रहनेके कारण, अमल करना असम्भव होगा तभी—उस सत्ययुगमें—यदि कोई विद्रोह करेगा, रक्त की एक बूँद गिरायगा, यहाँ तक, 'प्रतिशोध' शब्द तक उच्चारण करेगा, तो उस पापीको उस क्रूरताके केवल उच्चारणहीके लिए अनत कालतक रौरव नरकमें डुबोनाही ठीक होगा।

हर एक हृदयमें जब सत्यधर्मका उदय होगा, तब 'विद्रोह' की प्रवृत्ति भी बहुत दुष्ट पाप मानना योग्य होगा। न्यायनीतिके सूरजकी किरणें जब हर आत्माको उज्ज्वल बनायेंगीं तब 'प्रतिशोध' का उच्चारण भी सचमुच पातक माना जायगा, जाना भी चाहिये! सत्यधर्मके उस निरपवाद न्यायपूर्ण युगमें 'बदला' के पापी शब्द बोलनेवाले पातकीको दण्ड देना, निस्सदेह, अदूषणीय माना जाय!

किन्तु जबतक वह सत्ययुग इस भूलोकपर उतरा नहीं है, जबतक वह परमानन्दका आदर्श शुभ काल, सतमहन्त तथा प्रभुके प्यारे पुत्रके भविष्य-कथनही मे गूँथा पडा है, जबतक वह निरपवाद न्याय हमारे अनुभव की बात बनानेके लिए मानवी मन अपनी पापी और आक्रमक प्रवृत्तिको नष्ट करनेमें सफल नहीं हुआ है, तबतक विद्रोह, रक्तपात और प्रतिशोधकी गिनती नितात पातकोंमें कभी न होनी चाहिये। जबतक 'शासन' शब्दका उपयोग 'अधिकार' न्याय्य और अन्याय्य दोनों अर्थमें किया जाता हो, तबतक उसका प्रतियोगी शब्द 'विद्रोह' भी न्याय्य और अन्याय्य दोनों

अर्थमें उपयुक्त हो सकेगा। इसीसे, गत इतिहास या क्रांति, रक्तपात, प्रतिशोध के कारण मत व्यक्तिके बारेमें किसी प्रकारका बयान करनेके पहले, उन घटनोंके बनावकी जड़में कामवाली परिस्थितिकी बहुत बारीकीसे तथा सब पहलुओंसे जाँच करना आवश्यक है। क्रांति, रक्तपात, बदला, अन्यायको जड़से उखाड़कर सत्यधर्मका प्रारंभ करनेके लिए प्रकृतिके बख्शे हुए साधन हैं। और अपने उद्धारके लिए इस प्रकारके भयानक साधन प्रत्यक्ष न्यायदेवता ही जब बरतता हो, तब उसका दोष न्यायदेवतापर नहीं, वैसी परिस्थितिकी जड़में होनेवाले अन्यायपर ही लागू होता है। अन्यायके पीछे होनेवाली पीड़क शक्ति तथा उद्दण्डता ही इन साधनोंके उपयोगका निमंत्रण देती है। मृत्युदण्ड देने वाले न्यायासनको कभी कोई खून बहानेका दोषी नहीं ठहराता! उलटे, फाँसीके फंदेमें लटकनेवाला अन्याय ही इस दोषका एकमेव स्वामी होता है। और इसी लिए ब्रूटसकी तलवार पवित्र! इसीसे शिवाजीका बिछुवा वंदनीय! इसी लिए इटलीकी क्रांतिमें बहा खून भी परम मंगल! इसी लिए विलियम टेलका तीर दैवी! इसी लिए चार्लस् (१ म)का कत्ल न्यायपूर्ण काम! सारांशमें, पैशाचिक क्रूरताके पापका भार उन्हींके सिर रहेगा जिन्होंने अन्याय कर उस क्रूरताको छेड़ा।

और, संसारमें क्रांति, रक्तपात तथा प्रतिशोधका भय न होता तो बेरोक लूट खसोट तथा अत्याचारोंकी पाशविक धूमके नीचे यह पृथिवी दबोच जाती। आज या कल, जल्द या देरीसे, अन्यायका प्रतिशोध लेनेवाला शासक प्रकृतिही पैदा करेगी यह डर यदि अत्याचारी अन्यायको न होता, तो इस भूमण्डलपर जार जैसे तानाशाहों और खूनी डाकुओंका दौरदौरा हो जाता! किन्तु हर हिरण्यकश्यपूको नरसिंह, हर दुःशासनको उसका भीम, हर अत्याचारीको उसका घातक, हर सेरको सवासेर मिलता है, जिससे संसारको कुछ आशा है, कि अन्याय और अत्याचार सदा बने रह नहीं पायेंगे। इससे, प्रतिशोधका मतलब है, अन्यायको हटानेके लिए होनेवाली प्राकृतिक प्रतिक्रिया। और, तब, प्रतिशोधकी क्रूरताका पातक, मूल अन्यायी दुराचारीके सिर अवश्य उलट पड़ता है।

इसी उदात्त प्रतिशोधका अंगार १८५७में भारतके हर सपूतके हृदयमें धधक रहा था। उनके सिंहासन चूर कर दिये गये थे; उनके राजमुकुट टुकडे टुकडे कर दिये गये थे, उनकी जागीरें जब्त कर ली गयी थीं; उनकी सत्ता कौडी कीमतकी कर दी गयी थी, केवल तोडनेके लिए दिये हुए वचनोंसे उन्हें धोखा दिया गया था, और अपमानों और खुले अत्याचारोंमें तो तूफान आ गया था। लज्जास्पद मानखण्डनाकी गहेरी गर्तामें लोग मुँहतक डूबे हुए थे। उन्हे अपने जीवनमें किसी प्रकारका कोई रस न था। जिस तरह याचनाओंका कोई उपयोग न था, उसी तरह अर्जियों, प्राथनाओं, शिकायतों, विलापों या आक्रोशोंका रत्तीभर उपयोग न था! ऐसे प्रसगमें प्राकृतिक प्रतिक्रियासे 'बदले' की कुलबुलाहट सुनायी पडने लगी। इतन अनगिनत पैशाचिक तथा जबरदस्तीके अन्यायोंके बोझसे हिंदुस्थान इतना दबोच गया था, कि हर अन्यायका 'बदला' लेना भी न्याय्य होता। इतनेपर भी भारतमें क्राति न होती तो फिर कहना पडता 'भारत मर चुका है'। किन्तु क्रोधसे जलकर समूचा राष्ट्रही जब उठा, तब उस प्रकारके अविवेकी हत्याकाण्ड हिंदुस्थानके हर स्थानोंमे होनेके बदले एक दो स्थानोंमे सीमित क्यों रहे, इसपर अचरज होता है। क्यों कि, इन हत्याकाण्डोंके कर्ताओंका प्रक्षुब्ध तर्कशास्त्र खडा सवाल करने लगा "अन्यायपूर्ण-दानवी शक्तिके दमनको उग्र शक्ति—प्रदर्शनही की आवश्यकता है।" काली नदीकी लडाईमें बंदी सिपाहियोंको फॉसीपर लटकानेके पहले, पूछा गया था, कि अंग्रेज औरतों और बच्चोंको उन्होंने क्योंकर मारा। फटसे सीधा जवाब मिला 'सापको मारकर उनके पिल्लोंको कौन खुला छोड देगा? कानपुरवाले सिपाही तो सदा कहते, कि अंगार कजलानेपर चिनगारीको चमकने देना, या साप मारकर उसके बच्चोंको छोड देना कहॉकी बुद्धिमानी है?"

कालीके सिपाहियोंके सीधे प्रश्नका उत्तर 'साहब' क्या देता? और मुँहतोड सवाल—जैसा कि अंग्रेज शिष्टताका दम भरकर कहते है—केवल भारतके प्रक्षुब्ध लोगोंने या एशियाई लोगोंने ही किया था, सो बात नहीं है। जहॉ जहॉ भी राष्ट्रव्यापी युद्धका प्रारभ होता है, वहॉ राष्ट्रीय अपमानका बदला, हमेशा शत्रुराष्ट्रका खून बहाकर ही लिया जाता है। स्पेनवालोंने मूरोंसे जब अपनी स्वतंत्रता

किस प्रकार की वह मूरोंकी उन्होंने क्या गत की! स्पेनवाले न हिंदी हैं, न एशियाई! फिर भी मूर स्पेनमें लगभग पाँच शताब्दियोंसे अधिक समय टिके थे उनपर टूटकर, स्पेनवालोंने इनके स्त्री–पुरुष–बच्चोंकी निर्दयतासे तथा अमानुष हत्या की, यह क्या केवल इसी लिए कि मूर अन्य धर्मके थे? १८२१में तुर्कीश शहरके स्त्री–पुरुष–बालकोंकी हत्या भी यूनानने क्यों कर की? युरोपवाले जिसे धर्म मानते हैं यह हेटेरिया नामक गुप्त संस्था इस हत्याका समर्थन कैसे करती? यही कहेगी न! कि यूनानमें तुर्कियोंकी जन संख्या देशमें रह सा पाती, किन्तु विद्रोह बाहर फैलनेमें प्रकट होनेसे पहले उन्हें कत्ल करना ही उस समय बुद्धिमानीकी तथा आवश्यक नीति थी! और भारतवर्ष वालोंने भी तो यही उत्तर दिया था न! 'सांपको मार उसके पिल्लोंको छोड़ देना हो तो फिर सांपको मारनेसे क्या लाभ!' यही विचार यूनानियोंके मनमें आकर उन्होंने अपनी प्राकृतिक दया भावनाको का दबा दिया था। मतलब, सांपको कुचलनेके सभी उपायोंके बाद, अन्तमें साँप के अपने प्राणघातक सिर पर आ पड़ता है।

और, सचमुच, अपनेपर होनेवाले भयंकर जुल्मों अन्यायोंका बदला लेनेकी प्राकृतिक प्रवृत्ति यदि मानवके हृदयमें सदा जागरित न रहती, तो सभी मानवी व्यवहारोंमें मानवके अंदरके 'पशु' ही को महान् स्थान प्राप्त हो जाता। अपराधको दण्ड देना, यथा, दण्ड विधानका एक महत्त्वपूर्ण अंग नहीं होता है? *

इतिहासकी साक्ष है, कि जब जब पराकाष्ठाको पहुँचे जुल्मों और अन्यायोंके परिणाम स्वरूप मानवके अंतस्तलमें आत्यंतिक प्रतिशोधका भाव प्रचण्ड आवेगसे सशक्त होकर भड़क उठता है, तब तब राष्ट्रके जीवन विभ्रममें, अन्य प्रसंगोंमें असम्य ठहरनेवाली आम हत्याएँ तथा अमानुष अत्याचार हो जाना, अनिवार्य होता है। इसीसे १८५७के भारतीय क्रांतियुद्धमें चारपाँच स्थानोंमें हुए हत्याकाण्डोंकी क्रूरतासे दाँतोंतले उँगली दबानेकी आवश्यकता नहीं है,

* सं. १७। सर वि. रसेल–लंदन टाइम्सके संवाददाता–की डायरी पृ. १६४

उलटे, अचरजकी बात यह है, कि ऐसे क्रूर हत्याकाण्ड इतनी थोडी मात्रामें हुए, और इस भयकर प्रतिशोध–भावनाकी लपट देशभरमें स्थान स्थानपर सभीको अपने फैलावमें भस्म करती हुई क्योंकर न बढी? अग्रेजी बनियोंके पाशविक जुल्मोंसे सारा हिंदुस्थान अंजरपजर होनेतक पेरा गया था। अर्थात् यह दशा जब पराकाष्ठाको पहुँची, तब भारतीय जनशक्तिने भी उस अन्याय और जुल्मको कसकर थप्पड मारी। उस प्रसगमें जो कत्लें हिसाब चुकानेके रूपमे हुई वे हदसे अधिक तो थीं ही नहीं, उलटे यह दीख पडेगा, कि किसी भी राष्ट्रमे राष्ट्रीय अपराधोंके लिए जो दण्ड उस राष्ट्रसे, आक्रमक तथा पीडक राष्ट्रको, दिया जाता है उससे बहुतही कम मात्रामे हुई थीं। क्रॉमवेलके कार्यकालमें हुए आयर्लंडके हत्याकाण्डमें जिस क्रूर-पातकोंका दायित्व समूचे इग्लिश राष्ट्रपर था, उतना प्रतिशोध, उतना रक्तपात और उतना उग्र दड, हिंदुस्थानने अपनेपर किये गये अत्याचारों तथा अन्यायोंका न्यायपूर्ण प्रतिकार करनेके लिए १८५७ में, नहीं किया इस बातको मानना ही पडेगा। आयरिश लोगोंके करारे देशाभिमानसे क्रॉम्वेलके तनबदनमें कैसी आग लगती थी, उस अभागे देशमें उसने लहूकी नदियाँ कैसे बहाई, अचलमे पीनेवाले नन्होंके साथ असहाय औरतोंकी निष्ठुर हत्या कर उन्हें खूनके खातमें ही कैसे छोडा जाता था, राष्ट्रके लिए लडनेवालोंही को नहीं, बेकसूर गरीब जनताको भी मूली गाजरकी तरह कैसे काटा गया और इस तरह देश जीतनेके पापी हेतुसे भयकर बदला, और उससे भी भयकर खून खराबी आदिसे क्रॉम्वेलके हाथ कैसे रगे हुए थे, क्या, इसका विवरण इतिहास ही ने दिया नहीं है? दूसरी ओर १८५७ में हिंदुस्थानमे नानासाहब, अवधकी बेगम, बहादुरशाह तथा लक्ष्मीबाईने प्रतिशोधके भयकर आवेगसे भान भूले सिपाहियोंके हथियारोंसे अग्रेजोंकी औरतों तथा उनके बच्चोंकी रक्षा करनेका उदात्त जतन अन्ततक किया। किन्तु कानपुरमे अपने पिता, भाई, बच्चे, पति आदिके प्राण बचानेवाले नानासाहबको उन्हीं अग्रेज औरतोंने क्या पारितोषिक दिया? यही, कि उन्हींका विश्वासघात कर खुफियाका काम किया! और जिन अग्रेज अफसरोंके प्राण हिंदी लोगोंने बचाये थे, उन्हीं अग्रेज अधिकारियोंने अपने उपकारकर्ताके उपकार कैसे चुकाये?

इतिहासमी बड़ी लज्जाके साथ साख भरता है, कि इन अंग्रेज अधिका रियोंने गोरे सैनिकोंके कान, मन्ले की मुठी और भड़कानेवाली शर्तें गढकर भर दिये, उनका नतृत्व कर क्रांतिकारियोंपर हमले किये, विद्रोही सिपाहियोंके यौद्धिक दाँवपेचोंका गुप्त रहस्य गोरे सैनिकोंको बता दिया और जिस भोली देहाती जनताने उनके प्राण बचाये थे उन्हींकी क्रूर हत्या की—इस तरह उपकारका बदला चुकाया! यह अचरज नहीं, सचमुच, अचरजकी चरम सीमा है, कि इस भयकर कृतघ्नताके प्रदर्शनसेमी हिंदी लोगोंने अपने मनकी अभिजात उदारताको रंच भी डिगने न दिया! पीछा किये जानेवाले तथा जान बचाने के लिए सिरपर पाँव रखकर भागनेवाले कई गारोंके प्राण किसानोंकी झोंपडियोंने सुरक्षित रखे थे और देहाती औरतोंने अनगिनत गारे बच्चों और गोरी स्त्रियोंको अपने हाथों काले रंगमें रंगाकर तथा हिंदी वेश पहनाकर दयाभावसे अपने घरमें छिपा रखा था। दिनरात भागनेके कष्टसे विकल, भागके छोरपर पडे कई नौसिखिए कम उम्र अंग्रेज अधि कारियों, तथा मामूली सोल्जरोंकोभी, ब्राह्मणोंने बारबार अपने हाथों दूध पिलाकर पुनर्जन्म प्राप्त कर दिया। श्री फॉरेस्ट लिखित स्टेट पेपर्स पढने से मालूम होगा कि, अंग्रेजोंकी खूनी कटार जिस अवधकी छातीमें गहरी घोप दी गयी थी, उसी अवधके बाशिंदे, हैरान होकर तितर-बितर भागने वाले अंग्रेजोंसे असाधारण उदारतासे, पेश आये! बारबार और जगह जगह ऐसे घोषणापत्र प्रकट कर,—कि 'औरतों और बच्चोंकी हत्यासे अपने पवित्र कार्यमें बाधा पडेगी तथा अपयश मिलेगा'— क्रांतिनेताओंने अपने अनुयायियोंको बताया था या नहीं? नीमच और नसीराबादके विद्रोहियोंने तो गोरोंको जीवित जाने दिया। एक बार कुछ गोरे जान बचानेको भाग रहे थे देहाती उन्हें देखकर चिल्लाने लगे 'मारो फिरंगीको, मारो फिरं गीको'। वहाँ एक परिवारने यह कहकर उनकी रक्षा की—ये निर्दयी नीच अवश्य हैं, किन्तु अभी उन्होंने एक राजपूतका अन्न खाया है, अब उन्हें मार नहीं सकते। *

जो भारतीय मानव स्वभावसे इतना दयालु तथा उदारमना होता है,

* चार्ल्स् बॉल कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड १

जिसके देहातमें अभीतक मानवता, प्रेम, आदर तथा निरीह जानवरों और मानवोंके बारेमें दयाबुद्धिका वातावरण पूर्णरूपसे बना हुआ पाया जाता है, वह गरीब हिंदी मानव देहाती तथा उसके गॉवने १८५७के हत्याकाण्डमे हाथ बॅटाया हो, तो भारतीय राष्ट्रकी भलमनसाहत पर जराभी ऑच नहीं आती, वरच जिस नीच अत्याचारका अन्त कर देनेका प्रण उन्होंने किया था, उस अत्याचार तथा अन्याय ही का हीनतम रूप उससे नंगा हो जाता है। मेकॉलेकी सुप्रसिद्ध व्याख्याका प्रमाण यहॉ ठीक मिल जाता है:—'अत्याचार जितना भीषण हो, उसकी प्रतिक्रिया उतनीही भीषण होना अटल है।"

हॉ, और जिन अपराधोंको भारतके सिर मढा जाता है; उन अपराधोंकी छानबीन कर निर्णय देनेको कौन बैठेगा? तो गोरे! क्रातिकारियोंके कृत्योंके लिए उन्हें दोषी ठहरानेका अधिकार, इस विस्तीर्ण वसुधरामें, यदि किसीको सबसे अखीर पहुॅचता हो तो-अग्रेजोंको। भारतको एक दो हत्याकाण्डोंके लिए अपराधी बतानेवाला इग्लैंड होता है कौन? वह, जिसने 'नील'को पैदा किया? या, वह, जिसने निष्पाप बालबच्चोंसे भरे गॉव के गॉव तलवारसे उजाड तथा आगमें भुनाकर बीरान बना डाले? या भारतके लिए लडे और मगल पाडेकी वीर वृत्तीसे अभिभूत सूरमाओंको फॉसी देनेकी सजा अधूरी सी मानकर उन्हें शूलीके साथ बॉधकर जला दिया, वह इग्लड? या, वह जिसने निरीह देहातियोंको पकडकर टिकटीपर फॉसी दे, सगीनोंसे उनके शरीरकी छलनी कर, शिव, शिव! जिसके केवल उच्चारणसे जीभ अपवित्र करनेकी अपेक्षा गॉववालोंने फॉसी चढना या जीवीत जलना खुशीसे मान लिया होता वह दण्ड—खून चूता हुआ गोमास सगीनकी नोकसे उन गॉववालोंके मुॅहमें ठूॅसा, वह इग्लैड? या, फर्रुखाबादके नवाबके बदनमें, फॉसीके तख्तेपर खडा करनेके पहले, सूअरकी चरबी चोपडनेकी निर्लज्ज आज्ञा, सिपहसालारके हुक्मके बावजूद जिस इग्लैंडने दी वह?* या इस्लामके बदेको कत्ल करनेके पहले उसे

---

* फोर्बस् मिचेल कृत 'रेमिनिसेन्सिस'

सुअरकी खालमें डालकर दम घुटानेका खेल खेलनेवाला इग्लैंड !* या, एसे अन्य असभ्य अपराध तथा अत्याचार, बागियोंके न्याय्य 'प्रतिशोध' के नामपर कराइनेकी निर्लज्जता जिसने दिखायी वह इग्लैंड ! कहते हैं 'न्याय्य प्रतिशोध'! प्रतिशोध ! किसका ? सौ सालोंतक अन्याय पूर्ण शोषणकी चक्कीमें पिसकर अपने देशका सर्वनाश होनेसे प्रक्षुब्ध बन 'प्रतिशोधकी प्रतिज्ञा करनेवाले 'पांडे' लागोंका ? या जिन्होंने इस भीषण चक्कीमें गति दी उन फिरंगियोंका !

स्वदेशकी यन्त्रणाओंको देख एकाध व्यक्ति या एकाध विशेष वर्गको तीव्र विषाद महसूस हो रहा था, सो बात नहीं है। हिंदु मुसलमान, ब्राह्मण शूद्र, क्षत्रिय वैश्य, राजा रंक, स्त्रीपुरुष, पण्डित मौल्वी, सैनिक, पुलिस—इन भिन्न भिन्न धर्म, भिन्न भिन्न पंथ और कई भिन्न व्यवसायोंके, लोगोंने स्वदेशका बुरा हाल सहते रहना असम्भव हो जानेसे सब मिलकर, अकल्पनीय थोडे अवसर में, भयानक प्रतिशोधका बवंडर खडा किया। इतना राष्ट्रव्यापी था वह आन्दोलन! इस एकही बातसे मालूम होगा, कि जिस पराकाष्ठाको जुल्म पहुँच गया था, उसी पराकाष्ठाका अपने प्रतिकारको पहुँचानेका यतन किया गया था। विदेशी शासन की छाँवमें व्यक्तिगत रूपसे मोटा ताजा बना सरकारी कर्मचारियों का वर्ग भी उस समय शासकों की ओर न रहा था। एक अंग्रेज लेखक लिखता है -सरकारी नौकरोंमें होनेवाले फदरियों की तालिका बनाने बैठें तो शायद् विद्रोही प्रांतोंके सभी कर्मचारियोंके नाम दर्ज करने पडेंगे। इसतरह क्रांतिकी आग चहुँ ओर फैली थी। उस समय यदि किसीको गाली देनी हो तो उसे 'राजभक्त,' या 'राजनिष्ठ' के आधार पर जो नौकरी पाते थे उन्हें 'स्वधर्म द्रोही' 'स्वदेश द्रोही' माना जाता था। जो सरकारी नौकरीमें टिके रहते उन्हें जातिसे बाहर कर दिया जाता। उनसे 'रोटीबेटी' व्यवहार कोई न करता। ब्राह्मण उनके घर पूजापाठ करनेसे इनकार करते। यहाँतक कि उनका चितामें अग्निसंस्कार करनेसे भी इनकार किया जाता। विदेशियों—फिरंगियों—की सेवा करना मातृहत्यासे

---

* रसेलकी डायरी

अधिक पाप माना जाता। इसतरह समाजके हर स्तरमें चक्कर आ गया था, प्रचण्ड खलबली मच गई थी। जुल्म और अन्यायकी पराकाष्ठा ही क्या यह चिन्ह नहीं था? *

इस प्रकार, ऊपरसे शान्त दीखनेवाला यह ज्वालामुखी पेटमें खौलकर धड़ाका होनेकी बिंदुतक आ पहुँचा था। क्रान्ति का संदेसा पहुँचानेवाली चपातियाँ आकाशमार्गसे संचार कर, थोड़ेही समयमें शुरू होनेवाले महा-समारोहमें क्रियात्मक सहायता देनेके लिए हर एक को निमंत्रण दे रही थीं। और इस आवाहनका सम्मान कर परम पवित्र साधनाकी सिद्धि के लिए दशोदिशाओंसे युद्धदेवताओं का झुण्ड वेगसे भारतमें आ रहा था। इस महा-समारोह के लिए आवश्यक सभी बाजे, मारूबाजे, युद्धघोष, वीरगर्जना सब कुछ मंडपमें व्यवस्थासे सुशोभित था। ज्वालामुखीकी सतह पर जुल्म और अन्याय निर्भीक गर्व के साथ अकड़ते हुए घूम रहे हैं। पहाड़की सतह मुलायम हरियालीसे ढकी हुई होनेसे कितनी भी शान्त और मनोहारी मालूम होती हो, उसके उदरमें क्या ही प्रचण्ड खलबली—उथलपुथल—हो रही है! सावधान! वह शुभ मुहूरत अब आ लगा है। एक क्षण की देर है—फिर बिजलीकी कड़क तथा ज्वालाओंकी लपटों एवं उल्कापात से सारा वायुमंडल कौंध उठेगा। देखो, देखो, आगके स्तंभ के स्तंभ ऊपर उफान रहे हैं। रक्तधाराकी मूसलाधार वर्षा पृथ्वीपर हो रही है! आर्त चीत्कारोंकी ध्वनिमें तलवारोंकी खनखनाहट मिली हुई है! भूत—प्रेत नाच रहे हैं! वीर सिंहनाद कर रहे हैं! ठंढी हरियालीसे ढँकी

---

* (म. ३८) विद्रोहके परिणामस्वरूप लगभग हर एक का व्यक्तिगत स्वार्थ और पहले स्वामीके लिए प्रेम साफ बह गया था। ऐसी हालतमें सरकारसे वफादार रहना कैसे कोई सह सके? सब जानते है कि हमारी नौकरीमें जो कुछ थोडे सिपाही रहे उन्हे जातिसे बहिष्कृत माना जाता—केवल भाईबंदोंद्वारा नहीं, उनकी सारी जातिसे। वे कहते है कि वे अपने घर जानेकी हिम्मत नहीं कर पाते, क्यों कि उनकी निंदा ही नहीं होगी तथा भाईचाराही नहीं रहेगा; बल्कि उन्हे जानका खतरा रहेगा —रेवरड केनेडी पृ. ४३

ज्वालामुखीकी सतह अब फट रही है! अब यह भी जगह फटेगी! अरे! यह क्या! अब तो उसमें हमारी दरारें पड़ी हैं! और अब तो, शायद, प्रलयही होनेवाला है!

काठियावाड़ में कुछ स्थानोंमें एक अजीब जलप्रवाह होता है, जिसे 'विगाड़' कहते हैं! इस खातेकी सतह खुर्री भूमिके समान दीख पड़ती है, जिससे अनजान आदमी बहुतसे उस भूमिपरसे चलने लगता है। किन्तु एक दो डग चलते ही यह खुर्री सतह हिलने लगती है, चलनेवाला अपने को सम्हालने के लिए अपना पैर मजबूत रखनेकी चेष्टा करता है। पर, तब भूमि गायब होती है, और बिचारा यात्री पानीकी धारामें डूबने लगता है! क्रांति का सोता भी भारतभर में इसी 'विगाड़' के समान गुप्तरूपसे फैला हुआ था। जुल्म और अन्याय, सतहके काले रंगसे, निश्चयसे मानते थे, कि बिना पूँचा किए अन्याय सहनेवाला यह यही हमेशा का भूपृष्ठ है। जुल्मी अन्याय ने उसपर पाँव रखा नहीं, और काला भूपृष्ठ थरराने लगा नहीं। तब जुल्मी अन्याय ने अपनी सत्ता के मदमें इस मायावी भूपृष्ठपर बलपूर्वक कदम रखा! किन्तु सावधान! भूपृष्ठ गायब होकर यहीं फनिल, खौलता हुआ, तथा लहरें मारता हुआ खून का अथाह दह फैला पड़ा है। अभागे जुल्म और अन्याय! चाहे जहाँ पाँव धर, कड़ा भूपृष्ठ तुझे कहीं महसूस न होगा। कमसे कम इतना तो अच्छी तरह तुझे जँचना चाहिये, कि इस काली सतह के नीचे लालीलाल खूनकी धारा बह रही है! और अब भी, हिम्मत हो तो, कान फाड़ देनेवाले ज्वालामुखीके विस्फोटका यह धड़ाका कान खोलकर सुन ले!

खण्ड दूसरा समाप्त

वीर सावरकरजी

वीर सावरकरजीकी अनूठी पुस्तक

शीघ्रही प्रकाशित होगी।

हिंदुत्वकी विजय | दर्शित करनेवाला उपन्यास

— दिसंबरमें प्रकाशित होगा —

काला पानी

* अवमानका जीवन, उस कैदखानेसे भी मुक्ति पानेका कैदियोंका यत्न, वहाँके निवासियोंकी सहानुभूति आदिका रोमहर्षकारक वर्णन इस उपन्यासमें आप पढेंगे।

* भीषण किन्तु साथ साथ आकृष्ट करनेवाली मालतीकी कहानी पढकर आप आश्चर्य मुग्ध हो जाएँगे।

मूल्य आदिके लिए लिखिये।

अ वि गृह प्रकाशन, पुणे २

हमारा आगामी प्रकाशन

सावरकर-चरित्र

अर्थात्

लगभग ५० वर्षोंका क्रांतिकारियोंका इतिहास

लेखक—श्री. शि. ल. करंदीकर
एम्. ए एल्एल्. बी., एम्. एल्. ए.

अनुवादक – ग. र. वैशंपायन

इग्लैड फ्रान्स, जर्मनीमें हिंदी क्रातिकारियोंने जो महान् कार्य किये, उसका प्रामाणिक ब्योरा इस ग्रथमें पढिये।

विशेषता—श्री. सावरकरजी की कविताओंका कवितामें अनुवाद। डिमाई आकारके लगभग ६०० पृष्ठ।. अनेक दुर्लभ चित्र।

बम्बई विद्यापीठने मूल मराठी ग्रथको सर्वोत्तम ग्रथके नाते पारितोषिक दिया है।

प्रकाशकः—

निर्मल साहित्य प्रकाशन

६९३ बुधवार पेठ, पुणें २.

अ ग्नि प्र ल य

"१८५७ में भारतमाता, सचमुच, क्रोधाग्नि से जल उठी और सारे संसार के कानफाड़नेवाला भयानक धमाका हुआ! जिस तरह अग्निबाण आकाश में फेंका जाता है, उस का विस्फोट हो जाता है; उस से रंगबिरंगी तेजाकृतियाँ बाहर फेंकी जाती हैं; उसी तरह क्रांति के जिस अग्निबाण से तप्त लहू, शस्त्रास्त्र और चिंगारियाँ बाहर उठीं। कितना विशाल यह अग्निबाण! मेरठ से विन्ध्याचल तक लम्बा और पेशावर से डम डम तक चौड़ा! देखो उसे सुलगा कर छोड़ा गया। आग की लपटों ने समस्त दिशायें व्याप्त कर दीं। हजारों वीर जूझते हैं; गिरते हैं; शान्त हो जाते हैं। हर स्थान में युद्ध और प्रलय! सचमुच ज्वालामुखी का भयंकर प्रलय!!"

"—और बाबा गंगादास की झोपड़ी के पास धधकती झाँसीवाली लक्ष्मी की यह चिता। १८५७ के स्वातन्त्र्यसमर के ज्वालामुखी के प्रलय की यह अन्तिम ज्वाला!!

खण्ड तीसरा

अग्निप्रलय

अध्याय १ ला

दिल्ली का संग्राम

दिनांक ११ मअी को दिल्लीने स्वाधीन होने की घोषणा की; और जिस भावपूर्ण चाव से जो प्रचण्ड तूफान अुठा अुसे सँवार कर सुगठित क्रांति का रूप देने में वह अुलझी रही। मुगलों के पुराने सिंहासन पर बादशाह को बिठा कर, जनता ने अैसा बलवान केन्द्र निर्माण किया जिस की अुज्ज्वल अैतिहासिक परंपरा के कारण ही स्वाधीनता का आंदोलन तूल पकड सकता था। किन्तु बूढे बहादुरशाह को सिंहासनपर बिठाने का रहस्य न भूलना चाहिये। बहादुर शाह को बादशाह बनाने का मतलब यह नहीं था, कि मुगलों की पुरानी सत्ता, पुरानी प्रतिष्ठा, पुरानी परंपरा का अुसे अुत्तराधिकारी बनाया गया।

नहीं, बहादुरशाह को भारत का सम्राट बनाया गया—मुगल सम्राट नहीं। क्यों कि मुगल शासकों को जनताने—भारतीय जनताने—अपनी अिच्छा से नहीं चुना था। मुगल राज भारत पर केवल बलपूर्वक बिठाया गया था, उसे विजय के नाम से सम्मानित किया गया, और विदेशी साहसिकों

की प्रबल टोलीने तथा यहाँ के अपना अुल्लू सीधा करनेवाले लोगोंने अुसे बनाये रखा था।

अैसे सिंहासनपर थोडे ही बहादुरशाह को बिठाया गया था? छि. असम्भव! **क्यों कि, अैसे सिंहासन जीते जाते हैं, यों ही दान में नहीं मिलते।** और फिर से मुगल–राज प्रस्थापित करना तो आत्मघात का काम होता। क्यों कि, तीन चार सदियों में जिन सैंकडों हिंदु हुतात्माओं तथा अन्य वीरों का रक्त बहा, वह फिर बेकार सिद्ध हो जाता। अिस्लाम की अुद्योन्मुख शक्ति अरब देश के रेगिस्तान से बाहर चली तब से अुसे और कहीं भी प्रतिकार न हुआ, पूरब और पश्चिम में बेरोक देश पर देश जीतती चली जाती थी। अनेक देश तथा जनसंघों ने अिस्लाम की अिस आक्रमक शक्ति के पाँव पकडे और शरण माँगी। किन्तु अबतक बेरोकटोक बढनेवाली अिस्लामी लहर को जीवट, आग्रह तथा निर्भिक धीरज से सबसे पहले भारत ही में प्रतिबंध हुआ, अिसका जोड अन्य देशों के अितिहास में नहीं है! यह झगडा पांच सदियोंसे अधिक चलता रहा। अपने प्राकृतिक अधिकारों पर हुअे विदेशी आक्रमण के विरोध में पाच सदियों तक हिंदु सभ्यताने प्रतिकारका झगडा किया। पृथ्वीराज की मृत्यु से ठेठ औरंगजेब की मौत तक यह लडाअी अविराम जारी रही। अिस प्रकार यह रक्तलांछित लडाअी लगा तार चल रही थी। तब भारत के पश्चिमी पहाडों से अिस हिंदु जाति के गौरव के लिअे खेत रहे अनगिनत वीरोंकी साधना की पूर्ति के लिअे एक हिंदुशक्ति खडी हुअी। पुणे नगर से हिंदु पेशवा श्री सदाशिवराव भाअू प्रबल सेना के साथ चल पडे और अुन्होंने दिल्ली के मुगली तख्त की धज्जियाँ अुडाकर हिंदु सभ्यता की श्रेष्ठता प्रस्थापित की और आज तक के अन्याय का बदला लिया। विजेता ही को जीतने से हिंदुस्थान फिर से स्वतंत्र हुआ और गुलामी तथा हार के गहरे गडे काँटे को अुखाडने से हिंदुस्थान हिंदुओं का बन गया।

और अिसी से भारतीय सिंहासन पर बहादुरशाह को बिठाने में मुगल सत्ता की फिर से स्थापना न थी। हिंदु मुसलमानों का वह कदीमी झगडा

अब नष्ट हो चुका था। जनता की अिच्छा—आकांक्षा को ठुकरा कर—और अिसीसे अन्यायपूर्ण—चलनेवाला राज समाप्त हो चुका था। और राष्ट्र की जनता को पूरा अधिकार था कि अपनी अिच्छासे अपना सम्राट चुने। यही बहादुर शाह के सम्राट् पद का रहस्य था। क्यों कि, हिंदु और मुसलमानों, नागरिकों तथा सैनिकों ने—सारी जनता ने—अपनी अिच्छा से बहादुरशाह को स्वातंत्र्य-समर के नेता तथा सम्राट चुना था। अिस से ११ मअी को सिंहासन पर विराजमान आदरणीय बूढा बहादुरशाह कोअी अकबर या औरंगजेब के पुराने परंपरागत सिंहासन पर चढा मुगल न था, वह तो विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध स्वाधीनता के लिअे जूझनेवाली जनता का अपनी अिच्छा से चुना सम्राट् था। और अिसी लिअे भारत के प्रमुख नगरों, अनेक सेना—विभागों और राजा महाराजाओं से दिल्ली के सम्राट् पर अभिनंदनों की बौछार हुअी। विप्लवकारी पंजाब, अवध, नीमच, रुहेलखण्ड तथा अन्य स्थान के सैनिक विभागों ने अपने ध्वज आदि चिन्हों के साथ आ कर सज से सम्मानित क्रांति नेता बहादुर शाह के सिंहासन के चरणों में अपनी नम्र सेवा अर्पित की। कितनी ही पल्टनों ने; दिल्ली के मार्ग पर चलते हुअे, लूटा हुआ अंग्रेजी खजाने का धन, अिमानदारी से, दिल्ली के सम्राट् के कोष में भर दिया। अुसी समय, यह घोषणा की गयी है, कि फिरंगी सत्ता का अन्त हाकर सारा देश दास्यमुक्त, स्वाधीन बना है। अिसी घोषणा में यह चेतावनी भी दी गयी थी 'प्रारंभ ही से असाधारण यश को प्राप्त करनवाले अिस क्रांति का अन्त यशपूर्ण बनाने के लिअे हरअेक को चाहिये कि वह मानवता के योग्य प्रतिकार करने को सिद्ध रहे।' साथ साथ यह भी बताया गया था, कि 'अिस स्वाधीनता संग्राम में लड़ना हरअेक का पवित्रतम कर्तव्य है और जनता उसमें कड़ी धर्मनिष्ठा तथा कठोर निश्चय के साथ हाथ बँटावे। हम अेक मात्र लक्ष्य दे सकते हैं और वह है धर्म। जिस किसी को परमात्माने मनोधैर्य तथा अिच्छा दी है, वह जीवन तथा संपत्ति को त्याग कर अपने पवित्र धर्म की रक्षा के काम में हमारे साथ आवे। जनमंगल के लिअे जनता अपने व्यक्तिगत स्वार्थ पर पानी छोड दे, तो अंग्रेज तुरन्त अिस देश से निकाल बाहर कर दिये जा सकते हैं।

ध्यान रहे, मौत का काल आनेतक कोअी नहीं मरता, और जब वह काल आ जाता है तो, चाहे जो करो, अुस से कोई नहीं बचता। सहस्रों, लाखों आदमी है जो, महामारी या अन्य कअी बीमारियों के शिकार होते हैं, किन्तु धर्मयुद्ध में मृत्यु आना तो अनोखी हुतात्मता—अपूर्व भाग्य की बात—है। अिस से भारत से फिरंगियों को भगाना या मार डालना हर भारतीय का कर्तव्य है।"

यह अुद्धरण भिन्न भिन्न समय में प्रकट हुअे अवध तथा दिल्ली के घोषणा—पत्र के समान और अेक घोषणा—पत्र से लिया गया है। अिसी प्रकार का अेक नया घोषणा—पत्र दिल्ली ही के सिंहासन से घोषित किया गया था और भारतभर में प्रचारित हुआ था। सुदूर दक्षिण के प्रदेश में भी बाजार में तथा सेना में अिस घोषणा—पत्र की प्रतियाँ बहुतेरों के हाथ में दिख पडती थीं। वह घोषणा- पत्र यों था'—' समस्त हिंदु—मुसलमान बांधव गण ! केवल धार्मिक कर्तव्य जान कर हम जनता के साथ है। अिस समय जो कोअी कायरता दिखायगा और पाजी अंग्रेजों के वचनों पर भोलेपन से विश्वास करेगा अुसे तुरन्त दण्ड दिया जायगा, और अंग्रेजों का विश्वास करने से लखनअू के राजाओं की जो गत हुअी वही अुस की होगी। और अेक बात लोगों को अवश्य करनी चाहिये, वह महत्त्वपूर्ण है। सब हिंदु—मुसलमान मिलकर, किसी अेक आदरणीय नेता की आज्ञा का पूरी तरह पालन कर, अैसा बर्ताव करें, जिससे सब कुछ व्यवस्थापूर्वक चले और गरीब प्रजा सुखी हो कर अुन्नति करे। हर अेक को चाहिये कि अिस घोषणा—पत्र की अधिकसे अधिक प्रतियाँ बनावे और चुपचाप, अक्ल से काम ले कर, चौराहों में चिपका दे, और अिनका प्रसार होने के पहले तलवार का अुपयोग करे!"

अंग्रेजी शासन के विरुद्ध युद्ध—घोषणा करते ही, दिल्ली के क्रांतिकारी आवश्यक शस्त्रास्त्र तथा गोलबारूद बनाने के काम में लगे। तोपों, बंदूकों और अन्य छोटे मोटे हथियारों को बनाने के लिअे अेक विशाल अुद्योगालय शुरू कर दिया गया। अुसकी निगरानी के लिअे कुछ फ्रान्सीसियों को नियुक्त किया गया। गोलाबारूद के दो तीन बडे कोठार खोले गये। रातदिन खपने-

वाले लोक कभी मन स्फोटक बारूद हर दिन बनाते। देशभर के लिये गोकशी को बंद करने की आज्ञा जारा हुआी। अेक बार कुछ सिरफिरे मुसलमानोंने जिहाद पुकार कर हिंदुओं को अपमानित करना शुरू किया। तब, सब धुर वारियों को साथ लेकर बादशहा हाथी परसे सारे शहरभर में घूमे और साफ शब्दों में लोगों को समझाया, 'जिहाद केवल फिरंगियों के विरुद्ध है'। यह भी घोषित किया गया कि गोवध करते कोअी मिल जाय, तो अुसे तोपसे अुडा दिया जाय, या अुसके हाथ पाँव काट दिये जायँ। कुछ युरोपवाले भी अंग्रेजों के खिलाफ, क्रांतिकारियों से मिल कर, लड रहे थे।

बुंदेल-की-सराय की लडाअी के बाद, अंग्रेजों ने जिस युद्धक्षेत्र को चुन कर पैर जमाया था, वह यौद्धिक हलचलों की दृष्टि से बहुत सुयोग्य था। दिल्ली के परकोटे के अेक ओर के पास से जमुना नदी से चार मील दूरी तक फैली पहाडी (अंग्रेज अिसे 'रिज' कहते थे) अुस की प्राकृतिक अूचाअी के कारण युद्ध के लिअे बडी काम की थी। आसपास के प्रदेश की सतह से यह पहाडी ५०–६० फीट अूंची थी, जिस से तोपों की लगातार मार चालू रखने को अच्छी जगह थी; और दूसरे, अिस पहाडी की पिछली ओर जमुना की चौडी नहर थी। अिधर साल भरमें जोरों की वर्षा होनेसे जून में भी अुस नहर में गहरा पानी था। पिछली ओर होने से अुस ओर से शत्रु का भय न था। हाँ, दिल्ली के क्रांतिकारी जिस प्रकार आगे से घूम रहे थे अुन के साथ साथ पंजाबवाले यदि पिछेसे हमला करते तो अंग्रेजों की नाक में दम हो जाता, किन्तु दुर्भाग्य से पंजाबने सिरदिशों के साथ होने की घोषणा की थी। नाभा, जींद और पटियाला के नरेशोंने पंजाब के सब महत्त्व पूर्ण मार्गों की रक्षा कर, पंजाब से अंग्रेजों को रसद तथा कुमक पहुँचाना आसान बना दिया। भारत के दुर्भाग्य से यह संजोग अंग्रेजों के लाभ में था, जिस से अुन की अनुकूलता अधिक बढती गयी। छोटी मोटी पहाडी शृंखला, पीछे शत्रु की तोपों की पकड में न आनेवाला सेना का शिबिर बनाने योग्य विशाल पठार, साथ साथ शत्रु के गुप्तचरों के अुपद्रव से दूर जगह, बिलकुल पास बहनेवाला विपुल पानी, पंजाब के वफादार नरेशोंने अपने खर्च से जिनरल

पहरा दे कर सुरक्षित रखे पजाब के यातायात के महत्त्वपूर्ण मार्ग, आदि सब प्रकारसे अनुकूल स्थिति से जिस का आत्मविश्वास फूला था वह ब्रिटिश सेनापति बर्नार्ड, अपने अन्य सहयोगियों के साथ कहने लगा 'बस, अब दिल्ली क्या है; अेक दिन में लेंगे।'

और सचमुच जब दिल्लीपर दखल करना अेक दिन का काम है, तब दो दिन क्यों लगाये जायँ! तो फिर अिस पापी और राजद्रोही दिल्ली को मटियामेट करने के लिअे अिसी क्षण अिन अंग्रेज सैनिकों को धावा बोल देने की आज्ञा हम क्यों न दें? पजाब तो हमारी सेना की रीढ है, वह जब दृढ है तब दीर्घकाल तक घेरा डालकर दिल्ली जीतने की दुबली नीति का अवलंबन हम क्यों करें? अिस नीच दिल्ली नगरीपर सहसा टूट कर, अेक ही धडाके में अुसे तहस नहस कर डालना, क्या, अधिक अच्छा न होगा? चलो, अपनी सेना के दो भाग करें! अेक हिस्से के सैनिक लाहौरी दरवाजे को तोड दें और दूसरा विभाग काबुली दरवाजा अुडा देगा, फिर दोनों विभाग अिकट्ठा होकर नगर के मार्गों में घुस पडें और अेक अेक मोर्चा हथियाते हुअे झट से सीधे किलेपर टूट पडें! विलबरफोर्स, ग्रेटहेड और हडसन जैसे वीर अैसी साहसिक और धडाकेबंद चढाअी के लिये बहुत बेचैन हो अुठे हैं और अिस मुहीम को सफल बनाने का बीडा भी अुन्होने अुठाया है। फिर देरी काहे की? और, सचमुच, १२ जून को जनरल बर्नार्डने चढाअी की आज्ञा गुप्तरूपसे दी! कौन कहा अिकट्ठे हों, रात के अंधेरे में कौनसे दस्ते आगे बढें, दाअें बाअें पासों का नेतृत्व कौन करें आदि सब प्रबंध पहलेसे निश्चित हो चुका था। अिस तरह पूरी सिद्धता होनेपर रात को दो बजे निश्चित स्थान पर, याने सचलन भूमिपर, गोरी सेना आ खडी हो गयी। कल दिल्ली के शाही महलही में रातको आराम करने की निश्चिति हर सैनिक को थी, जिस से आज की नींद के कुछ घंटे खराब हों तो अुसकी शिकायत मूरख हो वही करेगा। किन्तु, हाय, अिस समय भी अंग्रेजों के दुर्भाग्य का पलडा भारी रहा। क्यों कि, अैन मौकेपर, सेना का कुछ हिस्सा गायब हुआ मालूम पडा। ब्रिगेडिअर ग्रेव्हज् को अिस तरह दिल्लीपर चढाअी करना अुतावलेपन सा

मालूम पड़ा और दूसरोंने तो यहाँ तक संदेह प्रकट किया कि अिस तरह की योजना भारतभर के आन्दोलनों को हानि तो नहीं पहुँचायगी ? मतलब, सीधी चढ़ाओ और तुरन्त विजय के जो सपने गोरे सैनिक देख रहे थे, वे दिल्लीके शाहीमहल में सच निकलने के बदले, अब रातको शिविर के सार्टोपर छट पटाने तक ही सीमित रहे।

दूसरे दिन सबेरे विल्बरफोस और ग्रेटहेड ने फिरसे हमले की योजना बनायी और सेनापति बर्नार्ड के आगे पेश की। बर्नार्ड क्रिमिया के युद्ध में नामवरी-खास प्रसिद्ध योद्धा था; फिर भी हमें संदेह होता है कि वह ढुलमुल नीति तथा हिचकिचाहट का आदी होगा। अुसने १४ जून को मुख्य मुख्य अधिकारियों की युद्धसमिति की बैठक बुलायी और यहाँ चढ़ाओ की योजना पेश की। ग्रेटहेड ने आवेशपूर्ण समर्थन किया किन्तु समिति को जीत की आशा न दिखायी दी, बल्कि समितिने यह हठ पकड़ा की योजना के अनुसार चढ़ाओ कर जहां मिला भी, फिर भी प्रत्यक्ष हार जितनी बल तथा प्रतिष्ठा की हानि होगी। और, हाँ, सीधी चढ़ाओ से दिल्लीपर दखल हो जाय, तो फिर आगे क्या ? अुसे अपने हाथ में बनाये कैसे रखें ? मार्ग मार्ग में, घर घर से धड़कनेवाली क्रांतिकारियों की तोपों के सामने गोरे सैनिक कहाँ जीवित रहेंगे ? बर्नार्ड अिसका निश्चित अुत्तर दे न सकता था। अिस सारी चर्चा के बाद चढ़ाओ के बारे में भिन्न भिन्न रायें होने ही में सब सहमत हुओ। और अिस तरह १५ जून की रात के 'सपनों' के समान सारी योजना केवल विचार ही में बंद रख कर १६ जून को फिर एक अेक बार समिति की बैठक बुलाओ गयी और फिर अेक बार भिन्न मत तथा हिचकिचाहट का प्रदर्शन हो कर बैठक बंद हुओ। अिधर अंग्रेज जोरदार और साहसपूर्ण चढ़ाअियों करने के मनसूबे गढ़ रहे थे, अुधर दिल्ली में भी नया खून, नये हृदय, नया सैनिकबल-सब का सैलाब सनसना रहा था; और क्रांतिकारियोंने भी अबतक की बचाव की नीति तज कर, चढ़ाओ का प्रारंभ कर, भिन्न भिन्न पार्श्वों से ब्रिटिश सेना-पर सफल हमले जारी किये थे। भारतभर में विद्रोही बने सैनिक दस्ते अपने साथ शस्त्रास्त्र, गोलाबारूद और खजाना लेकर दिल्ली

को तॉता बॉध कर आ रहे थे, जिस से युद्ध-सामग्री तथा सैनिक संख्या की चिंता करनेका क्रांतिकारियों को कोअी कारण न था। अिस दशा में क्रांतिकारक सेना चढाअी की नीतिपर चलकर, अंग्रेजी सेना को अेक कदम भी आगे बढने से रोक कर अुसे अुसकी जगह पर बंद कर सकती थी। कभी जोरदार हमला कर, कभी घमासान मुठभेड कर, कभी मामूली चढाअी कर, अपनी किसी तरह विशेष हानी न होने दे कर, क्रांतिकारी दस्ते फिर शहर में लौट आते। अिस सतानेवाले युद्धतंत्र से अंग्रेजों में डर समा गया जिस से किसी प्रकार से आक्रमण की हिम्मत वे न कर सकते। १२ जून को, क्रांतिकारी दिल्ली नगर से बाहर निकल आर झाडझखाड़ तथा नीची भूमिके गढों से होकर छिपे छिपे अंग्रेजों के शिबिर से लगभग ५० फीट पर जा पहुँचे और अंग्रेजों के आहट पाने के पहले अुन पर हमला कर बैठे। अंग्रेजों के कअी तोपची अिस कशमकश में काम आये। श्री. नॉक्स को तो एक सिपाहीने पहली ही गोली से अुडा दिया। अिसी समय दूसरे क्रांतिकारी दस्तेने अंग्रेजों की पिछाडी पर धावा बोल दिया और वहाँ भी घमासान लडाअी हुअी। अंग्रेजों के दाहिने पासे पर भी 'हिंदुराव की कोठी' पर सिपाहियोंने जोरदार हमला किया। "अिस बार वह हिंदी अस्थायी टुकडी, जिस की वफादारी पर हमे बेहद भरोसा था, क्रांतिकारियों पर चढ गयी। किन्तु अुन बदमाशों का अिरादा जब हमें मालूम हुआ तब हमारी तोपों के मुँह अुनकी ओर घूमे और यह देख कर वे असीम अुतावली से हट गये और तोपों की मार से बचे।"* यहाँ का कमांडर मेजर रीड कहता है, "ये पैदल सैनिक अिस तरह आगे घुसे, मानों बडा जोरदार हमला कर रहे हों, किन्तु देखता क्या हूँ, कि ये दुश्मनों से मिल रहे हैं, मेरा तो कलेजा मुँह में आ गया। परन्तु मैने अुनपर तोपें दागने की आज्ञा दी; किन्तु ये बदमाश कब के दूर भाग गये थे, अुनसे शायद पांच छः भी न मारे गये हों।"

अिस प्रसंग के बाद हर सबेरे क्रांतिकारी सेना बाहर जा कर हमला करती और शाम को कुशल से लौट आती। दिल्ली में बाहर से आये हुअे

---

* के कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड २, पृ ४११.

दस्तों को, आने के दूसरे दिन हमले के लिये भेजा जाता। १२ जून को फिर से 'हिंदुराव की कोठी' पर धावा किया गया। १२ जून को क्रांतिकारियों में मिले ६० वी पलटन के दस्ते जिसमें खास अफसर थे। मेजर रीड कहता है "मैट्कॅफ रोड से सीधे अुन सैनिकों के दस्ते चढ आये। जिस चढाओ का नेतृत्व सरदार महाबुरसिंग का दिया गया था। वह बाजें को घूमने की सोच रहा था, जिससे वह अपने आदमियों को दूरी पर रहने को कह रहा था। जिस लडाओ में अुसने बहुत धीरता दिखायी। सरदार महाबुर को अुस के अर्दली लाछसिंग ने गोली से अुडा दिया, मने अुसकी छातीसे "रिबंड ऑफ अिंडिया' अुतार ली और मेरी स्त्री को भेज दी।" १७ जून को क्रांतिकारियों ने अीदगाह की कोठी पर तोपों के मोर्चे बनाये, जिस से 'रिज' पर तोपों से सख्त बौछार की जा सकती थी। यह देख कर हेन्री टॉम्सन और मेजर रीडने क्रांतिकारियों के दोनों पार्श्वों पर बहुत जोरदार हमले किये और काफी दबाव डाला; किन्तु अुस कोठी में अटके मुट्ठीभर क्रांतिकारी हार का नाम न लेते थे। जब वे गोलियाँ न चला सके तब अुन्होंने बंदूकें फेंक दीं और तलवारें सँवार कर अंग्रेजों पर बडे आवेश से टूट पडे। अुनमें से हर एक अपने अपने स्थान पर लडते लडते मारा गया; किन्तु तब तक दुश्मन अीदगाह में पाँव न धर सका।

१८ जून को नसिराबाद के विद्रोही आ पहुँचे, आते ही धारा सामान अुन्होंने नेताओं को सौंप दिया। स्वयं सम्राट् ने अुन के प्रतिनिधियों को अपने राजमहल में निमंत्रित कर अुन से मिला। दरबार में अिन प्रतिनिधियों ने २० जून को अंग्रेजों पर चढ जाने की सौगंध ली। अुस के अनुसार २० जून को सबेरे चढाओ करने के लिये क्रांतिकारी सेनायें दिल्ली के बाहर आती दिखायी पडीं। अंग्रेजों की पिछाडी पर हमला करने के अिरादे से सब्जी मण्डी हो कर सैनिक छिपे छिपे गये, और अंग्रेजों को अिसकी कानोंकान खबर तक न मिली। अुन्हों ने गोलियों की झडियाँ लगा दी और अंग्रेजों पर जोरदार हमला किया। स्कॉट, मनी, टॉम्सन् और अन्य अंग्रेज अधिकारियों ने तोपों से आग अुगल कर चढाओ रोकने की चेष्टा की। किन्तु भारतीय सैनिक जितने

जीवट से चढाओी कर रहे थे, कि अुन्हे अटकाना दूभर था। नसिराबाद का तोपखाना तो अैसी संहारक आग अुगलते आगे बढा, कि बहादुर टॉम्बस भी रुवासा होकर चिल्लाया "डॅली! दौडो, जलदी दौडो, नहीं तो मेरी तोपें अब दुश्मन के हाथ लगीं समझो!" पंजाबवाली हिंदी सेना के साथ डॅली अुस की सहायता करने दौडा; किन्तु थोडेही समय में अेक क्रांतिकारी की गोली अुस के कंधे में घुसी और अुसे लौटना पडा! सायंकाल का समय हुआ; सिपाही निश्चितरूप से विजयी रहे। फिर से अुन्हों ने हमला किया और लगभग ब्रिटिश तोपें हथिया लीं। ९ वी लान्सर पलटन तथा देशद्रोही पंजाबी पलटन के दस्ते क्रांतिकारकों पर बार बार चढ आते किन्तु हर बार मुँह की खा कर झट पीछे हट जाते। रात हुअी तोभी भीषण रण जारी था। अंग्रेज भी डट कर लडे और मुश्किल से अपनी तोपें बचा पाये। लॉर्ड राबर्टस् का कहना है, 'बागियों ने हमारे पाँव अुखाड दिये थे।' होप ग्रॅट की सवारी का घोडा ढेर हो गया, ग्रॅट स्वयं घायल था और अुसको अेक मुसलमान सवार न अुठाता तो वह भी मारा जाता। आधी रात तक यह लडाअी जारी रही। फिर भी क्रांतिकारियों को रोकना दूभर होने से अंग्रेज रणभूमि से हट गये। और ब्रिटिश शिबिर की पिछाडी में अेक महत्त्वपूर्ण मोर्चा विजयी क्रांतिकारियों के कब्जे में पूरी तरह आ गया।

अुस रातमें, ब्रिटिश कमांडर को चिंतासे नींद हराम हो गयी, क्यों कि, अितनी बहादुरी से जीता हुआ मोर्चा यदि क्रांतिकारी रख सके तो ब्रिटिशों का पंजाबसे यातायात का मार्ग पूरी तरह तोड देंगे। अिस संकट को टालने के लिअे तडके से ही विजयी शत्रु का मुकाबला करने की सिद्धता अंग्रेज कर रहे थे। किन्तु अिधर गोलाबारूद तथा सैनिकों की कमी से क्रांतिकारी दिल्ली लौट गये थे और खाली जगह अंग्रेजों ने जीत ली। अिधर अपनी जीत तथा सैनिकों के डट कर पीछा करने के संवादों से अुत्साहित दिल्ली के नागरिकोंने, नगर के परकोटे पर अेक बडी लम्बे पहुँच की तोप चढाकर अंग्रेजों की छावनी पर लगा तार गोले फेंकना जारी रखा। दिल्ली के सैनिकों के अिन हमलों से अंग्रेज किसी तरह की आक्रमक हलचल कर नहीं पाये, बचाव करने ही में लगे रहे।

जिस भूमि को उस समय उन्हों ने सँम्हाला था उसे बनाये रखने में उन की नाकों दम था। पंजाब से नयी कुमुक मिलने तक आक्रमक चढाओी करना असम्भव बन गया था और, मानो, अिन विपत्तियों को पूर्ण करने को—आम २३ जून १८५७ का दिन निकला।

२३ जून १८५७ पलाशी की शतसंवत्सरी का दिन! सौ वर्ष पहले, अिसी दिन, साम्राज्य के जुओ में, पलाशी के रणमैदान पर, हिंदुस्थान का पासा उलटा पडा था। पहले के अपमान तथा लज्जा में हरसाल नयी बढोतरी होते होते सौ साल बीत गये। सौ वर्षों की गुलामी का हिसाब चुकाना, और रक्त की नदियाँ बहाकर सारे राष्ट्रीय अपमानों ओवं दासताकी कालिख को धो डालना यही विचार—यही ओक मात्र भीषण लालसा—दिल्ली के सिपाहियों की आँखों में उस दिन चमक रहा थी। पवन के हर झोंके, सूरज की हर किरण तोप की प्रत्येक गडगडाहट, तलवार का प्रत्येक झनकार में 'पलाशी! पलाशी का प्रतिशोध' यही गंभीर घरघराहट सुनायी देती थी। पलाशी के दुभागी रणसंग्राम की शतसंवत्सरी का आगमन प्रभातकाल ने सूचित करते ही, क्रांतिकारी सेना के दस्ते ओक ओक कर के लाहौरी दरवाजे पर पहुँचने लगे। अंग्रेज भी जानते थे कि आज उन्हे खूब रगडा जायगा, वे भी सिद्ध थे; सूर्योदय के पहले ही व्यूह—रचना पूरी की थी। साथ साथ जिस विपत्ति के स्मरणसे पंजाब से भी सहायता मँगवा चुके थे और अंग्रेजों के सौभाग्य से अगली ही रात को कुछ सेना आ भी पहुँची थी। पंजाबी सेना के आगमन से अंग्रेजों में आत्मविश्वास फूट गया। किन्तु शत्रुको कुमक पहुँची है जिस समाचार से, या अंग्रेजों की पिछाडी को पहुँचानेवाले सभी पुल उन्हों ने उडा दिये देखकर, क्रांति—कारियों का उत्साह रंच भी कम होने की सम्भावना न थी। सब्जी मण्डी से होकर उन्होंने अंग्रेजों पर गोलियाँ बरसाना शुरू किया। ब्रिटिश पैदल सैनिकों ने बार बार हमले किये; किन्तु हरबार क्रांतिकारी उन्हे पीछेकर भगा देते। परकोटे की तोपें खूब आग उगल रही थीं। 'हिंदुराव की कोठी' पर भी क्रांतिकारियों का पूरा ध्यान था। दोपहर १२ बजे लडाओी घोर घमासान हो रही थी। पंजाबी, गोरखा और गोरे सैनिकों पर क्रांतिकारी हमलेपर हमले कर

रहे थे। मेजर रीड बताता है, " बागियों ने बारा बजे हमारे व्याप्त युद्धक्षेत्रपर करारा हमला किया। मैं नहीं जानता कि अुस दिन की वीरता की अपेक्षा अधिक वीरता कभी किसीने दिखलायी हो। उन्हों ने मेरी राअिफली पटलन पर तथा गाअिडदस्तों पर ताबडतोड अैसा जोरों से हमला किया, जिससे अेकबार मैं मानने लगा कि, अब हमारी बन आयी है। "*

प्रत्यक्ष अुस रणमैदान में लडनेवाले अेक शूर अंग्रेज अधिकारीका यह कथन बताता है कि क्रांतिकारियों की चढाअियॉं कितनी जोरदार तथा भयंकर होंगी। यह बहुत अच्छा सबूत है। किन्तु दुर्भाग्यवश यह बिखरी पडी आग तथा शक्ति को संगठित कर काम में लानेवाला कोअी नेता क्रांतिकारियों को न मिला। स्वदेश की स्वतंत्रताको फिर से प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा और पलासी के राष्ट्रीय अपमान की सदा कुरेदनेवाली स्मृति—केवल अिन दो बंधनों ने अुन्हें अेक जगह बांध रखा था। अंग्रेजी तोपखाना भी क्रांतिकारियों के हाथ लगने का डर पैदा हुआ और अन्त में कर्नल वेल्शमन, अपने सैनिकों की पूँछ मरोडने की कोशिश में स्वयं गोली का शिकार हुआ। सारे दिनभर अंग्रेजों का हर सैनिक भी जी—जानसे लड रहा था, फिर भी अब अुनका डटा रहना असम्भवसा हो रहा था। किन्तु ब्रिटिश सेनापति को अब भी निराशा होने का कारण नहीं है। क्यों कि, आज ही सबेरे आ पहुँची वफादार पंजाबी पलटन अपना कौशल दिखाने को अुत्सुक थी! अुसे 'आगे बढो' का हुक्म दिया गया। यह सेना नयी आयी थी, क्रांतिकारी दिनभर के अनथक लडाअी से थके हुअे थे। पंजाबी सेना के जोरदार हमले के बराबर का जवाब वे दे न सके। अैसी दशा में भी राततक वे झूझते रहे। और अन्त में दोनों सेनाअें अपना अधिकार विजय पर बताती हुअीं लौट गयीं। अिसी तरह किसी की हार जीत न होते हुअे पलासी की शत संवत्सरी का दिन पूरा हुआ। और अेक दूसरे की वीरता तथा हिम्मत की कद्र करते हुअे सैनिकों ने अपने २ शिबिरों में प्रवेश किया।

---

* मेजर रीडकृत 'सीज ऑफ दिल्ली'

हर दिन दोनों ओर मचे हैं नेकों की बढ़ोतरी होती रहती थी। पंजाबसे लगातार कुमक आनेसे अंग्रेजों की ओर ७ हजार सैनिक हुओ। अधर क्रांतिकारियों के दल में रुहेलखंड व निमचवाली सैनिक बख्तखाँ के नेतृत्वमें अभी दिल्ली में आ पहुँचे थ। लॉर्ड रॉबर्ट्स कहता है, "रुहेलखण्डवाली सेना मानों का युद्ध सौंपकर कप्तानियों द्वारा दिल्ली में आयी। हाथ के रंगबिरंगे झंडों को हवामें फेंकते हुओ, रणभेरियों के ताल पर अत्यंत अनुशासनपूर्वक चलनेवाले ये हजारों सिपाही जब दिल्ली में प्रवेश कर रहे थ तो हमें वह दृश्य 'रिज' से स्पष्ट दिख पड़ता था।" अिन सभी भिन्न भिन्न दलों को दिल्ली में अिकट्ठा कर कुछ संगठन पैदा करनेवाली अेकमेव शक्ति थी—दिल्लीश का प्रेम। बिना अिस के भिन्न भिन्न जाति तथा पंथवाले और अबतक अेक दूसरे का मुँहतक न देखे हुओ, अेक तूफान के कारण भाग्य से अकस्मात् इकट्ठे हुओ अिन हजारों सिपाहियों में जो थोड़ासा संगठन रहा वह न रह पाता। समृद्ध तथा व्यापारियों के, दिल्ली में लूटमार तथा आतंक फैलानेका, तनतोड़ जतन करने पर भी चोरी, लूटमार आदि होने तथा अुनमें सिपाहियों का हाथ होने की शिकायतें हर दिन आया करतीं। अैसी दशा में, अिन परस्पर विरोधी सभी भिन्नभिन्न शक्तियों को अेकसूत्र में पिरोनेवाले किसी चतुर नेता की अत्यंत आवश्यकता थी। क्रांति की धूमधाम में कुछ लोगों का दुष्ट प्रवृत्ति तथा अुच्छृंखलता, दिल्ली में अुभर आना स्वाभाविक था, किन्तु अैसी दशा में भी अंग्रेजी सेनापर लगातार हमले हो सकते थे; क्रमश, कम, अंग्रेजों की प्रगति को रोक अुन्हें दबा देने का काम तो अवश्य हुआ था। यह कैसे सम्भव हुआ? अिस का अेकमात्र कारण है, नागरिकों तथा सैनिकों में, विदेशी शत्रु को भारत के बाहर भगा देने की, प्रबल अुमंगें लहरें मार रही थीं। किन्तु अन्तिम सफलता की निश्चिती की दृष्टिसे अमूर्त सिद्धान्तपर जनता की यह निष्ठा तथा प्रेम किसी महान् मूर्त व्यक्ति में नेता के रूप में प्रत्यक्ष होना अत्यन्त अनिवार्य था। अिस दशा में देव की देन के समान रुहेलखण्ड से बख्तखाँ अपनी सेना तथा खजाने के साथ दिल्ली में आ पहुँचा। बख्तखाँ के पहुँचने के समय दिल्ली की जनता की क्या मनोवृत्ति थी अिस का बढ़िया वर्णन अुस समय के दिल्ली के

अेक निवासी की दैनंदिनी में (डायरी में) मिलता है। ' जमना का पुल ठीक कर दिया गया था, क्यों कि रुहेलखण्ड से सेना आ जाने की बात अपेक्षित थी। बहुत दूरी पर होते हुअे भी सम्राट् दूरबीन से अुस को देख रहा था। २ जुलाअी को नवाब अहमद कुलीखान, अन्य सरदार तथा नागरिकों को साथ लेकर सम्राट् रुहेलखण्डवालों की अगवानी करने गया। आ पहुँचनेपर रुहेलखण्ड की सेना के प्रमुख मुहम्मद बख्तखॉने अपनी सेवा को स्वीकार करने की सम्राट्से प्रार्थना की। बादशाह की मनशा जानने का जब बख्तखॉने विशेष हठ किया तब बादशाह बोला, ' मेरी अेकमात्र तीव्र अिच्छा है कि जनता के जीवित तथा वित्त की ठीक तरह से रक्षा हो, अुन्हें किसी प्रकार का भय न रहे और फिरंगी दुश्मन भारत से पूरी तरह निकाल बाहर कर दिया जाय और यह सब मैं अपनी ऑखों से देखूं। " फिर बख्तखॉने सम्राट् से प्रार्थना की, ' यदि सम्राट् चाहें तो वह सारे क्रांतिकारी दलों का आधिपत्य करेगा। ' तब सम्राट्ने, कृपापूर्वक, सेनापति से हाथ मिलाया। फिर भिन्न भिन्न सेनादलों के प्रमुखों को बुलाकर बख्तखॉ के आधिपत्य के बारेमें अुनका मत पूछा गया। अेक साथ सबने तुरन्त संमति देकर सेनापति की आज्ञा का पालन करने की सौगध ली। अिस के बाद सम्राट्ने सेनापति से अकेलेमें भेंट की। बख्तखॉ को सेनाधिपति नियुक्त करने की घोषणा डंके की चोटसे नगरमें कर दी। अुसे ढाल, तलवार तथा जनरल की अुपाधि बख्शी गयी। शाहजादा मिर्झा मुगल को अड्ज्युटट–जनरल बनाया गया। बख्तखॉ ने प्रार्थना की " कोअी राजवंशी भी नगरमें अुपद्रव या लूटमार करे तो अुसे भी पकड कर मैं नाक और कान काट डालने से न हिचकिचाअूगा'। बादशाहने फर्माया " तुम्हें सब अधिकार सुपुर्द किये हैं, तुम जो चाहो करने को स्वतंत्र हो, जो ठीक मालूम होगा, करो। " बख्तखाँ ने कोटवाल को भी जताया कि अुसके ढीलेपन से नगरमें लूटमार या अन्य अुपद्रव होगा तो अुसे फॉसी होगी। बख्तखॉ ने बताया कि वह अपने साथ, चार पैदल पलटनें, सातसौ घुडसवार, छः घुडचढी तोपें, तीन बडी तोपें आदि, लाया है। बख्तखॉ ने अपनी सेना को छ. महीनों को वेतन पेशगी दे रखा था और अुसके पास चार लाख रोकडे

चले थे, जिस से सम्राट् को उनके वतन या पैसे की चिंता जरा भी न रही। क्यों कि, उसे बताया गया कि जो भी धन और माल होगा, सम्राट् के चरणोंमें धर दिया जायगा। पल्टनों के सम्मान में चार सहस्र रुपयों की मिठाओी सम्राट् की आज्ञा से सेनामें बाँटी गयी। बागेवाले, नसीराबादवाले तथा अम्बालावाले सभी सैनिक बख्तखाँ के आधिपत्यमें थे। यह आज्ञा जारी की गयी कि हरअेक नागरिक को अपने पास शस्त्र रखना चाहिये; जिन के पास कोअी हथियार न हों वे थानपर जाकर बिनामूल्य शस्त्र ले जायँ। शहर में लूटखसोट करते हुअे कोअी सिपाही मिल जाय तो अुसके हाथ तोड दिये जाते थे। बख्तखाँने शस्त्रागार के सभी शस्त्रों तथा गोलाबारूद को अनुशासनपूर्वक रखवाया। रात को आठ बजे सेनापति राजमहल में गये। सम्राट् बहादुरशाह, अुनकी बेगम जीनत महल, हकीम हसनुल्लाखान अेवं अहमद् कुलीखान–सबने मिलकर परिस्थितिपर चर्चा की। २ सुन्धाओी के सामूहिक सचलन के समय करीब बीस सहस्र सैनिक उपस्थित थे।*

अिधर बख्तखाँ के आगमन से दिल्ली के क्रांतिकारियों में अनुशासन और सगठन का श्रीगणेश शुरू हो गया था; अुधर अंग्रेजों की ओर नया उत्साह तथा साहसवाले सैनिक पंजाबसे पहुँच रहे थे। पंजाब से अभी आये हुअे ब्रिगेडियर जनरल चेम्बरलेन से बढकर अुत्साही और कर्मठ अधिकारी अंग्रेजों के पास गिनेगिने ही थे। सुप्रसिद्ध सैनिकी स्थापत्य विशारद् (मिलिटरी अेन्जिनियर) मेजर स्मिथ भी पंजाब से आ पहुँचा था। सर जॉन लॉरेन्सने पंजाबसे अुन सभी व्यक्तियों को अंग्रेजी सेना की सहायता को भेजा, जिन्होंने सिक्ख–युद्ध में विशेष पराक्रम दिखाया था। अब जनरल बर्नार्डने फिरसे जोरदार तथा साहसिक चढाओी का प्रयोग करने की ठानी। अैसे प्रयोग यह पहले भी दिल्ली पर आजमा चुका था और वे सब असफल होनेसे छोड देने पडे थे। अब आज की चढाओी का आयोजन भी पहले के समान अच्छे ढंग से किया गया था। अबतक हमले के लिअे तरसनेवाली अंग्रेजी सेना

* मेटकाफकृत नेटिव्ह नैरेटिव्ह पृ ५०

निदान २ जुलाअी को तैयार हो गयी। अरे हॉ, कोअी सवाद लाया है, कि दिल्लीपर चढाअी करने के झझटसे जनरल बख्तखॉ ने अुन्हे बचाया है। क्यों कि, वह स्वयं अंग्रेजोंपर चला आ रहा है। ४ जुलाअी को बख्तखॉ ने फिरसे हमला किया और पीछे की ओर से खदेडते हुअे अंग्रेजों को ठेठ अलीपुर तक धकेल दिया।

अंग्रेज दिल्लीपर कब्जा जमाने को अितने अुतावले हुअे थे, और अपनी सामर्थ्य का अुन्हें अितना असीम आत्मविश्वास था कि जून की समाप्ति के पहलेही, दिल्लीके पतन की अफवाहें बम्बअी, मद्रास तथा कलकत्तेमें अुड रही थीं। और सदाके समान अिन अफवाहों के बेबुनियादी होने का अनुभव हो जाता, तो भारतभर गोरे अेक दूसरेसे पूछते, "वहॉ दिल्लीमें अंग्रेजी सेना क्या झख मार रही है?" अैसी अपकीर्ति तथा चिंता से बर्नार्ड को नींद हराम हो गयी थी। क्रांतिकारियों की अविरत चढाअियों से अुसे क्षण की भी फुरसद न थी, जिस से दिल्लीपर जोरदार आक्रमण करने की अुस की आकांक्षा दिनोदिन ढीली पडती जाती थी। निदान, यह ब्रिटिश सेनानी बर्नार्ड असीम निराशा तथा चिंता से पिचककर। ५ जुलाअी को हैजे का शिकार होकर मरा। अंग्रेजों पर अिस सवाद से वज्राघात हुआ। दिल्ली में प्रवेश करने को बेचैन, आखिर कब्र में प्रवेश करनेवाला ब्रिटिशों का यह दूसरा सेनापति! अब जनरल रीड सेनापति बना। यही वह अंग्रेजों का ३ रा सेनापति!

जहॉ चढाअी की योजनाअें गढने ही में अंग्रेज सेनाधिकारी व्यस्त थे, वहॉ अुस चढाअी को प्रत्यक्ष कर दिखाने में दिल्ली के क्रांतिकारी सफल हुअे थे। सभी हमलों का वर्णन तो नहीं दिया जा सकता; किन्तु, हॉ, ९ जुलाअी तथा १४ जुलाअी के हमलो का वर्णन करना चाहिये। क्यों कि अंग्रेज तथा क्रांतिकारियों का जीवट तथा पराक्रम की स्फूर्तिप्रद पराकाष्ठा अुन दिनों दीख पडी। ९ जुलाअी को अंग्रेजी रिसाला तितर-बितर हो कर भाग खडा हुआ; अुन की तोपों का मुँह भी बंद कर दिया गया। अेक सूरमाने श्री. हिल को अुस के घोडे के साथ धराशायी कर दिया। हिलने अपनी तलवार सॅवारी त्यों ही तीन सिपाही अुसपर टूट पडे। हिलने दो बार अपनी पिस्तौल से गोली चलाने

का खातम किया किन्तु निशाना चूका; अुन्हें अेक सिपाहीने अुस की तलवार ही छीन ली । दोनों की भिड़न्त हुआी । सिपाहीने हिलको चारों खाने चित मारा और अुस की छाती पर पाँव रख अुस सिपाहीने अपनी तलवार उठायी । मेजर टॉम्बसने ३० फीट की दूरीसे, यह दृश्य देख, बंदूक का निशाना ताका और अुस सिपाही को गोली से अुड़ा दिया; फिर अुसने हिलको अुठाया और ज्योंही दोनों चलने को थे, दूसरा सिपाही, हिल की पड़ी पिस्तौल को अुठा, अुन का पीछा करते दीख पड़ा । मुठभेड़ में अुस सिपाहीने अेक अंग्रेज को तलवार से घायल किया; दूसरे का काम तमाम किया और तीसरे अंग्रेज की तलवार के घावसे स्वयं कट गया। टॉम्बस् और हिल को अिस बहादुरी के लिअे 'विक्टोरिया मेडल' मिला और सर जॉन के के कथनानुसार अुस सिपाही को वास्तव में 'बहादुरशाह-पदक' मिलना चाहिये था-जिस स्वाधीनता-संग्राम में कितने ही सिपाहियों को पराक्रमी बलिदान के अुपलक्ष में 'बहादुरशाह पदक' मिलना चाहिये था। हाँ, यहभी सच है, कि जो सच्चे सूरमा आत्मबलिदान में पिछे न हटनेवाले होते हैं, उन्हें 'बहादुर शाह-पदक' भलेही न मिले; उस से भी महत्तम हुतात्मा तथा कर्तव्यनिष्ठा का पदक प्रत्यक्ष मृत्यु के हाथों उन्हें समर्पित होता है। उस दिन अंग्रेजों को बहुत बुरी मार पड़ी। जिसका बदला क्रांति कांतिकारियों से लेना असम्भव था तब ये गोरे 'सूरमा' अपने शिविरमें लौटे और गरीब भिश्तियों तथा अन्य हिंदी नौकरों को ही बेधड़क काट डाला।* और, येही वे भले भिश्ती और नौकर थे जिन्हों ने ब्रिटिश

* खं २९ "बताया जाता है, कि प्रत्यक्ष शत्रुओं के न होनेपर कुछ गोरे सैनिकों ने बेचारे निरपराध कर्मियों, नौकरों तथा अन्य लोगों को कत्ल किया, जो अीदगाह-स्मशान के पास भयभीत हो कर जमा हो रहे थे। कितनी भी निष्ठा ? कितनी भी वफादार और कष्ट अुठाकर की हुआी भी सेवा क्यों न करें, पूरब की मैली वर्दी पहने हरअेक मानव से हमारे गोरे

सोल्जरों को लडने की हालत में रखा था! १४ जुलाओी की लडाओी में तो अंग्रेजों के बुरे हाल हुओ; क्यों कि प्रसिद्ध योद्धा चेम्बरलेन अेक क्रांतिकारी की गोली से स्वर्ग सिधारा। "हमारे दल का महान् और अतिविख्यात योद्धा चेम्बरलेन! सचमुच, वह दिन बडा असगुनी था, जिस दिन अिस वीर को प्राणघातक चोट लगने से छावनी में अुठाकर ले जाना पडा" अिस भाषा में अंग्रेज अितिहासकार अपनी अुस राष्ट्रीय हानि का करूणापूर्ण वर्णन करते हैं।

हॉ, तो १५ जुलाओी बीत गयी फिर भी दिल्ली के बुर्ज, सूरज की किरणों में नहा कर, अुज्ज्वलित ध्वजों को अूँचे कर संसार कोगरज कर कह रहे थे, 'दिल्ली आज स्वतन्त्रता का निवास बना हुआ है।' अन्त में रीडने त्यागपत्र दिया। दो सेनापति तो पहले ही मर चुके थे, अब तीसरा नौकरी से छूट कर बचेगा तो जीअेगा। फिर भी अब तक दिल्ली का पतन नहीं होता! अुलटे, क्रांतिकारियों के लगातार तथा भारी चोट करनेवाले हमलों से जान बचाना अंग्रेजों के लिओ दूभर होता जाता था। अब तो क्रांतिकारियों की संख्या २० हजार हो गयी थी। अिनसे कितने भी लोग काम आ जाय, अंग्रेजों का अिससे कोओी लाभ न था। किन्तु अुनके थोडे भी लोग खेत रहे तो अंग्रेजों की संख्यापर निश्चित परिणाम होता। अिस से, अंग्रेजों ने मात्र बचाव की नीतिपर चलना तय किया। अेकाध हमले में क्रांतिकारियों को हरा भी दिया जाय, तो अुनकी कोओी खास हानि न होती, न अुनके हमले बन्द पडते। अुलटे अधिक निश्चय से तथा निर्भीक बनकर शेखी बघारते– "देखो अंग्रेजों को पराजय के जितनी ही विजय काफी महँगी पडती है।" अिस से भारत के अन्य विभागों के अंग्रेज भी समाचारपत्रों मे शिकायत करने लगे कि 'ये घेरा डालनेवाले ही बेचारे घेरे गये हैं'। अैसी बाँकी दशामें जब

सोल्जर जो द्वेष रखते हैं, वह कभी कम नहीं हो सकता।–के और मॅलेसनकृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड २, पृ. ४३८.

तीसरा सेनापति नियुक्त हुआ तब ग्रेटहेड, चेम्बरलेन और रॉडन जैसे महाशय भी दिल्लीपर आक्रमण करने के विषय में निराश–से हो गये। और अंग्रेजी छावनी ही में अब घेरा उठा लेने के बारे में चर्चायें छिड़ने लगीं। तीसरा सेनापति बैठ गया और उस के स्थान पर जनरल विल्सन आया तब किस प्रकार की परिस्थिति थी।

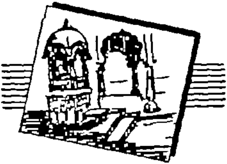

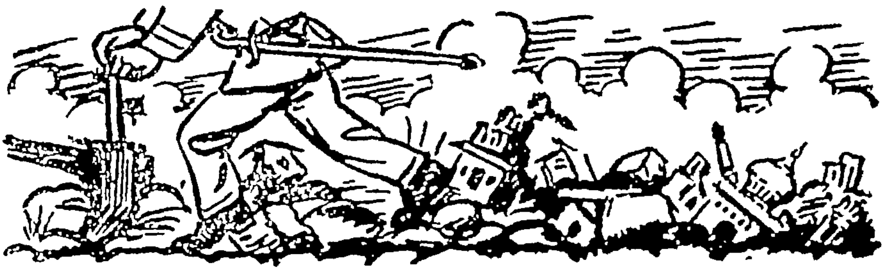

अध्याय २ रा

हॅवलॉक

अिलाहाबाद का किला सिक्ख सिपाहियों ने जब अंग्रेजों को—अपने भाअी क्रांतिकारियों को नहीं—जिता दिया, तब वहीं पर अंग्रेजों ने अपना प्रमुख अड्डा बनाया, जो आसपास के सैनिक यातायात के लिये सुविधाजनक था। अबतक कलकत्ते जैसी दूरी के स्थान से अुत्तर भारत के सेनापरक तथा राजव्यवहारपरक कार्यों का संचालन करने में जो खतरा था वह अिस से नष्ट हो गया। लॉर्ड कॅनिंग ने, क्रांति को जडमूल से अुखाडनेतक, राजधानी कलकत्ते से अिलाहाबाद ले जानेकी ठानी, अुस के अनुसार वह अिलाहाबादमें रहने लगा। किन्तु बीचमें कानपुर की अंग्रेजों के सिर पडी विपत्तियों के समाचार तथा सहायता के लिये अुनकी आर्त पुकार अिलाहाबाद तक पहुँच चुके थे। तब जनरल नील ने प्रयाग की रक्षा के लिये कुछ सेना रखकर, शेष सभी सेना को, कानपुर का मुहासरा तोडने के लिये, मेजर रेनाड के आधिपत्य में भेज दी। यह सेना मार्गमें मिले सब देहातों को जलाते हुअे आगे बढ रही थी। अिसी समय कानपुर की सेना के सेनापति—पदपर, नील के स्थानपर, हॅवलॉक की नियुक्ति हुअी। वह जून के अन्तमें अिलाहाबाद आ पहुँचा। वह काफी लब्धप्रतिष्ठ और मॅजा हुआ अधिकारी था। अंग्रेजों के सौभाग्य से अिधर विप्लव का प्रारंभ हुआ, अुधर अीराण के साथ युद्ध समाप्त हुआ और हॅवलॉक जैसे सुयोग्य सेनापतिके नेतृत्वमें सारी गोरी सेना, ठीक मौकेके समय में,

सीधी भारत आ पहुँची। अपने स्थानपर हैवलॉक को प्रयाग के प्रमुख अधिकारी-पद पर नियुक्त किया और उसे उसके मातहत काम करना पड़ेगा यह जानकर नील को गुस्सा आ गया; फिर भी उसने अपने व्यक्तिगत कीने को राष्ट्र कार्य के आड़े-भारतकी अंग्रेजी पकड़ के आड़े-कभी न आने दिया। सेना को संगठित करनेके जोरदार यतन उसने जारी रखे। हैवलॉक के नेतृत्व में जानेवाली सेना को सब प्रकारकी पूरी सहायता दी और हैवलॉक के पहुँचने पर आज्ञाकारी बनकर सब सत्ता उसको चुपचाप सौंप दी। अब कानपुरके गोरों की सहायता के लिये यह सेना हरतरहसे लैस थी। हैवलॉक अब कूच करनेही वाला था कि खबर आयी-" सर व्हीलर की हार होकर उसने शरण ली है और उसके समेत सभी गोरों को गंगा घाटपर कत्ल कर दिया गया "!

अपने भाइयों की हत्या का बदला लेने के लिये *अिलाहाबाद* से हैवलॉक कानपुर को शीघ्र चला। साथ में बदले की भावना से बौखलाये अेक *हजार सुनिंदे गोरे पैदल सैनिक, १५० सिक्ख, अेक मँजी हुअी रिसाले की* पलटन और ६ तोपें थीं। अिन के साथ कुछ नागरिक तथा सैनिक अधिकारी भी थे। ये वेही थे *जिन्हें क्रांतिकारियों ने* दयाभावसे जीवित छोड दिया था किन्तु *अिस उपकार* का बदला चुकाने, याने उन्हीं सिपाहियों से लोहा लेने, उन से भयंकर बदला लेने और नवागत अधिकारियों को कानपुर के विविध स्थानों की भौगोलिक जानकारी देने के लिये अिस सेना के साथ चले। सिपाहियों के केवल अिशारे मात्र से जो जमलोक कि नरक में पहुँच जाते और केवल सिपाहियों की सभ्यता के कारण जिन्हें जीवित रहने का मौका मिला था, वे सभी शूर (!) अंग्रेज अधिकारी अब अिकट्ठा हो कर बेरोकटोक सभी गोरों को जलाते आगे बढ रहे थे।

मेजर रेनाड के नेतृत्व में फतहपुर पर कुछ दस्ते चढ आने के समाचार कानपुर पहुँचते ही, नानासाहबने अपनी सेना को उधर भेज दिया। रेनाड की सेना को मुठभेड़ में कुचल देने के अिरादे बढते हुअे ज्वालाप्रसाद तथा टिकासिंह की सेना फतहपुर पहुँची। किन्तु उस समय तक हैवलॉक की सेना

रेनाड की सेना से मिली और अिस सम्मिलित सेनाने क्रातिकारी सेनापर तोपें दागीं। क्रातिकारियों का अेक दस्ता रेनाड को रगडने के लिअे अुस की सेना पर टूट पडा; किन्तु अुन्हें पता चला कि हॅवलॉक का तोपखाने तथा अुस की सुसज्ज सेना से पाला पडा है। यह १२ जुलाअी की घटना है। अिस हालत में भी क्रांतिकारी डटकर लडे किन्तु अुन्हें अपनी तोपें मैदान में छोड कर हट जाना पडा। हॉ, अंग्रेज अुनका पीछा करने की हिम्मत न कर सकें, तब अंग्रेजी सेना फतहपुर में घुसी। फतहपुर के क्रातिकारियों का नेतृत्व अंग्रेजों के नौकरी में रहे डेप्युटी मॅजिस्ट्रेट हिकमतुल्लाने किया। फतहपुर में कअी अंग्रेज अफसर मारे गये थे। आज अंग्रेजी बदला अुस शहर को चखाया जायगा। भूतपूर्व मॅजिस्ट्रेट शेरेर–जिसे पहले क्रातिकारियोंने तरस खाकर जीवित छोडा था,— फिर से अपनी मॅजिस्ट्रेटी चलाने को सेना के साथ आया। पहले अुसने आज्ञा दी कि सारा शहर सैनिक लूटें। जब निश्चय हुआ कि लूटने योग्य कोअी चीज शहर में नहीं बची, तब शहर में आग लगा देनेकी आज्ञा हुअी। और अिस आज्ञापर अमल करने का सम्मान सिक्खों को दिया गया। अंग्रेज सेना चली गयी और सिक्खोंने अपने हिस्से का गॉव जलानेका कर्तव्य पूरा कर अपना रास्ता पकडा।

अिस प्रकार अंग्रेजोंने सारा फतहपुर जीवित जला दिया; वहॉ की आग की ज्वालाअें दूरतक फैलीं और आखिर कानपुर तक पहुँच गयीं। क्रातिकारी दस्तों की हार तथा हॅवलॉक और रेनाड के फतहपुर गॉव जलाने का ब्योरेवार समाचार नानासाहब के पास पहुँचा तब कानपुर के सभी नेता क्रोध से जलने लगे। कानपुर पर चढ आनेवाली अंग्रेजी सेना रोकने के लिअे स्वय नानासाहब के आधिपत्य में पाडू नदीपर सामना करने का निश्चय हुआ। अितने में खबर मिली कि अंग्रेजों से मिले कुछ देशद्रोहियों को पकडा गया है। * तब

* स. ४०. फतहपुर में नानासाहब के क्रांतिकारी दस्तों की हार होने के बाद कुछ नामी गुप्तचरों को नानासाहब के सामने पेश किया गया। बंदीगृह में पडी असहाय स्त्रियों ने दूर दूर के स्थानों को लिखे पत्र अुन जासूसों के

अुनकी तलाशी में मालूम हुआ कि बीबी की कोठी में बंदी स्त्रियों के पत्र अुन्होंने भिलाहाबाद के अंग्रेजों को पहुँचाये थे। जिन स्त्रियों को कत्ल से बचा कर नानासाहब ने जीवित रखा, अुन्होंने अब फिरसे अंग्रेजों के साथ पत्रव्यवहार करनेका विश्वासघात करने की खबर मिली, तब अुनके बारे में क्या करना चाहिये यह प्रश्न पैदा हुआ। जब कि, अंग्रेजोंने फतहपुर जला दिया है; तब अुसका प्रतिशोध बीबी की कोठी जला कर क्यों न लिया जाय?

जिस बंदीगृहको 'बीबागढ' कहते थे, फिरभी नानासाहब की भिच्छाओंसे कुछ पुरुषोंको भी जिस बीबीगढ में आसरा दिया गया था। अुस रात की बैठक में सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि अिन सभी बंदियों को, अुनके नीच, विश्वासघाती जासूसों के साथ, मार डाला जाय। दूसरे दिन अुन जासूसों तथा स्त्री-पुरुष बंदियों को बाहर घसीट लाया गया और अेक पाँती में खडा कर दिया गया। पहले नानासाहब के सामने अुन विश्वासघाती जासूसों का सिर तलवारसे अुडा दिया गया। अंग्रेज पुरुषों को गोली से अुडा दिया गया। फिर नानासाहब बीबी की कोठी से बाहर हो गये। तब बाहर से जनताने आकर अुन लाशों का मखौल अुडाया कि 'यह मद्रास का गवर्नर। यह बम्बअी का सूबा, यह बंगालका।'

लोग यह क्रूर हँसी अुडा रहे थे तब सिपाहियों को आज्ञा मिली, कि बीबीगढ के सभी बंदियों को कत्ल कर दिया जाय। वहाँ का बंदिपाल अिस काम में हिचकिचाने लगा; तब किसी अधिक क्रूर आदमी की खोज हुअी।

पास होनेका अभियोग अुनपर लगाया गया। अुन पत्रों के बारें में कुछ महाराजा तथा शहर के 'बाबू' लोगों का हाथ होने की आशंका थी। तब निश्चय हुआ, कि अुन जासूसों, स्त्रियों, बच्चों, तथा जिन थोड अंग्रेज पुरुषों की जान बचायी गयी थी अुन को मार डाला जाय।"—नैरेटिव्ह ऑफ दि रिव्होल्ट; पृ ११६.

नानासाहब का अेक ओहाअी बंदी यही वृत्तान्त कहता है; और अेक आया भी यह सब सच होने की गवाही देती है।

बीबी की कोठी की प्रमुख बंदिपालिका बेगमसाहेबाने कानपुर के कसाअियोंको बुलाने कहार को भेजा। शाम को, कुछ वधिक हाथमें पैनी नंगी तलवारें तथा बडे बडे छुरे लेकर क्रूर मुद्रासे बीबीघरमें आये। शाम के झुटपुट में वे आये और पूर्ण अंधेरा छा जाने के पहले बाहर निकल गये। किन्तु अितने थोडे अरसेमें भी लाल लाल खूनका सैलाब—सा दीख पडा। कसाअी अंदर आये और अुन्होंने छुरों और तलवारोंसे लगभग डेढ सौ स्त्रियों तथा बच्चों का सफाया कर डाला। सारा कमरा अेक रक्त—पोखर बना गया था, जिसमें मानवी मॉस की बोटीयॉं अुतरा रही थीं। आते समय वधिक भूमिपर चलते आये किन्तु जाते समय खून के सोतेमें पॉंव भिगोकर अुन्हे चलना पडा। अधमरों की चीखोंसे, मरने को होनेवालों की भीषण कराहों से, और केवल अपने नन्हे आकार के कारण अिस कत्ले आमसे बचे बच्चों के दयनीय आक्रदनोंसे अुस दिन की रात आर्त विलाप कर रही थी। तडके, अुन सब अभागे जीवों को बाहर ले जा कर पास के कुअेंमें धकेल दिया गया। अबतक लाशों के ढेर के नीचे दुबे दो बच्चे, ढेर के हिलतेही, रेंगते हुअे बाहर आकर भागने लगे, किन्तु अेक ही वार से अुन्हे अुस ढेर में मिला दिया गया। आजतक लोग कुअें का पानी पीते आये थे; किन्तु आज वह कुऑं मानव रक्त को पी रहा था। फतहपुर के 'हिंदी' बालबच्चों की चीखें जिस तरह अंग्रेजों ने आकाश को पहुँचायीं, अुसी तरह प्रतिशोध और क्रोध से खौलते 'पांडे' लोगोंने गोरे बालबच्चों के शव ठेठ पाताल में गहरे गाड दिये। अिस तरह, दो वर्शोंमें सौ सालों तक जो पावना लेना था अुसे पूरी तरह अदा कर दिया। हिसाब चुकते। * कभी

---

* सं. ४१. क्रूरता की कमाल, अनिर्वचनीय लज्जा आदि विशेषणोंसे यह पाशविक हत्याकाण्ड वर्णित है, किन्तु ये सब बहकी हुअी कल्पनाशक्ति की गढी बातें थीं, जिनपर बिना परख विश्वास किया गया, (परिणामों का रंच भी) खयाल न करते हुअे वे फैलायीं गयीं। किसी का अंगच्छेद न हुआ, किसी की बेअिज्जती न हुअी। सरकारी कर्मचारियोंने साफ साफ शब्दोंमें

बंगाल की खाड़ी भी, कभी युगों के बाद सड़ा, पट जायगी; किन्तु मुँह बाये पड़ा यह कुआँ जितना खून पी जानेपर भी संसार की समाप्तितक भूखा और तृषित रहेगा।

जिसी समय पांडू नदीपर भेजी हुआी नानासाहब की सेना को हरा कर *हैवलॉक आगे बढ़ रहा था। जिस मुठभेड़ में नानासाहब के भाजी सेनापति* बालासाहब पेशवा क कंधे में गोली लगी, जिस से अुन्हें कानपुर लौटना पड़ा। तुरन्त युद्धसमिति की बैठक बुलायी गयी; नानासाहब ने, आनेवाली स्थिति का सामना कैसे किया जाय जिस बारेमें सभी सदस्यों से, चर्चा की। दो *प्रस्ताव रखे गये। बिना लड़े कानपुर खाली कर दिया जाय; या जिस आक्रमण* का तीखा प्रतिकार करें। काफी चर्चा होनेपर दूसरा प्रस्ताव सर्वसम्मति से मान्य हुआ। १० जुलाआी को अंग्रेजी सेना कानपुर के पास आ खड़ी हुआी। अबतक अुन्हें कानपुर के कुअें की बात मालूम न हुआी थी। व्हीलर का किला तो हाथसे निकल गया था, बीबीगढ को मुक्त करने का प्रण अुन्होंने कर लिया था। और जिसी धुनमें धूप, कष्ट या हमले की पर्वाह न की और जरा भी आराम न किया। जब कानपुर के बुर्ज दिखायी पड़े, तब हैवलॉक में, अुसकी मनशा पूरी होनेकी सम्भावना से, नूतन अुत्साह का संचार हुआ। अुसने 'पांडे' की सेना की बातें जानने के लिअे जासूसी टोलियाँ भेजीं। क्रांतिकारियोंने अपनी व्यूह रचना बहुत चतुरता से की थी। सारी अुम्र रणमैदानमें गँवानेवाले जिस अंग्रेज योद्धा को मालूम हुआ कि क्रांतिकारियों में भी असाधारण युद्ध-संघ-विशारद् हैं। अुसने अपने सभा सहायकों का बुलाया और अुसकी अपनी व्यूह रचना की रूपरेखा अपनी तलवारसे भूमिपर अंकित कर दिखायी। जब वह अपने लोगों को समझा रहा था, कि क्रांतिकारियों पर पीछेसे हमला करने की अपेक्षा आगे से चढ़ाआी करनाही अच्छा है, तभी सफेद् घोड़ेपर चढे नानासाहब

यह हामी भरी है; क्यों कि, अुन्होंने जून और जुलाआी में हुआी कत्लों से संबंधित हर बातकी खूब खोजपूर्ण तहकिकात की थी।"—के और मॅलेसन कृत ।अिंडियन म्यूटिनी खण्ड, २ पृ २८७

चतुरता से रचे हुअे अपने रणव्युह की सैनिकों की पॉतीमें प्रवेश कर रहे थे। अंग्रेजों को भी अपनी जगहसे नानासाहब की मूर्ति स्पष्ट दिखायी पडती थी, जो सैनिकों की हर पॉती में जाकर अुन्हे प्रोत्साहित कर घोडा आगे दौडती घूम रही थी। दोपहर में नानासाहब के बाअें पासेपर अंग्रेजों की मुकर्रर चढाअी शुरू हुअी। अिस आकस्मिक और जोरदार आक्रमण को रोकने के लिअे क्रांतिकारियों की तोपें आग अुगलने लगीं। अंग्रेजी तोपें काम में आने में कुछ देरी हुअी, तबतक नानासाहब की तोपों ने धूम मचा दी। किन्तु क्रांतिकारियों की अिस विजयसे चिढकर असाधारण जोश से हॅवलॉक आगे घुस पडा और हायलंडर सैनिक, बेधडक सीधे तोपों पर टूट पडे; रच भी पीछे हटने का नाम नहीं। 'विजय या मृत्यू' का नारा बुलंद करते हुअे जंगली सुअर की तरह दबाते ही गये, तब अिस संगठित और ढंगदार आक्रमण के आगे क्रांतिकारियों की अेक न चली और अपनी तोपें मैदान में छोडकर अुन्हे हटना पडा। अिस तरह बायाँ पासा टूट रहा था, तभी अंग्रेजी तोपों ने दाहिने पासे पर गोलों की बौछार शुरू की। अंग्रेजी सेना की जीत देखकर क्रांतिकारी सेना कानपुर के मार्ग से पीछे हटने लगी। किन्तु निराशा के धैर्य से नानासाहब ने फिर से सब को सम्हाला और बची तोपों के साथ युद्ध जारी रखा। अिस बार सिपाहियों को धीरज बंधा कर, अुन्हे अुत्साहित कर अुनका नेतृत्व करने में नानासाहब को बहुत कष्ट अुठाने पडे। "अिस तरह कानपूर की लडाअी लडी गयी। क्रांतिकारियोंने असाधारण वीरता दिखायी। तलवार से तलवार टकरायी, किन्तु पीठ किसीने भी न दिखलायी। दृढतापूर्वक अपनी तोपों की रक्षा की। वे निशाना भी अचूक मारते थे"।* फिर अेकबार अंग्रेजोंने जोरदार हमला किया, अिधर क्रांतिकारियोंने भी प्राणपन से टक्कर ली, किन्तु अुनकी हार हुअी और वे ब्रम्हावर्त की ओर पीछे हटे।

१७ जुलाअी को हॅवलॉक की विजयी सेना ने कानपुर में प्रवेश किया। जिस हॅवलॉक ने अपनी सेना द्वारा विजय की पहली लहर कानपुर तक पहुँचा दी तथा अंग्रेजों की डूबी प्रतिष्ठा को फिर से अूपर अुठाया, अुसे और अुसकी

---

* रेड पॅम्फ्लेट.

सेना का भारत में तथा अिंग्लैंड में भी अदभुत धन्यवाद दिये। अिंग्लैंड में हर चौराहे, कुओं की तालियों पर तथा धार्मिक गिरजाघरों की दिवारों पर हैवलॉक का नाम लिखा गया था।

जब कानपुर लूटने की आशा ही गयी तब पागल सिरफिरे हुए पहने-वाले निल का तथा हैवलॉक अदम अधिकारी, गोरे सैनिक तथा सिख सिपाही कानपुर पर टूट पड़े। नीलों के मुखिया लोग पकड़े गये थे। पश्चात् यह एक अदमों का दान का मानना अदम अधिकारियों का हुआ। तब कानपुर के बहुत सज्जनोंको पकड़ मरवाया गया, और क्रांतिकारियोंसे संबंध होने का संदेह जिनके बारे में हुआ उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया। किन्तु, हाँ, फाँसी लगाने के पहले उन्हें वे खून के धब्बे चाटकर मजबूर किया गया और फिर वे खून के दाग झाडू से साफ या चाटने का काम उनसे करवाया गया। ऐसा अत्याचार क्यों उन पर किया गया? यह पूछनेपर एक अदम अधिकारीने यों जवाब दिया "मैं जानता हूँ, कि किसी के खून के दाग, या उस के दागों को झाडू लेकर धो डालने से उच्चवर्ण के हिंदु धर्म की दृष्टि पतित होते हैं। हाँ, केवल इसीके लिये हमने ऐसा नहीं किया, तो फाँसीपर टाँगने के पहले उन की सभी धार्मिक भावनाओं को पैरोंतले कुचलकर जबतक मरनेके पहले उन्हें इतनी भी बात संतोष के लिये न रहे कि वह हिंदुधर्म में ही मर रहे हैं, जबतक हम उन की दुर्दशा न देखें तब तक हमें संतोष न होगा कि हमने पूरा पूरा बदला लिया है।" क्रांतिकारियोंने भी कहीं की उनमें किसी तरह किसी की धार्मिक भावना को दुखाना तो दूर, उल्टे अंग्रेजोंने जब चाहा तब मरनेके पहले उन्हें बाइबिल पढ़ने का भी अवकाश दिया जाता था। किन्तु दिल्ली और कानपुर में कत्ल हुए क्रांतिकारियों का अंग्रेजोंने रंच भी धार्मिक संतोष न मिलने दिया। फिर भी कितने ही सूरमा सिद्धान्त और धर्म के लिये, ऐसी दुष्टता के होते हुए भी हँसते हँसते चाहे चढ़कर उन्होंने फाँसी को पवित्र किया। चार्ल्स बॉल कहता है मनासल हर लॉकने सर मीस्टर की मृत्युका भयकर बदला लेने की ठानी। हिंदी लोगों के झुंड के झुंड फाँसी चढ़ाये जाते। मरते समय कुछ क्रांतिकारियोंने जिस

मनःशांति और कुलीनता का परिचय दिया, वह सिद्धान्त पर मर मिटनेवाले हुतात्मा के योग्य और निस्संदेह सराहनीय था। अुनमें अेक कानपुर का मॅजिस्ट्रेट था, जो नानासाहब के शासन में नियुक्त हुआ था; अुसे पकडकर अुसपर मुकद्दमा चलाया जा रहा था। किन्तु अुसने न्यायालय की कार्रवाओी में कोओी हिस्सा न लिया, मानों यह सब किसी दूसरे के लिअे चल रहा हो अुसे मृत्युदण्ड सुनाया गया तब वह अुठा और न्यायाधीश की ओर ध्यान न देकर, घूमकर, धैर्यपूर्वक डग भरते हुअे अुसके लिअे बनायी टिकडी पर ज्या खडा हुआ। जल्लाद जब आखरी कार्रवाओी की सिद्धतामें मगन थे तब, जैसा कि कुछ हुआ ही नहीं, शान्त दृष्टिसे देख रहा था। योगी जिसतरह समाधि में प्रवेश करता है अुस शान्तभावसे अपनी गर्दन अपने हाथों फॉसी में फॅसायी; अपनी आनपर अडिग श्रद्धा होने से, अुस निर्भीकमना को मौत तो, हिन्दुधर्म द्वेष्टा फिरंगियों के पापी संपर्क से मुक्त होकर स्वर्ग के नंदनवन में पहुँचने का, महूरत था। *

जब अंग्रेजी सेना कानपुर में बदले के नाम पर अत्याचार की धूम मचा रही थी, तब इतने निश्चय, अनुशासन तथा कंधेसे कंधा भिडाकर लडे हुअे अंग्रेज तथा सिक्ख सैनिकों की हॅवलॉक ने बडी प्रशंसा की। थोडे ही दिनों बाद, अिलाहाबाद में अच्छी तरह सैनिक प्रबंध कर, जनरल नील कानपुर आया। दोनों समान श्रेणी के अफसर थे; तब स्वाभाविक था कि हर अेक सेना का आधिपत्य अपने हाथ रखने को चाहे! किन्तु स्पर्धा से पहले ही ढीले अनुशासन की अंग्रेजी सेना में और ही गडबडी मच जाती। यह सोचकर जनरल नील के आते ही हॅवलॉक ने अुसे साफ कह दिया, "जनरल नील, हम एक दूसरे को अच्छी तरह समझें। मैं जब तक यहॉं हूँ तब तक अन्तिम सत्ता मेरे हाथ में रहेगी और आप मेरी सेना को कोओी हुक्म नहीं दे पायेंगे।" दो अफसरों के आपसी

* चार्लस बॉलकृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड १, पृ. ३८८

मतार के कारण अंग्रेजों के कार्य में किसी तरह की बाधा न पड़े, अिस लिअे कानपुर की रक्षा के लिअे नील वहाँ रहा; और लखनअू की सहायता के लिअे आनेवाली सेना का नेतृत्व स्वीकार कर हैवलॉक अवध को चल दिया। कानपुर की सुरक्षा की नील ने नयी योजना बनायी। अछूतों की एक पल्टन बना कर कानपुर की रक्षा का भार अुन्हें सौंप दिया। अछूतों को स्पृश्यों के विरुद्ध उभाड़ने की यह चाल बड़ी कामयाब रही। हिंदु-मुसलमानों का धार्मिक वैर अब नष्ट हो चुका था तब छूत-अछूतों का यह नया झगड़ा खड़ा कर दिया गया। कानपुर की हार के बाद नानासाहब पेशवा ब्रह्मावर्त छोड़े अपनी सेना और खजाने के साथ गंगापार हुअे फतहगढ में पहले जा सके। हैवलॉक की नेतृत्व में आनेवाली अंग्रेज सेना का नानासाहब की गतिविधि का सुराग न मिलने से वह सीधी लखनअू गयी। जून के अन्त तक सारा अवध प्रांत तो क्रांतिकारी भीड़ों का छत्ता बन गया था। अिस दशा में हेन्री लॉरेन्स को राहत दे कर लखनअू का घेरा अुठाना अति कठिन काम था। फिर भी विजय की अुन्माद की धुन में हैवलॉक मानता था कि गंगापार हो कर लखनअू की मुक्तता करना अुसके बायें हाथ का खेल है। जिस तरह पंजाबवाली सेना मानती थी 'बस, दिल्ली पर हमारी नजर पड़ी और दिल्ली जीती,' असी तरह हैवलॉक की सेना भी अिस मस्ती में थी, कि 'गंगापार होने ही लखनअू का काम तमाम करेंगे' कानपुर से लखनौ कुछ दूर नहीं है। और अिलाहाबाद से कानपुर चढ आते समय हैवलॉक ने जो फुर्ती और टेक दिखायी थी अुस हिसाबसे अितना महान् साहस दिखाने की प्रेरणा अुसे हो जाना ठीक ही था। किन्तु अवध प्रांत में अेक चप्पा भूमि अैसी न थी, जहाँ राष्ट्रीय क्रांति की ज्वाला भड़क न अुठी हो। भारत में पहले पहल विद्रोह करनेवाले पुरबियों का, अवध तो अपना होने से अुनके माँबाप, बालबच्चे, नातेदार सबके सब अपनी झोंपड़ियों या मकानोंमें क्रांतिभाव से भर गये थे। फिर भी विजय से अुन्मत्त बने अिस अंग्रेज सेनापति को यह अेक नगण्य बात थी। अुसे घमण्ड था, 'बस; यहाँ

पहुँचे नहीं और लखनअू लिया नहीं, फिर दिल्ली पर जा कर अुसे भी जीत कर, आगरा चलेंगे। अिस आत्मविश्वास से साथ में दो हजार गोरे सैनिक तथा १० तोपे ले कर २५ जुलाअी को हॅवलॉक गंगापार हुआ। जनरल नील कानपुर में रहा और हॅवलॉक लखनअू पर चढा गया। अिस तरह १८५७ के जुलाअी के अन्त में अंग्रेजी सेना की स्थिति थी।

बिहार

अुत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त, प्रयाग, आगरा, बंगाल आदि प्रांतों को अपने फैलाव में बहा ले जानेवाली क्रांति की लहर से बिहार प्रान्त या अुसकी

राजधानी पटना क्यों कर अछूते रह सकते हैं। बिहार में महत्त्वपूर्ण स्थान थे गया, आरा, छपरा, मोतीहारी और मुजफ्फरपूर। अिस प्रान्त की प्रमुख छावनी दानापुर में थी। यहाँ ७ वीं, ८ वीं तथा ४० वीं देसी पल्टनें, अुन पर दबाव डालने के लिअे अेक गोरी पल्टन तथा युरोपियन तोपखाना, अिनकी सेना मेजर जनरल लॉयिड के आधिपत्य में थी। पास ही सिगौली में मेजर होम्स के आधिपत्य में १२ वीं देसी रिसाला पल्टन रखी गयी थी।

अुस समय अितिहास-प्रसिद्ध नगर पटना में वहाबियों का गढ था। कमिशनर टेलर मानता था कि ५७ की क्रांति में पटना अवश्य हाथ बँटायेगा, अिस से अुस ने वहाबियों के नेताओं पर खास निगरानी रखी थी। अंग्रेजी पराधीनता का पूरी तरह द्वेष करनेवाले पटना में, पहले १८५२ में अंग्रेजी राज को उलट देने के हेतु अेक गुप्त क्रांतिकारी संस्था स्थापित हुअी थी। अिस संस्था में प्रतिष्ठित तथा धनी नगर सेठ, पेढीवाले, साहुकार तथा जमींदार थे, अिस से क्रांतिकारी को आवश्यक धन की कमी न थी। अिस संस्था के पदाधिकारी प्रसिद्ध मौलवी होने से संस्था का कार्य बहुत बडे पैमाने पर

चलता था। लखनअू की गुप्त क्रांतिकारी संस्थाओं तथा दानापुर के सिपाहीयों से गुप्त संबंध जोड कर पत्रव्यवहार भी शुरू कर दिया गया था। वरिष्ठ पुलीस के अधिकारी से लेकर ठेठ साधारण ग्रंथ-विक्रेता तक हर अेक पटना-निवासी अंग्रेजी सत्ता पर वार करने के 'अुस क्षण' की अुत्कट अुत्सुकता से राह देख रहा था।

अिन सभी गुप्त संघों का प्रमुख कार्यालय पटनाही था। अुस के सदस्यों में जनता के सभी वर्गों के प्रतिनिधि थे। सारी जनता को 'फिरंगी' शब्दसे बडी घृणा थी। स्वयं पुलीस के आदमी क्रांतिकारियोंसे मिले होने से रातमें गुप्त बैठकों का काम बेखटके चलता था। क्रांतिकारी सदस्यों ने कअी बहानोंसे सैंकडों क्रांतिकारियों को नौकर की हैसियत से अपने पास रखा था; अर्थात् मुख्य संस्था से वे वेतन पाते थे। अिस तरह फिरंगी राज के द्वेष से जलनेवाले पटने से प्रांतभर में अुस की लपटें जनता को गुप्त प्रेरणा दे रही थीं दानापुर के सिपाही रात के अंधेरेमें पेडों के नीचे अिकट्ठे हो कर भिन्न भिन्न योजनाअें बनाते थे और कहीं किसी गश्ती अंग्रेज के ध्यान में यह बात आ जाय तो अुसे अकेले में मार डालते थे। अिस तरह सारी जनता, अपनी शक्ति संगठित कर क्रांति के लिअे सिद्ध हुअी तब दिल्ली और लखनअू की गुप्त संस्थाओं से अुन्हों ने बातचीत शुरू की।

विद्रोह का समय निश्चित करने के अन्तिम निर्णय की चर्चा शुरू हुअी थी, कि गोरे कमिशनर टेलर को मेरठवाले बलवे के समाचार मिले। साथ साथ खबर मिली कि दानापुरवाले सिपाहियों में भी अशान्ति है। कमिशनर टेलर बडा धूर्त था। समूचा भारत बलवा करे तो भी सिक्ख अबतक देश-द्रोही ही बने रहे थे। अिसी से पटना की रक्षा के लिअे श्री. रॅट्रे के नेतृत्व में २०० सिक्खों को टेलरने तुरन्त भेज दिया। पटना जाते समय लगातार हर स्थान में घृणा और गालियों से अुनका स्वागत होता था। लोग अुन्हें राष्ट्र-द्रोही, निमकहराम कहते थे; और गाववाले व्यंग से अुन्हे पूछते थे, "तुम गुरु नानक के सिक्ख हो या धर्मभ्रष्ट फिरंगी?" अुन्हे साफ साफ या गुप्त अुपदेश भी दिया जाता कि ठीक समय आनेपर 'तुम देश की ओर से खडे

हो जाओ।' जब वे पटना पहुँचे तो जनता का गुस्सा मर्यादासे बाहर हो गया। अुस गरम दलके नगर का हर नागरिक अुन्हें छूने से तथा अुनकी छाया से भी दूर भागता था। और तो और; अुस स्वातंत्र्यप्रेमी नगर के सिक्ख गुरुद्वारे में वहाँ के सिक्ख ग्रंथियों ने अिन देशद्रोहियों को अन्दर पग धरने की भी मनाही की। क्यों कि, ये सिक्ख सैनिक, वे मानते थ, गुरु गोविन्दसिंग के सच्चे सिक्ख नहीं हो सकते। अिन घटनाओंसे स्पष्ट है, कि स्वधर्म और स्वराज्य के सिद्धान्त को पटनेमें अेक ही माना जाता था; जिस का यही प्रमाण था।*

जब ये सिक्ख सैनिक पटना पहुँचे तब प्रांतभर के क्रांतिकारी आंदोलन को जड से अुखाडने के जतन टेलर ने शुरू किये। तिरहुत के जमादार वारिसअली का बर्ताव संदेहप्रद मालूम हुआ तब अफसरोंने अुसके घर को घेर कर अुसे पकड रखा। अुस समय अंग्रेजों का नौकर यह जमादार, गया के अली करीम नामक क्रांतिनेता को पत्र लिख रहा था। क्रांतिकारियों के पत्र व्यवहार का प्रत्यक्ष प्रमाण ही प्राप्त होनेसे अुसे अेकदम फाँसी का दण्ड दिया गया। जब अुसे फाँसी की टिकटिकी की ओर ले जाया जा रहा था, तब वह चिल्लाया 'कोमी स्वराज्य का भगत यहाँ मौजूद हो तो वह मुझे छुडावे।" किन्तु अुस की पुकार किसी स्वतंत्रता के पुजारी के कान में पडने के पहले ही अुस की मृत देह लटक रही थी।

अली करीम का पकडने की आज्ञा देकर अेक गोरे दस्ते को गया भेज दिया गया। जब अुस दस्ते का कमांडर भी लुभित अली करीम के पास पहुँचा तब वह हाथी पर चढकर भागा; ग्रामों में अच्छी होड लगी। किन्तु दर्शकोंने निष्पक्ष होकर यह तमाशा देखने के बदले मर्यादा तोड दी। आसपास

*(पृ.४२) पटनामें सिक्खों के पग धरते ही अेक पागल फकीर रास्ते में दौडा और। अशिष्ट धमकियाँ देकर, मुट्ठी बांधकर अुन्हें देशद्रोही, विश्वासघाती आदि गालियाँ बकने लगा।—टेलरकृत 'पटना क्राअिसिस'

के देहातियों ने जब देखा कि अपने भाअियों का पीछा फिरंगी कर रहा है, तो अुसे खूब हैरान करने लगे। कोअी अुसे अुलटा ही रास्ता बताता, तो अपना टट्टुआ बीचमें दौडा कर मार्ग में रुकावट पैदा करता। अिस परेशानी तथा निराशा से अूबकर अुस अंग्रेज अधिकारीने बेतहाशा भागनेवाले अली करीम का पीछा करने का काम अपने हिंदी नौकर को सौंपा और वह स्वयं खाली हाथ लौट आया। वह नौकर भी गोरोंका कट्टर द्वेष करनेवाला होनेसे पीछा करने के बदले अपनासा मुँह बनाकर अपने 'स्वामी' के पास चला आया।

प्रान्त में अिस तरह गिरफ्तारियों का हंगामा जारी था, अिधर शहर के कअी प्रमुख नेताओं के नाम टेलर के पास पहुँच गये। अुसने सब को अेक साथ सहसा पकडने का दाँव रचा! गुप्त समितिओं की बैठकें अिन्हीं नेताओं के घर पर होती थीं। टेलर को अिस की पूरी कल्पना न थी, कि और कौन कौन अिन नेताओं के साथी थे तथा अुन की क्या योजनाअें थीं; फिर भी तीन मुल्लाओं के बारे में अुस की निश्चिती हो गयी थी, कि वे अवश्य षड-यंत्रकारी थे और अुन्हे गिरफ्तार करना अत्यंत आवश्यक था। प्रकटरूप से अुन्हें पकडने से शायद वही असंतोष फूट पडेगा, जिसे दबाने का अिलाज वह कर रहा था। अिस डर से अुस अीमानदार (!) अफसर ने अेक अनोखी योजना बनायी। अेक दिन कुछ महत्त्व के राजनैतिक प्रश्नों पर परामर्ष करने के लिअे टेलरने शहर से कुछ चुने हुअे लोगों को बुला भेजा। जब सब निमंत्रित आ पहुँचे तब अुसने सिक्ख सैनिकों को वहाँ तैयार रखा; और बैठक समाप्त होनेपर जब निमंत्रित घर जानेवाले ही थे, तब टेलरने तीन मौलवियों को रोककर हँसते हँसते कहा, 'अैसी अशान्ति के दिनों में आप को खुला छोडना खतरनाक है' और अुन्हे गिरफ्तार किया। अर्थात् टेलरने यह काम अंग्रेजों के कल्याण के लिअे किया था, तब अिस फुर्तीले अुपाय पर, टेलर को हर तरफसे सराहा गया।

अिस तरह खून की अेक बूँद भी न गिराते हुअे प्रमुख हिंदी क्रांति-कारियों को गिरफ्तार करने के बाद, पटना में भी गिरफ्तारियाँ करने का निश्चय किया। अुस की योजना यह थी, कि ये गिरफ्तारियाँ अितनी अचानक हों कि

पटने के लोग अिस हंगामे से अशान्त होने के पहले सब काम पूरा हो जाय। अुसने दो आज्ञाअें जारी कीं (१) पटने के लोगों के सभी हथियार छिन लिअे जायें और (२) रात के नौ बजे के बाद कोअी घर से बाहर न निकले। दूसरी आज्ञा से गुप्त समितियों के काम में बाधा पड़ने लगी; और शस्त्रास्त्रों का संग्रह करना कठिन हो गया। अबतक पटने के षडयंत्रकारी दानापुर से बलवे की सूचना पाने की राह देख रहे थे। किन्तु क्रांति को खोद डालने का यह दमनचक्र जब शुरू हुआ, तब, अिस प्रकार ठैरे जाने की अपेक्षा तुरन्त जोरदार बलवा करनाही अुन्हों ने तय किया। ३ जुलाअी को पीर अली नामक नेता के घर सब लोग अिकट्ठे हुअे और अुन्हों ने बलवे की योजनाअें पक्की कीं। फिर क्रांतिके झण्डे हाथ में लेकर क्रांति के नारे लगाते सब लोग बाहर आये। लगभग २०० क्रांतिवीर शहर से जुलूस में गुजरे और गिरजाघर पर चढाअी की। कुछ सैनिकों के साथ लायल नामक अेक गोरा अुन को रोकने जब आगे बढा तब पीर अलीने अुसे गोलीसे अुडा दिया। और अन्य साथियों ने अुस गोरे की लाश की अितनी धज्जियाँ अुडायीं, कि अुस का हुलिया ही नष्ट हो गया। तब 'राजनिष्ठ' सिक्खों के साथ रैट्रे चढ आया। अुसने क्रांतिकारियों पर बड़ा जोरदार हमला किया। जब सिक्खोंने अपनी मातृभूमि के पेट में अपनी तलवारें घोंपी और अुस के रक्त से वे नहाये, तब शस्त्रास्त्र तथा अनुशासन में श्रेष्ठ अिस सेना के सामने बेचारे मुठीभर क्रांतिकारी क्या टिक सकते ? अंग्रेजोंने अेक के बाद अेक सभी नेताओं को पकड़ लिया। लायल का घातक पीर अली भी अुन में था।

पीर अली लखनवी था; किन्तु गत कअी वर्षों से पुस्तक विक्रेता का धंदा कर पटने में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। जितनी पुस्तकें वह बेचता अुन सब को पहले पढता, जिस से क्रांतिकारी विचारधारा को पूर्णतया पी गया था। पराधीनता तथा पराधीनता से वह अूब अुठा था। दिल्ली तथा लखनअू के क्रांतिकारियों से अुसका पत्रव्यवहार हमेशा होता रहता था। वह अपने ज्वाज्वल्य देशाभिमान की दीक्षा दूसरों को दिया करता। धंधे से पुस्तक विक्रेता होनेपर भी पटना के क्रांति नेताओं में अुसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। गुप्त

संस्था के धनी सदस्यों से धन प्राप्त कर अुसने काफी लोग सशस्त्र बनाये थे और अुन सबको ब्रिटिश शासन के विरुद्ध निश्चित समय पर अुठने के लिअे शपथबद्ध कर लिया था। कमिशनर टेलरने पटना में जुलम करना और सताना शुरू किया तब अुसका खून खौलने लगा, जिसने पीर अली को शान्त रहने न दिया। वह स्वभाव से कडा, साहसी और शूर था। अपने भाअियों की यंत्रणाअें वह देख न सका; और, जैसा कि अुसने स्वयं कहा–'समय से पूर्व अुठा'। पीर अली को फाँसी का दण्ड दिया गया। उस के हाथ भारी बेडियों से बाँध दिये गये थे। बेडियाँ अितना कस कसकर दबायी जाती थीं कि मांस में गढने से कलाअियों से लहू टपकने लगा! वधमंच पर जब वह खडा हुआ तब उसके मुखपर वीरोचित हास्य लहरा रहा था; वह अपनी मौत का सामना हँस कर रहा था। हाँ, जब अुसने अपने प्यारे पुत्र का नाम लिया तब अुसका गला भर आया। अिस भावावेग का मौका देख अंग्रेज अफसर बोला, 'देखो पीर अली! अब भी समय रहते अपने साथी नेताओं के नाम बता दो और अपनी जान बचाओ।' झट फिरंगि से मुखातिब हो कर निर्भीक और खरे शब्दों में अुसने कहा, 'देखोजी!

आयु में अैसे कुछ प्रसंग होते है जब प्राण बचाना आवश्यक ही होता है, किन्तु दूसरे अैसे भी प्रसंग होते है जब आत्मबलिदान ही महत्त्वपूर्ण साबित होता है। अभी दूसरे प्रकार का प्रसंग है, अिस समय मौत को गले लगाने से अमरत्व प्राप्त होगा।'

अिस के बाद अंग्रेजों के कअी अत्याचारों को स्पष्ट शब्दों में वर्णन कर पीर अली बोला.

तुम मेरी हत्या करोगे या मुझ जैसे काअिको तुम फाँसी से लटकाओगे किन्तु हमारी साधना को तुम कभी न मार सकोगे। मेरे मरने पर लहू की हर बूँद से हजारों वीर उठ खडे होंगे और तुम्हारा राज नष्ट कर देंगे।"*

---

* स. ४२ कमिशनर टेलर स्वयं कहता है पीर अली स्वयं साहसी और

बिस प्रकार की भविष्यवाणी का अुच्चारण कर; भारतभूमि की शानमें रंचभी धाग न लगाते हुअे पीर अली मौत के द्वार से प्रातःस्मरणीय महान् देशभक्तों के समुदाय में जा पहुँचा।

"मेरे लहू से हजारों वीर अुठ खडे होंगे!" अुस वीर हुतात्मा की भविष्यवाणी झूठी नहीं हो सकती थी; न हुअी। अुस के फाँसी जाने का समाचार सुन कर दानापुर की अत्यंत 'राजनिष्ठ' पलटन २५ जुलाअी को अुठी। अंग्रेजी तोपखाने की पर्वाह न करते हुअे तीन हिंदी पलटनों ने कंपनी सरकार की वर्दी चीर फाड कर सोन नदीपार चल दिया। मुख्याधिकारी मेजर जनरल लॉयिड के बुढापे से तथा अुस में समाये सिपाहियों के डर से गोरी सेना अुन का पीछा न कर सकी। मेजर जनरल अपने बुढापे के कारण मक्खी कुछ कर न सके, अुधर, क्रांतिकारी पलटनें जिस ओर दल कर जा रहीं थीं, जगदीशपुर के राजमहल में, ढलती अुम्र में भी भुजाओं तथा तलवार में तरुणों सा तेज चमकता था, और अपनी मूछों में शान से बल देता था, वह वृद्ध वीर जेठ, वहाँ खडा था। जिस वीरनेता के झण्डे के नीचे सब सिपाही जमा हो रहे थे।

स्वतंत्रताप्रेमी जनता तथा सिपाहियों के सभी जतन डगमग हर समय विफल कर देनेवाला अेक महान दोष दीख पडता था और वह था सुयोग्य नेता की कमी! शाहबाद जिले में कम से कम जगदीशपुरने तो जिस कमी को पूर किया था और जिसलिये सिपाही सोन पार हो कर सीधे वहाँ गये। वहाँ अुन्हें स्वाधीनता का युद्ध चलानेवाला सुयोग्य नेता मिलनेवाला था। वीरतासे झलकता, अद्वितीय परा-

---

क्रमशील (धर्म) हठीला था। बेढंगा रूप, रूखा तथा कठोर चेहरा होते हुअे भी वह शान्त, संयमी था। भोली तथा चालचलन सम्मानशील थ, जिस तरह के लोग, अुस की अजेय टेक के कारण, खतरनाक दुश्मन होते हैं और अुनकी कठोर आन के कारण, कुछ हद तक, आदर और प्रशंसा के पात्र होते है।"

क्रमशील तथा प्राचीन नामी राजपूत कुल का सपूत यह स्वराज का नेता अपने कुँवरसिंह नामसे अुस कुलकी कीर्ति बढा रहा था। शाहाबाद के विस्तृत भू प्रदेशपर अिस वंश का प्रभुत्व युग युगसे अखण्ड चल रहा था, जिससे जनताोंमें अिस पुरातन राजवंश के लिअे स्वाभाविक ही अपनौवा तथा प्रेम था। बडे बडे साम्राज्य के बवडर भारतमें अुठे और शान्त हुअे; किन्तु अिस हेरफेर में भी यह प्रदेश परोपकारी, दानी राजपूत राजाओं के छत्रतले स्वातंत्र्य और स्वराज में सुखी था। सैंकडों अराजों के झझाओं में कुँवरसिंह के राजवंश का बरगद धूप, पवन, ठंढ के आघातों को अपनी चोटीपर सह करभी, अपने पत्तों तथा शाखाओं में घोंसले बनाकर रहनेवाले निरीह पंछिओं की रक्षा तथा पोषण करते हुअे अटल खडा था। यह राजवंश अपनी प्रजा को पुत्र के समान प्यार करता था और अुनकी प्रजाभी अपने राजा को प्रभु का प्रतिनिधि मान कर पूजती थी। किन्तु विदेशी अत्याचारी सत्ताधीशों की आँखों में, ये आपसी प्रेम तथा पूज्यभाव के संबंध, काँटे के समान खटकते थे, अिसी से अुन्हों ने अिस राजवंश को मटिया मेट करने की ठानी। सहसा स्वराज का छत्र फट गया और सारा प्रदेश असहाय हो गया। बरगद पर ही निर्दयी गाज गिरने से आसरा टूटे पंछी चीखते हुअे अिधर अुधर घूमने लगे। और अिस अपने राजवंश तथा भारतपर हुअे अन्यायों का बदला लेने के विचारमें जगदीशपूर के अपने राजमहाल की बारहदारीमें यह बूढा युवक कुँवरसिंह अपनी मूँछों में बल देते हुअे खडा था।

बूढा युवक! हाँ, सचमुच ही आयु से बूढा होनेपर भी नौजवान–सा दीख पडता था। लगभग अस्सी धूपकाल अुसके सिर से गुजर चुके थे, फिर भी अुस के हृदय की वीराग्नि ज्यों कि त्यों प्रज्वलित थी; अुस की भुजाओं के स्नायुओं में अब भी नररुंडों की माला गूँथने की सामर्थ्य फडक रही थी! ८० वर्ष का कुँवर और फिर सिंह! अंग्रेज अिस देश को लूटते जायँ और यह देखता रहे? असम्भव! अवध का राज डलहौसी के हडप जानेपर स्थान स्थानपर खोदकर तथा टीलों को तोडकर भारतभर को समथल करने के काम में अंग्रेज लगे हुअे थे। और अिस धंधे में कुँवरसिंह का राज भी पिसा गया। जिस

तलवार के बूतेपर अंग्रेजोंने असे असह्य, निर्दय तथा अन्याय्य ढंग से सारे भारत तथा स्वराज का सत्यानाश किया था अुस तलवार के टुकडे टुकडे कर देने की प्रतिज्ञा कुँवरसिंहने की थी। और तुरन्त अुसने नानासाहब से सहयोग शुरू किया।

अेकों अेक भीषण रणगीत के सुर सुनायी देने लगे। कुँवरसिंह क्रांति की योजनाओं बना रहा है, अुसने भारतभर के क्रांतिसंस्थाओं से संबंध स्थापित किया है और पटना के सैंकडों सिपाही गुप्तरूप से अुस के वश में हैं, अिस मतलब के कभी समाचार बहुत दिनों से कमिशनर टेलर के कानों में पड रहे थे। किन्तु ८० साल का यह बूढा पलंगपर पडे शांतिसे मृत्यु की राह देखने के बदले समरांगण में कूदने के लिअे बेचैन है, यह बात अुसे सत्य और सम्भव न लगती थी। और कुँवरसिंह से 'राजभक्ति' के पत्र अबतक जो आया करते थे! फिर भी अंग्रेजों की हमेशा की अुदारतासे टेलरने यह अपवाद्-नेभा कुँवरसिंहको लिखा, 'अब आप बहुत वृद्ध हो गये हैं और आपका स्वास्थ्य भी अितना अच्छा नहीं है। आपकी शेष आयुके काल में आप के सहवास में रहने की मुझे कुरेद पड गयी है। सो, आप, कृपया, यहाँ आकर मेरी सेवा को स्वीकार कर सम्मानित करेंगे तो आप के बडे अुपकार होंगे। मेरे अिस निमंत्रण को न टाला जाय, असी आशा करने वाला भवदीय-टेलर"। किसी समय अफजल खाँने अिसी तरह का निमंत्रण शिवाजी के पास भेजा था। जगदीशपुर के चतुर राजपूतने भी अुसका मन्तव्य जान लिया कि, अितने प्रेम और आदर के साथ दिया निमंत्रण, चुपचाप बंदिशाला में ठूँस देने का दूसरा नाम है। अुसने अुत्तर लिखा; '*श्रीमान् जी, मैं अत्यंत आभारी हूँ। आपने ठीक ही* लिखा है कि मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, जिस से मैं पटने, शायद, नहीं आ सकूँगा। मेरे स्वास्थ्य में कुछ सुधार हो जाते ही मैं तुरन्त आप की सेवा में अुपस्थित होंगा'। कुँवरसिंहजी! सचमुच, तुम्हारा मन:स्वास्थ्य तथा शरीर स्वास्थ्य, ठीक नहीं है! और हाँ, फिरंगी का कुछ खून बहा कर कुछ स्वास्थ्य

सुधर जाने पर तुम पटना जाओगे यह भी सत्य है ! किन्तु किस की सेवा में ? सो बात दूसरी है।

अिसी समय दानापुर के विद्रोही कुँवरसाहब को चंगा करने के लिअे औषधि ले आये। कुँवरसिंहजी ! अब काहे की देरी ? "हम मातृभूमि की सौगंध लेते है, हमारे धर्म की शपथ; आप की शपथ ! अब म्यान फेंक दीजिये; स्वराज्य के लिअे तलवार सँवारिये। आप ही हमारे राजा, नेता, सेनापति ! आप राजपूत–कुल–भूषण ! अब आप रणमैदान में चलिये । अुन स्वातंत्र्य–प्रेमी सिपाहियोंने अिस तरह हो–हल्ला मचाया । कुँवरसिंह के ब्राह्मण पुरोहितने भी वही मति दी; और शत्रु को चीरने के लिअे तडपती अुस की तलवारने भी अुसके पास यही कानाकानी की। *तब हाथी पर से पटने जाने की भी जिसे शक्ति न थी, वह ८० वर्ष का बूढा वीर अपनी रुग्ण-शय्या से फुर्ती से अुठा और ठेठ समरागणमें जा डटा।

अिस के बाद विद्रोही सैनिक जगदीशपुर से शाहाबाद जिले के प्रमुख नगर आरा को आये। वहाँ का खजाना लूट कर अंग्रेजों के बंदिगृह, कार्यालयों तथा ध्वजों को तोडफोड डाला। अन्त में अेक छोटे किले की ओर मुडे। चतुर अंग्रेजों ने बुरे समय में रक्षा का स्थान बना कर वहाँ शस्त्रास्त्र, गोला-बारूद, अनाज तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कर रखा था। अिन मुठीभर अंग्रेजों के लिअे पटने से पचास सिक्खों का अेक दस्ता भी भेजा गया था ! कुल ७५ आदमी पूरी सिद्धता के साथ जिस बुरे समय की चिंता कर रहे थे वह आखिर आ पहुँचा । क्रांतिकारियों ने किले को घेर लिया।

जब ये २५ गोरे अपने ५० सिक्ख रक्षकों के साथ बडी टेक से प्रतिकार कर रहे थे, तब क्रांतिकारियों ने कोअी चढाअी न की; बस, घेरा दृढ कर के रह गये। शायद अुन्हें लगा होगा कि किला सहज में हाथ आयगा,

* "दि ब्राह्मणस् हॅव अिनसाअिटेड हिम टु म्यूटिनी अॅण्ड रिबेलियन।" मेजर आयर्स 'ऑफिशिअल डिस्पॅच, (अर्थात् ब्राह्मणोंने कुँवरसिंह को विप्लव तथा बलवे के लिअे भडकाया)

चढाओी कर आदमी तथा समय गँवाने की आवश्यकता ही नहीं है। शायद आसपास के प्रदेशपर तथा अंग्रेज छावनियोंपर नजर रखनाही अधिक महत्वपूर्ण मालूम हुआ होगा। कुछ अिन कारणों से और कुछ अिस कारण से, कि किले की तोपें जोरदार मार कर रही थीं, हमला करने के बदले सिपाहियों ने भी तोपों की मार शुरू की। अेक दो जगह सुरंग उडाये गये। थोडे ही दिनों में किले के पानी का खजाना खुटा। तब पूर सिक्ख अंग्रेजों की छटपटाहट देख न सके। २४ घंटों में अुन्हों ने किले में अेक कुआँ खोद डाला और साथ साथ वे राक्षसों के समान लड भी रहे थे। कानपुर के गोरों की क्या दशा हुअी थी अिस की पूरी जानकारी होने से किले के गोरे, शर्तीं शरणागति के लिअे सिद्ध न थे। जब, अिन गोरों के साथ किलेमें सिक्ख सैनिक भी लडने की बात क्रांतिकारियों को मालूम हुअी, तब वे क्रोध से पागल हो गये क्यों कि, फिरंगीयों को हिंदी सैनिकों के घेरने की बात न रही, वह तो कुँवारसिंह के गुरु गोविंदसिंग के चेले को घेरे में पकडने की बात हुअी सिक्ख असाधारण शूर किन्तु नीच, देशद्रोही, थे। हर शामको अुन्हें हर तरह से अुनके कर्तव्य का भान कराने की कोशिशें की जाती थीं। क्रांतिकारी दूर खम्भे की ओट खडे होकर चिल्लाकर अुपदेश देते, "ओ वाह गुरुदे सिक्खो! फिरंगी की सहायता कर तुम किस नरक की कमाओी कर रहे हो? जिन्होंने अपना स्वराज नष्ट किया, जिन्होंने अपनी मातृभूमि की विडंबना की और जिन्होंने अपने धर्म को अनाथ कर दिया अुनकी ओरसे लडकर, प्यारो! तुम किस नरक की सामग्री जोड रहे हो?" अुन सिक्खों को क्रांतिकारी धर्म, देश तथा स्वाधीनता की शपथ देते। अंत करण को पिघलानेवाली प्रार्थनाओं करते और फिरंगी का साथ छोडने का आग्रह करते। अन्त में अुन्हें धमकी भी दी जाती कि यदि अत्याचारी फिरंगियों की सहायता करने से तथा देशद्रोह करने से वे बाज न आयें तो अुन सब को कत्ल कर दिया जायगा। किन्तु अिन सभी अुपायों का सिक्खोंपर कोअी असर न होता; बरंच अिस के अुत्तर में वे क्रांतिकारियोंपर गोलियों की वर्षा करते, और अंग्रेज अुन्हें 'शाबाश, शाबाश' कह कर तालियाँ पीटते।

अिस तरह घेरा तीन दिन चालू था। तीसरे दिन २९ जुलाअी को सुदूर से अंग्रेजों की तोपों की गडगडाहट के सुनाअी देनेपर वे चौंके। अुन की बाछें खिल गयीं। क्रांतिकारियों को मार कर घेरा तोडने के लिअेही यह अंग्रेजों की सेना आ रही थी न? हाँ,—थी वह अंग्रेजी सेना। दानापुर की अिंग्लिश पलटन से लगभग २७० गोरे सैनिक और डन्बार के नेतृत्व में १०० सिक्ख अिस घेरे को तोडने क लिअे सोन के तट पर आ पहुँचे। अंग्रेजी सेना अितनी आनंदपूर्ण और विजयाशापूर्ण अिसके पहले कभी किसीने न देखी थी। सोन को पार कर आरा की सीमापर यह सेना शामतक पहुँच गयी। अुजले पाख का चाँद भी अुन की विजय में हिस्सा लेने अुन के साथ दौड रहा था। कॅप्टन डनबार! चाँदनी के रहते तुम अपनी सेना की व्यूहरचना कर लो, क्यों कि, अभी अंधेरा होनेवाला है। अिस व्यूह में पहली हरावल में सिक्ख सैनिकों का रखनाही अुचित होगा। और सिक्ख भी, मानो, अुन की वीरता का गौरव मान कर कदम बढाते आगे आये। आरा के घनघोर अरण्य में से रास्ता दिखानेवाला वह काला अगुआ है न? अुसे आगे रखो और, हे वीरवर! चादनी में चमकनेवाली अपनी पैनी तलवारें लेकर आगे बढो! पेड पीछे चले गये, मील के बाद मील पीछे छोडे गये, रास्ता खतम, और आरा का पुल भी पास आ गया। अँ! यह क्या? शत्रु कहाँ है? अेक भी क्रांतिकारी कहीं भी क्यों नहीं दिखायी देता? कायर कहीं के! भाग गये होंगे। बस, डनबार आ रहा है, सुनकरही भागे? सिकंदर भी अपने शत्रुओं को अितना घबराया न सका होगा। चाँद! इतने समय तक शीत तथा समीर के झोंकों में घनघोर युद्ध देखने के लिअे तुम ठहरे; किन्तु तुम केवल क्रान्तिवीरों की चातुर्यपूर्ण पीछेहट देख सके हो। अच्छा, अब जाओ! अधिक निराशा होनेतक तुम क्यों कर यहाँ ठहरते हो? रात की तमोमय शाल अिस संसारपर अुढाकर अपने आरामगाहमें सुख से जाओ। चाँद भले लौट आय किन्तु डनबार, देखो, तुम न कभी पीछे हटना। यह देखो यहाँ अँबराअी है, और पाँडे मिल जाने की आशा तज दो। हे! यह काहेकी आवाज? शायद पवन से आमके पत्ते तो नहीं सरसराते? साँय; साँय; अंग्रेजो, सावधान!

दसों दिशाओं से गोलियों की बौछारें होने लगीं। अमराओं की डाली डाली से बंदूकें तनी हुई थीं और वे भी फिरंगियों पर निशाना ताक रही थीं! कहीं कुँवरसिंह तो नहीं आया? अगर आये तो लड़ने, पर किस के साथ? शत्रु का अेक भी मानव दीख नहीं पड़ता। अमराअियोंमें, रात के भीषण अन्धकार में गढ़ों में, टीलोंपर, जहाँ और कुँवरसिंह के सैनिक छिपे हुअे थे, किन्तु अेक भी दीख न पड़ता था। आकाशमें तारका और भू पर पेड़; बस, और कुछ भी नजर नहीं आता; और अिन दोनोंपर पहुँचे दानवन विजय का सम्भावना थी नहीं! व्याकुलता का दबाव; और कहीं से सॉय सॉय करती गोलियों की गरम बौछार हुअी। अंग्रेजों के गणवेश (यूनिफार्म) सफेद होने से तुरन्त दीख पड़ते, किन्तु कुँवरसिंह के सैनिक 'काले', अुनकी वर्दियाँ काली और अपार भी काला! अिस तरह सब 'कालों' से पर्यंप करनेपर अगम अपने सफेद पैर कैसे जमा सकेंगे? गोरे भागने लगे, साथमें अुनके सिक्ख सिपाही भी भागने लगे। कमांडर डनबार तो पहले ही ढेर हो गया। जी बचाने के लिअे भागते हुअे गोरे अेक मकान के पास पहुँचे, जहाँ अुन्होंने कुछ समय तक टिकनेका यत्न किया। किन्तु सवेरे तक केवल मुर्दों ही को नहीं, घायलों को भी खेत में छोड़कर, भूखे प्यासे, लहूलुहान, लजाये मुँह लटकाये अंग्रेज सैनिक सोन की दिशामें भाग खड़े हुअे।

किन्तु कुँवरसिंह के चंगुलसे छूट जाना अितनी सरल बात न थी। पग पगपर खून सींचा गया। भाले के चौंपनेसे लहूलुहान जंगली सुअर जैसे हो कर मार्गपर लहू टपकाता हुआ आखिर में भागता है, ठीक वही दशा सोनतक पहुँचते पहुँचते अंग्रेजों की हुअी। किन्तु सोनपर तो अुनकी दुर्दशा की हद हो गयी। पहले अुनकी किश्तियाँ ही गायब। खोज करने पर पता चला कि वे बालू में फँसी हैं, और जो खुली थीं अुनमें 'पाटे' वालोंने आग लगा दी थी। निदान, दो नावें मिलीं। सोनके पहले किनारे दानापुर के गोरे, महान् विजय प्राप्त कर आरा के मुक्त किये गोरों को साथ लिये, रणगीतों को गाते अपने सैनिक क्षेत्र आयेंगे अिस आशा,

ऑंख बिछाये खडे थे। नावें दीख पडीं; किन्तु हाय! आनद की अेक भी पुकार या नारा न सुनायी दिया। न झण्डा, न रणगीत, सब मुँह लटकाये। अिधर किनारेवालों की बेचैनी बढी; हृदय धक्‌धक् करने लगे, मेरा बेटा, मेरा भाअी, मेरे स्वामी, मेरे बाबूजी- हाय अैसी बुरी कल्पना, प्रभु करे, न आय—कलही तो विजय की बडी आशा बॉध कर गये थे—किन्तु यह प्रार्थना आकाशस्थ पिता के पास पहुँच न पायी थी कि दानापुर के अभागे सैनिकों ने घाटपर पॉव रखा और तुरन्त बिजली के समान समाचार फैला " ४५० गये थे; केवल ५० कुँवरसिंह के चगुल से बचकर यहाँ पहुँच पाये थे।" अेक अंग्रेज लिखता है:-अुस दिन, हृदय दहलानेवाला अंग्रेज स्त्रियों का करुण विलाप जिस ने सुना है, जीवनभर अुसे वह भूल न पायगा। कुछ अेक आर्त आक्रोश कर अपनी छाती पीठ रही थीं, कुछ अेक ढाडें मारकर रोतीं और अपने बाल नोंचती थीं। अिन अभागिनियों के सामने अुस समय, अिस सत्यानाश का अुत्तरदायी, जनरल लॉअिड होता तो, निस्सदेह वे सब अुस को कत्ल कर देतीं।"

अिधर दानापुर की गोरी मेमों के आक्रोश से कुहराम मचा हुआ था, अुधर मेजर आयर अंग्रेजों की हार तथा हानि का बदला लेने के लिअे आरा पर जा रहा था। डनबार की बुरी हार की खबर अुसे अबतक न मिली थी; घेरे हुअे अंग्रेजों को छुडाने वह वेग से चल पडा था। कुँवरसिंह के सैनिक २९ तथा ३० जुलाअी को डनबार को हराकर लौट रहे थे, तब आयर के आरे पर चढ आने की खबर मिली। अेक क्षण भी न गँवाते हुअे अुस वृद्ध सेनापति ने अपनी सेना की व्यूह—रचना की। मार्ग के सभी नाकों के मोर्चे बॉध कर २ अगस्त को बीबीगंज के पास आखरी लढाअी हुअी। हर अेक दल पास के घन-घोर जंगल का आसरा पाने का जतन कर रहा था। बुढापे और तरुणाअी के अिस मुठभेड में बुढापे ने ही विजय पायी, आयर के मनसूबे चूर चूर हो गये, तब अुसने तोपों का धडाका शुरू किया। अुस के पास तीन बढिया तोपें थीं जिन के बूतेपर अुसने कुँवरसिंह को पीछे धकेलना शुरु किया। क्रांतिकारियोंने

तीन बार जिन तोपों पर हमला किया; तीनों बार वे आग उगलती तोपों के बिलकुल नजदीक पहुँच गये थे, किन्तु अंग्रेजी तोपें धड़धड़ाती रहीं। तब कैप्टन हेस्टिंग्स हाँफता हुआ आकर सेनापति आयर को बोला 'देखो हमारी गोरी पैदल सेना भी पीछे धकेली जा रही है, मालूम होता है हमारे हाथों से विजय छटका जा रहा है"। यही कचघावध और आध घंटे तक जारी रहता तो कुँवरसिंह पूरी जय पाते। किन्तु विजय की सम्भावना दूर दूर जाती दीख पड़नेपर, पीछे हट जाने के पहले अेक बार, निराशा के आवेग से, जोरदार धावा बोल देने की अंग्रेजोंने ठानी। आयरने संगीनोंका हमला करने की आज्ञा दी। तात्काल गोरे सैनिक क्रांतिकारियों की हरावल पर तीर की तरह टूट पड़े। तोपों के मुँह में चढ़ जानेवाले क्रांतिकारी संगीनों के हमले के सामने क्यों न ठहर सके जिसका कारण यद्यपि बताना कठिन है; किन्तु बात ठीक है। आयरने अुन्हें जंगल में भगा दिया और वह सीधे आरे के किले की ओर चला। वहाँ पहुँच कर अुसने घेरे गये गोरों की मुक्तता की। आरा फिर से अंग्रेजों के हाथ में आया।

आरा का घेरा कुल आठ दिन रहा। जिन आठ दिनों में घेरा दृढ़ रख कर और दो लड़ाअियाँ, अुस बूढ़े राजपूत वीर को, लड़नी पड़ीं। अुस के जैसी फुर्ती, साहस और वीरता अुस के अनुयायियों में न होने से, आयरके हरा देनेपर कुँवरसिंह को जगदीशपुर तक पीछे हटना पड़ा। किन्तु, घेरे से मुक्त सैनिकों से पुष्ट अंग्रेजी सेना से भिड़ने के लिअे जगदीशपुर के सभी लड़ने योग्य लोगों को भरती करना शुरू किया। अंग्रेजों को कुँवरसिंह की क्षमता का कुछ कम परिचय न हुआ था। भय था, कि वह आरापर चढ़ आयेगा सो, अुसके पहले आयर जगदीशपुर पर गया। जिस अनुशासन-पूर्ण विजयी अंग्रेजी सैनिकों के साथ अपनी राजधानी की सीमा पर, पहले से दिल बैठे अनुयायियों के बलपर सीधे टकराना असम्भवसा दीखने पर कुँवरसिंह को कुछ चिंता हुअी। अैसी दशा में गुरुयुद्ध (गेरिले युद्ध) का अवलंबन कर, दो कड़ी मुठभेड़ों के बाद वह जगदीशपुर से बाहर हो गया। निदान, १४ अगस्त को आयरने

जगदीशपुर के राजमहल में अपना डेरा डाला। अंग्रेजों ने राजमहल, हिंदु मंदिर तथा अन्य निवासों को ध्वंस भले ही कर दिया; किन्तु अिन सब की पवित्र मूर्ति कुँवरसिंह तो अितनी लडाअियों के बाद भी अजिंक्य ही रहा। अपनी राजधानी की दशा देखकर कोअी दूसरा राजा होता तो वह दाँत में तिनका दबाये कभी का शरण में आया होता, किन्तु जगदीशपुर नरेश अिस मिट्टी का न बना था। जहाँ नरेश वहाँ जगदीशपुर यह थी अुस की आन। तब नरेशको छोड जगदीशपुर के अींट पत्थरों को लेकर क्या करें? क्यों कि, जगदीशपुर अुसका घर न हो कर समरांगण ही अुसका महल बना था।

अध्याय ४ था

दिल्ली का पतन

जब अंग्रेजों का तीसरा सेनापति भी दिल्ली जीतने की आशा छोड त्यागपत्र देकर चला गया, तब ब्रिगेडियर जनरल विल्सन ने अुस का स्थान लिया। अुस समय, क्रांतिकारियों के जोरदार हमलों से पागलसे बने अंग्रेज सैनिक निराश होकर अत्यंत गंभीर चर्चा कर रहे थे, 'अब घेरा अुठा लिया जाय तो कैसे!' यदि अुस समय घेरा अुठा लेने का निर्णय अमल कर लेते, तो यह कहना कठिन है कि १८५७ की क्रांतिका क्या रुमान होता। यही वह क्षण था, जब कि क्रांतिकारियों से किये अनेक पराभवों से अधिक हानि अंग्रेजों को अुठानी पडती। क्रांतिकारी सेना अेक ही स्थान में अटक पडनेसे दिल्ली को घेरा डालने में अंग्रेजों को आक्रमण तथा बचाव के लिअे सुविधाजनक स्थान अनायास प्राप्त हुआ था। यदि यह सेना अेक ही स्थान में अटकी रहने के बदले प्रांतभर में फैल कर गृहयुद्ध शुरू करती तो थोडे ही समय में अंग्रेजी सेना को क्रांतिकारियों के आगे आत्मसमर्पण करना पडता; किन्तु दिल्ली के घेरेसे रणक्षेत्र संकीर्ण बन गया। अबतक अंग्रेजोंपर अनवरत् दबाव नहीं पडा था; अुलटे क्रांतिकारियों के अेक ही स्थान में सडते रहने से अुन्हींपर हमले करना अंग्रेजों को सुविधापरक हो गया था। अैसे समय में घेरा अुठा लेना तो क्रांतिकारियों को, बाँध तोडकर सारे प्रदेश में सैलाब

की तरह, फैलने का मौका ही देना था। दिल्ली जीती जाती, तब भी सिपाही बाहर फैल जाते! किन्तु हार कर बैठे दिल से दिल्ली के बाहर हो जाने में और घेरा अुठ जाने से कुछ बौखला कर अंग्रेजों पर टूट पडने में बडा अंतर था। अंग्रेज सेनापति अिस रहस्य को अच्छी तरह जानता था, किन्तु निराशा, निरुत्साह तथा विद्रोहियों के भयंकर हमलों के भय से, अुसे लगने लगा था, कि घेरा अुठा लिया जाय। अंग्रेजी सत्ता का सत्यानाश होने का समय पासही आया था। किन्तु, सचमुच, अंग्रेजों के सौभाग्य से ठीक अुस समय बेर्डस्मिथ जैसा साहसी तथा प्राणों की चिंता न करनेवाला, धीरज से संकटों का सामना करनेवाला अधिकारी वहाँ आ पहुँचा। जहाँ अन्य सभी अधिकारी पीछेहट की भाषा बोल रहे थे, बेर्डस्मिथने घडल्ले से कहा, कि 'अेक चप्पा भी दिल्ली की पकड ढीली न होनी पावे! जमराज के पाश के समान अुस के गले में जो फंदा फँसाया है वह वैसाही कसा हुआ रहना चाहिअे! दिल्ली का घेरा अुठाया जाय, तो पंजाब गँवाअेंगे, हिंदुस्थान गँवा बैठेंगे और साम्राज्य हमेशा के लिअे डूब जायगा।"

अिन शब्दों से कुछ अुत्तेजित हो कर ब्रिगेडिअर विल्सनने निश्चय किया, कि दिल्ली जीतने तक घेरा नहीं अुठायेंगे। अिधर क्रांतिकारी भी असाधारण जीवट से घेरा तोडने की चेष्टा करते थे। छोटी छोटी टोलियाँ बनाकर वे अचानक अंग्रेजों के दाहिने पासे पर हमले करते और अंग्रेज अुनका सामना करे अिस के पहले शत्रु के, हो सके अुतने, लोगों को कत्लकर लौट भी आते। पीछा करनेपर मजबूर कर दिशा भुलाने भुलाते अपने घेरे में फँसे अंग्रेज सैनिकों पर विद्रोहियों की तोपें अग्निवर्षा करतीं। क्रांतिकारियों ने अिस चाल से, अितने गोरों को मार डाला कि अुस संख्या को गिनकर विल्सनने विशेष आज्ञा दी, कि किसी दशा में सिपाहियों का पीछा न किया जाय। अिस तरह अंग्रजों की सेना, क्रांतिकारियों की धोखे की चालसे घट रही थी, तब पंजाब से आनेवाले घेरे के लिअे आवश्यक तोपखाने की ओर सेनापति की आँखें लगीं। अुत्तर भारत के तारघर, अग्निगाडी तथा डाक जैसे यातायात के साधनों का, क्रांतिकारियों ने, पूरा फैसला कर डाला था, जिस से अुन के

युवराज भवानबख्त, दिल्ली
के हाडसन की नीचता का शिकार

समान अंग्रेजी सेना भी घिरी हुई थी। जिस से दिल्ली की दक्षिण में क्या हो रहा है, कलकत्ते से भेजी हुई सेना अबतक आ पहुँचा या नहीं, लखनऊ, कानपुर, बनारस का क्या हाल है जिस का कोई पता अंग्रेजों को न था। सर ह्यूलर तो मारा गया था। उन के एक महीने बाद अंग्रेजों को 'विश्वस्तसूत्र' से पता चला कि ह्यूलर उन की सहायता के लिये बड़े वेग के साथ आ रहा है। कलकत्ता से किसी प्रकार की सहायता पाने का लक्षण न दिखता था, जिस से सारा जोर पंजाब पर ही था। किन्तु सब संकटों के बीच गोरे तथा सिक्ख सैनिकों के दस्ते सर जॉन लॉरेन्स भेजता ही रहता था। जिस बार भी, घेरे के काम में उपयुक्त वस्तों तथा अन्य वस्तों को भेज देने की नयी प्रार्थना को न टाल कर उसने निकल्सन् के आधिपत्य में दो सहस्र सैनिकों को रवाना किया। उन के दिल्ली पहुँचतेही हर एक मुख आनन्द, आशा, और उत्साह से चमकने लगे। सैनिकों की संख्या से, सेनापति निकल्सन का आना अधिक उत्साहवर्धक था। सेनापति निकल्सन हजारों सैनिकों के बराबर था। निराशा से गड़े हुए अंग्रेजों के सैनिकों में हर एक यही [illegible]ता, 'बस, अब निकल्सन आया; अब विजय कहीं, मिलेगा।'

किन्तु यह [illegible] सेनानी मिल जाने से विजय के बारे में सभी संदेह एकही बात में पूरी [illegible] उल्टे, क्रांतिकारी सेना को कोई सुयोग्य नेता न मिला [illegible] ऐसा दिनोदिन गल्ती आती थी। सम्राट बहादुरशाह [illegible]ने पर बिठाया था; शान्तिकाल में सराहनीय यथा, [illegible] उसमें अवश्य थे। किन्तु युद्ध के बारे में उसे कोई अनुभव [illegible]नापति के स्थान के लिये वह योग्य न था। दिल्ली में शूर सैनिकों की [illegible]भा न थी। अंग्रेजों की नौकरीमें रहते जिन्हों ने गोरे के भी कान वीरता में काटे थे, जिन की सैनिक शिक्षा तथा अनुशासन अंग्रेज अफसरों की ही निगरानी में पूर्ण हुए थे, जिन की वीरता के कारण ही अंग्रेज अफगानिस्तान

तक अपनी सीमा बढा पाये थे, अैसे ५० हजार सैनिक अुस समय दिल्ली शहर में थे। किन्तु अिन सूरमाओं का नेतृत्व कर विजय प्राप्त करनेवाला अेक भी नेता होता तो अच्छा होता। जो लडे और लडते लडते पराजित हुअे अुन ५० सशस्त्र वीरों की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोडी है। समर्थ नेता के न रहते भी अितने दिनों तक वे कैसे टिक सके यही आश्चर्य है! जिस सम्राट को अुन्हों ने सिंहासन पर बिराजमान किया था, अुसे भी अिन स्वयं-नेताओं को अेक सुयोग्य सेनापति देने की चिंता बेचैन कर रही थी। अुसने काफी ढूंढा पर कुछ न पाया। बख्तखॉं को सब सत्ता अुसने सौंप दी ही थी। और तीन सेनापतियों की नियुक्ति सेना के सुप्रबंध के लिअे की थी। फिर अुसने तीन सैनिक तथा तीन नागरिकों की अेक समिति बनाकर अुसे सेना की सुखसुविधा का काम सौंपा था। किन्तु ये प्रतिनिधि किसी तरह के सुधार करने की क्षमता न रखते थे। अिस स्वदेशप्रेमी सम्राट् को संदेह हुआ कि कहीं अुस के ही दोष से या सर्व-सत्ता-प्रमुख होने से अच्छे अच्छे लोग अुस का पक्ष छोड जायेंगे और क्रांतिकार्य का सर्वनाश करेंगे। अिस से अुसने यह प्रकट घोषणा की, कि वह सम्राटपद का त्याग करने को सिद्ध है। भारत फिर से अंग्रेजी शासन का देश होने, विदेशी मंडराते गिद्धों
तक विपन्न दशा में पडे हिंदुस्थान की, ऑंतों को नें
गुलामी की गर्ता में सडने की अपेक्षा, अिस बूढे मु
"मेरे शासन के बदले जो कोअी सज्जन स्वराज्य और स्वा
भारत को करा दे अुसके हाथ में सम्राट्पद सौंप देने को तैयार हूं!" जयपुर, जोधपुर, बिकानेर, अलवार आदि संस्थानों के महाराजाओं को अुसने अपने हाथ से यों पत्र लिखे थे-

"मेरी यह तीव्र अिच्छा है कि चाहे जो मूल्य दे कर, हर अुपाय से, हिंदुस्थान से फिरंगी को भगा दिया हुआ देखूं। मेरी यह तीव्र अिच्छा है कि समस्त भारत स्वतंत्र हो जाय। **किन्तु स्वाधीनता के लिअे लडे जाने-वाले अिस क्रांतियुद्ध को विजयमाला तभी पहनायी जायगी** जब, कोअी अैसा व्यक्ति, जो राष्ट्र की भिन्न भिन्न शक्तियों को

संगठित कर अेक ओर लगा सके, जो सारे आंदोलन का दायित्व तथा संचालन सम्हाल सके, जो समूचे राष्ट्रका सर्वमान्य प्रतिनिधित्व कर सके, मैदान में आकर अिस क्रान्ति का नेतृत्व करे। अंग्रेजों के निकाल दिये जाने के बाद अपने निजा लाभ के लिअे भारतपर शासन करने की मेरेमें तनिक भी अिच्छा नहीं है। यदि आप राजा लोग शत्रु को भगा देने के लिअे अपनी तलवारें अुठा कर आगे आने को तैयार हों तो मैं अपने तमाम शाही अख्तियार आप के किसी अैसे संघ के हाथ में सौंप दूँगा जिसे अिस काम के लिअे चुना जाय।"*

यह पत्र हिंदी मुसलमानों के अेक नेताने—दिल्ली के सम्राट्ने—हिंदुस्थान के हिंदू नरेशों के नाम लिखा है। अिस अमूल्य अद्वितीय पत्र से स्पष्ट होगा कि १८५७ में भारत में स्वाधीनता, स्वराज्य, स्वधर्म ये शब्द जनता के रोम रोममें किस तरह भरे हुअे थे। हिंदु मुसलमानों की धर्मभावना अिस प्रकार राष्ट्रभक्ति से अेकरूप हुअी देख चार्लस् बॉल कहता है, "अिस तरह का अनपेक्षित, आश्चर्यकारी तथा असाधारण परिवर्तन सारे संसार के अितिहास मे शायद ही कहीं मिलेगा।"

किन्तु यह असाधारण परिवर्तन हिंदुस्थान के विशाल भूभाग के केवल अेकही प्रांत में पूरी तरह सफल होने से सम्राट की अिस घोषणा को अपेक्षित यश न मिला। दु:ख की बात है, कि दिल्ली की किलाबंदी के सामने स्वाधीनता तथा पराधीनता का अिस प्रकार झगडा चल रहा था, वैसा कडा झगडा हिंदुस्थान के अन्य किसी स्थान में छडा नहीं जा रहा था। 'दिल्ली के मुहासरे का अितिहास, अिस प्रसिद्ध ग्रंथ का लेखक कहता है "तोपखाने में गोरों के चौगुने हिंदी सिपाही थे। हर अंग्रेज सवार के पीछे दो सवार हिंदी थे। अिस प्रकार, बिना हिंदी लोगों की सहायता के, अंग्रेज अेक डग भी भर न सकते थे।" हिंदुस्थान के

* दि ऑथेंटिक लेटर—जेटिग्ज नॅरेटिव्ज, मेटकाफ कृत, पृ २२६ (सम्राट् का असली पत्र)

अेक हिस्से में अुमडा आंदोलन, दूसरे हिस्से की आलस्य–निद्रा से अपने आप मारा गया। अैसी स्थिति का सामना करते हुअे अगस्त के अन्ततक अंग्रेजों को आक्रमण करने का कोअी मौका न देकर गोरी सेनापर लगातार हमले जारी रखे। क्या कोअी कह सकता है, कि यह स्वराजनिष्ठा का बिलकुल मामूली प्रमाण है?

जब सुयोग्य नेता के अभाव में क्रांतिकारियों की यह सारी वीरता तथा निष्ठा प्रभावी न हो सकी, तब अंग्रेजों के पक्ष में निकलसन जैसे सेनापति का नेतृत्व प्राप्त था। दिल्ली में आज पहलेपहल निराशा का वायुमण्डल पैदा हो गया था। नीमचवाले तथा बरेलीवाले अेक दुसरे को अिस स्थिति के लिअे दोषी ठहराना चाहते थे। बागी सिपाही समय पर वेतन पाकर भी, अधिक वेतन मॉगने लगे और मॉग पूरी न होने पर दिल्ली के धनी लोगों को लूटने की धमकियॉ देने लगे। तब सम्राट् की आज्ञा से बख्तखॉने सिपाहियों के अगुवाओं, सिपाहियों और दिल्ली के प्रतिष्ठित नागरिकों को परामर्ष के लिअे अेक सभा में बुलाया और सब से पूछा 'रण या शरण'? सारी सभाने 'शरण नहीं; रण–रण–रण' की गर्जना से गगन गूँजा दिया। अितना प्रचंड अुत्साह देखकर सब ओर आशा का वायुमण्डल बन गया। क्रातिकारी सेनाने नीमच और बरेलीवालों समेत नजफगढ पर चढाअी कर अंग्रेजों की तोपें छीनने का निश्चय किया। वहॉ पहुँचने पर नीमचवाली पलटन ने बरेलीवाली पलटन के पास डेरा डालना स्वीकार न किया। दोनों ने बख्तखॉ की, सब मिल कर चढाअी करने की, आज्ञा न मानी और नीमचवालों ने अेक पडोसी गॉव में डेरा डाला। अंग्रेजों को अिस का पता लगते ही निकल्सन आवश्यक चुनिदे सैनिक लेकर नजफगढ पर फुर्तीसे चढ आया। अचानक अुसने अलग डेरा डाले–बख्तखॉ की आज्ञा ठुकरा कर–नीमचवालों पर धावा बोल दिया। क्रातिकारी सेना बिखरी हुअी, असावधान तथा अव्यवस्थित, जहॉ निकल्सन की सेना अनुशासित, चौकन्नी तथा शस्त्रास्त्रों से लैस! तब और क्या हो सकता था? नीमचवाली पलटन का सफाया हो गया। अुस पलटन के सैनिक असाधारण वीरता से लडे। शत्रुने भी अुनकी वीरता को सराहा। किन्तु,

यह वीरता, वह पराक्रम व्यर्थ हुआ। बुंदेल-की-सराय के बाद ऐसी हार क्रांतिकारियों को कभी न खानी पड़ी थी। नीमच की सारी पल्टन उस दिन खेत रही। अपने ही मत से चुने अपने ही सेनापति की आज्ञा अहंकार से ठुकराने का यह परिणाम था। बिना अनुशासन की वीरता कायरता के समान ही व्यर्थ होती है।

• २५ अगस्त को मिल विजय से अंग्रेजों के हृदयाकाश में जमे निराशा के मेघ साफ छँट गये। शुरू से लेकर आज तक यह उनकी पहली ही विजय थी। दिल्ली पर टूट पड़ने के लिये हर एक अब आतुर था। विलसन ने दिल्ली के आखरी हमले की योजना बनाने का काम बेर्डस्मिथ को सौंपा। जिस के आग्रह से पेरा उठा जाने की सोचनेवाली गोरी सेना दिल्ली में टिकी रह सकी, उसी बेर्डस्मिथ ने सिपह सालार की आज्ञा के अनुसार आखरी चढ़ाई की रूपरेखा बनायी। पंजाब से खास आयी सेना तथा तोपखाना अंग्रेजी पड़ाव में सुरक्षित पहुँच गये थे। अंग्रेज सेनापति ने सब सैनिकों को आवेशपूर्ण आदेश यों दिया :—"आज तीन महिने, तीन सेनापतियों की सैनिक चतुरता की दाल न गली और दिल्ली स्वतंत्र बनी रह पायी। आज दिल्ली की ईंट से ईंट बजाकर तुम अपने मस्तक को जश का मुकुट पहना कर ही रहोगे यह स्पष्ट दीख पड़ता है।"

वहाँ की अंग्रेजी सेना में ३५०० गोरे, ५००० पंजाबी सिक्ख तथा २५०० कश्मीरी सैनिक थे। इन ११००० सैनिकों की दिल्ली जीतने के काम में सहायता देनेके लिये अपने सैंकड़ो सैनिकों को लेकर जींद नरेश स्वयं उपस्थित रहा। सितंबर के पूर्वार्ध में अंग्रेज सेनापतिने चढ़ाई की नीति पर चल कर मोर्चेबंदी का काम जारी किया। जिस से दिल्ली के सैनिकों में चमचमाहट पैदा हुई। दिल्ली के परकोटे के परे अंग्रेज सेना धीरज से तथा अनुशासन-पूर्वक चढ़ाई कर रही थी, जहाँ हिंदी सेना में अव्यवस्था, अंदाधुंद, तथा आज्ञाभंग का दौरदौरा था। अंग्रेजी सेना के हिंदी सैनिक मोर्चे बाँधने का काम जोश तथा उत्साह से कर रहे थे; दिल्ली के तोपखाने की पर्याप्त

बिलकुल न करते थे। फॉरेस्ट लिखता है, "हमारी सेना के हिंदी जवानों ने अतुल शौर्य तथा दृढता दिखा कर, सब से बढ गये। अेक के बाद अेक लाशें फडकतीं फिर भी अुन्हों ने अपना काम बन्द न किया। अपने से कोअी आदमी बम से मर जाय तो अेकाध क्षण वे काम रोकते, मृतक के लिअे अेकाध आँसू बहाते, लाश को पास के लाशों के ढेर में सरका देते और, बस, अुस भयंकर स्थान में काम में लग जाते।

"अंग्रेजों के मातहत हिंदी सैनिक अितने अनुशासन पूर्वक काम करते थे और दिल्ली के हिंदी सैनिक—अपने ही अधिकारी के मातहत—किनारा कसते थे!

अिस भेद से हमें क्या ही महत्त्वपूर्ण पाठ मिलता है! अपने अधिकारियों को योग्य सम्मान देकर अुन की आज्ञा के हर अक्षर पर अमल करना ही अनुशासन का मुख्य सूत्र है। ठीक अिसी सिद्धान्त को पैरोंतले कुचला जाता था। बहुत सारा दोष अक्षम अधिकारियों के सिर और रहा सहा अनुशासन न पालनेवाले सिपाहियों पर आ पडता है। और, हद हो गयी मन तोडनेवाली निराशा के कारण! १४ सितम्बर की पहली किरणें पडीं। अंग्रेजी सेना के चार हिस्से किये गये, जिसमें से तीन विभाग निकलसन के मातहत बाअें पासेपर तथा अेक मेजर रीड के मातहत दाहिने पासे पर रखकर काबुल दरवाजा तोडकर दिल्ली में प्रवेश करने की सिद्धता हुअी।

सूरज अुगते ही, दिनरात आग अुगलनेवाला अंग्रेजी तोपखाना अेकाअेक शान्त हो गया। तब अंग्रेजी सेना में अेकाअेक थोडे समय तक सन्नाटा छा गया और तुरन्त ही क्षणार्ध में निकलसन की सेनाने किले के परकोटे पर धावा बोल दिया। कश्मीर बुर्ज में पडे छेद से पहला सेनाविभाग अंदर घुसने लगा। क्रांतिकारियों की तोपें धडधडाने लगीं। अुस समय खाअियों में अंग्रेजों की लाशों का ढेर लग गया; फिर भी कुछ सैनिक कोट तक आ ही पहुँचे। नसेनी लगाकर सैनिक अूपर चढने लगे। क्रांतिकारी भी जान हथेलीमें लिअे लड रहे थे; अंग्रेजी सेना के सैकडों सैनिकों को गोलियों से अुडा दिया किन्तु

जिस प्रचंड संहार की भी परवाह न करते हुअे अंग्रेज सेना आगे बढ ही रही थी। निदान, छद् बहुत थोडा बनाकर वे अंदर घुसने में सफल हुअे। दिल्ली के कोट का प्रतिकार खत्म हो गया और अंग्रेजों ने विजय की तुरही बजायी।

अिसी तरह पानी बुर्ज के पास पडी दरार में भी कशमकश जारी रहा और अंग्रेजी सेना के दूसरे विभाग ने चप्पा चप्पा भूमिपर लडकर मारते और मरते हुअे दरार को लाँघ कर दिल्ली के अंदर प्रवेश किया।

तीसरा सेनाविभाग कश्मीरी दरवाजेपर चढ गया था। जब ले होम तथा सॉल्केल्ड वहाँ पहुँच कर सुरंग से उडा देने के यत्न में थे, तब कोट से, खिडकियों से, हर जगह से गोलियों की वर्षा हुअी। कश्मीरी दरवाजे के पास की खाअी पर जो लकडी पुलिया थी, उडा दी गयी थी। केवल अेक तख्त वहाँ दीख पडता है। ठीक है; अेक अेक कर के चढो, बढो। ओर, यह सार्जंट मर गया; यह महान् गिरा—चिंता नहीं। यह देखो होम आगे बढा—बढ गया और दरवाजे के पास ज्वालिनाग्निभित रख आया। अुसे के पीछे अुस मुल्माने लोग आगे घुसे। ले सॉल्केल्ड गोली खा कर गिर पडा! पडने दो! कैं बर्जेस क्या देखते हो? आगे बढा। हैं, तुम भी गोलीसे गिरे? चिंता नहीं; गिरते गिरते तुमने सुरंग तो सुलगा दी है। क्या ही भीषण धमाका! सारा कश्मीरी–दरवाजा उड गया। किन्तु लडाअी के हंगामे में सेनापति के कान में यह धमाका न पडा; वह कश्मीरी–दरवाजा खुलने की राह देख रहा था। अब क्या करें, आगे घुस पडे या नहीं? अुसने विजयी तुरही की ध्वनि न भी सुनी हो, अुसे आगे गये वीरवरों की यशस्विता में पूरा विश्वास था। कॅपबेलने चढाअी की आज्ञा दी। खाअी में गिरे किन्तु अमर विजयी सैनिक देख अंग्रेज कश्मीर–दरवाजे के खंडहर से दिल्ली में घुस गये।

मेजर रीड के नेतृत्व में चौथा विभाग दाहिनी ओर से काबुली–दरवाजे पर चढ गया था। जब ये सैनिक सब्जीमण्डी तक जा पहुँचे, तब अुन के प्रतिकार के लिअे दिल्ली से आगे बढनेवाले सैनिकों से अुनकी मुठभेड हुअी। मेजर रीड खेत रहा; जिस से अंग्रेजी चढाअी रुकी और सब गडबडी मच

गयी। क्रातिकारी भी फूल गये और भय था कि अंग्रेज अब भाग खडे होंगे। किन्तु होपने ग्रॅट अपने रिसाले को आगे बढाया और दोनों पक्ष समबल हुअे। अंग्रेजी तोपखानेने किशनगंज के हर घर और बगीचे से आग की बारिश बरसायी थी, तो क्रातिकारियोंने भी गोलियों की मूसलाधार वर्षा से खून के पोखर बना डाले थे, जिससे अंग्रेजी रिसाले के लिअे आगे बढना दूभर हो गया; किन्तु पीछे हटना भी, क्रातिकारी तोपों पर दखल कर लेंगे अिस भय से, कठिन था। तब अंग्रेजी रिसाला डर कर मौत का सामना करने लगा। केवल मरनेपर ही अपनी जगह से कोअी डिगा! अंग्रेजों के मातहत हिंदी सैनिकों के अिस जौहर तथा अनुशासन के बारे में सेनापति होप ग्रॅट कहता है:—" हिंदी रिसाला डट कर अपनी जगह खडा था। अुन्होंने सचमुच असाधारण पराक्रम का परिचय दिया। जब मैं अुन्हें बढावा देने लगा तब वे बोले—'चिंता न कीजिअे। आप जब तक चाहें, हम अिस तोपों की अग्निवर्षा को सहते रहेंगे!'"

अिधर स्वदेश और स्वाधीनता के प्रेमियोंने भी अुतने ही पराक्रम का परिचय दिया। अुत्तेजित क्रातिकारियोंने चप्पा चप्पा भूमिके के लिअे अीदगढ के पास हठीली लडाअी की। हमले पर हमले हो रहे थे। अीदगढ हथियाने के बारे में अंग्रेजी सेना जब हिचकिचा रही थी, तब क्रातिकारियों ने और अेक भीषण हमला किया। अंग्रेजों को हटना पडा। क्रातिकारी दबाते रहे और तोपखाने तथा रिसाले पर चढाअी कर अुन्हें पीछे धकेला। अबतक सम्हाले हुअे मोर्चे को छोड कर अब अंग्रेजी सेना मैदान से भागने लगी। क्रातिवीरों! धन्य हो! आज तुमने सचमुच कमाल कर दी। तुम्हारी सारी सेना यदि अितनी ही वीरता से लडती तो...।

अिस प्रकार चौथा सेनाविभाग निकम्मा होगया। अिधर दिल्ली के अंदर घुसे अन्य तीनों विभाग कुछ समय तक कश्मीरी दरवाजे पर रुके और फिर तुरन्त दिल्ली शहर पर हमला करने को बढे। कॅम्बल, जोन्स और निकलसन तीनों प्रमुख अफसर अपनी सेना के साथ काबुली दरवाजे से अंदर घुसने के लिअे झूझने लगे। जो मिलीं, सब तोपें हथिया लीं। हर खम्भेपर तथा घुमटीपर

अंग्रेजी झण्डे लहराये गये। सब सेना लड़ते हुभे बर्न बुर्जतक पहुँची। हाँ, जिस के बाद् असुरक्षित तोपें, निर्जन टीले और बीरान खेतों के बदले 'मारो फिरंगी को' के भीषण नारे सुनायी पड़े। यहाँ क्रांतिकारियों ने गोलियों की बाढ़ पर बाढ़ चलायी। पग पगपर भूमिपर रक्तपात और मृत्यु के चिन्ह मिलते थे। जो अंग्रेज सैनिक विजय के अुन्माद् में अंदर घुस आये थे वे फिरसे पीछे जानेपर पीछे हटने लगे। अंग्रेजी सेना पर पड़ी भार को देख निकलसन शेर—सा आगे बढ़ा। अुस का प्रण हा था, 'शूर वीर के लिये संसारमें कुछ भी असम्भव नहीं'। अुत्तेजित निकल्सन जब कॉटर बॅस्टियन से निकल कर गली में घुसा, तब फिर अेकबार घमासान युद्ध होने लगा। गली की भिस दो सौ गज की जगह में पानिपत का छोटा संस्करण दिखायी पड़ा। मोरा देखा नहीं, और क्रांतिकारी सूरमा ने अुसे गोली से अुड़ाया नहीं। छज्जों, छाजनों, खिड़कियों, बरामदों, ओसारों से यह हठीली स्वाधीनता—प्रेमी गली अपने अनगिनत मुखों से आग अुगल रही थी। निकल्सन को भी अुसने पीछे हटने पर मजबूर किया। शूर जेकोब भी मारा गया। निकल्सन; अब तुम जरा आजमा देखो। तुम्हें छोड़ अन्य सभी अफसरों को यह गली निगल गयी है। स्वातंत्र्य देवता का मंदिर बनी जो गली! वीरता का घर बनी जो पवित्र गली देखो अब निकल्सन स्वयं बढ़ आ रहा है। अब ठीक सामना होगा। प्राणों की बाजियाँ खेली जाने लगीं। अेकाअेक मानों आकाश से गाज गिरी और अंग्रेजी सेना में कुहराम मच गया। निकल्सन! हाय, निकल्सन, कहाँ हो? किसी क्रांतिकारीने घात लगाकर अुसपर वार किया और निकल्सन भूमिपर लोटने लगा। अंग्रेजी सेनामें 'हटो, हटो' की ध्वनि अुठी, जहाँ क्रांतिकारी सैनों में 'काटो, काटो' की ध्वनि गूँज अुठी। कैसी मृत्युमुखी गली है! अुसकी लम्बाअी का चप्पा चप्पा अंग्रेजी लाशों स पट गया था।

अिस विजयी गली से पीछे हट कर अंग्रेजी सेनाविभाग काश्मीरी धुर बाजे के पास पहुँच ही पाया था, कि जुम्मा मसजिद की ओर गये दूसरे विभाग ने पीछे हट की धुर ही बजायी। मसजिद तक पहुँचते हुभे अुन्हें

कोअी रोक थाम न दिखायी दी थी। हॉ, वहॉ पहुँचते ही क्रांति के वीरघोषोंने आकाश भर दिया और फिर वहॉ जो भिडन्त हुअी अुसमें कॅम्बेल स्वयं घायल हुआ।

अिस तरह दिल्ली के आक्रमण का पहला दिन समाप्त हुआ। अैसा भीषण दिन देखने का दुर्भाग्य अंग्रेजी सेना के भाग में कभी न बदा था चार सेना-विभागों से तीन के सेनापति घायल हुअे, ६६ अफसर तथा ११०४ सैनिक मारे गये। अितना मूल्य दे कर क्या हाथ लगा अिसका हिसाब जब मुख्य सेनानी विलसन करने लगा, कि दिल्ली का चौथा हिस्सा हाथ आया है। भय, चिंता, तथा निराशा से जनरल विलसन का मस्तिष्क घूमने लगा और अब हर अेक सूचित करने लगा ‘हट जाना ठीक रहेगा’। “अबतक दिल्ली पर दखल नहीं हुआ; अेक गली मेरे अितने वीर खा गयी, और सहस्रों क्रांतिकारी, जीवित रहे हुओं को युद्ध का आव्हान देही रहे हैं। अब सब की बलि चढाअी जाय या पराजय की अपकीर्ति सही जाय? लौट जाना ही अच्छा रहेगा;” यह था विलसन का विचार।

रुग्णालय में रखे गये निकलसन के कान में यह भनक पडी, तब वह तिलमिलाकर बोला, ‘लौट जाना? परमात्मा की कृपासे अब भी मुझ में अितना बल है, कि लौट जानेवाले विलसन पर गोली चलाअूँगा’। अिस मृत्युशय्या पर पडे वीर के ये उद्गार सब जीवित बचे गोरों को जँच गये और १४ सितंबर की रात में जीती हुअी भूमिपर अंग्रेज डटे रहे।

अंग्रेजी युद्ध समितिने जनरल विलसन के पीछेहट का प्रस्ताव न माना। क्रांतिकारी सेनाकी छावनी में रातमें जो हलचलें हो रही थीं अुस से अंदाजा लगता है, कि अुस का सब बल समाप्त हो चुका है अुसमें अेक दल का विचार था, “दिल्ली छोडकर बाहर के प्रदेश में लडाअी की जाय,” जहॉ दूसरे दल का आग्रह था, “हम में से हर अेक मारा जाय तो भी दिल्ली न छोडनी चाहिये।” अंग्रेजों की ओर विरोधी भिन्न मत चाहे जितने हों, बहुमति का निर्णय सिर ऑखों पर रख कर सब मिल कर काम में लग जाने में सारे मतभेद विलीन हो जाते थे। यह गुण दुविधा में पडे क्रांतिकारी दस्तों

में न दिख पड़ता था। उल्टे, दोनों दल आपसी सहयोग से कुछ निश्चित योजना करने के बदले, अपनाही हठ पकडे रहते। कुछ सिपाही दिल्ली छोड भागे, जहाँ, कुछ, रंच भी न हटने का निश्चय कर, सिरपर कफन बाँधे रणमैदान में डट गये। ये सिपाही १५ से २४ सितंबर तक दिल्ली के लिअे झूझ, और वह भी पूरी दृढता तथा वीरता से। जब अेकाध अंग्रेजी दस्ता मसजिद या राजमहल में घुसने की चेष्टा करता तब पहरेदार सिपाही अंग्रेजों को आते देख बंदूक के घोडेपर हाथ रख, बंदूक ताने, अपने देश के नामपर अन्तिम गोली दाग देता और अिसतरह अपनी मातृभूमि का अन्तिम सेवा कर मौत को गले लगाता।

जब दिल्ली का तिहाअी हिस्सा गोरों के हाथ चला गया तब सेनापति बख्तखाँ ने बादशाह के चरणों में प्रार्थना की, "दिल्ली अब हमारे हाथसे निकली जा रही है, फिर भी यह मतलब नहीं कि विजय की पूरी आशा नष्ट हो गयी हो। अभी भी अेक ही सीमित स्थल की रक्षा न करते हुअे बाहर खुले प्रांत में शत्रु को सताने का अुद्योग किया जाय तो अन्तमें जीत हमारी होगी! अब जो वीर अिस स्वातंत्र्य-समर में अन्त तक अपनी तलवारें सँवार कर लडने को सिद्ध होंगे, अुन के साथ दिल्ली के बाहर निकल जाने के लिअे मैं लडूँगा। शत्रु की शरण माँगने की अपेक्षा अिस तरह लडते लडते ही दिल्ली छोड जाना मैं अधिक अच्छा मानता हूँ। सम्राट! आप भी हमारे साथ चलिये। आप के झण्डे के नीचे हम स्वराज के लिअे आखरी दम तक लडेंगे।" वृद्ध मुगल बहादुरशाहमें बाबर, हुमायूँ या अकबर का सौ वाँ हिस्सा वीरता होती तो अिस बहादुरी के निमंत्रण को तुरन्त स्वीकार कर, बहादुर बख्तखाँ के साथ वह बाहर निकल जाता। अैसे ही मरना था तो कम से कम सम्राट के योग्य मरना था। किन्तु, बुढापा, अुससे अुत्पन्न मानसिक निराशा, लम्बे अरसेतक सुख-भोगों से प्राप्त सुस्ती, अेव पराजय से हुआ दिल, अिन सभी कारणों से, बहादुरशाह अन्त तक अुधेडबुन में रहा, कोअी निर्णय कर न पाया। आखरी दिन तो वह हुमायूँ के मकबरे में छिप गया, बख्तखाँ के निमंत्रण को ठुकरा दिया और अिलाहीबख्श मिरजा के कहने पर अंग्रेजों

की शरण में जाने की सोचने लगा। यह अिलाहीबख्श हद दर्जे का पाजी था। अुसने अंग्रेजों को सब वारदातों की खबर दी। कॅप्टन हडसन आ कर खडा हुआ। जान बचने का आश्वासन मिलने पर बादशाह शरण में आ गया; अंग्रेजों ने राजमहाल में बंदी कर रखा। तुरन्त अिलाहीबख्श और मुनशी रजबअली दो हरामखोर—दौडते हुअे आये और अंग्रेजों को बताने लगे, 'शाहजादे तो अब भी हुमायूॅं के मकबरे में छिपे है।' कॅ. हाडसन फिर से दौडा, शाहजादे पकडे गये,. शरण आनेपर अेक, गाडी में बिठाकर शहर में ले जाया जा रहा था। यह बारात जब शहर में आ पहुॅंची तब हाडसन गाडी के पास जाकर चिल्लाया 'अंग्रेज औरतों और बच्चों को कत्ल करनेवालों को मौत ही की सजा ठीक है।" राजपुत्रों के शरीर पर से सब आभूषण अुतार लिया गया और अुन्हे गाडी से बाहर घसीटा गया। फिर अुन अभागे राजपुत्रों को खडा किया गया। तुरन्त हाडसनने तीन गोलियॉं चलायीं और तीनों राजपुत्रों का काम तमाम कर दिया। तैमूर के वंश की अन्तिम कोंपलें अिस प्रकार हाडसन ने नष्ट कर डालीं। किन्तु अुन राजवंशीयों को मार कर अंग्रेजों का प्रतिशोध शान्त न हुआ। 'मरणान्तानि वैराणि—' मरजाने तक वैर—का विचार तो जगली लोग भी मानते हैं। किन्तु, हॉं, हाडसन भी अुस सिद्धान्त पर चलता, तो सभ्य अंग्रेजों के कीने की अमानुषता का परिचय कैसे मिलता? अिन राजपुत्रों के मृत शरीर थाने के सामने फेंक दिये गये। कुछ समय तक गिद्धो ने अुन की दावत खाने के बाद सडी गली लाशों को घसीट कर नदी में फेंक दी गयीं। हे काल देवता! तुम कैसे परिवर्तन करा देते हो! सम्राट् अकबर के राजवंशीयों का अन्तिम धार्मिक संस्कार करने के लिअे दिल्लीमें कोअी न मिला और अब सिक्खों को विश्वास हुआ कि अुन के ग्रंथों में वर्णित भविष्यवाणी सच्ची और प्रत्यक्ष हो गयी! किन्तु किस रूप में? किस अर्थ में और परिणाम क्या निकला?

अिस के बाद अकथनीय लूटमार और हत्याकाण्ड का प्रलय दिल्ली में शुरू हुआ। अुस का विवरण मिलने पर लॉर्ड अेलफिन्स्टन, सर जॉन लॉरेन्स को, लिखता है, "घेरा अुठा लेने के बाद हमारी सेनाने जो क्रूर अत्याचार

किये उससे सचमुच हृदय काँप उठता है। शत्रु मित्र में भेद न करते हुओ कत्ले आम की नीति रखी गयी। लूटमार के विषय में तो हम अंग्रेजों ने नादिरशाह को भी मात कर दिया है।"*

अमरल आउटरम का तो विचार सारे दिल्ली को जला देने का था।

दिल्ली के घेरे के लिये जमा हुओ अंग्रेज और हिंदी सैनिकों की संख्या दस हजार थी, जिनसे लगभग ४००० खेत रहे या घायल हुओ। अितनी भयंकर आहतों की संख्या क्रिमिया के युद्ध में भी न थी। अंग्रजों के विवरण स क्रांतिकारियों की हानि की निश्चित संख्या बताना असम्भव है; फिर भी वह ५, ६ हजार से कम न थी। ×

हाँ, स्वधर्म और स्वराज्य की उच्च मनोभावों से प्रेरित यह अिंद्रप्रस्थ नगरी, अंग्रेजों के समान प्रबल शत्रु से १२५ दिन और रातें अविराम जूझती रही। मतलब, दिल्ली की लडाओ अैसे अूँचे तथा अुदात्त सिद्धान्तो को शोभा देनेवाली रही। जिस दिन किले से फिरंगी झण्डा अुखाड कर दिल्लीने स्वराज्य की घोषणा की; जिस दिन पराधीनता की मोहमयी शृंखलाओं को तोड कर स्वराज्य की स्थापना की; जिस दिन भारत के विशाल भूखण्ड में अेकता के महामंत्र का अुच्चारण राष्ट्रीय झण्डे के नीचे दिल्लीने पहले पहल किया, अुस दिन से ठेठ अुस दिन तक, जब कि बहादुरशाह के राजप्रसाद में अंग्रेजी तलवारें स्वदेशी रक्त को पी गयीं, अिस नगरीने पवित्र स्वातंत्र्य-समर को शोभा देनेवाले निःस्वार्थी तथा अुदात्त वीरवृत्ति के परिचायक कुछ कम काम नहीं किये! न नेता, न संगठन, अंग्रेजों के समान सैनिक विद्या में मँजे हुओ शत्रुओं से पाला, फिरंगियों के समान, नहीं अुन से भी बढकर पराक्रमी और अपनेही देशबंधुओं पर टूट पडे स्वदेशी तलवारों से टक्कर! अैसी सब तरह से

* लाअिफ ऑफ लॉरन्स खण्ड २, पृ २६२

× रॉटन कहता है (पृ १९५) "विद्रोहियों की हानि की संख्या सदाही अनगिनत बतायी जाती थी।"

प्रतिकूल परिस्थिति में भी क्रांतिकारियों ने सराहनीय टक्कर दी। किन्तु समर्थ नेता के अभाव में सैनिकों में सदा दीख पडनेवाली फूट तथा संगठन की कमी जिनसे अुस पक्ष में असीम गडबडी पड गयी। फिर भी अिस अनहद विपत्तियों का सामना करते हुअे दिल्ली के क्रांतिकारी सच्चे राष्ट्रीय तथा धार्मिक हुतात्माओं के समान लडे, जिस से दिल्ली के घेरे का अितिहास अमर रहेगा। अुन वीरों के गुणों तथा दोषों को भी आगामी पीढियों ने नितांत आदर के साथ देखना चाहिये। "दंतच्छेदोऽपि नागानां श्लाघ्यो गिरिविदारणे।" दाँत भले ही टूट जॉय, पहाड को चूर्ण करने का जतन करनेवाला हाथी महान् है। अिन सब गुणदोषों की गूँथनी में स्वधर्म और स्वराज्य के प्रेम तथा अुदात्त सिद्धान्त के लिअे बलिदान का तेज चमकता है, जिस से क्रांतिकारियों के गुण और दोष भी नैतिक वीरता की जीवित गाथायें हैं।

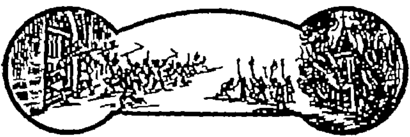

अध्याय ५ वाँ

लखनअू

जिस दिन चिनहट की लडाअी में क्रांतिकारियों की जीत हुअी, अुसी दिन अवध की अंग्रेजी शासन का अन्त हुआ और बलवे का रूप खुली क्रांतिमें परिणत हुआ। सिपाहियों, नरेशों, जागीरदारों, जनता ने लखनअू के खाली पडे सिंहासनपर अपने चुनाव से राजा को गद्दीपर बिठाया और शासन शुरू करवाया। चिनहट की विजय के बाद अेक सप्ताह तक जो अंधा धुंध अराजक मच रहा था वह, आगामी युद्ध की किसी प्रकार की सिद्धता करने के पहले, दबा देने की आवश्यकता थी। जिस से भले ही अंग्रेजों को अेक सप्ताह का अवकाश अनायास मिला, क्रांतिकारियों ने पहले लखनअू का राज्यप्रबंध ठीक ठाक करनेपर ही जोर दिया। लखनअू के भूतपूर्व नवाब वाजिद अली शाह कलकत्ते में अंग्रेजों के कैदी थे, जिससे लोगों ने अेकमत से अुन के बेटे बिरजिस कादिर को लखनअू के सिंहासन पर बिठाया और अुसके नाबालिग होने से शासन सूत्र, अुसकी माता हजरत महल को, सौंप दिया। दिल्ली के राजप्रासाद में बहादुरशाह के बुढापे के कारण राज का कारोबार जिस तरह बेगम जीनत महल ही चला रही थी, अुसी तरह नाबालिग बेटे के कारण बेगम हजरत महल को राज का बोझ अुठाना पडा। अवध की यह बेगम झाँसीवाली

लक्ष्मीबाअी के बराबर तो न थी, फिर भी वह साहसी, स्वतन्त्रताप्रेमी तथा संगठन की क्षमतावाली थी। दरबार के अेक सरदार महेबूबखाँ पर असे पूरा विश्वास था। न्याय, मालगुजारी, पुलीस तथा सैनिक विभागों में भिन्न भिन्न अधिकारियों की नियुक्ति की थी। हर दिन दरबार लगता था। वहाँ सभी राजनैतिक प्रश्नोंपर चर्चा होती। नवाब के स्थानपर बेगमसाहिबाही सभी निर्णयों का नेतृत्व करती। अवध प्रांत से अंग्रेजी शासन नष्ट होकर वहाँ असका कोअी चिन्ह शेष नहीं है, यह समाचार, बेगम की राजमुद्रासे अंकित कर तथा साथ बहुमूल्य अुपहार देकर, सम्राट के पास भेज दिया गया। आसपास के जमींदारों माण्डलिकों तथा जागीरदारों को अपने सशस्त्र सैनिकों के साथ लखनअू चल आने के लिअे पत्र भेजे गये। नये नागरी अधिकारियों की नियुक्तियों, प्रतिदिन की बैठकों, और अन्य कारणों से स्पष्ट होता था कि क्रांति का काम पूरा हो कर रचनात्मक राजशासन का प्रारंभ हो चुका। किन्तु, दुर्भाग्यसे जिन अधिकारियों की नियुक्तियों में क्रांतिकारियोंने अितना उत्साह दिखाया था, अुन्हीं अधिकारियों की आज्ञा और शासन को सिर आँखोंपर रखने की आतुरता तो न दिखलाथी। **सभी क्रांतियों में यही भूल अिसी तरह की जाती है। और अिसीमें प्रारंभ से क्रांति के सर्वनाश के विष-बीज बोये जाते हैं।**

> हर क्रांति का प्रारंभ विद्यमान शासन संस्था-के नियम निर्बंधों को बल पूर्वक तोडकर ही होता है। किन्तु अेक बार अवैध शासन-सत्ता के अन्याय्य नियम निर्बंधों को बलपूर्वक तोड देने की आदत पडी, कि अुस हुल्लडबाजीमें सभी अच्छे बुरे निर्बंधों को ठुकराने की हानिकर सनक दृढ होती जाती है। दुष्ट और क्रूर अन्यायी निर्बंधों को तलवार के बूतेपर भंग करने की आदत सभी नियमों, निर्बंधों, कानूनों को तोडने की आदी बन जाती है। विदेशी सत्ता को अुखाड फेंकने के लिअे जो वीर मैदान में आते हैं, अुन्हे हर प्रकार के शासन को खोद डालने की अिच्छा होती है। परायी सत्ता की बनायी मर्यादाओं को भंग करने के आवेग में अुन्हें न्यायपरक और सदा आवश्यक, हितकारी, शासनसंस्था

की मर्यादाओं भी नहीं बँधती। और जिस तरह क्रांति का रूप पलट कर अराजक मच जाता है। सद्‌गुण दुर्गुण बन जाते हैं; जो वास्तव में जनता के मंगल करनेवाला होने के बदले विनाश का कारण बन जाता है। व्यक्तियों, समाजों तथा राज्यों का संहार जितना परायी सत्ता से होता है, उतनाही अराजक (अनार्की) से होता है; उसी तरह दुष्ट नियमों–निर्बंधों से उन का जितना नाश होता है, ठीक उतनाही किसी प्रकार के नियम–मर्यादाओं के न रहने से या होनेपर उनका पालन न करने से भी होता है। किसी भी क्रांति में जिस समाजशास्त्र के सिद्धान्त की ओर ध्यान न दिया जाय, तो साधारणतया उस क्रांति का स्वयं सर्वनाश होता है। जिस तरह बीमारी से मुक्त होने के उद्देश्य से कोई व्यक्ति शराब पीने लगता है वह रोग–मुक्त होनेपर भी नशा करना नहीं छोडता, ठीक उसी तरह दुष्ट राजशासन से छुटकारा पाने के लिये दुष्ट नियमों को तोडने की आदत पड जानेपर, उद्देश्य पूरा होने के बाद भी वही आदत जारी रहती है और लोगों को वह निठल्ले और शासनद्वेषी बनाती है। अन्याय, अत्याचार को नष्ट करनेवाली क्रांति सचमुच पवित्र है। किन्तु एक तरह के अत्याचार–अन्याय को जड से उखाडते हुये यदि उसी तरह के अत्याचार–अन्याय का पौधा, किसी क्रांति में, लगाया जाता हो, तो तुरन्त वह क्रांति पापी और अपवित्र बन जाती है; और उसी पातक के गर्भ में बढनेवाले असंख्य विषबीजों से उस क्रांति का सवनाश हो जाता है।

किसी से, परदास्य के रोग से मुक्त होने के लिये क्रांति की मदिरा पीना चाहे, तो पहले से वह सावधान रहे कि उसे पातकी आदत न लगने दे। परायी सत्ता के द्वेष के साथ साथ, अपनी देशी–सत्ता को सिर आँखोंपर मानने की शिक्षा भी अपने मन को प्रारंभ से देनी चाहिये। विदेशी हुकूमी सत्ता का उच्छेद करते समय, हर प्रयत्न से, आपसी झगडों को टालने की सावधानी रखनी चाहिये। परायी सत्ता को मटियामेट करते ही उसी क्षण से आम

जनता की चुनी शासन–पद्धति का अुपयोग, अराजकसे अुत्पन्न विपत्तियों से देशकी रक्षा करने के हेतु, चालू कर देना चाहिये। और अेक बार वह ठीक तरह से चालू हो जाय, फिर तो हर अेक को अुस सत्ता के आगे परम आदर के साथ सिर झुकानाही चाहिये। नये नियुक्त अधिकारियों की आज्ञा करें। पर पूरी तरह अमल हो और अनुशासन भी अच्छी तरह रहे। सर्वसाधारण के मंगलको ही लक्ष्य कर क अपनी व्यक्तिगत सनक को संयमित करे। शासन–पद्धति में कुछ भी सुधार चाहो, तो बहुमत के निर्णय ही से किया जाय। **थोडे में, बाहर क्रांति और अंदर वैध राज्यपद्धति, बाहर गोल-माल, कुप्रबन्ध, अंदर पूरा सहयोग, सुप्रबंध; बाहर तलवार अंदर न्याय—यही नियम बना लिया जाय।**

संसार की सभी राज्य–पद्धतियों के ये सिद्धान्त–क्रांति की सफलता के लिअे अवश्य जिन को ध्यान में रखना पडता है—विप्लक के प्रथमार्ध में ठीक ठीक निभाये गये थे। क्रांति का प्रारंभ होते ही दिल्ली, लखनअू, कानपूर तथा अन्य स्थानों में यथाशक्ति फुर्ती से शासन को दृढ बनाने पर विशेष ध्यान दिया गया था। अिन महत्त्वपूर्ण स्थानों में अपना ही अुल्लू सीधा करने के हेतु या अपना रोब तथा प्रतिष्ठा बढाने के लिअे अेक भी ढोंगी महात्मा आगे न आया। भिन्न भिन्न गद्दियों पर मात्र सच्चे वारिसों और जनप्रिय राजवंशियों को बिठाया गया। अिन नरेशों ने अपना अुल्लू सीधा कर अपनी सत्ता का क्षेत्र बढाने की अभिलाषा, क्रांति से लाभ अुठाकर, भूल कर भी न दिखलायी। यहाँ तक कि, राष्ट्रीय स्वाधीन। मार्ग में स्वयं रुकावट हो जाने की सम्भावना हो तो अपना राज्याधिकार तज देने के लिअे सिद्ध होने की बात बहादुरशाहने कही, अिसका प्रत्यक्ष प्रमाण, अुस समय के अुपलब्ध असल खत–पत्रों में मिल जाता है। अिस तरह १८५७ में रचनात्मक राज-शासन का प्रथम भाग सराहनीय अूँची सतह पर रखा जाने से संपूर्ण यशस्वी ही ठहरा। किन्तु सारी क्रांति में महत्त्वपूर्ण बहुसंख्य वर्ग साधारण सिपाहियों का ही होने से, परायी सत्ता की शृंखलाअें अेक बार तोड देनेपर, वे किसी का भी बंधन नहीं चाहते थे, जिस से अिस आडे समय में अनुशासन में ढीलापन

आ गया। स्वराज्य के ध्येय से प्रेरित पवित्र उमंग से जिन को अपने श्रेष्ठ अधिकारी पद पर बिठाया, उन्हीं का वे अपमान करने लगे, उन की आज्ञा पर चलने को टालमटूल करने लगे और डर होने लगा कि कहीं क्रांति का परिवर्तन अराजक में न हो जाय। ऐसे मौकेपर अमूर्त ध्येय के प्रेम से संगठित होने की क्षमता न रखनेवाले अनुयायियों के अंतःकरण अपनी अजेय वीरता तथा असाधारण व्यक्तित्व स आकर्षित करनेवाला कोई महान् पुरुष आगे आता, तो वीरपूजा के नाते सब उस के झण्डे तक्ले खडे हो जाते और क्रांति विजयिनी होती। एक तो, ऐसी क्षमतावाला एक भी नेता न मिला और दूसरे, अनियंत्रित क्रांति का अन्त अराजक में होने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होने से अवध की सेना में शहीदों (हुतात्मा) के बदले पाँचों वीरों में अपना नाम लिखवानेवाले ही अधिक थे। जो हुतात्मा थे, उन्होंने निडरता से, अपराजित और अजेय विर्धार से—' करेंगे या मरेंगे '—सीन घातक युद्ध किया। लखनऊ में सर्वसाधारण सिपाहियों की संख्या, देशपर बलि चढनेवाले हुतात्माओं की अपेक्षा अधिक होने से हजरतमहल के नियुक्त अधिकारियों की आज्ञाओं का ठीक पालन शायद्ही कोई करता था, जिस से सिपाही उच्छृंखल, पीडक, अनुशासनशून्य तथा मनमौजी बनते गये।

तो भी उन्ही से कुछ वीर ऐसोंने पराक्रम, उदात्त साधना की धुन तथा स्वाभाविक उच्च प्रवृत्तियों का विकास सिपाहियों में किया था। और जिन शूर व्यक्तियों ही ने आग्रह किया तब २० जुलाई को रेसिडेन्सीपर जोरदार हमला चढाना तय हुआ।

२ जुलाई को, जितने दिनों से काम उगलनेवाला तोपखाना एका एक शान्त हो गया। लगभग सबेरे ८ बजे क्रांतिकारियों ने रेसिडेन्सी की फसील के नीचे सुरंग भर दिये। उन का धडाका होते ही उस भग-सट से सिपाही अंदर घुस पडे; साथ साथ तोपखाने ने भी अंग्रेजों को भुनना शुरू किया। क्रांतिकारी सेना हर तरफ से अंग्रेजों पर टूट पडी—रेडान की ओर, इनेस के घरपर, कानपुर बैटरी पर। जिस आखरी स्थान पर टूट पडे सैनिकों ने अंग्रेजी तोपों पर सीधा धावा बोल दिया। बारबार वे चढ जाते।

अुन का वीर नेता स्वराज का झण्डा अूँचा कर खाअी में कूदा, और जोरसे पुकार ने लगा 'आ जाओ, बहादुरो, आगे बढो'। खाअी पार कर वह अूपर चढा और अंग्रेजी तोपों पर स्वराज का झण्डा गाडने की चेष्टा करने लगा।* किन्तु वह नेता गोली खाकर गिर पडा। वह समय था, जब हजारों की संख्या में अुस की लाश पर से आगे बढ कर अुस हुतात्मा की मौत का बदला शत्रु के खून से, लिया जाना चाहिये था। किन्तु आगे घुस पडने के बदले सैनिक अनुचरोंने अुलटे मुँह घुमाये और हट गये। किन्तु, धन्य हो निसेनीवालो! अुन पाँचवें वीरों की तरह तुम कायर न बने, आगे बढे, सच्चे मर्दों की तरह आगे बढे! खाअी में निसेनी लगाओ और अंग्रेजी तोपखाने के गोलों की परवाह न करते हुअे अूपर चढो। आगेवाली पाँति खेत रही—अच्छा, चिंता नहीं—दूसरे चलो आगे! अरे, किन्तु और लोग है कहाँ? विद्रोहियों और अंग्रेजों में यही तो भेद है। अपने भाअियों का रक्त अंग्रेज व्यर्थ में कभी बहने न देगा। अेक गिरा तो पीछे से दस आदमी अुस की जगह लेने दौड पडते। अस्तु। जो सिपाही पीछे हट कर भाग गये वे कहाँ गये होंगे अिस की हमें रंच भी क्षिति नहीं। किन्तु, हे वीरवर। हे हुतात्मा! तुम निश्चितरूप से स्वर्ग में पहुँचे हो। कायर, जीवित प्रेत के पापी स्पर्श से स्वराज का पवित्र झण्डा गदा न हो जाय अिसी लिअे जिन्हों ने अुसे अुत्तोलित रखा, शत्रु की आग अुगलती तोपों पर अुसे फहराने के हेतु जो वहाँतक घुस गये, अुन के अुस पवित्र तथा गौरवपूर्ण रक्त से यह झण्डा सदा पवित्र रहेगा, हमेशा दैवी आभासे दमकता रहेगा। अैसे ही छिन्न और लहूलुहान हाथों में स्वराज का ध्वज फबता है। **जिन की कलाअियाँ क्रांतिकार्य में लहूलुहान नहीं हुअीं, वे अिस स्वाधीनता के पवित्र झण्डे को स्पर्श कर अुसे भ्रष्ट करने की चेष्टा न करें।**

पहली चढाअी रोक कर पीछे हटा देने के बाद, प्रतिदिन क्रांतिकारियों तथा अंग्रेजों की छोटी मोटी भिडाअियाँ हुआ करती थीं। रेसिडेन्सी के घर

---

* गब्बिन कृत म्यूटिनी, पृ २१८.

उड़ा देने में तो विद्रोहियों ने कमाल कर दी। ऊपर से तोपों की भीषण मार और नीचे से सुरंग के विस्फोट! एक भी अंग्रेज नहीं जानता था, कि भूमि के नीचे से धड़ाका हो कर वह कब फट जायगी और उस के पट में वह कब समा जायगा। ब्रिगेडियर इंग्लिस का अंदाजा है कि कुल २० बार सुरंगें उड़ायी गयीं; साथ में क्रांतिकारी तोपखाना की लगा तार धड़धड़ाता रहता था ही। हर पक्ष एक दूसरे के इरादों का पता लगाने अपने गुप्तचरों को भेजता और हमेशा उनमें भयंकर भिड़न्तें हुआ करतीं। कभी बार किले की दीवारों के कान लग जाते और अंदर और बाहरवालों की कामाकृतियाँ एक दूसर सुन लेते और तब भिड़न्ते फक हो जाते। कभी बार अंग्रेजी झण्डेपर ठीक गोलियों का निशाना साध कर सिपाही अपना मनरंजन करते तथा रात होने ही अंग्रेज दूसरा झण्डा उसी जगह खड़ा कर धोखा देते! इस प्रकार भीषण लीलाएँ करते हुये लखनऊ की रणभूमि अपना विकराल जबड़ा खोलकर मृत्यु का अट्टहास करती! हाँ, अंग्रेजों का साथ देनेवाले हिंदी सिपाहियों का देशद्रोही बर्ताव देखकर समरांगण में कुदकनेवाले भूत प्रेत भी रोते होंग। हर रात में, किले में जहाँ सिक्ख या हिंदी लोगों का डेरा रहता वहाँ; छिप छिप कर पहुँचने पर क्रांतिकारी दूत आवाज करते, "क्यों देशसे निमकहरामी करते हो? और क्यों घोंपते हो अंग्रेजी तलवार अपने भाईयों की छाती में?" किसी रात में बार बार इन प्रश्नों को सुननेपर देशद्रोही सिक्ख विद्रोही दूतों को, सब सुनायी देन के बहाने, पास आने को कहते; और पास आ जाते ही, छुपे हुये गोरे सैनिकों को इशारा कर आगे बुलाते! सिक्खों की इस नीचता को देख विद्रोही उन्हें गंदी गालियाँ देते हुये लौट जाते! यहाँ के क्रांतिकारियों में एक अचूक निशानेबाज हबशी रिसदार था जो पहले नवाब की नौकरी करता था। उसने रेसिडेन्सी के अंग्रेजों पर बड़ा आतंक जमा रखा था। उसे वे 'अंपिहो' क नाम से जानते थे।

सर हेन्री लॉरेन्स की मृत्यु के बाद अवध का चीफ कमिश्नर बना मेजर बॅंक्स एक क्रांतिकारी की गोली का शिकार हुआ। लखनऊ के घेरेमें काम आया यह दूसरा चीफ कमिश्नर था। किन्तु अंग्रेजी सेना के सुभेर

तथा अनुशासनपरक संगटन से घेरे की अनिश्चित तथा डरावनी धूमधाम में अुन का मुख्य सेनापति मर जाने पर भी, अुस की क्षमता में, किसी साधारण सिपाही की मौत से अधिक कमी न दीख पडी। दूसरा कमिशनर भी मारा जानेपर ब्रिगेडियर अिंग्लिसने अुसका पद सम्हाला और बचाव का काम पहले के समान चालू रहा। अिस समय, कअी प्रकार की हानियों, सैनिकों की मृत्युसंख्या, अफसरों के तबादलों, अनाज की तगी और क्रांतिकारियों की हलचलों से अंग्रेज निराश नहीं, तो हैरान बहुत हो गये थे।

अिसी अरसेमें अगद कानपुर से लौट आया। यह अगद हिंदी था और पहले अंग्रेजी सेनामें रहा था; अब सेवानिवृत्त (पेन्शनर) था। लखनअू के घेरे के समय से अेक भी गोरा दूत बाहर छटक कर समाचार लेकर जीवित लौट आना असम्भवसा बन गया था। अंग्रेजों का गोरा चमडा, भूरे बाल और कँजी आँखें क्रांतिकारियों की तलवार को धोखा नहीं दे सकती थीं। अिसीसे अंग्रेजों को टहलुवे का काम करने के लिअे 'काले आदमी' को नियुक्त करना पडता था, और अिस काम के लिअे कअी 'राजनिष्ठ' टहलुवे भेज दिये गये थे। किन्तु अेक अंगदही जीवित लौट आया था। विद्रोहियों के डरसे वह अपने साथ कोअी पत्र या अन्य वस्तु न लाया था। हाँ, कानपुर से लखनअू की सहायता के लिअे सेना निकली—यह आँखों देखी खबर सेनापति अिंग्लिस को अुसने बता दी। अिस से अुत्साहित हो कर लिखित प्रत्युत्तर लाने के लिअे अुसे फिर भेजा गया। अगद २२ जुलाअी को लखनअू से चला और २५ की रात को ११ बजे लौट भी आया, साथ हॅवलॉक का यह पत्र लायाः— हर विपत्ती का सामना कर सके अितनी सेना के साथ हॅवलॉक आ रहा है, लखनअू का छुटकारा, बस, अब पांच छः दिनों का सवाल है।" अपने मुक्तिदाता हॅवलॉक को सब जानकारी देने के लिअे अंग्रेजोंने अगद के साथ, सैनिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण खाके और मानचित्र देकर, फिर से हॅवलॉक के पास भेज दिया। यह अजीब टहलुवा फिरसे अुधर गया और सब सामान ठीक तरह से पहुँचा दिया। अब विद्रोहियों की लाशों को रौंधते हुअे हॅवलॉक का विजयी झण्डा जिस दिशासे आनेवाला था, अुस की ओर आँख बिछाये

लखनऊ के अंग्रेज बैठे थे। दूरपर कुछ तोपों की गडगडाहट अुन्हें सुनायी दी। हैवलॉक ही तो आ रहा होगा न?

अिस आशापूर्ण अुत्कंठा से राह देखनेवाले अंग्रेजों को थोडी ही देर में पता चला कि क्रांतिकारियों ने फिर स चढाअी शुरू का है। पहले कानपूर बॅटरी, जोहान के घर, बेगम कोठी तथा अन्य स्थानों पर क्रांतिकारियों ने तोपें दागनी जारी कीं। अुस दिन अुन की सुरंगों ने बहुत बढिया काम किया। अंग्रेजों की किला बन्दी में अेक बहुत बडा छेद् पडा, जिस में से अुन का अेक दस्ता संचलन करते हुअे आसानी से आ सकता था। किन्तु अंदर घुसने वाला दस्ता ही कहाँ था? क्रांतिकारियों की किलाबंदी में अितना बडा छेद् यदि अंग्रज कर पाते तो आधे घंटे में अुन्हों ने अुस स्थानपर दखल किया होता। क्रांतिकारियों के कुछ सूरमा दोपहर दो बजे तक जूझते रहे। हाँ, अंग्रेजों के मातहत हिंदी लोगों ने वीरता, अनुशासन तथा निठुरता से सराहनीय पराकाष्ठा की। क्या दुर्भाग्य है! देशद्रोह में यह वीरता और देशभक्ति में यह कायरता! कैसा विरोध! अुठो, दौडो और अिस लांछन को कोअी धो डालो! अब पाँच बजे हैं; चढाअी लगभग तोड दी गयी है; फिर भी कोअी दौडो! तुरन्त विजय खींच लाने के लिअे न सही; कम से कम अमर कीर्ति के लिअे ही सही! कॅ सॉडर्स, सम्हालो! आनपर जान देनेवाले तथा क्रोधसे बौखलाये वीरों का हमला हो रहा है। देखो, व आ गय; ये अंगार बने सूरमा बीच घुस रहे हैं। अंग्रेजी परकोटे से अुन्हें रुकावट हो रही है, फिर भी टेक स आगे बढने का जतन कर रहे हैं वे! अिस मौके समय में अंग्रेजों ने तोपें बंद् कर संगीनें सँवारी। क्रांति अमर रहे, स्वतंत्रता देवी की जय, धन्य वीर, धन्य खाली हाथों से शत्रू की संगीन छिन ली! अन्त में अंग्रेजी गोली ने अुसे सुला दिया। हाँ, किन्तु समरांगण में अपने राष्ट्र को अपमानित होते हुअे अुसने बचाया और शत्रु भी बखाने अैसी वीरता का परिचय देकर हुतात्मा के परमपावन रक्तस्रोत में, निदान, वह सो गया। अेक गिर; फिर दूसरा बढा; वह भी गिरा और तिसरा भी धन्य धन्य! तुम वीरता से लडे। अिस लडाअी की बराबरी यही लडाअी कर सकती थी। किलाबंदी के अंग्रजों की संगीनों को छीनने के लिअे, शेर की

तरह झपटकर अन्तिम साँसतक झूझनेवाले अिन क्रांतिकारियों के छायाचित्र (फोटो) स्वयं अंग्रेजों ही ने अुतारे।

१८ अगस्त को और अेक बार क्रांतिकारियोंने अंग्रेजों पर हमला किया। अिस दिन भी सदा के समान सुरंग से किले में बडा छेद किया और क्रांतिकारी अंदर घुसे। मॅलेसन लिखता है, "अुन से अेक अच्छा अधिकारी अेक दम में छेद की चोट पर जा पहुँचा और अपनी तलवार के अिशारे से अपने अनुयायियों को बुलाना चाहा, किन्तु कोअी आय अुसके पहले ही अेक गोली लगकर नीचे गिर गया। तुरन्त अुसकी जगहपर दूसरा आ खडा हो गया, वह भी क्षणभर में ढेर हो गया, आदि।"

अुपर्युक्त तीन लोगों की जो वीरता फिरंगियोंने भी सराही वह निकलसन की दिल्ली की बहादुरी के जोड की थी। किन्तु क्रांतिकारियों का यह शौर्य अुन के कायर अनुयायियों के कारण विफल हुआ। अपने तीन बहादुर नेताओं को गिरते देख तेश खाकर आगे दौडने के बदले, हजारों लोगों को पीछे हटनाही चतुरता जान पडी। अिस लज्जास्पद प्रसंग से हम क्या पाठ सीखें?

हाँ, तो अिन सदा की मुठभेडों से ही सब कुछ समाप्त न होता था। क्यों कि, देशद्रोही हिंदियों की पूरी सहायता मिलने पर भी क्रांतिकारियों के दिन रात गोले फेंकनेवाली तोपों तथा बंदूकों के सामने टिके रहना असम्भवसा होने की बात अंग्रेजों को जँच गयी थी। अंगद फिर लखनअू कुशल से पहुँच गया। अपना वचन पूरा करने के लिअे हॅवलॉक 'कहाँ तक बढ आया है' आदि जानकारी पूछने को अुत्सुक सेनापति के हाथ अंगदने हॅवलॉक का पत्र रखा, "कम से कम और २५ दिन तक मैं लखनअू नहीं पहुँच पाअूँगा।" पत्र समाप्त था। आँखें बिछाये किसी की राह देखी जाय और फिर ठीक निराशा पल्ले पडे अिससे बढकर यन्त्रणा देनेवाली और क्या बात हो सकती है? मौत की राह देखती घायल या अंजर-पंजर बनी मेमें ही नहीं, बल्कि अंग्रेज सोजीर और अफसर भी घबडाये, हताश और दुखी हुअे। समूची अंग्रेजी सेना पर काल की छाया फैली मालूम होती थी। खाद्य पदार्थों की भयंकर महँगी से सब का

आधा भोजन काटा गया। अितनी देरी क्यों कर हो रही है ? लखनअू के छुटकारे जैसे गंभीर समय में हॅवलॉक जैसा शूर योद्धा तुरन्त क्यों नहीं आ सकता ?

और, अेक क्षण की भी देरी न करते हुअे लखनअूवाले अपने बघुओं को छुडाने, हॅवलॉक कानपूर से २९ जुलाअी तक गंगापार हुआ भी। अुस के साथ १५०० गोरे और १२ तोपें थीं; और '५–६ दिनों में स्वयं आकर मैं तुम्हें छुडाता हूँ' अिस अर्थ के निश्चित आश्वासन का पत्र भी अुसने लखनअूवालों को भेजा था। किन्तु गंगापार होने पर अवध प्रांतमें पग धरते ही 'यह काम तो मेरे बायें हाथ का खेल है' यह अुस का घमण्ड चूर चूर हो गया। अुस के सब मीठे सपने मेघों के समान छँट गये। अवध की चप्पा चप्पा भूमि प्रतिकार के लिये सिद्ध मिली। हर जमींदार ने सौ पांचसौ लोग जमा कर स्वाधीनता की लडाअी छेडी थी। हर गाँव में स्वतंत्रता का झण्डा दिखाअी पडता था। यह भयानक दृश्य देख कर हॅवलॉक भी कुछ सकपकाया; किन्तु वह निराश न हुआ। वह आगे बढता रहा। अुन्नाव में क्रांतिकारियों ने अेक हल्का हमला किया और पीछे हटे। अिस प्रसंग के बाद् हॅवलॉक ने खाना खाने जितनीही छुट्टी सैनिकों को देकर तुरन्त आगे बढने की आज्ञा दी। बशीरतगंज में भी अेक भिडन्त हुअी। २९ से हॅवलॉक को दो हमलों का सामना करना पडा और दोनों में अुस की जीत हुअी।

किन्तु क्या यह विजय ठोस थी ? अेक ही दिन में अुसकी छोटी सेना का छठवाँ हिस्सा खेत रहा था। क्रांतिकारियों की कोअी हानि न हुअी थी। यह भी पता नहीं मिला, कि, सचमुच, अुनकी हार होनेसे वे भागे थे या अपनी थोडी भी हानि न हो कर शत्रु को सताने का युद्धयुक्त अुन्होंने बरता था। और अिसी समय दानापुर की विद्रोही सेना अुन्हें मिलने का संवाद पहुँचा। अिस तरह, सब ओर से चिंताजनक स्थिति प्राप्त होने से हॅवलॉक को अपनी चढाअी स्थगित करनी पडी और ३० जुलाअी के दिन मंगलवारे को अुसे पीछे हटना पडा।

कानपुर से हॅवलॉक की सेना हिलने का संवाद पाते ही नानासाहब ने कानपुर के आसपास के प्रदेशमें अपनी हलचल शुरू की। हॅवलॉक जब कानपुर छोड, गंगापार होकर अवध में प्रवेश कर रहा था, तभी नानासाहब भी अवध छोड अुसी गंगा के पार कानपुर में प्रवेश कर रहे थे। अिस शिकंजेमें कहीं फँस न जाय, अिस लिअे हॅवलॉक को मंगलवारे में ४ अगस्त तक डेरा डालकर रहनाही पडा। हॅवलॉकके अेक सप्ताह में क्रांतिकारियों को गोतमीतक पीछे खदेडने की बात तो दूर रही, हॅवलॉक स्वयं गंगा किनारे अेक तरह से स्थानबद्ध रहा। क्रांतिकारी सेना फिर बशीरतगंज में अुससे भिडी। अिन लगातार हमलों से तंग आकर अुसने लखनअू का रास्ता पकडा। फिर अेक बार बशीरत गंजपर अुसने क्रांतिकारियों को भगा दिया। किन्तु वही प्रश्न रहा कि यह सच्ची जय है? क्यों कि, अिस भिडन्त में हॅवलॉक के, ३०० सैनिक काम आये और बचे हुअे सब अितने थक हुअे थे कि अुसे लखनअू का रुख छोड कर गंगाकिनारे फिर हट जाना पडा। अुस दिन की गिनतीमें प्रारंभ के १५०० सैनिकों से केवल ८५० बचे पाये गये।

अगस्त ५ को मंगलवारे को हॅवलॉकके हट जाते ही क्रांतिकारियों ने बशीरतगंज पर कब्जा जमा लिया और वहींपर डेरा डाला। अिस डेरे में बहुतेरे लोग सुखी जमींदार ही थे। 'कल जितने मारे गये, सब जमींदार थे।'* अपने देश, अपने स्वराज्य, अपने स्वातंत्र्य के लिअे अिन धनीमानी सज्जनों ने अपनी सुकोमल शय्या को त्याग कर हर संकट और विपत्ति का सामना करने का व्रत लेकर समरांगण में कूद पडने की ठानी थी। अिस वीरोत्साह को लक्ष्य कर अिन्नीज लिखता है:— "**कमसे कम अवध प्रांत की लडाअी को तो हमें स्वातंत्र्य-समर यही नाम देना पडेगा।**"×

हॅवलॉक की छावनी के अिर्दगिर्द क्रांतिकारी दस्ते जमराज के समान मंडरा रहे थे। ११ अगस्त को हॅवलॉक ने फिर तीसरी बार बशीरतगंज पर

---

* के और मॅलेसन्स अिंडियन म्यूटिनी खण्ड २ पृ. २४०

× सिपॉयीज् रिव्होल्ट.

चढ़ामी की ओर फिर इलकी मुठभेड के बाद क्रांतिकारी भाग गये। तीसरी बार हॅवलॉक ने अपने मन से पूछा–' यह जीत है या हार ?'

नहीं; न यह जीत था, न हार ! तब फिर हॅवलॉक मगलवारे को लौटा। अिसी बीच अिधर नानासाहब की सभी योजनाओं पक्की हो गयी थीं। सागर तथा गवालियर के विद्रोही, तथा स्वयंसैनिकों के कभी दस्ते अुन्हें आ मिले थे। सब को साथ लेकर नानासाहब बिठूर की ओर चल पडे, जिस से कानपुर को खतरा पैदा हो गया। जनरल नील के पास नानासाहब पर टूट पडने के लिये आवश्यक सेना न होने से, अुसने सब स्थिति हॅवलॉक को बता दी। अब तो लखनऊ को दौड जाना और वहाँ के अंग्रेजों को छुडाना सो टका असम्भव था। अिसीसे १२ अगस्त को हॅवलॉक को फिर से गंगापार होकर कानपुर को लौटना आवश्यक हुआ। अंग्रेजी मारू बाजे जब 'पीछे हट' के सुर निकालने लगे, तब, मानो, स्वतंत्रता का डंका ही पीटा जाता हो,यह मान कर,क्रांतिकारियों में चारों तरफ आनंद के नारे गूँजने लगे। अपनी टेकपर स्थिर रहे जमींदारों! अपना रक्त बहा कर और अवध से विदेशी सत्ता की गुलामी का भूमिमें गाड कर तुमने स्वदेश की अुत्तमोत्तम सेवा की है। मी अिनीज लिखता है "अवध से अंग्रेजों की अिस पीछे हट से, निस्संदेह बहुतही अजीब परिणाम निकला। अिस पीछे हट का अर्थ, अवध के सब तालुकदारोंने यही लगाया कि अब अवध से अंग्रेजी शासन अुठ गया है। और, तब, लखनऊ की राजसभा ही को अुन्होंने अपनी अधिकृत केन्द्रीय सरकार माना। और आजतक जिस लखनऊ राजसभा के पृष्ठपोषक बन कर अुस का बल बढने की बात को आज तक जो टालते रहे थे, वेही जमींदार, अब, अुसी राजसभा की आज्ञा पर अपनी सेना को सब समरांगण में भेज देने लगे। *

क्रांतिकारियों की यह सीधी जीत भलेही न हो, अप्रत्यक्ष रूप से वह विजय ही थी। अुपर्युक्त चार भिडन्तों के समान केवल हॅवलॉक की पिछाडीपर

* सिपॉयॉज् रिवोल्ट पृ १७४

हमले कर अुसे पीछे हटने पर मजबूर करने की अपेक्षा, हॅवलॉक को हरा कर अुसे कानपुर को खदेडा जाता तो क्रांतिकारी सेना में अधिक आत्मविश्वास पैदा किया जा सकता था और अुसी मात्रा में अंग्रेजों का दिल भी टूट जाता। अंग्रेजोंने अिस का अर्थ यह लगाया कि वीरता की त्रुटी के कारण नहीं, संख्या बल की कमी के कारण कानपुर लौटना पडा, जिस से अिस अप्रत्यक्ष हार से अुन का आत्मविश्वास, जोश और अकड में रच भी कमी न हुअी, अुलटे, पूरा सेनाबल जमा होतेही लखनअू पर चढाअी करने की दृढ श्रद्धा से हॅवलॉक कानपुर में पडा रहा।

अिसी अरसे में आपसी मत्सर के कारण हॅवलॉक और नीलमें गहरी ठनी थी; हॅवलॉक ने नीलपर लिखे अिस पत्र से अिसका प्रमाण मिलता है:—
'मैने तुम्हें खानगी तौरपर सब हाल बता दिया था। तुम मुझे जवाब में मेरी योजना की निंदा करते हुअे मुझे फटकारते हो, और आगेके लिअे सीख भी देते हो। मेरे मातहत किसी भी अफसर से, चाहे जितना वह अनुभवी क्यों न हो, मैं कुछ नहीं सुनता चाहता, फिरसे कोअी सीख न दी जाय। अच्छी तरह यह बात ध्यान में रखो। अिस गभीर समय में सार्वजनिक सरकारी सेवा के कार्य में बाधा पैदा होगी अिसी से मैं तुम्हें अिस से अधिक कडी सजा—गिरफ्तार करनेकी—नहीं देता। अिस वक्त तुम्हें गभीर चेतावनी दी जाती है। आगे कोअी सीख देने से बाज आओ। * अिस पत्र का अेक वाक्य बडा महत्त्वपूर्ण है—अपने राष्ट्र के प्रति कर्तव्य—भावना अंग्रेजों के रोम रोम में किस तरह भरी है अिसका परिचय मिल जाता है—' सार्वजनिक सेवा के कार्य में बाधा पैदा होगी अिसी से ' अपने व्यक्तिगत अपमान का बदला लेने से वह तात्काल रुक गया। अैसे गाढे समय में हॅवलॉक और नील अिन दोनों सेनापतियों में जो वैर था अुससे शत्रु लाभ न अुठाये अिसीसे केवल दोनों चुप न रहे, वरन् अन्तिम साधना की दृष्टिसे अुन्हों ने अेक दूसरों की सहायता की। **जिस**

* अिंडियन म्यूटिनी खण्ड २, पृ. २२७ की टिपणी में मॅलेनने अुद्धृत किया है।

समाज में व्यक्तित्व के मदगल हाथी के गण्डस्थलपर सामाजिक मंगल की लगन का अंकुश सदा ही लगाया होता है अुसी समाजमें श्री और सरस्वति, कीर्ति और स्वाधीनता हमेशा बनी रहती है।

हॅवलॉक जब कानपुर पहुँचा तब पहले-पहल अुसे मालूम हुआ कि नानासाहब ब्रह्मावर्त पर फिर से दखल कर चुके हैं। क्रांतिकारी सेना तथा नानासाहब किस प्रकार कानपुर की सीमा पर ही भिड जाने से हॅवलॉक तत्काल अुनपर चढ गया। अुस दिन बिठूर की लडाई में अंग्रेज सेना क्रांतिकारियों की दखल से ३० गज पर आ गयी; तब सिपाही ४२ वी पल्टन ने तोपोंकी मार शुरू की। अंग्रेज अबतक मानते आये थे कि, सब अुपाय चूक जानेपर अन्त में संगीनों के हमले से क्रांतिकारियों को हटा दिया जा सकता है। किन्तु भारत स्वाधीनता के शूर वीरों ने अुल्टे अंग्रेजों पर ही संगीनों से हमला किया; साथ साथ अुनके रिसाले ने पीछ से अंग्रेजों की रसद मार दी। इस तरह दोनों ओर से अंग्रेजों पर मार पडी। किन्तु यह सारी वीरता और रणकौशल्य अंग्रेजों के समान अनुशासन के साँचे में ढले हुअे न होने से, इस पराक्रम और शूरता के बावजूद भी क्रांतिकारी हार कर पीछे हटने पर मजबूर हुअे। क्रांतिकारियों को हरा कर १७ अगस्त को हॅवलॉक जब कानपूर लौटा, तब अुसे पता चला कि नानासाहब की सेना केवल ब्रह्मावर्त ही में न होकर यमुना के किनारे काल्पी में काफी सेना जमा हुअी है। काल्पी, ब्रह्मावर्त, अवध तथा गंगा के दोनों बाजूओं से हर तरफ से हैरान किये गये। विजयी हॅवलॉक ने राजधानी में कलकत्तेवालों को लिखा—'हम बडे भयंकर दिन में किस समय पडे हैं; नयी कुमुक यदि जल्द न आ जाय तो लखनअू छोड इलाहाबाद को हट जाने के बिना, भयंकर विपत्ति से अंग्रेजी सेना को बचाने का कोअी भी अुपाय न रहेगा।"

हॅवलॉक कलकत्ते के अुत्तर की राह देख रहा था। अुसे बडा विश्वास था, कि अुस की प्रार्थना के अनुसार नयी सेना आ जायगी और लखनअू की मुक्तता कर अब तक की सभी हार जीतों पर वह मुकुट चढायगा। किन्तु सहसा अुसे आज्ञा मिली कि लखनअू पर चढाअी करनेवाली सेना का आधिपत्य

अुससे छिन कर आअुटराम को सौंपा गया है। अंग्रेजों का दण्ड इतना कडा होता है। विजयी होने पर भी कानपुर पहुँचने में नील को देरी हुअी तब अुसे सेनापतित्व से वंचित कर वह पद हॅवलॉक को दे दिया गया। और हॅवलॉक के अबतक विजयी होनेपर भी अुसे लखनअू पहुँचने में अवश्यभावी देरी होते ही अुस जैसे चतुर सेनानी को अुस के पद से हटाकर सर जेम्स आअुटराम को अुसका पद दिया गया। अिस समाचार से हॅवलॉक को बडा धक्का पहुँचा। जिस विजय की कामना से वह दिन रात प्राणपन से चेष्टा कर रहा था, लखनअू मुक्त करने का वह सौभाग्य ठीक मौकेपर दूसरे किसी को प्राप्त होगा। अिस अपमान से अुसके मनपर बडी चोट पडी। तब भी, मॅलेसन लिखता है—"हमारे अंग्रेज देशबंधुओं में यह बडा श्रेष्ठ गुण है कि चाहे जितनी तीव्र निराशा और अपमान सहना पडे, सार्वजनिक हित की रक्षा के कर्तव्य में इंच भी बाधा नहीं पडने देते। कर्तव्य का सदा भान और निष्ठा ही अंग्रेज की विशेषता है। अपने सभी व्यक्तिगत भावों की वह बलि चढाता है! अुस के अपमान का शल्य चाहे जितनी तीव्रतासे अुसके मन में सालता रहे, स्वदेश के विचार को अुस के अंतःकरण में सर्वप्रथम स्थान होता है! अपने देश की सेवा करने के तरीकों के बारे में अुसके अपने विचार भले हों, राष्ट्र के प्रातिनिधिरूप बनी शासन-संस्था यदि अुस से भिन्न विचार रखे तो शासनसंस्था की सभी आज्ञा का हृदय से पालन कर राष्ट्र को सुयश प्राप्त करा देने के काम में अपना सारा बल अंग्रेज लगा देता है। नील भी अुसी तरह चला और अब हॅवलॉकने वही किया। अपनी पदच्युति का भान होते हुअे भी, पहले अेक सेना का सर्वेसर्वा सेनापति होते हुअे जिस फुर्ती, साहस तथा निष्ठा से वह काम करता था, ठीक अुन्हीं गुणों के साथ अब भी अपने नियुक्त काम में व्यस्त दीख पडता।" *

जो यश दूसरे को भूषित करनेवाला था, अुसी जश की सिद्धता के लिअे जब हॅवलॉक दिन रात अेक करता था, तब १६ सितंबर को सर

---

* मॅलेसनकृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ३, पृ. ३४६.

आउटराम कानपुर पहुँचा। हॅवलॉक से आधिपत्य के पूर्ण अधिकारों को सौंप जाने के बाद सर्व प्रथम उसने आज्ञा घोषित की–" लखनऊ का मुहासरा तोड़ने के लिए आज तक यही वीरता और धैर्य से चेष्टा करनेवाला ही को उस की जीत का श्रेय मिलना चाहिये। इस लिए लखनऊ का घेरा उठने तक, मुख्य सेनानी होते हुअे भी, मैं वीर हॅवलॉक का मेरा पद का अधिकार सौंपता हूँ और मैं अेक स्वयंसेवक के समान उस के अधीन काम करूँगा।"

अपने नये सेनापति के इस पहली ही उदारता से अपनी सेना को क्या हि नैतिक पाठ मिला होगा। व्यक्तित्व अपना राष्ट्र हित में कितना अेक रस हो गया होगा। इस प्रथम घोषणासे हॅवलॉक को सेनाधिपत्य सौंप कर आउटराम ने असाधारण आत्मत्याग, उदारता और महामनत्व का परिचय दिया।

इस प्रकार उदात्त, सदाचारी नीति से प्रेरित और आयर, आउटराम, कूपर जैसे वीरों के मातहत आ पहुँची अंग्रेजी सेना की सहायता से कानपुर की सेना उसने मुत्सद्दी लखनऊ को छुडाने के लिअे १० अगस्त को गंगापार होने चल पड़ी। 'लखनऊ क्या, बस, ५–६ दिनों में स्वतंत्र कर देता हूँ' कहकर २५ जुलाअी को उसपर दखल करने को उतावला हॅवलॉक; अवध में पैर जमाना ही असम्भव हो जानेसे कानपुर को लौट आनेका दुर्भाग्य जिसे भुगा वह १९ अगस्त का हॅवलॉक; और कारी आशा से गहराया हुआ २० सितंबर का हॅवलॉक! तीन कितने भिन्न चित्र! इस समय उसके पास २५०० गोरे सैनिक, सिक्ख और अन्य मिलकर लगभग ३२५० सैनिक थे। घुनिन्दा रिसाला, उत्तम तोपखाना, तथा नील, आयर, आउटराम जैसे अफसर थे। अब वह अवध के क्रांतिकारियों की थोड़े ही परवाह करता। फिरंगी के पापी स्पर्श से स्वदेश की रक्षा के लिअे आगे बढनेवाले जमींदार को कत्ल किया गया। मातृभूमिपर से फिरंगी सवारों के घोड़े दौड़ते हुअे न देख सकने से लड़ने पर उतारू हुअे हर आत्माभिमानी गाँव को भस्मसात् कर दिया गया। मार्ग में हर नदी, हर सड़क, हर खेत स्वदेशी लहू से लथपथ कर दिया गया। इस

तरह यह प्रबल अंग्रेजी सेना अत्याचार करती हुआी अवध में घुसती चली । कच्ची शिक्षावाले क्रांतिकारियों से भिडन्त करते और अुन्हें भगाते हुअे २३ सितंबर को हॅवलॉक आलमबाग के पास पहुँचा। यहाँ क्रांतिकारियों का अेक पडाव था। यहाँ दिनभर घमासान युद्ध होता रहा। क्रांतिकारियों की पॉच तोपें छिन ली गयीं, जिस से अेक फिर लौटानी पडी। रात होने पर भी दोनों दल मैदान में डटे रहे। किन्तु जब क्रांतिकारियोंने भॉप लिया कि कीचड और दलदल की भूमिपर ही रात में आराम करने की चेष्टा शत्रु कर रहा है, तब अुन्होंने आराम का खयाल छोड जोरदार हमला शुरू किया। अुस रात में मूसलाधार वर्षा हो रही थी। किन्तु बारिशोंसे बढकर अंग्रेजी सेना का उत्साह लहरा रहा था। क्यों कि, अुसी रातको दिल्ली का पतन होने के समाचारों ने सब को अुत्साहित कर दिया था। निदान, २५ सितंबर का उत्पात मचानेवाला दिन आ पहुँचा। लखनअू को जानेवाली सडकों के बदले आडे रास्ते से हॅवलॉक को रेसिडेन्सी की ओर बढते हुअे देख कर क्रांतिकारी तोपें आग बरसाने लगीं; किन्तु अिस भयकर मार को धीरज से सहते हुअे अंग्रेजी सेना आलम बाग से ठेठ चारबाग तक पहुँच गयी, यहाँ का पुल लॉघकर लखनअू में पग धरना था। अिस मोर्चेपर घमासान युद्ध शुरू हुआ। कॅ. मॉड गोलियों की बौछार से पुल पाटने लगा किन्तु बेकार! न तोपें बद हुअी, न रास्ता खुला। पीली कोठी के पास २१ गोरे मर चुके थे, यहाँ कुछ और काम आये। तो क्या अिस पुल के कारण सारी अंग्रेजी सेना अटक पडेगी? पास खडे हॅवलॉक के युवक पुत्रसे मॉड ने कहा, कुछ अुपाय सुझाओ तो! वह युवक नील के पास आकर कहने लगा 'तोपों से ये विद्रोही पुलसे न हटेंगे, अिनपर सीधा हमला करने की की आज्ञा दी जिये। हॅवलॉक की आज्ञा के बिना कुछ भी करने से नील ने अिनकार कर दिया। फिर क्या किया जाय? तब युवक को अेक अुपाय सूझा। अुसने सहसा अपने घोडे को अेड मारी और जनरल हॅवलॉक की दिशा में अुसे फेंका, सेनापतिसे मिलने का बहाना कर बह युवक फिर नील के पास आ पहुँचा और कहा 'हॅवलॉक साहब की आज्ञा है, पुलपर धावा बोल दिया जाय।' बस, फिर क्या था? जनरल

नील ने धावा बोलने का हुक्म दिया। पहले २५ के दस्ते का नतृत्व युवक हॅवलॉक न किया। तोपें गोले फेंक ही रही थीं। अेक दो मिनिटों म कितने बचे ? किन्तु देखो, नवयुवक हॅवलॉक पुल्पर कूद पड़ा। हाकरा वीर सिपाही वह दूर कर सामने खड़ा रहा और अपनी बंदूक का निशाना साका। जब सा चूका और हॅवलॉक क पुत्र के मस्थ के बदले गोली अुसक टोप में लगी; वह सान्तिसे दूसरी गोली दाग ही रहा था कि हॅवलॉक से वह मारा गया। स्वाधी नता के रण में काम आगया ! सारी गोरी सेना दौड पड़ा और वह पुल थरथरने लगा; क्रांतिकारी दूर। लखनऊ का अेक रास्ता अंग्रेजों के हाथ में आया, दूसरा मार्ग भी जीता गया, तीसरपर दखल किया। अंग्रेजी सेना विजय के अुन्माद में आगे बढती चली गयी। दिनभर कड़ाम कश जारी रही और रात्रि की लहरें बढीं। तब आअुटराम ने किलेके बाहर ही रात काटने की सोची। किन्तु नहीं, वीर हॅवलॉक आराम का नाम तक नहीं जानता। रेसिडेन्सीमें अुसके भाभी मरघट काल के खुले जबडे म पड़े हैं, पता नहीं वह कब बंद होगा ? अेक रात अेक युगसके समान होगी। सिसलिये अुसने 'आगे बढो' की आज्ञा दी; किन्तु अुत्साह की अति में सेना किले का मार्ग चूक गयी और सीधे क्रांतिकारी तोपों के हल्ले म जा पहुँची। फिर भी नील आगे बढ ही रहा था। जब खास बाजार की तोरण के नीचे वह पहुँचा तब अुसने अपने घोड़े को रोका; क्यों कि तोपखाना बहुत पिछड गया था। पीछे की ओर मुडकर देखा। क्या बढिया मौका है भारत के सम्प्राय बदल का, तोरण के वीर ! तुम मारे जाओगे तो भी चिंता नहीं किन्तु यह मौका न चूके। देखो। तोरण से अुस सिपाहीने ठीक निशाना मारा; गोली नील की गर्दन से आरपार निकल गयी; नील घोडेसे धड़ाम से नीचे गिर पडा। मानव जातिके सौभाग्य से या दुर्भाग्यसे सारी गोरी सेनामें जितना शूर किन्तु अैसा क्रूर, जितना ढीठ किन्तु जितना वीर, अैसा निडर किन्तु अैसा निर्दयी आदमी ढूँढकर भी मिलना दूभर है।

किन्तु अंग्रेजी सेना की यही विशेषता थी कि व्यक्ति के लिये, चाहे फिर वह नील अैसा असाधारण भी क्यों न हो, अुस का काम कभी अटकता

न था। नील की मौत से वहाँ जरा भी गडबडी न पडी। आज्ञा के अनुसार अंग्रेजी सेना रेसिडेन्सी की ओर बढ रही थी। खास बाजार में अेक नील का ही रक्त क्या, गोरों के खून का सैलाब भी बहता, तो भी निश्चय के अनुसार अंग्रेजी सेना आगे बढी ही चली जाती। जब वह बाजार से गुजर रही थी तब रेसिडेन्सी से निकलती हुआी अभिनंदन की हर्षध्वनि की चिल्लाहट सुनायी पड रही थी और अिधर से अंग्रेज अुसका साथ देते थे। सचमुच, हॅवलॉक ने अपने देशबंधुओं को मौत के जबडे से बाहर खींच लिया था। अुस-का विवरण अुस समय अुपस्थित कॅप्टन विलसन की लेखनी से यों लिखा गया है. "—पग पग पर गिरनेवाले सैनिकों से अंग्रेजों की सख्या घट रही थी, तो भी अंग्रेजी सेना रेसिडेन्सी को जा पहुँची और अुसे देखते ही घेरे में पडे सब का संदेह और डर दूर हो गया। अपने छुटकारे के लिअे दौड आये हुओं पर अभिनंदनों तथा धन्यवादों की अुन्हों ने वर्षा की। बीमार और घायल रुग्णालय से रेंगते रेंगते बाहर आये और अुन के 'जय जय' चिल्लाने से सारा वायुमण्डल भर गया। अुस स्थिति का वर्णन करना बहुत कठिन है। अपने पति की मृत्युका समाचार जो पहले सुन कर दुखी हुआी थीं वेही स्त्रियाँ अपने जीवित पति की क्रोड में छिपी हुअी थीं और वे दंपति अेक दूसरे को सुखी कर रहे थे। और जो स्त्री अपने प्यारे को अपनी भुजाओं में कसने के सपने देख रही थी, अुसे पहली बार और अन्तिम बार मालूम हुआ कि अब अुसे प्यारे को देखने का आशातंतु भी मृत्युने तोड डाला है।"

लखनअू की रेसिडेन्सी में ८७ दिनतक की अविराम लडाअीमें ७०० आदमी मरे। लगभग ५०० गोरे और ४०० हिंदी घायल हुअे या बचे रहे। और अुनके मुक्तिदाता हॅवलॉक के ७२२ लोग, रेसिडेन्सी पहुँचने तक, खेत रहे थे। लखनअू की विजय के लिअे अितने सूरमाओं के प्राणों का मूल्य देना पडा था!

किन्तु दुष्ट निराशे! तुम सदाही अजेय रही हो। क्यों कि, हॅवलॉक ने क्रांतिकारियों की नाक में दम भले ही कर दिया, तुम अुसका पीछा नहीं

छोड़ती। रेसिडेन्सी में प्रवेश करनेपर, उसने समझा कि जितनी स्त्रियों, एक बात, सिर्फ़ों के याद् क्रांतिकारियों के चंगूलसे कमसे कम अंग्रेज़ी सत्ता को वह मुक्त कर सका है। किन्तु अब, परिस्थिति को आँखों देखकर, वही प्रश्न वह दुहराने लगा, जो गया किनारे उसने अपने मन से पूछा था। "लखनऊ के लिये सचमुच मैं क्या कर पाया हूँ? मैंने केवल उन्हें सहायता पहुँचायी है!" हॅवलॉक अपनी सेना के साथ रेसिडेन्सी में आया, जिस से घेरा उठना तो दूर क्रांतिकारियों ने नयी और पुरानी दोनों सेनाओं को घेरा। तब हरअेक कहता—"हॅवलॉक हमारे लिये क्या लाया, मुक्ति या मदद?"

हाँ, वह केवल मदद थी। 'पांडे' की पकड से लखनऊ के गोरों को बचाने हॅवलॉक और आउटराम जैसे सेनानियों के नेतृत्व में कभी लडाअियों के बाद आयी हुअी यह सेना घेरा उठाने में अक्षम रही और जोरोंसे अंदर घुस पडते ही स्वय भी घेरे में बंद हुअी। अंग्रेज मानते थे कि हॅवलॉक के पहुँचते ही 'पांडे' की सेना भाग खडी होगी। किन्तु भारत ने देखा कि यह गोरों का सपना काफ़ूर हो गया। 'पांडे' की सेनाने न लखनऊ छोडा, न अंग्रेज़ोंसे समझौता करने की चेष्टा की; बरन क्रांतियुद्ध की धधकती ज्वालाओं से और उत्तेजित होकर हॅवलॉक के अंदर घुसते ही उन मोर्चोंपर दखल किया और घेरा पक्का कर दिया। रेसिडेन्सी में घुसने की गडबडी में गोरों का अेक दस्ता आलमबाग के पास पीछे रह गया था; वह अपनी मुख्य सेनासे मिलने से वंचित रह गया था। अिस तरह, उस दिन के घमासान युद्ध में मार्ग मार्ग में बने खूनके पोखर सूखने के पहले ही अंग्रेज़ी विजय तथा अपनी पराजय की परवाह रंच भी न कर, निराश या हतोत्साह न होते हुअे, उस स्वातन्त्र्यप्रेमी लखनऊने फिर अेक बार अवधकी अंग्रेज़ी सत्ता के शैतान को कर रखा; मानो, अेक बोतलमें बंद कर रखा।

अिस स्वातंत्र्य-समर में केवल लखनऊ की अंग्रेज सेना ही को अिस तरह, अपनी दृढ और निश्चित नीति से, 'पांडे' वालों ने संकट में नहीं फँसाया था। दिल्ली का पतन हो चुका था; फिर भी घेरे में पडी हॅवलॉक की

सेना के कारण निष्प्राण बनी लखनअू की अंग्रेजी सत्ता को सहायता पहुँचाता खुली हुअी दिल्ली की सेना नहीं पहुँचा सकती थी। क्यों कि, दिल्ली प्रांत में अुठी आँधी को शान्त करने का कठिण काम अुसे पूरा करना था।

अंग्रेजी सेनापति सर कॉलिन कॅम्बेल १३ अगस्त को कलकत्ते में अुतरा। अुस दिन से २७ अक्तूबर तक क्रांतिकारियों से सारे भारत को मुक्त करने की अेक बहुत गहरी योजना बनाकर, अुसे सफल बनाने की सिद्धता में वह व्यस्त था। मद्रास, सिलोन तथा चीनसे आयी हुअी सेना को ठीक मात्रा में अुसने बाँट दिया। कासिमबाजार के शस्त्रालय में नयी तोपें ढलवाअी गयीं। शस्त्रास्त्र, गोलाबारूद, रसद, कपडा, यातायात आदि के बारे में बहुत बढिया प्रबंध कर दिया। अिस तरह अुस विराट सिद्धता को पूर्ण करने में वह दो महीने लगा रहा; अिस बीच अुसे खबर मिली कि हॅवलॉक और आअुटराम दोनों लखनअू की रेसिडेन्सी में अबतक बंद पडे हैं। तब, अेक बार पतन होनेपर फिरसे अुत्थान करनेवाले लखनअू की खबर लेने के लिअे कॅम्बेल २७ अक्तूबर स्वयं कलकत्ता से चल पडा।

साथ साथ अेक नौदल (आरमारी बेडा) कर्नल पॉवेल तथा विलियम पील के नेतृत्व में अिलाहाबाद के जलमार्ग से भेज दिया गया। कलकत्तेसे अिलाहाबाद और कानपूरतक सभी बडी बडी सडकोंपर अिन अंग्रेज नौसैनिकों को क्रांतिकारी दस्ते बार बार सताया करते। ये सब दस्ते अेक साथ कहीं मिल जाते तो अंग्रेज अुस की खूब खबर लेते। किन्तु कुँवरसिंह के ये चेले अंग्रेजी नौसैनिकों के आसपास मडराते रहते, सामने कभी न आते और हमले के बिना अुन की हस्ती का पता तक लगने न देते, अिस तरह वृकयुद्ध (गेरिले) की नीतिपर चलकर प्रांतभर में अंग्रेजों की नाक में दम कर देते। कजवा नदी के पास अिन क्रांतिकारी दस्तों का अिलाज करने के झगडे में कर्नल मारा गया। जिस दिन क्रांतिकारियों की तलवार ने पॉवेल के रक्त से अपनी प्यास बुझायी, अुसी दिन कॅम्बेल कानपुर पहुँचा! अंग्रेजी सेना को क्रांतिकारी छुपे दस्तों ने स्थान स्थानपर किस तरह हैरान किया होगा अिस का प्रत्यक्ष और भयंकर अनुभव स्वयं सेनापति कॅम्बेल को मिला।

सर कैम्पबेल भिलाहाबाद से कानपुर अेक गाड़ी में जा रहा था; क्यों कि, अंग्रेजों को अुस प्रांत में सवारी मिलना भी मुश्किल था। अुसी मार्गसे क्रांतिकारियों का अेक दस्ता १०-१२ हाथियोंके साथ गुजर रहा था और २५ घुड़सवार भी थे। अिधर कैम्पबेल अकेला आ रहा था। जब गाड़ी देरभागी के पास पहुँची तब अुसे क्रांतिकारियों के अन्य मार्ग से वहाँ आन की खबर मिली। 'पांडे' वालों को गाड़ी के सामान की जानकारी आवश्यक न थी, फिर भी गाड़ी के सामान (!) को जानने की अुत्कंठा थी न! सारे भारत का कीसने को चल पड़े सेनापती के सामने कानपुर के मार्ग में मड़त हो, क्रांति कारियों का अेक भीषण दस्ता हो टपक पड़ा। गोरेने तुरन्त गाड़ी पीछे मोड़ने को कहा। कैम्पबेल का कपुमार अेक क्षण में, गाड़ीवाले के अेक भिशारे पर, हो सकता था। कुछ ही मिनटों का अंतर पड़ा। नहीं तो, कैम्पबेल बंदी हो कर कुँवरसिंह के सामने खड़ा किया जाता, या सीधे नर्क में रवाना कर दिया जाता।

भिस संकट से बचकर २ नवंबर को सर कॉलिन कानपुर पहुँचा। वहाँ ब्रिगेडियर ग्रैंट के नेतृत्व में अधिक से अधिक सेना जमा कर ली गयी थी। अुपर्युक्त नौवल भी वहाँ जैसे तैसे पहुँच चुका था। दिल्ली के क्रांति कारियों को तितर बितर कर ग्रेट हेड भी अपनी सेना के साथ यहाँ पहुँच पाया था। दिल्ली प्रांत में 'शान्ति' प्रस्थापित करने के काम में ग्रेट हेड ने जो वीरता (!) दिखायी थी वह भिलाहाबादवाली की नीलकी घूर करतूतों से कभी गुना बढ़कर थी; किंबहुना अुस वीरता का जोड़ कहीं नहीं मिल सकता था। क्रांति के आरंभ से नवंबर तक दिल्ली प्रांत संपूर्णतया क्रांतिकारियों के हाथ में था। तब जनता को अुन से कोओी कष्ट नहीं पहुँचा था। अंग्रेज स्वयं लिखते हैं —"लोग अपनी खेतीबाड़ी का काम खूब अच्छी तरह बेखटके कर रहे थे। क्रांतिकारियों ने आवश्यकता से अधिक जनता को जरा भी कष्ट न दिया; और प्रांत भर में जबरदस्ती का नाम भी लेने का अुन्होंने साहस न किया।"* स्वदेश की स्वाधीनता के लिअे लड़नेवाले स्वयंसेवकों के

* मैरिडव ऑफ दि भिंडियन म्यूटिनी

योग्य बरताव, अिस प्रांत के 'पांडे 'ने किया था; जहाँ स्वाधीनता की आत्मा ही को नष्ट करनेपर अुतारू ब्रिटिशों ने पराधीनता के पोषकों को शोभा देनेवाली क्रूरता से अिस प्रांत को मटियामेट कर दिया। और सब कुछ 'शान्ति स्थापना' के नाम पर। गाँव के गाँव जलाते हुअे, मार्ग में मिले हर-हट्टे कट्टे मानव को फाँसी पर लटकाते हुअे, और वन पंछियों के समान लापरवाहीसे देहातियों का कत्ले आम करते हुअे ग्रेट हेड की सेना दिल्ली से कानपुर आ पहुँची।

अिस सेना के साथ यहींपर नौदल तथा अन्य गोरे सैनिक मिल गये और ब्रिगेडिअर ग्रेट गंगापार होने चला। हे गंगा मैया! कितनी गोरी सेनाअें तेरे किनारे, लखनअू का छुटकारा करने के लिअे, अुतर चुकी हैं। और हे मानी अवध! यह विशाल वाहिनी जब तुझे डराने के लिअे आ पहुँची है, तब भी क्या तू लखनअू के कारागार से गोरी सेना को छोड न देगा?

ब्रिगेडियर ग्रेट के पास लगभग ५००० सैनिक तथा कअी अूँट थे और साथ में लखनअू के लोगों के लिअे काफी रसद जुटा ली थी। जब ग्रेट आलमबाग तक घुस जाने की खबर मिली, तब कॅम्बेल कानपुर से गंगापार हो गया। अपनी पिछाडी की रक्षा का भार अुसने सिक्खों तथा अंग्रेजों से चुने हुअे दस्तों को सौंप कर अुसका आधिपत्य कअी युरोपीय युद्धों में नाम कमाये हुअे विडहॅम को दे दिया। सर कॅम्बेल ९ नवम्बर को आलमबाग के पास मुख्य सेना को मिला। वहाँ की सेना का निरीक्षण कर भिन्न भिन्न दस्तों की अेक संयुक्त चढाअी की योजना बनायी। अुस के अनुसार १४ नवंबर को लखनअू पर चढाअी करने की आज्ञा दी। अिस के पहले कॅव्हेना नामक अेक गोरा, मुँह में काला रंग पोतकर तथा पहरेदारों को धोखा देकर, रेसिडेन्सी में जा पहुँचा था। अुसे भेजने का उद्देश यह मालूम करने का था, कि वहाँ बचाव का क्या प्रबंध था और वहाँ के लोगों को चढाअी की योजना की पूरी कल्पना दी जाय। पहले कॅम्बेल और आअुटराम को अेक दूसरे के संदेश पहुँचाने में वह सफल हुआ था। रेसिडेन्सी तथा लखनअू के सैनिक अड्डे में

१४ नवंबर की प्रतीक्षा बड़ी आतुरता से की जा रही थी। योजना थी, कि हैवलॉक और आउट्रम रेसिडेन्सीसे बाहर आकर क्रांतिकारियों पर धावा बोल दें और दूसरी ओरसे कैम्बल अुन्हें दबाय। अिधर अंग्रेजों की छावनी में १८५७ में नामवरी प्राप्त किये कर्मी सेनानी और योद्धा जमा थे। हैवलॉक, आउट्राम, पील [नौदल का प्रमुख] ग्रेटहेड, दिल्ली से हाडसन, होपग्रँट, आयर और स्वयं सेनापति कैम्बेल वहाँ थे। अुनके साथ नामाकुम हाअिलैंडर सैनिक, वैसी दुष्टी रेसिडेन्सीसे मैदान में कूदने को अुत्सुक आअुट्राम के गोरे सूरमा, देशद्रोही पंजाब-पुरुष और दिल्ली में मातृभूमि के खून से अबतक भीनी तलवारें धँसारे अुनसे भी अधिक 'पराक्रमी' सिक्ख सिपाही थे।

यह सारा समूह १४ नवंबर को लखनअूपर चढ़ आया। दिनभर मुठभेड़ें हो रही थीं। शामतक अंग्रेजी सेना दिलखुशा बागतक घुस गयी थी। कैम्बेल ने रातको वहीं पड़ाव डाला। क्रांतिकारियों ने रातभर हमले जारी रखे; किन्तु अंग्रेजी सेना वहीं टिकी रही। दूसरा दिन फिरसे व्यूहरचना करने में बिता कर १६ नवंबर को लखनअूकी चढ़ाओ फिर शुरू की। तब तूफान की तरह आक्रमणकारी अंग्रेज सेना सिकंदर-बागपर टूट पड़ी। बागतक पहुँचने पर्यंत क्रांतिकारियों ने विशेष प्रतिकार न किया। किन्तु अुनके नेताने-वह चाहे जो हो-बहुत बाँके रणकौशल का परिचय दिया। जब ओवार्ड के हाअिलैंडर तथा पॉवेल के सिक्ख भीषण गर्जना करते हुअे सिकंदर बाग पर चढ़ आये तब मालूम होता था, कि अिस साहसी आक्रमण से क्रांतिकारियों का चकनाचूर हो जायगा। सूबेदार गोकुलसिंह अपनी तलवार हवामें फेंकते हुअे क्रांतिकारियों को पुकार रहा था, कि वे हाअिलैंडर को किसी तरह आगे न बढ़ने दें। अभागे लखनअू! अधिक से अधिक हिन्दू का खून कौन पीता है अिस की निर्दय होड़ में जोश में आकर सिक्ख तथा हाअिलैंडरों ने धूम मचायी थी। किन्तु सिकंदरबाग के मोटे पत्थर टससे मस न हुअे। अुन्हें भी जैसे तैसे तोड़कर देखा तो अुसके पीछे खड़े सूरमा बप्पाभर भी पीछे न हटते थे। यहाँ तो सिक्ख और हाअिलैंडर पहले आगे बढ़ने की स्पर्धा कर रहे थे। आखिर एक छेद से आगे घुसनेवाला सिक्ख ही निकला। अिस देशद्रोही की वीरता के अिनाम के रूप

में एक गोली सॉय सॉय करती आयी और अुस की छाती के छेद गयी। अुसके गिरते ही कूपर अदर घुसा और अुसके पीछे तुरन्त अीवार्ट, कॅ. लॅम्सडेन, सिक्ख, हाअिलडर, सब घुस पडे। अितनी फुर्तीसे अिन्हें घुसते देख क्षणभर के लिअे सिपाही चौंक पडे। किन्तु जिस वीरवरने अुस दिन सिकंदर बाग की व्यूहरचना की थी वह पॉचवॉ वीर न था। पीछे हटने की कल्पना तक अुकसे मन में न आने पायी।

जीतेंगे या मरेंगे! मर मिटेंगे या विजय पायेंगे! ये शब्द अुन्हीं के मुँह में फबते हैं जो स्वाधीनता के लिअे मैदान में कूदे हों। सबसे आगे कूपर था। अुस का खात्मा करने का काम लुधियाने के विद्रोहियों के नेता के बिना कौन कर सकता था। कूपरपर नजर ताक कर वह सीधे अुसपर झपटा। खन्, खन्, खन्; तलवार से तलवार टकरायी। गहरे वार हुअे और दोनों धराशायी हुअे। लम्सडेन अपनी तलवार नचाते चिल्लाया, "देखते क्या हो, स्काटलंड की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिअे आगे बढो।" क्या गुस्ताखी! कहता है स्काटलंड की प्रतिष्ठा के लिअे! याने हिंदुस्थान की कोअी प्रतिष्ठा है ही नहीं! स्काटलंड की प्रतिष्ठा के नाम पर कोअी आगे बढे, अिस के पहले ही एक क्रांतिकारी आगे बढा और लम्सडेन के मृत शरीर से खून का फव्वारा अुडने लगा। अिधर यह कचवावध जारी था, अुधर दूसरी ओर परकोटा तोड कर अंग्रेज अंदर घुस पडे। बस, अब हमारी बाग के लिअे विजय की आशा न रही। सिकंदर बाग! क्या जीत न हो तब भी तुम झूझती रहोगी? अवश्य; लडो, लडो, विजय हाथसे गयी तो परवाह नहीं, प्रतिष्ठा न जाय। प्राण जाय पर आन न जाय। कीर्तिमें कालिख न लगे! कर्तव्य पर डट कर लडो। हर दरवाजे, हर चौराहे में तलवार से तलवार भिडी थी। रक्त के फव्वारे अुड रहे थे। मॅलिसन कहता है "सिकंदर बाग की लडाअी रक्तरंजित और घमासान थी। विद्रोही निराशा के तेह से लड रहे थे। हमारे सैनिक अंदर घुस पडे, अिससे लडाअी बंद न हुअी अेक अेक कमरे, अेक अेक सीढी और बुर्ज के हर कोने के लिअे लडाअी हुअी और जब आक्रमकों ने बाग पर कब्जा कर लिया तब अुनके अिर्दगिर्द

२००० क्रांतिवीरों की लाशें फड़क रहीं थीं; कहा जाता है कि यहाँ की रक्षा करनेवालों में से केवल चार बचे थे—जिसमें भी संदेह है।"*

सिकंदर बाग में स्वाधीनता के लिये खेत रहे दो सहस्र हुतात्माओ! यह कृतज्ञ इतिहासरचना तुम्हारी वीरस्मृति को समर्पण! दो सहस्र देशभक्तों का लहू! यह इतिहास उसी की मनुहार! स्वदेश के लिये युद्ध करने को सिद्ध वीरो, तुम कहाँ के, कौन? तुम्हारे नाम? साधना की उज्ज्वल ज्योति तुम्हारे हृदय में जाग उठने पर तुम्हारा नेतृत्व करनेवाला कौन वीर था जिसने तुम्हें इस भयकर रण की प्रेरणा दी? क्या ही दुर्भाग्य की बात है, कि मानवता की सेवा करने की इच्छा से अपने प्राणों की बलि चढानेवाले तुम्हारा नाम ठाम भी हम नहीं जानते! तो फिर, यह इतिहास—रचना तुम्हारी अनामिक स्मृति को समर्पण! विजय हाथ से भले ही निकल गयी, तुमने अपना आन पर आँच न आने दी! तुम्हारे पराक्रम से अतीत की कीर्ति में चार चाँद लगे और भविष्यत् की प्रेरणा तथा चैतन्य की निधि बने!

हे स्वातंत्र्यवीरो! तुमने अपनी आन पर आँच न आने दी यह अच्छा ही किया, किन्तु सिकंदर बाग का यह आत्मार्पण तुम इस से भी सुयोग्य समय पर करते तो विजय तुम्हारे चरणों में लोटती। अब तुम्हारे शत्रुओं की शक्ति अनंतगुना बढ गयी है। हजारों नये सैनिक उन की ओर से लड़ने आये हैं; दिल्ली के पतन से उनपर से युद्ध का दबाव बहुत कुछ कम हो गया है। विजय से उन का धैर्य बढ गया है, जहाँ हार से तुम्हारा दिल बैठ गया है। लखनऊ की यह भूमि इतनी गीरम और पथरीली है, कि दो सहस्र हुतात्माओं का रक्त सिंचने पर भी उसके उर्वरा बनने में संदेह है। दुर्बल रेसिडेन्सीपर पहले ही धड़ाके में यदि तुम 'विजय या मौत' के नारे लगाते टूटे पीचट से आगे बढ़ते तो केवल दो घड़ियों में स्वाधीनता

* मॅलिसन कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड ४ पृ १९२

का मुकुट भारत के मस्तक पर विराजमान हो जाता । तुमने अपनी ओर से पूरा आत्मसमर्पण कर मौत को गले लगाया किन्तु वह ' दिव्य क्षण ' जो हाथ से निकल गया न ? वह समय, वह सोने का सजोग, हाथ से निकल गया सो निकलही गया ! **क्रांतियुद्ध में कभी कभी अेक क्षण की देरी से जो महान् हानि होती है, वह बाद में जुग जुग तक कष्ट उठाने से भी पूरी नहीं हो सकती।** अुस समय रक्त की अेक बूंद तुम्हे विजयमाला पहनाती–अब क्या, यह रक्तसिंधु, ये रक्त के फव्वारे तुम्हे अमर कीर्ति से विभूषित करेंगे किन्तु जश ?—अब आकाश के तारे बन गया है। **क्रांति की झंझा में अेक क्षण की ढिलाअी सब योजना के पैर उखाड देती है।** अेक डग पीछे पडा और विपत्ति के पहाड सिरपर गिर जाते हैं। जीनेकी क्षणिक आशा ही, निश्चितरूप से आदर्श को मृत्यु की गर्ता में गहरी दबा देती है !

सिकंदर बागही के समान अन्य स्थानों में भी असीम रक्तसिंचन हो रहा था। दिलखुशबाग, आलमबाग तथा शाह नजफ में दिन रात घमासान रण जारी था। अेकाअेक तडके लखनअू में घंटे घनघनाने लगे, मारू बाजों की दनदनाहट चली और फिर अेक बार घायल लखनअूने शत्रु से जोर की टक्कर ली। आज की मोतीमहल की लडाअी कल की शाह नजफ की लडाअी की तुलना में जरा भी कम न थी। किन्तु अन्तमें निश्चित रूपसे अंग्रेजों का जोर बढा और रेसिडेन्सी में बद रहे अुनके देशबंधुओं को वे छुडा सके। १७ से २३ नवंबर तक लखनौ में समर की महा–लीला हुअी और घेरे में पडे हुओं को घेरा तोडनेवाले मिल पाये। अबतक मृत्यु की छाया से मलिन रेसिडन्सी सानद हास्य से प्रफुल्लित बनी। फिर भी क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी विजय का मूल्य कुछ न समझा। दोनों शत्रु सेनाअें अब मिल चुकी थीं और समूचा लखनअू रक्तसिंधु में नहा रहा था, तो भी अुन के मुख से शरण या पीछे हटने का अक्षर तक न निकला। अुनकी अिसी हठीलेपन और रणबाँकुरेपन हीसे युद्ध का अन्त अनिर्णीत था। अिससे सर कॅम्बेलने फिर से व्यूहरचना शुरू की। रेसिडेन्सी के सब सैनिकों को अुसने दिलखुश बाग में भेजा। आलम बाग में अुसने चार हजार सैनिक

तथा २५ तोपें आऊटराम के मातहत रख दिये। अिस तरह आगामी लडाओी की पूरी सिद्धता की। और प्रधान सेनापतिने अंग्रेजों को यश देने में सहायक सभी सेना का शौर्य, अनुशासन, तथा आज्ञाकारित्व की दिल खोलकर प्रशंसा की। कहने की आवश्यकता नहीं की अिस प्रशंसा का बडा हिस्सा हॅवलॉक के पल्ले पडा था।

किन्तु, अिस प्रकार, सुनिश्चित तथा अपूर्व विजय के आनंद में मगन अंग्रेजी सेना का प्यारा हॅवलॉक अचानक चल बसा। लखनऊ का चिलचिलाती धूप, दिन रात की चिंता और निराशाने हॅवलॉक का स्वास्थ्य धीरे धीरे गिरही रहा था और ठीक विजयपूर्ति के क्षण ही वह चल बसा। २४ नवम्बर को अुस की मौत से अंग्रेजी आनंद में विष की डली घुल गयी। हाँ, फिर भी यह घडी मृतकपर आँसू बहाने की नहीं है परन्तु अधूरा काम पूरा करने की है। हॅवलॉक लखनऊपर कब्जा करने के काम में मर गया है तो अुसका सच्चा स्मरण, अुसकी सच्ची यादगार, तो लखनऊ जीतने ही से हो सकती है।

किन्तु लखनऊ हथियाने को चल पडने के पहलेही कानपुर क पास ये तोपों के धमाके कहाँ से जारी हो गये हैं? छिः अैसी छिछोरी बातपर कौन ध्यान देता है। जबतक युरोप के रणमैदान में कीर्तिप्राप्त विंढहॅम यहाँ मौजूद है, तबतक कॅम्पेल को तोपों की अिस गडगडाहट की चिंता करने का बिलकुल कारण नहीं है। कौन होगा वह क्रांतिकारी जो विंढॅम जैसे अंग्रेज वीर से झूझने का साहस करेगा? हैं, ये टहलुवे तो तात्या टोपे के कानपुरपर चढ आनेका संवाद् कह रहे हैं!

कानपुर और तात्या टोपे? अब सर कॅम्पेल के मस्तिष्क में अुन तोपों के धमाकों का अर्थ प्रकाशित हुआ। और तुरन्त लखनऊ की चढाओी का काम आऊटराम को सौंप कर, वह स्वयं कानपुर को तात्या टोपे की हलचल को देखने चला गया।

अध्याय ६ वाँ

तात्या टोपे

जुलाअी १६ को कानपुर में विद्रोहियों की हार होने पर श्रीमंत नाना-साहब ब्रह्मावर्त को चले गये थे। १५ जुलाअी की रात को बिठूर के राजमहल में आगामी योजनाओं पर चर्चा हुअी और दूसरे ही दिन सवेरे अपने साथ छोटे भाअी बालासाहब, भतीजा रावसाहब, आज्ञाकारी तात्या टोपे, राजपरिवार की स्त्रियाँ, खजाना, और कुछ अन्नसामग्री लेकर, नानासाहब गंगा किनारे अुन के लिअे सुसज्ज नावों की दिशा में चलते दिखायी दिये। फतहपुर जाने का अुन का अिरादा था। वहाँ पहुँचने पर नानासाहब के परम स्नेही चौधरी भूपालसिंह ने अुन का स्वागत कर अपने महल में खूब अच्छी तरह से रखा। हॅवलॉक जब कानपुर को घेरा डाल कर लखनअू पर चढ जाने की योजना बना रहा था, अुसी समय नानासाहब भी अपनी राजपरिषद् में हॅवलॉक का सफल सामना करने के अुपायों पर मशविरा कर रहे थे।

और अैसी कठिन स्थिति में ठीक अुपाय बताने की क्षमता रखनेवाला अेकही असाधारण बुद्धि का व्यक्ति अुस राजपरिषद् में था। मानो अुस की सूक्ष्म बुद्धि अैसी ही कूट–समस्याओं का हल निकालने के घात ही में रहती थी! अब तक तात्या टोपे ने मामूली मुनशी से अधिक काम नहीं किया था; अब तक नानासाहब के दरबार में दूसरा काम ही अुस के लिअे क्या था?

किन्तु स्वाधीनता के भाव जग अुठते ही नानासाहब के दरबार ने भी, रायगढ के अुस प्राचीन पवित्र दरबार के समान, अपना असाधारण बुद्धिवैभव, सावधानता तथा तेजस्विता प्रकट की थी। सफलता प्राप्त करने के लिये नूतन अंकुरित साधना की आकांक्षाओं की चेष्टा शुरू हो गयी। जिस समय नये सिंहासन खडे करने थे, नयी सेनाअें संगठित करनी थीं और आये दिन समरांगण में डट कर मैदान मारना था। विजयप्राप्ति से अभी कहीं वह दरबार प्रफुल्लित हो गया था, जब कि कानपूर की हारसे विषण्णता की छाया वहाँ पडी थी। किन्तु वायुमण्डल में गंभीर सन्नाटा छा गया था, क्यों कि पिछल अपमानों के प्रतिशोध की योजना बन रही थी; जिस सन्नाटे का भंग [केवल कांतिदूत की योजना की ब्योरेवार चर्चाही से हुआ। और स्वाभाविक था, अब तक योग्य अवसर प्राप्त न होने से सोयी पडी तात्या टोपे की कर्तृत्व शक्ति साहसपूर्ण हुंकार से प्रकट हो जाय। जो चतुर योजनाअें अबतक अुस के मन में अुछल रही थीं, अुन्हें प्रत्यक्ष में परखने का अवसर अब आ लगा था। और, सचमुच, मानना ही पडेगा कि चतुरतापूर्ण मौलिक और सफल योजनाअें बनाने में तात्या टोपे का हाथ थामनेवाला कोअी व्यक्ति मिलना दूभर था।

तात्या का विचार था, कि कानपुर के पराभव से अव्यवस्थित बनी सेना को फिर से सुसंगठित की जाय। तात्या का मुँहतोड तर्क; मानवी मन के अत्यंत गूढ भावों के गुणदोषों का सूक्ष्म ज्ञान, और असाधारण व्यक्ति में होने वाला साहस आदि सभी लोकोत्तर गुणों के सुंदर मिश्रण से, अुच्छृंखल सिपाही अेक मन से, अेक दिन में, अेक सुगठित सेना के रूप में, सिद्ध हो जाते। नये रंगरूटों की बात अुठी तब तात्या सीधे शिवराजपुर को गया और वहाँ अुठे ४२ वीं पल्टन को अपने कार्य में जोड लिया। जिस बीच, हैवलॉक गंगापार हो कर लखनअूर चढ जाने के विचार में था। तब तात्याने भी अुसकी पिछाडीपर हमला कर अुसे सताने की ठानी। जिस के कारण अंग्रेज सेनापति को फिर कानपुर को कैसे लौटना पडा, लौटनेपर यह देखकर कि ब्रह्मावर्त के राजमहल में मराठों का राजा फिरसे विराजमान है, अुसके अचरज का ठिकाना

कैसे न था, लखनअूही में फिर से लडाअी करनेपर अंग्रेज सैना कैसे मजबूर हुअी, और १६ अगस्त को क्रातिकारियों की कैसे हार हुअी आदि घटनाओं का विवरण पिछले अध्याय में दे चुके है। हार के बाद अपनी सारी सेना के साथ तैरकर तात्या गंगापार हुआ और फतहपुर में नानासाहब को जा मिला। अब नयी सेना भरती करने का प्रश्न था। शिंदे की 'वफादारी' के कारण अुसकी सेना, अंग्रेजों से भिडने को अुत्सुक होते हुअे भी, हाथ मलती बैठी रही थी। तब किसी का गवालियर जाना अत्यंत आवश्यक था। किन्तु किसी जादूगार की तरह अपने अनुयायियों को जिसने मन्त्रमुग्ध कर रखा था, और अंग्रेजों के मातहत होनेवाली पूरी पलटन को विद्रोही बनाकर अपनी मुठ्ठी में रखा था, अुस चतुर मराठा वीर के बिना दूसरा सुयोग्य व्यक्ति कहाँ मिलनेवाला था? तात्या टोपे गुप्त रूपसे गवालियर गया। थोडे ही समय में अुसने मुरार की छावनी के पैदल, रिसाले तथा तोपखाने को अपनी ओर कर लिया और अुनको साथ लेकर वह कालपीतक पहुँचा भी। सैनिकदृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान के रूपमें क्रांतिकारियों को कालपी बहुत अुपयुक्त होनेवाला था। कानपुर और कालपी के बीच बहनेवाली जमुना अंग्रेजों के लिअे प्राकृतिक प्रतिबंध था। कानपुर के बाद कालपी जितना दूसरा सुसरक्षित स्थान पाना असम्भव होने की बात सोचकर तात्याने कालपी के किलेपर कब्जा जमा लिया। नानासाहब को यह समाचार मिला, तब कालपी को अपना केन्द्र बनाने की दृष्टि से अपना प्रतिनिधि बनाकर अुस किले की सुरक्षा का भार श्रीमंत बालासाहब को सौंप दिया। श्रीमंत को किले की रक्षा का काम सौंपकर अब तात्या अंग्रेजोंपर झपटने की योजना बनाने लगा।

अुस समय कानपुर की गोरी सेना का सेनानी सुप्रसिद्ध जनरल विंडहॅम था! अपनी सेना से कुछ हिस्सा कानपुर में छोड सर कॅम्बेल लखनअू की ओर बढा। तात्याने ठीक अवसर भाँपा। लखनअू के क्रातिकारी कॅम्बेल की विशाल वाहिनी से टकरा कर अुसे फँसा रखते थे। जनरल विंडहॅम को अन्य स्थान से सहायता पाना असम्भव था। अिसी समय अचानक हमला कर अुसको हराना ही तात्या टोपे का दाँव था। बालासाहबने अनुमति दी, और

कल का गरीब ब्राह्मण बाबू आज पेशवा की सेना का सेनापति बना। जमना पार कर खुले मैदानमें, तात्याने, अुस भर युरोप के समरांगण पर लड़े, विंडहॅम को घेर लिया। और अिस साहस के समय तात्या के पास साधन–सामग्री क्या थी! तो भी विद्रोही बने, असंगठित सिपाही और अुनके साथ आये हुअे अनाड़ी, गाँववाले किसान! सैनिक शिक्षा में परिपूर्ण और सैनिक अनुशासन से भरे अंग्रेजी सैनिकों से तात्या की सेना की मुठभेड हुअी। स्वाधीनता की लगन की ज्योति एक बार जम जाने से, प्रतिपक्षी के सर्वश्रेष्ठ सुविधाओं से टकराने का बल कैसे आ जाता है, और अंग्रेजी सेना की तरह शिक्षा जिन्हें मिली होती तो कितनी बड़ी विजय होती, अिस का यह सुंदर शिक्षाप्रद अुदाहरण है! ग्वालियर से सैनिकों को लेकर तात्या टोपे नवंबर ९ को काल्पी आ पहुँचा। कानपुर से काल्पी ४९ मील है। अंग्रेज सेना का ठीक स्थान देखकर, यमुना पार कर, तात्याने दोआब में अपने सैनिकों को रखा और अपना खजाना और अन्य सामुग्री काल्पी में छोड़, कानपुर के कुछ गाँवोंपर दखल कर लिया। जमुना पार कर अकाअेक कानपुर पर चढ न जाने में तात्या टोपे ने अेक बड़ा दाँव रचा था। लखनअू के क्रांतिकारियों से कॅम्बेल के अुलझ जाने की पक्की खबर मिलने तक विंडहॅम पर चढाअी न करने का अुसका निश्चय था। जब अुसे पक्की खबर मिली तब मार्ग के महत्त्वपूर्ण स्थानों को जीतकर वह शिवराजपुर पर चढ आया। १९ नवंबर तक ब्रिटिश सेना की रसद मारने का दाँव वह पूरा करने को था। किन्तु कानपुर का सेनापति कुछ रोटियाँ थोड़े ही सेंक रहा था? कलकत्ते से आनेवाली अंग्रेजी सेना को अुसने रास्ते ही में कानपुर रोक लिया, कुछ दस्तों के साथ कार्थ्यू को काल्पी के मार्ग पर नाकाबंदी करने को भेज दिया, और स्वयं तात्या की हलचलों का शान्तिसे निरीक्षण करता रहा। क्या, तात्या अवधमें जा कर कॅम्बेल की सेना की पिछाड़ी काट देगा? या कानपुर पर चढ आयगा!

किन्तु, विंडहॅम से हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना असम्भव था। अुसकी साहसी तथा लड़ाकू प्रवृत्ति अुसे चुप न रहने देती थी। अुस का अिस बात पर विश्वास था, कि 'अंग्रेजी सेना केवल हिंदियों से ही नहीं, अेशिया की

किसी भी सेना से श्रेष्ठ होती है; और अेशियाअी सेना को हराने का अिलाज है, बस, अेक जोरदार हमला किया जाय।'

"तुम चाहे जितने बलवान क्यों न हो, चढाअी करने में तुमसे रच भी हिचकिचाहट या ढिलाअी हुअी तो ये अेशियाअी लोग झट अितराते हैं, अपने बल की आत्मविश्वासपूर्ण शेखी बघारते हैं और, अुलटे, चढाअी कर बैठते हैं। अिस लिअे तुम निर्बल क्यों न हो, साहस के साथ पहले जोरदार हमला करो, ये अेशियावाले हार की केवल आशंकासे दुम दबा कर भागेंगे और तितर-बितर हो जायेंगे"—आज तक सभी अंग्रेज यही मानते आये थे। और अिसी विश्वास पर कअी बार अुन्हों ने चढाअियाँ कीं और बहुत बार वे विजयी भी हुअे। अब तो वह केवल विश्वास न हो कर अेक नियमही बना था। "तुम्हारा सख्याबल चाहे जो हो, किन्तु विजय चाहते हो तो अेक रामबाण अिलाज यही है कि अपने प्रतिपक्षी को घबरा दो और धोखा दो।" हाँ, तब तो अेशियाअी सैनिकों के विशाल जमघट पर मुठ्ठीभर अंग्रेजों को तीर की तरह टूट पड, विजय प्राप्त करनी ही चाहिये। भारत में आनेवाले हर गोरे से यह नियम कंठस्थ कराया जाता और हर अंग्रेज ग्रथकार यही नियम अपने ग्रंथ में विशेषरूपसे बखानता। अिस प्रकार की रणनीति तथा विश्वास में पले होने से तात्या की हलचलों को चुपचाप देखते रहना विंडहॅम के लिअे असम्भव था। तुरन्त वह कानपुर से निकला और कालपी के पास की नहर के पुलसे हो कर आगे बढा।

अिधर तात्या श्रीखंडीसे २५ नवबर को चलकर पांडु नदीपर आ पहुँचा। शत्रु अितना नजदीक आ गया तब २६ ही को अंग्रेजोंने अेशिया-अियों के साथ बरते जानेवाले रामबाण अुपाय को काम में लाने का निश्चय किया। विंडहॅमनें तीर की तरह चढाअी शुरू की। क्रांतिसेना जंगलमें छिपी बैठी थी, वहाँ से अुसने तोपें दागने का प्रारंभ किया। कडी कशमकश के बाद अंग्रेजोंने तात्या की तीन तोपें छीन लीं और विंडहॅम का विश्वास दृढ हुआ कि जोरदार चढाअी से अेशियाअी हट जाता है। किन्तु, हाय, यह क्या हुआ!

अंग्रेजी सेना को पीछे हटना पड़ा। अेक क्षण में विजय गयी और हार खानी पड़ी। और तात्याके रिसाले ने कानपुर तक विंडहॅम को खदेड़ा। विंडहॅम की 'पहाजी और जीत' का सिद्धान्त धरा रहा और भारतीय तात्या टोपे ने स्वयं पहाजी कर अंग्रेजी सेना से टक्कर ली।

मॅलसन कहता है—"विद्रोहियों की सेना का नेता मूरख नहीं था। विंडहॅम की जोरदार पहाजी से वह डर तो गया ही नहीं, अुल्टे, अुस के मन में स्पष्ट हो गया, कि अंग्रेज सेनापति जिस समय घबराया है तात्या टोपे ने छपी, खुली पुस्तक के समान, विंडहॅम की आवश्यकताओं को जान लिया और अेक मँजे हुअे सेनापति की अंतःप्रेरणा से अुसने विंडहॅम की कमियों से लाभ अुठाना तय किया।" *

अंग्रेजी सेना से लगातार चोबीस घंटों तक जूझनेवाले अपने सैनिकों को तात्याने फिरसे शत्रुपर टूट पड़ने की आज्ञा दी; किन्तु जबतक शेवोली और शिवरामपुर से आनेवाले क्रांतिकारी दस्ते अंग्रेजों के दाहिने पासे पर तोपें दागना शुरू न कर दें, तबतक राह देखने को कहा। विंडहॅम ने भी अपनी सेना को सुव्यवस्थित किया। किन्तु सबेरे नौ बजे और फिर भी क्रांतिकारियों की कोअी हलचल न दिखायी दी, तब करेगा करने को अंग्रेज सैनिक लौट गये। फिर ग्यारह बजे वे आ कर डट गये। तात्या की चाल का अदाजा लगाने में अपने मस्तिष्क को खपाते हुअे सब चकित थे।

तात्या के मन में क्या था वह थोडेही समय में स्पष्ट हो गया। क्यों कि, जब अंग्रेजों के दाहिने पासे पर तोपों के गोले आ गिरने लगे और अिधर तात्या ने भी अुनपर सामने से हमला किया। विंडहॅमने तुरंत छः तोपों के साथ कार्थ्यू को बिठूर के मार्ग की रक्षा के लिये भेजा। अंग्रेजी तोपखाना जिन हमलों के सामने हटने लगा। तात्या ने अपनी सेना की रचना अर्धवृत्त में की थी; सामने से और पासों से अंग्रेजी सेना को कैंची में दबाने की अुसकी

---

* मॅलेसन कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ४, पृ १५७

चाल थी। विंडहॅम ने व्यूह तोडने की तनतोड चेष्टा की; किन्तु तात्या की तोपें लगातार आग अुगलती रहीं, जिस से विंडहॅम अेक डग भी आगे घुस न पाया। और अंग्रेजी सेना पीछे हटने के आसार दिखायी पडे। बाअें पासे की सेना अपनी तोपें मैदान में छोड कर पीछे हटी, यह देखते ही दाहिने पासे की सेना थोडी देर के बाद पीछे हट गयी। अंग्रेज पीछे हट रहे है यह देखकर सहसा क्रांतिकारियों का अर्धवृत्त पूरा घेरा बन गया। शाम के छः बजे तक अंग्रेजों का सफाया किया गया। हजारों तंबू तथा अन्य अुपयुक्त अनगिनत सामग्री क्रांतिकारियों के हाथ लगी। आधा कानपुर तात्या टोपे के ताबे में आ गया था। अिस तरह, अिस साहसी और शूर मराठा सेनानी के गले में यह दूसरी विजयमाला पडी। कल की लडाअी में अुसे अप्रत्यक्ष विजय मिली थी, किन्तु आज की विजय निश्चित,प्रत्यक्ष, अधिक ठोस थी। क्यों कि, शत्रु को पूरी तरह हरा, अुसे भगा कर फिर अेक बार कानपुर पर दखल किया गया था। अंग्रेज अितिहासकार भी मानते हैं कि तात्या की क्षमता को अुस के सैनिकों के अनुशासन का जोड मिल जाता तो शायद विंडहॅम को तात्या ने मटियामेट कर दिया होता।

और हाँ; अब तात्या की तोपों की-घडघडाहट कॅम्बेल के कानों में पडी। तात्या मानता था, कि अुस के कानपुर पहुँचने के बाद लखनअू के क्रांतिकारी कम से कम अेक महिने तक कॅम्बेल को वहाँ फँसा पायेंगे। किन्तु अज्ञात कारणों से कॅम्बेल लखनवियों को अचानक हरा सका; यह समाचार पाते ही तात्याने स्पष्टतया ताड लिया, कि अब कॅम्बेल अुस पर चढ जायगा; और गंगा के दोनों किनारे से हैरान करेगा। तात्या कुछ चिंतित—सा हुआ। अब विंडहॅम ने अुत्तेजित हो कर गँवाया हुआ जश फिर से प्राप्त करने का निरधार किया। किन्तु अुस की सेना थकी हुअी थी; अिसलिअे रात में छापा मारने का अिरादा छोड, दूसरे दिन सबेरे चढाअी करने का कार्यक्रम निश्चित हुआ। दूसरे दिन सबेरे से मुठभेडें शुरू हुअीं, आज पीछे न हटते हुअे डट कर संगठित और जोरदार हमले कर क्रांतिकारियों पर वे टूट पडते थे।

तिसपर भी अुनका बायाँ पासा साफ लड़खड़ा गया। ब्रिगेडियर विल्सन मारा गया। कॅ मॉर्फी काम आया। मॉर्फी, मेजर स्टर्लिंग, ले गिब्बन्स सब अुलट गये। अच्छा, तो अेशियाअियों में अेक तात्या टोपे भी निकल आता है। तीसरे दिन तात्या को पूरी विजय मिली और अंधेरा होने तक लड़ते रहे गोरों का अुसने पूरा सफाया कर दिया। समूचा कानपुर तात्या के हाथ आया। विजयकी अिस तीसरी माळने तात्या टोपे की तलवार को विभूषित किया।*

अंग्रेज जब अिस तरह तितरबितर भाग रहे थे तभी कॅम्बेल अंग्रेजी छावनी में आ पहुँचा। ब्रिटिश प्रतिष्ठा को तात्याने जो थप्पड़ दी थी अुसका पूरा चित्र कम्बेल के सामने खड़ा हो गया। क्रांतिकारियों के सामने दुम दबाकर भागनेवाले अपने गोरे सैनिकों को अुसने देखा और तात्याने कानपुर में जो भीषण संग्राम छेड़ा था अुसकी गंभीरता का पूरा महत्त्व अुसे भँप गया।

अिधर तात्या भी पूरी तरह पहचान गया था, कि कॅम्बेल यहाँ जो अितने गर्व से कानपुर की सेना की सहायता के लिअे आया था, अुसका यही कारण था कि लखनअू के क्रांतिकारियों की सामर्थ्य कम पड़ी थी, जिससे

---

* (स ४४) अिस हार का बड़ा रोचक वर्णन अेक अंग्रेज अफसर ने यों लिखा है —' आज की कशमकश का विवरण पढ़कर तुम्हें आश्चर्य होगा; क्यों कि, तुम्हें पता चलेगा, कि अपने सम्मान चिन्हों, बड़ी अुपाधियों, और अति प्रसिद्ध वीरता से विभूषित गोरे सैनिकों की हार हुअी और घणित और तुच्छ हिंदियों ने अुनसे अुन के डेरे, सामान और प्रतिष्ठा को छिन लिया। हारे हुअे फिरंगी—और हमारे दुश्मन को अिस तरह हमें बुलाने का अब अधिकार है—अपनी छावनी को, अुलट गये तंबुओं, फटे टूटे कपड़ों, सामानों, अपघड़ मचाये अूँटों, हाथियों, घोड़ों तथा नौकरों के साथ, भाग आये। यह सब किस्सा अत्यंत विषादपूर्ण तथा लज्जास्पद है।" चार्ल्स बॉलकृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड २, पृ १९०

अुनकी कुछ न चली थी। किन्तु अिस विचार से वह रच भी पस्तहिम्मत न हुआ था। अयोध्या के पास गंगा का पुल अुडा कर अंग्रेजों को गंगापार जाना अुसने असम्भव कर रखा था और वहाँ तोपें भी तैयार रखी थीं। किन्तु शत्रु तात्या का दाँव ताड गया और तोपों की मार सहन करते हुअे भी २० नवम्बर के पहले ही वह अयोध्यासे कानपुर आ गया। अुसी समय तात्या के ही शिबिर में नानासाहब और कुँवरसिंह का आगमन हुआ था। अिन माननीय नेताओंने यह निश्चय किया था, कि कानपुर छोड कर हट जाने की अपेक्षा अंग्रेजों के प्रधान सेनापति का युद्ध में मुकाबला करना ही विशेष मानाई है। और तात्या टोपे के समान स्वाभाविक कर्तृत्वशील वीर नेता प्राप्त होनेपर तो * अपनी योजना में किसी प्रकार का बदल करने का कोअी कारण न था।

तात्याने अपनी सेना का बायाँ पासा, कानपुर और गगा के बीच के सुरक्षित टापू में, रखा था। अुस के सभी हलचलों का केन्द्र तो कानपुर ही रहा। अुसका दाहिना पासा गगा की नहर के किनारे दूरतक फैला हुआ था और नहर के पुलपर काबू करता था। अिस समय सैनिक-शिक्षा-प्राप्त १० हज़ार सैनिक अुस के पास थे। अुन्हीं के बलपर अुसने १ और २ दिसंबर को कॅम्बेलसे मुकाबला किया। दिनांक २ को तो कॅम्बेल के डेरेपर ही तोपें चलायीं। अन्त में, दिनांक ६ को कॅम्बेल को क्रांतिकारियों का खुला आव्हान स्वीकार करना ही पडा; अिस लिअे अपने सात सहस्र सैनिकों की सराहनीय व्यूहरचना कर, अुसने अंग्रेज प्रधान सेनापति के सैनिक अड्डेपर हमला करने की गुस्ताखी करनेवाले बागियोंपर धावा बोल दिया। क्रांतिकारियों का दाहिना पासा सुरक्षा की दृष्टिसे ढीलासा मालूम होने से कॅम्बेल ने अुसी ओर पहला हमला किया।

और क्रांतिकारियों का ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करने के लिअे दिनांक ६ के सबेरे से ही अंग्रेजों ने अुनके बाँअें पासे पर तोपों की मार चालू

---

* मॅलेसन्स अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ४, पृ. १८६.

की, जिस से क्रांतिकारी सेना ने अिसी ओर अपना बल केन्द्रित किया। कुछ समय के बाद् स्मिथने क्रांतिकारियों के बीच में घुस कर अेक सेंतमेंत की भिडन्त की, जिससे क्रांतिकारी मानने लगे कि शत्रु का जोर बाअें पासे तथा मध्य पर ही है, अिसी से अिन्हीं पर अुन्हों ने अपना शक्तिसर्वस्व लगा दिया। अंग्रेजी तोपों की मार से अुसका बायाँ पासा जब तंग आ गया था, तब अेकाअेक अंग्रेज अपना रुख बदल कर दाहिने पासे पर झपटे। किन्तु दाहिने पासे पर नियुक्त ग्वालियर पल्टन ने सिक्खों तथा अंग्रेजों पर भयकर अग्निवर्षा की। 'पांडे' सैनिकों की बंदूकों की मारें भी जारी थीं। किन्तु सिक्खों ने दुगने वेगसे चढाअी की और अुनके पीछे पील के नेतृत्व में गोरे सैनिकों के दस्ते भी आ धमके। अिस दोहरे मार के सामने टिकना असम्भव मालूम होने से, ग्वालियरवाले पीछे हटने की सोचने लगे। यह ताडकर अंग्रेजों ने दुगने वेगसे आग अुगलना शुरू किया और ग्वालियरवालों की हार हुअी। अुनकी सारी तोपें अंग्रेजों ने छीन लीं और कालपी के मार्ग में अनका गरम पीछा किया। अिस तरह क्रांतिकारियों के दाहिने पासे पर कैम्बेल पूरी तरह सफल रहा। किन्तु वह अितने से सुस्तानेवाला न था। जिस प्रकार दाहिनी ओर कालपी के मार्ग पर रोक लगायी, अुसी तरह बायीं ओर बिठूर को जानेवाला मार्ग भी बंद कर, तात्या की सेना को घेर लेने का अुसका दाँव था। अिस लिअे अुसने ब्रह्मावर्त के मार्ग पर मैन्सफील्ड को भेज दिया। अुस दिन अुपर्युक्त अेशियाअी लोगों की क्षमता का सिद्धान्त आधा सच और आधा झूठ निकला। सेनाके मध्य पर ग्रेटहेडने जो सेंतमेंत का हमला किया था वह अितना हलका था, कि यदि अुसका डट कर मुकाबला किया जाता तो अेक तरह से ग्रेट हेड पर अच्छी चपत पडती; अुसे वह आयुभर न भूलता और अुस दिन की विजय का रुझान ही बदल जाता। किन्तु अंग्रेजों के सीधे हमले के आगे क्रांतिकारी न टिक पाये, जिससे 'जोरदार धावा बोला और अेशियाअी तुम दबाकर भागा' वाला सिद्धान्त सेना के मध्य में खरा अुतरा। हाँ, बाअें पासे पर अिस सिद्धान्त के ठीक विरुद्ध अनुभव मिला। क्यों कि, छुपे छुपे मैन्सफील्ड चक्कर काट कर आ रहा है और अुस के साथ भारी

सेना है यह देखकर भी अुसपर हमला कर अुसे खूब पीटा गया। अुस समय बाअें पासे का नेतृत्व स्वयं नानासाहब कर रहे थे। मॅन्सफील्ड की कूर्मगति (धीमिचाल) से अुन्हों ने अच्छा लाभ अुठाया। जब कॅम्बेल ने पूछा कि अबतक तात्या टोपे मॅन्सफील्डने घेर लिया या नहीं, तब अुसे यही समाचार मिले कि मॅन्सफील्ड की लचर चाल से अुस की सब आशाओं पर पानी फिर गया है। तात्या टोपे अुसके हाथ न लगा। कम्बेल को बडा दुख हुआ। क्यों कि मराठा सेनानीने मॅन्सफील्ड को धकेलते हुअे ठेठ ब्रह्मावर्त तक खदेडा। अंग्रेजी सेना के मोर्चा के जालों को तोडकर अपनी सेना और तोपों के साथ वह छटक गया था। अुस मराठा शेर को फँसाने के पहले अंग्रेजों को अैसे कअी जालों को बिछाना पडेगा।

अपने सभी सैनिकों तथा तोपों के साथ, अुस दिन, तात्या टोपे छटक गया, फिर भी होप ग्रॅंट अुसका डटकर पीछा कर रहा था। दिनाङ्क ९ दिसंबर को शिवराजपुर के पास दोनों की दौडती भिडन्त हुअी और, यद्यपि तात्या अिस बार भी अंग्रेजों के हाथसे छटक गया, अुसे अपनी बहुतेरी तोपें छोड देनी पडीं। अिस तरह ६ से ९ दिसबर तक कॅम्बेल ने विंढॅम की हार का बदला लिया, क्रातिकारियों की ३२ तोपें छीन लीं, और अुनके संगठन को तोड कुछ कालपी को तथा कुछ अयोध्या को भगाये गये। अितनी बडी विजय के बाद छोटी विजयो को तो अुसने अपनी मुट्ठी में माना। सो, वह ब्रह्मावर्त को गया, अुसे लूट लिया, नानासाहब के राजमहल को खंडहर बना दिया और अपनी विजयपर कलसा चढाने के लिअे **अुस स्थान के सभी मंदिरों को तोड दिया।**

ब्रह्मावर्त का राजमहल! अिसी में भारतमाता के अत्यत तेजस्वी वीररत्न नानासाहब, तात्या टोपे, बालासाहब, रावसाहब और झाँसी की छबेली पले थे। यही वह राजमहल था जिसमें १८५७ के स्वातंत्र्य-समर की कल्पना का जन्म हुआ। ब्रह्मावर्त के मंदिरों ने अिस महान् साधना को आशीर्वाद दिया था। रायगढ का राजसिंहासन छिने जाने के बाद फिरसे जब वह अिसी राजमहल में

समाया गया, जो फिरंगियों के रक्त के सैलाब से धोया गया था, वह राजमहल और ये मंदिर दीपमालाओं से जगमगाये थे।

जिस तेज ने जिन दीपों को जगमगाया था उसी में आज वे जलकर खाक हो गये। पर अितिहास को अिस खाकपर अेक भी आँसू गिराने की आवश्यकता नहीं है, क्यों कि अपनी साधना को पूरी करने के बाद ही यह महल और ये मंदिर जल गये हैं। अैसी स्वाअियों का सर्वनाश ही अुन सैंकडो, सडी अिमारतों—जो गुलामी को सहती है—की अपेक्षा हजार गुना प्रेरक, हजार गुना प्राण फूँकनेवाला होता है। क्यों कि, अिन अिमारतोंने स्वाधीनता को जन्म देने की चेष्टा की और अुसी में वे मर गयीं। **स्वराज को प्रस्थापित करते हुअे मर जाना गुलामी में जीवित रहने की अपेक्षा कअी गुना लाभकारी है।** यज्ञवेदी में जलनेवाली समिधा चिता में धधकनेवाली लकडी से हजारगुना प्रेरक है।

अध्याय ७ वाँ

लखनअू का पतन

तात्या टोपे की प्रगति की अुमडती बाढ को, अिस तरह, कानपुर में रोककर, कॅम्बेलने प्रांत के अन्य विद्रोही गाँवों को जीतने का काम शुरू किया। मार्ग में 'स्मशान–शान्ति' का निर्माण करते हुअे सीटन अलीगढ पहुँचा था। तब अलीगढ से कानपुरतक के प्रदेश में अुसी तरह की 'शान्ति' स्थापित करने को वॉलपोल को कालपी के मार्ग में भेजा गया। वह कानपुर से अुत्तर जायगा और सीटन अलीगढ से दक्खिन। और मैनपुरी में वे मिलेंगे। अिस तरह जमुना के किनारे किनारे सारे दोआब पर फिरसे दखल कर लिया जायगा। साथ साथ कॅम्बेल कानपुर से फतहगढ जायगा। यही थी योजना की रूपरेखा। यह माना गया था कि अंग्रेजी सेना दोआब के क्रांतिकारियों को पीछे दबाती हुअी फतहगढ पहुँच जायगी। सो, निश्चय हुआ, कि अिस मुहीम की आखिरी लडाअी फतहगढ के पास लडी जाय, जहाँ वॉलपोल, सीटन, तथा कॅम्बेल–तीनों की सेनाअें अपना काम पूरा कर मिलनेवाली थीं।

अिस योजना के अनुसार १८ दिसंबर को, अपनी सब तोपों और सेना के साथ, वॉलपोल कानपुर से अूपर कालपी के मार्ग में चला। रास्ते में क्रांतिकारियों के फैले हुअे छापामार दस्तों से दो अेक मुठभेडें करते हुअे, क्रूर बदला लेते हुअे, (–वह सुप्रसिद्ध और अपनी रीति का फिरंगी बदला, न्याय अन्याय

की परवाह न करते हुअे हर मानवसे बदला—) 'पांडों' को आश्रय देनेवाले या न देनेवाले गाँवों को जलाते हुअे, अुस प्रदेश को ब्रिटिशों की छत्रछाया में फिर से ले आने के लिअे, बॉलपोल भिटावे आ पहुँचा। वह और भी आगे बढ़ता। यद्यपि भिटावे को क्रांतिकारियोंने खाली कर दिया था, फिर भी अपनी सारी सेना के साथ अुसे अुस नगरमें रहना था। अैसी क्या अजीब बात थी; असाधारण आवश्यकता आ पड़ी थी? अंग्रेजी सेना की प्रगति में यह रोक? क्रांतिकारियों की बड़ी सेनाने तो कहीं अुसपर अचानक हमला नहीं किया? या पैदल सेना थी? या रिसाला था? या कहीं तोपखाना तो जमराज का तांडव खेल रहा है?

नहीं, भिटावे में भिस में से कुछ भी न था। न पैदल, न रिसाला, न तोपें! अुस दूर की भिमारत से, बीस पच्चीस हिंदी वीर कड़ा प्रतिकार कर रहे थे। भिस भिमारतका छप्पर पक्का है और अुसकी दिवारों में बंदूकें चलानेभर को छेद बने हैं। हृदय में देशप्रेम की ज्योति और हाथ में बंदूकें लेकर ये २०।२५ वीर सब तरह से लैस प्रबल अंग्रेजी सेना को भिटावे की चौखटपर रोक रहे थे। अंग्रेजी तोपों तथा शस्त्रास्त्रों को किसी गिनती में न मान कर अंग्रेजों को रोक रखा था। क्यों कि, भिटावे के नाम के योग्य कोभी शक्ति जो न दी गयी थी! और वह शक्ति कौन है? वही, भिटावे की भिच्छा के विरुद्ध जो भी कोभी वहाँ पग धरने की धृष्टता करे। अुस आह्वान है 'पहले रुको'। भिन २५ वीर वरों ने अपना जीवन बड़ा महँगा बेचना तय किया था, जो कि वे सस्ते में बच सकते थे! वे डटे रहे और अुन्होंने ललकारा 'युद्ध'! भिस भिमारत के छोटे से दायरे में और भिन मुट्ठीभर पागलों से क्या लड़ें? जरा ठहरना अच्छा है, तबतक ये पागल होशमें आ जायँगे और छटक जायँगे; रास्ता तो खुला है—अंग्रेज यही सोच रहे थे। वे काफी समयतक रुके किन्तु बागियों के होशमें आने की सम्भावना न दीख पड़ी। सो, हमला करना तय हुआ। तोपों की गड़गड़ाहट भिन सिरफिरों को मनाने के लिअे पर्याप्त है। बस, फिर

क्या था ? अंग्रेजों ने अपनी तोपों की शक्ति का प्रदर्शन, अुन बागियों को डराने के लिअे, किया।

किन्तु, मृत्यु का डर केवल साधारण जीवों को सताता है। स्वाधीनता की साधना से दिवाने बने तथा स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिअे मौत को गले लगानेवालों को डर क्या करेगा ? विजय की आशा से लडने-वाला कभी जीवनाशासे डरेगा, कीर्ति के लिअे लडनेवाला भी शायद डरेगा; किन्तु सिरपर कफन बांधे जो समरांगण में डटा हो अुसे डर क्या करेगा, खाक ? अैसों के मार्ग में क्या रुकावट आ सकती है ? आकाशसे गाज गिरे या वज्रपात हो, अुसे अपने मार्ग से कोअी बाधा विचलित नहीं कर सकती। क्यों कि, वह मौत ही का राही है, जिस से प्रकृति के कोपसे अुसका मन्तव्य तुरन्त पूरा होने में सहायता मिलती है ! जो मृत्यु को मिलने चला हो अुसे निराशा कैसे निराश कर पायगी ? अपनी प्रियतमा को मिलने के लिअे आतुर प्रेमी की तरह मौत को आलिंगन देने को अुतावले बने अुन अिटावे के देशभक्तों को कौन डरा सकता है ?

और अिसी से जान बचाने की पूरी सुविधा होने पर भी, अुस से लाभ न अुठाते हुअे, विजय की रंच भी आशा न होते हुअे, अुन्होंने अंग्रेजी प्रबल सेना के सामने ताल ठोका। जो अंग्रेजी सेना दिल्ली की किलाबन्दी, कानपुर के परकोटे, एवं लखनअू के घेरे से न रुक सकी वह अब अिस मामूली घर के सामने अटक गयी।

मॅलेसन कहता है:—' गिनती में थोडे, हाथ में केवल बंदूकें थामे, निराश न हो कर भयंकर रणावेशसे चेते हुअे वे वीर अपने ध्येय की सिद्धि पर बलि चढने के लिअे निरधार से खडे थे। वॉलपोल ने अेक बार अुस स्थान का निरीक्षण किया। अेक सेना को रोकने की दृष्टिसे वह जगह बेकार थी। अुसे तोपों से अुडाया जा सकता था। किन्तु कम से कम हानि के विचार से पहले हाथबमों को फेंका गया। अंदरवालों को घबडाने के लिअे घास जला कर धुअें से आकाश भर दिया, किन्तु व्यर्थ ! क्रांतिकारियों ने तीन घंटों तक

मंदूकों से अैसे निशाने मारे को शत्रु को पास आने की गुंजाअिश न रखी। अन्त में, अिमारत को अुडा देने का निश्चय हुआ। 'अिंजीनिअर्स' से स्कॉफली को बुलाया गया; अुसने बोर्शीर की सहायता से रात्रिफली कारतूसों की सुरंग की माला बनायी और जला दी। अिस सुरंग के स्फोट से वह स्थान लडानेवाले वीरों के मस्तक, व जिसे चाहते थे अुस हुतात्मा के मुकुट से विभूषित हुअे और वे अुस अिमारत के मलबे के नीचे दब गये।" और तभी से अिटावे के वीरों का यह पावन समाधिस्थान, परम अुदात्त ध्येय के लिअे "केस मेरं" अिस विषय पर अपनी मूक किन्तु महाभीषण वक्तृता दिनरात सुनाते हुअे, आज तक अुस स्थान पर खडा है।

वीर भूमि अिटावा! अजरामर-कीर्ति अिटावा! अिस से बढकर क्या पवित्र स्फूर्ति अुस थर्मापोली के दर्रे में, ओरलिया की किलावेदी में या नेदर्लैंड्स के व्रूस्तर के कलेवर में होगी? अिटावा अमर रहे! अिटावे की जय!

जब वॉल्पोल अिटावे पहुँचा तब सीटन भी अलीगढ, कासगंज और मैनपुरीसे क्रांतिकारी दस्तों से टक्कर देते हुअे बढ रहा था। ८ जनवरी १८५८ को दोनों सेनायें मैनपुरी में मिलीं। निश्चित योजना के अनुसार दिल्ली तथा मेरठवाली अंग्रेजी सेना ने दोआब में जमुना किनारे अिलाहाबाद तक का प्रदेश फिर से आक्रमित किया था। बीच में कॅम्बेल गंगा काँठ से अपनी प्रगति करती रहा था। फतहगढ के नवाब को हरा कर दोआब के क्रांतिकारियों को मिटाने के लिअे कानपुर आ रहा था। दोआब के सभी क्रांतिकारी अुस समय फतहगढ में जमा हुअे थे। फर्रुखाबाद के नवाब ने स्वतंत्र होने की घोषणा फतहगढ में की थी। ये सब लोग दिल्ली और कानपुर में हार कर भागे हुअे अनसाधे स्वयंसैनिक थे, जो अंग्रजों के सामने टहरने की चेष्टा भी न करते हुअे भाग खडे होते थे, अपनी जान बचाने के लिअे। किन्तु क्या, अिस कायरता से वे अपने प्राण बचा सके? नहीं कदापि नहीं! अंग्रजी सेना अुन का जोरों से पीछा करती और अेक अेक अवसरपर ६०० से ७०० लोगों को और कभी कभी तो सहस्र सहस्र लोगों को तलवार के घाट अुतार देती थी! अिटावे के अुन मृत्यु गले लगानेवाले वीरों तथा अिन कायरों में स्वर्ग-नरक का भेद था!

और फर्रुखाबाद के नवाब को अिन कायर सैनिकों के कारण जल्द ही बहुत हानि अुठानी पडी। अुस की राजधानी, अुस का किला और अुस की युद्ध-सामग्री कुछ सब ब्रिटिशों के हाथ लगा और सब क्रांतिकारियों को गंगापार रुहेलखण्ड में हट जाना पडा। अिस गडबड में ब्रिटिशों का कट्टर शत्रू नादिरखॉं भी अुन के हाथ लगा। अिसी नादिरखॉं ने नानासाहब के झण्डे के नीचे कानपुर में कअी बार अंग्रेजों से सराहनीय सामना दिया था। अैसे भयंकर शत्रु को पकडते ही अुसे फॉंसी दिया गया। अिस नादिरखॉं ने अन्तिम क्षण में सारे हिंदवासियों को शपथ दी—"सब अपनी तलवारें सँवार कर अंग्रेजों को जडमूल से अुखाडने के लिअे आगे बढो"—और दम तोड दिया।* अुस वंदनीय देशभक्त की अन्तिम सॉंस के साथ बाहर पडा यह तेजस्वी महामंत्र था।

४ जनवारी १८५८ को जब विजयी कॅम्बेलने फतहगढ में प्रवेश किया, तब सारा दुआब और बनारस से मेरठ तक का सब टापू ब्रिटिशों के हाथ पडा था। अब ब्रिटिश सेना के सामने समस्या थी, कि चढाअी का कौनसा कार्यक्रम बनाया जाय। अंग्रेजों का यह अनुमान, कि दोआब की क्रांति की ज्वाला बुझा दी जाय तो अन्य स्थानों के बलवे अपने आप शान्त हो जायँगे, सौ टका झूठ निकला। दिल्ली का पतन होते ही केवल आठ दिनों में 'विद्रोह' ठंडा पड जायगा—कअी राजनिति—विज्ञोंने यह भाविष्य कहा था; किन्तु दिल्ली के पतन के बाद क्रांति की बाढ हलकी न पडने से ये भी अनुमान और सब भविष्य झूठे साबित हुअे। क्यों कि, अब तक दिल्ली में बंद क्रातिकारियों की असीम संख्या दिल्ली के पतन के बाद तूफान सैलाब की तरह देशभरमें हुरदंग मचाती फैल गयी। बख्तखॉं की रुहेलों की सेना, वीरसिंग की निमचवाली सेना, तथा भिन्न भिन्न नेताओं के मातहत होनेवाली सेनाअें देशभर में फैल गयीं और वहीं स्वाधीनता—संग्राम जारी रखा। अेक बार स्वय दिल्ली में भी जनताने सिर अूँचा करने का जतन किया था। क्यों कि, लोगों में यह अफ-वाह फैल गयी थी कि कानपुर की विजय के बाद अंग्रेजों की कैद में पडे

* चार्लस बॉलकृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड २, पृ. २३२.

बहादुरशाह को छुड़ाने स्वयं नानासाहब दिल्लीपर आ रहे हैं। अंग्रेजोंने अपने अफसरों को यह चेतावनी दे रखी थी, कि यदि नानासाहब आ ही जाय तो बूढे बादशाह को खरगोश की तरह गोली से मार दिया जाय। * दिल्ली के पतन के बाद तो क्रांतिकारी और ही भड़के। अब उन्हें पराजय की परवाह न थी। उनका शुरू शुरू का विजयोन्माद अब साफ ठंडा हो गया था। गहरी उदासीनता का भूत उनपर सवार था। उनके सामने अब एक विचार था—लड़ते रहो। उन का निश्चय था कि या तो फिरंगी या स्वयं को इस आर्य भूमिसे मिटा कर ही चैन लेंगे और इस मन्तव्य की पूर्ति तक वे लड़ते रहेंगे। वे आपस में झगड़ते, कुछ ऐसे भी थे जो अपना उल्लू सीधा करने के लिये चाहे जो करने में हिचकिचाते न थे; फिर भी इन में से एक भी व्यक्ति अंग्रेजों के विरुद्ध छेड़े हुए युद्ध को स्थगित करना पसंद न करता था। लड़ाई में पकड़े सिपाहियों से, फाँसी देने के पहले जब, पूछा जाता कि वे क्रांतियुद्ध में क्यों शामिल हुए ' तब वे छाती ठोक कर कहते,' ' यह तो हमारे धर्म की आज्ञा है। कि फिरंगी को मार डाला जाय ' ×

इस तरह दिल्ली के पतन के बाद स्वतंत्रता के भाव मर जाने के बदले और ही वेग के साथ भड़क उठे। इसी से दिल्ली की पराजय का बदला लेने के लिये उन्हों ने लखनऊ और बरेली में झगड़ा चालू किया। जहाँ समूचा दोआब अंग्रजों के हाथमें फिरसे आगया था, वहाँ अवध तथा रुहेलखण्ड प्रांत पूर्णतया क्रांतिकारियों के हाथ में ही न थे, बल्कि वहाँ सिंहासनों को फिरसे खड़ा कर स्वदेशी राजाओं का शासन भी जारी कर दिया गया था। इसीसे कैम्बेल के विचार में पहले रुहेलखंड को जीत कर फिर लखनऊ को जाया जाय। लॉर्ड कॅनिंग इस बातपर जोर दे रहा था, कि एकबार क्रांति के तने को—लखनऊ को—तोड़ दिया जाय तो, आसपास के छोटे स्थान आसानी से

* चार्लस बॉल कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड २, पृ ११४

× ई १८५८ चार्लस बॉलकृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड २, पृष्ठ २४२

झुकाये जा सकते है । लॉर्ड कॅनिंग की आज्ञा पर अमल करने के लिअे कॅम्बेलने सब से पहले लखनअू की खबर लेने की ठानी । पूर्वनिश्चय के अनुसार सीटन, वाल पोल् और प्रधान सेनापति कॅम्बेल ने फतहगढ में लगभग १० से ११ हजार सैनिक जमा किये थे । दो आब के सभी महत्वपूर्ण मोर्चों पर कुछ दस्ते, प्रान्त में शांति रखने के हेतु, रखे गये । आगरा से भी आये हुअे सैनिकों से संख्या में और वृद्धि हुअी । अितनी बडी सेना लेकर कॅम्बेल फतहगढ चल पडा । अिस बडी सेना का विवरण अंग्रेज अितिहासकार यों देते है.—" अुनाव तथा बुंदी के रेतीले प्रदेशोंमे अिस तरह की प्रचंड सेना, घोडे, तोपखाना, पैदल सेना, रसदसे लदी गाडियाँ, नौकर चाकर, छोटे बडे खेमे आदि शायद ही देखे होंगे । सारा प्रबंध सुंदर था । १५ वीं गोरी तथा २ री हिंदी पैदल पलटनें, ४ थी गोरी और २४ वीं हिंदी रिसाला रेजिमेंट, ५४ वीं गरनाल और ८० वीं सादी तोपें—अितना सेनासंभार अिकट्ठा था ।" अिस बडी सेना के साथ लखनअू को दण्ड देने के लिअे सर कॅम्बेल कानपुर से चलकर गंगापार हुआ ।

गंगामाअी ! अवध को खंडहर बनाने के लिअे चढ आनेवाली गोरी सेना को देख लो । मानी अवध ! तुमपर ढहनेवाली अिस भीषण विपत्ति से दबकर, क्या तुम स्वयं नष्टभ्रष्ट हो जाओगे ?

अंग्रेज गंगापार हो गये कि, बस, अवध की बन आयी—यही भय अवध में समाया था । अपने असंख्य गाँवो को भस्मसात् करने और अपने मंदिर सुरंगसे अुडाने, मूर्तियों को नष्टभ्रष्ट करने के लिअे अंग्रेज आ रहे हैं ·अिस बात को अवध ने पहले ही भाँप लिया होगा । *

किन्तु सबसे अधिक दुख अुसे अिस बात का था कि जंगबहादुर अपने नैपाली दस्तों के साथ चढा आ रहा है । अिस अेक ही दुःखपूर्ण घटना से अुनकी आँखोंसे आँसू टपके, अुसका मुख पीला पड गया । अवध अैसा

* रसेल की डायरी पृ. २१८.

कायर नहीं था कि गोरी सेना के आक्रमण से डर जाय यदि अैसा होता तो अंग्रेजी कंबावर का पेंक देने की चेष्टा ही क्यों करता ? जिस दिन अंग्रेजी सत्ता को अुसने अपने प्रदेश से भगा दिया, अुसी दिन से वह पूरी तरह जानता है कि ये गोरे फिरसे आक्रमण करेंगे ही। और तभी तो अवधने अपने हथियार हाथोंसे मुकाबले के लिये ताल ठोंका। किन्तु अुसे यह न मालूम था—खयाल तक न था—कि नेपाली गोरखों को लेकर जंगबहादुर अुसपर चढ आवेगा। शत्रु आकर अुसे चीरेगा यह तो वह अच्छी तरह जानता था, किन्तु अपना मित्र, अपने भाओी, आकर अुसपर क्रूरता की कुलहाडी चलायेंगे यह तो अुस के सपने में भी नहीं आ सकता था। अंग्रेजों के साथ भिडने को यह हरदम सज्ज था, किन्तु भारत की स्वाधीनता के लिये भारतही के अेक हिस्से के साथ अुसे झगडना पडेगा, अिस लज्जास्पद बात की कल्पनातक वह न कर सकता था। सो, अवध को फजीहत करने के लिये जब जंगबहादुर गोरखों को लेकर बेचारे अवधपर चढ आया, तब अेक आँख अवधने नेपाल की दिशामें देखा और अुसकी आँखों से आँसुओं के सोते बहने लगे।

नेपाली दस्तों के साथ अपने अंग्रेज 'मित्रों' की सहायता के लिये जंगबहादुर लखनअू पर चढ आ रहा था। अंग्रेज बने अुसके मित्र और भारत शत्रु! कारतूसों में गौ की चरबी चोपडनेवाले अुस के मित्र और अुन भ्रष्ट कारतूसों को दाँत से काटनेसे अिनकार करनेवाले अुस के वैरी! भारतीय अितिहास को कालिख पोतनेवाले अिस जंगबहादुर ने स्वातन्त्र्य-समर का मार्ग सुन कर, फिरंगी से हस्तांदोलन कर, अपने तथा अपने कुल को कायम कलंकित किया। १८५७ के कुछ पहले वह अिंग्लैंड हो आया था; और, अंग्रेज अितिहासकार बडे गर्व से बताते हैं, अंग्रेजों की शान और सामर्थ्य को अुसने अपनी आँखों देखा था, जिस से अुन के विरुद्ध मैदान लेने की हिम्मत वह न कर सका। क्या सचमुच, अंग्रेजों की शान तथा सामर्थ्य अितनी आतंकपूर्ण थी? जंग बहादुर अिंग्लैंड गया था तो नानासाहब के अजीमुल्ला तथा सातारे के रंगो बापूजी भी तो अिंग्लैंड हो आये थे! अिंग्लैंड की यात्रा का अुनपर क्या प्रभाव पडा और अिंग्लैंड की सामर्थ्य की अेक अेक बात देख कर अुसी सामर्थ्य

की धज्जियाँ अुडाने का कठोर निश्चय अुन्होंने कैसे किया, अिसकी साख अिति-हास ही तो देता है। अिंग्लैंड की यह सामर्थ्य भी जंगबहादुर की राष्ट्रद्रोही वृत्ति का मण्डन कैसे कर पायगा? अंग्रेजों के बल के प्रभाव से अजीमुल्ला और रंगो बापूजी के स्वदेशभक्त अंतःकरण में, मातृभूमि के मत्थे पर स्वाधीनता का मंगल तिलक लगा कर अुसे स्वतंत्र सम्राज्ञी-पद पर विराजमान करने की अुमंगें ही दुगने वेगसे अुमड आयीं; जहाँ अिधर अिंग्लैंड के बल से अिस राष्ट्रद्रोही काले नाग की चार आँखें होते ही मदारीने तुम्बडी से हलकी ध्वनि फूँकी—तुम अपनी मातृभूमि को हमारी लौंडी बनाने में सहायता करोगे तो और दो घूँटे दूध तुम्हें पिलाया जायगा।

और अिस हीन स्वार्थ को साधने के लिअे मातृभूमि का नीलाम करने पर अुतारू अुस जंगबहादुरने अंग्रेजों की सहायता के लिअे गोरखा सैनिकों को भेजा। १८५७ के अगस्त के प्रारंभ में काठमाडू से ३००० गोरखे अवध की पूरब में अजीमगढ और जौनपुर में अुतरे गोरखपुर के क्रांतिकारी नेता महम्मद हुसेन अुन के मुकाबले को खडा था। जब अंग्रेज दोआब में लड रहे थे, तब बेनी माधव, महम्मद हुसन, और राजा नादिरखाँ ने अपने बलसे बनारस के आसपास का प्रदेश तथा अयोध्या की पूरब का टापू पूरी तरह फिर से हथिया लिया था। अंग्रेज अवध की ओर ध्यान देने का समय निकाले अिस के पहले ही, गोरखोंने क्रांतिकारियों को अवध की ओर पीछे धकेल दिया था। और कुछ दिनों में जंगबहादुर और ब्रिटिशों के बीच मशविरा हुआ और तीन सेनाअें अवध पर चढाअी करने को सुसज्ज थीं। २३ दिसंबर १८५७ को ९००० गोरखाओं के साथ जंगबहादुर आगे बढा। जनरल फ्रँक्स तथा रोक्रॅफ्ट अेक अेक गोरी पलटन के साथ चढ आये। अिस तरह बनारस की अुत्तर में क्रांतिकारियों का सफाया करती हुअी ये तीनों सेनाअें अवध में घुसने लगीं। २५ फरवरी १८५८ के आसपास नैपाली तथा अंग्रेज घाघरा नदी पार कर अंबरपुर को चले। रास्ते में अेक जंगली अभेद्य दुर्ग था। अुसे छोड कर आगे बढना अंग्रेजों के लिअे खतरनाक था। तब गोरखों को अुस किले पर धावा बोलने की आज्ञा दी गयी। अैसी सुसज्ज सेना

से टकरा कर भी वह किला बना ही रहा। पाठक यह जानने को अुत्सुक होंगे कि अिस किले में मानवबल कितना था। यहाँ केवल चौंतीस लोगों का अेक दस्ता था। किन्तु स्वाधीनता के स्फूर्तिदायक ध्येयसे अभिभूत होने के कारण ही वे अितनी बड़ी सजी सेना से जूझने खड़े हो गये थे। गोरसे बहुत धीरज से लड़, किन्तु अुन के प्रतिपक्षी अुन से भी सौगुना धीरज से डटे रहे। स्वदेश भक्ति स्वदेशप्रहरियों से झूम रही थी। अेकापुरन अकथनीय भिड़न्त में शत्रु के सात आदमी मार डाले और ४२ घायल किये। स्वय अुन स ३३ लड़ते लड़ते मर गये और बचा अेक अन्ततक अपने स्थानपर डटा रहा और अुस की ल्हाश पर से होकर ही शत्रु किले में पग धरने पाया। दिल्ली और लखनअू भी जिस धीमडपन का परिचय न दे सके; अम्मरपुर अुस धीमडपन और धीरज से लड़ा। *

अम्मरपुर ले कर आसपास का प्रदेश अुजाड़ते हुअे गोरखों और अंग्रेजों की संयुक्त सेना आगे बढ रही थी और अुस के पीछे पीछे जनरल फ्रैंक्स भी सुलतानपुर के नजीम महम्मद हुसेन से तथा कमांडर बंदा हुसेन से सुलतानपुर, बदायूँ और अन्य स्थानों में मुठभेड़ें करते हुअे अूपर अवध की ओर बढ रहा था। अबतक की हारों से गयी साख को सँवार ने तथा पूर्वअवध में पुराने कालसे बने राजकीय दबाव को बनाय रखने के लिअे, लखनअू दरबार ने, जनरल फ्रैंक्स का सामना करने के लिअे वाजिदअली शाह के समय के तोपखाना–प्रमुख गफूर बेग को भेज दिया। किन्तु १ फरवरी को सुलतानपुर की लड़ाअी में जनरल फ्रैंक्स ने अुसे हरा दिया था और अंग्रेजों का मार्ग निष्कंटक हुआ।

और अब यह सारा सेना–संभार कैम्बेल की सहायता के लिअे लखनअू को जा रहा था। फ्रैंक्सने धौरारे के किले पर चढाअीकी किन्तु अपनी

* मॅलेसनकृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ४, पृ २२७

तोपें खोकर भी वहाँ के रक्षकों ने अपने जौहर दिखाये और फ्रँक्स को हार मान कर हटना पडा। अबतक अुसने कअी लडाअियाँ लडीं और सफल भी कर दिखायीं और अब के अिस अनचाही हार से भी अुस की कुछ बडी हानि न थी। किन्तु अुस समय अंग्रेजों के पक्ष में अनुशासन और नेतृत्व के दायित्व के विषय में अितना कडा ध्यान दिया जाता था कि, फ्रँक्स की अबतक की सफलता के बावजूद सर कॅम्बेल ने नयी महत्त्वपूर्ण चढाअी की योजना में कमांडरों की तालिका से अुस का नाम हटा दिया!

अब लखनअू पर चढ आनेवाली ब्रिटिश सेना के भिन्न भिन्न विभाग अेक दूसरे के पास आ रहे थे। कॅम्बेल की विशाल सेना कानपुर से पश्चिम के रास्ते आ रही थी, जहाँ फ्रँक्स और जंगबहादुर की सेनाअें पूरब से बढ रही थीं। ११ मार्च के पहले ही दोनों सेनाअें मिलीं और अुस 'अपराधी' लखनअू की धज्जियाँ अुडाने को आगे बढीं।

'अपराधी'! हाँ, अपराधी, और अभागा भी! अपनी और परायों की तलवारों के वार होते हुअे भी अुस लखनअू ने क्या सिद्धता की थी? गत वर्ष के नवंबर से—जब कॅम्बेल तात्या को हराने कानपुर दौड गया था—ठेठ मार्च तक हरअेक व्यक्ति प्राणपन से लखनअू के रक्षार्थ तथा शत्रुसंहार के लिअे कटिबद्ध हुआ था। लखनअूमें गर्व से लहरानेवाले स्वतन्त्रता—झण्डे के नीचे राजा से रॅक तक हर अेक, जान हथेली में लेकर लड रहा था। वहाँ कअी राजा और जमींदार अैसे थे, जिनकी, अंग्रेजी आक्रमण नीति के कारण व्यक्तिगत, कुछ खास हानि न हुअी थी। वरन्‌ कुछ लोगों की तो पाँचों घी में थीं।

किन्तु, राष्ट्र के लिअे जो हानिकर होता है, वह अन्तमें व्यक्ति को कभी लाभकारी नहीं हो सकता, यह महान्‌ सिद्धान्त; व्यक्तिगत स्वार्थ के लिअे स्वदेश के प्रति अपने कर्तव्य को भूल न जाने का दृढ निश्चय; जान जाय पर आनपर आँच न आयवाला राजपूती बाना, और बिना स्वतन्त्रता के, आत्माभिमान, मनुष्यत्व, सभ्यता आदि महान्‌ गुण

कभी नहीं टिक सकते, अिस त्रिकालाबाधित सत्य की प्रतीति—अिन सब भव्य और अुदात्त सिद्धान्तों का भान अुस समय के लखनऊ के जमींदारों तथा धनिकों को हुआ था।

ये जमींदार केवल अंग्रेजों के लादे मालगुजारी—कर के कारण असंतुष्ट होने से *नहीं भडक अुठे थे। स्वदेश को परायों का पापी स्पर्श होते ही* से अुन का क्रोध भडक अुठा था। यह केवल हमारा ही मत नहीं, अुस समय के गवर्नर जनरल की भी यही सम्मति है; आगे का अुद्धरण अिस का प्रमाण है।

"तुम सोचते हो कि अवध के राजा और जमींदार केवल अिस लिअे बागी बने कि हमारी मालगुजारी की नयी पद्धति से अुन्हे व्यक्तिगत हानि अुठानी पडी। किन्तु गवर्नर जनरल का मत है, कि अिस बातपर गौर करना चाहिये। चांदा, धोर्मिआ और गोंडा के राजाओंसे बढकर किसी ने कमाल का द्वेष न दिखाया होगा। चांदा नरेश का अेक भी गाँव नहीं छीना गया था; अुल्टे अुसके खिराज को कम कर दिया था। धोर्मिआ के साथ भी अुदारता से बरताव किया गया था। गोंडा के ४०० गाँवों से केवल तीन जब्त किये गये थे और अुस के बदले में १० हजार रुपये कर कम कर दिया था।

अवध के नबाब के स्थान पर अंग्रेजों का शासन आनेसे मौपाडे के युवक राजा को तो सब से अधिक लाभ पहुँचा था। हमारे शासन सम्हालते ही अुसे सहस्र गाँव दिये गये और अन्य सब के हकों को मार कर अुसकी माता को अुसकी पालनकर्त्री बना दी गयी थी। किन्तु शुरू ही से अुसकी सेना लखनऊ में हमारे साथ लड रही है। धूप के राजा का भी हमारे शासन से काफी लाभ हुआ है, किन्तु अुसी के लोगों ने कॅप्टन हुअे पर हमला कर अुस की स्त्री को गिरफ्तार किया और लखनऊ के जेल में बंदी बनाया।"

"अमफ बख्स खाँ—नवाबने अिस तालुकदार को बहुत सताया था—को तात्काल अुसके राज्य का संपूर्ण स्वामी बना दिया गया था। किन्तु विद्रोह के प्रारंभ से अुस को हमारे प्रति द्वेष अनहद था। अिन सब मामलों से स्पष्ट है

कि ये जमींदार और राजा हमारे विरुद्ध अुठने का कारण केवल अुनकी व्यक्तिगत हानि नहीं हो सकता। ×

और अिसी से अितिहासकार होम्सने स्पष्टतया मान्य किया है, कि जिन राजाओं तथा जमींदारोंने अिस स्वातंत्र्य-समर को छेडा और निबाहा, वे व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा अधिक अुदात्त सिद्धान्तों से अभिभूत थे। "अैसे कअी राजा और मामूली जमींदार थे, जो किसी ठोस शिकायत के बिना ही सरकार के नियंत्रण के विरुद्ध अुबल पडते थ, अिस की हस्ती ही अुन्हे याद दिलाती रहती कि वे अेक जित राष्ट्र के निवासी हैं ... .. जो विदेशी सरकार अुन लाखों प्रजाजनों पर चढ बैठी थी अुसके लिअे तनिक भी निष्ठा अुनके मनमें न थी। विद्रोह के समय में हिंदी जनता के बरताव का मूल्य-मापन करनेमें अेक बात कभी न भूलनी चाहिये कि हमारे जैसे विदेशी शासकों के प्रति सहानुभूति होना मानवी स्वभाव के विरुद्ध होता। सच्ची निष्ठा तो देशभक्ति के साथ सम-जीवी हो सकती है। जो लोग हमारा शासन लाभकारी मानते थे वे, या तो, हमारी सहायता करते, या चुप रहते। किन्तु अुनमें भी अैसा अेक भी मानव न था जो, यदि अुसे विश्वास हो जानेपर कि अंग्रेजी शासन अुखाडा जा सकता है, हमारे विरुद्ध खडा न हो जाता।"*

विदेशी शासन के नाम से ही जिनका खून खौलने लगता था और अपने सर्वस्व को तिलांजलि दे कर जो स्वराज का झण्डा अूँचा रखने के लिअे रण में कूद पडे थे, अुन राजा महाराजाओं, जमींदारों तथा तालुकदारों में अैसा अेक व्यक्ति था जो श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ होते हुअे भी लखनअू के पूजनीय सिंहासन की रक्षा के हेतु सब से पहले समरांगण में अुतरा था। यह असाधारण व्यक्ति बिजली के वेगसे गत चार महीनों से समरागण में तथा कौन्सिल-हॉल में अेक सा सक्रिय चमक रहा था।

× सर जेम्स आअुटराम के पत्रके जवाबमें लॉर्ड कॅनिग का पत्र.

* होम्स कृत सिपॉय वॉर.

पाठक; यह महान् व्यक्ति था, फैजाबाद का देशभक्त वीर मौलवी अहमदशाह । क्रांतियुद्ध की जलती मशाल हाथ में लेकर जब वह सारा प्रदेश प्रज्वलित कर रहा था, तब लखनऊ के गोरोंने उसे पकड कर उसे फाँसी का दण्ड सुनाया था। उसे फाँसी बारिक में फैजाबाद के जेल में रखा गया था। १८५७ के तूफान ने उसे वहाँ से उठाकर नेतृत्व के सिंहासन पर बिठा दिया! यह राष्ट्रवीर मौलवी अहमदशाह स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिये मैदान में उतरा था। राजसभा की वक्तृता से वह अपने हजारों देश वासियों को मंत्रमुग्ध कर देता, जहाँ समरांगण में उसकी वीरता की प्रशंसा उसके मित्रों तथा शत्रुओं के भी मुख से निकलती थी।

जब कॅम्बेल तात्या को शासन करने के लिये जा रहा था, तब उसने ४००० सेना के साथ आउटराम को आलमबाग में रखा था। तब से शत्रुसेना की दुर्बलता से लाभ उठाने के लिये दिनरात अहमदशाह चेष्टा कर रहा था। इस के पहले कई बार नानासाहब के मोड-फिराव तथा कूटनीति से लखनऊ की रक्षा हुई थी। लखनऊ में पडी यह अंग्रेजी सेना पांडों के चंगुल में फँस गयी थी। लखनऊ पर चढाई करने के लिये अंग्रेजी सेना तयार हुई थी, तब नानासाहब ने कानपुर पर चढाई कर दोआबमें लौट आने पर उसे मजबूर किया था। किन्तु इस चाल से लखनऊने निश्चयपूर्वक लाभ न उठाया। इसबार तात्या टोपे की क्षमतासे प्राप्त अवसर से पूरा लाभ उठाने की अहमदशाह ने ठानी। शासनसूत्र यद्यपि अवध की बेगम के हाथ में था, फिर भी क्रांतिकारियों, राजा महाराजाओं को संगठित करने में उसके अच्छे प्रयत्नों से भी सफलता न मिली। आपसी चढाऊपरी तथा असावधानता के कारण मुठ्ठीभर अंग्रेजोंपर जोरदार हमला कर उनका सफाया करने के कई अवसर हाथसे निकल गये थे। दिल्ली तथा कानपुर का पतन हुआ; फतहपुर की यही दशा हुई और आसपास के प्रदेशों से हारे हुए, हजारों क्रांतिकारी लखनऊ में जमा थे। किन्तु अवध में उपयुक्त होने के बदले अपने अधिकारियों की आज्ञाओं का पालन करने में वे टालमटूल करते थे। और अब तो यह डर पैदा हुआ था, कि विजयोन्माद से फूले हुए तथा नये आनेवाले

सैनिकों से पुष्ट बने गोरों की यह अन्तिम आक्रमण की लहर सब को डुबो देगी। किन्तु मौलवी ने निराशा के घटाटोप अंधःकार को चीर कर आशा की अूषा के दर्शन करवाये। अपनी अमोघ वक्तृता तथा प्रभावी व्यक्तित्व से अुसने अनगिनत हिंदी भाअियों के हृदय में देशभक्ति की लगन पैदा की। अुसने जनता को जँचा दिया कि अेक मन तथा दृढ निश्चय से डट कर, आक्रमण का जवाब आक्रमण से दें, तो अबभी अंग्रेजों के पिटने की पूरी सम्भावना है। सारे दोआब में अपने आत्मविश्वास को सेना में सचार कर अनुशासन तथा नियमबद्धता पैदा की; जिसमें अुसे कअी विपत्तियों का सामना करना पडा। दरबार में अहमदशाह की जो प्रतिष्ठा बढ रही थी अुसे देख न सकने से कुछ अकर्मण्य लोगों ने अुसे कारागार में बद कर दिया। किन्तु बेगम से मौलवी का प्रभाव सेनापर अधिक होने से तथा दिल्ली की सेना का अहमदशाह पर नितांत विश्वास होने से, बेगम को मौलवी को मुक्त करना पडा। जब अुससे युद्ध की स्थिति पर सम्मति पूछी गयी तब अुसने कहा—'बढिया अवसर हाथ से चला गया। सब ओर ढीलापन देख रहा हूँ; अब केवल अपना कर्तव्य पालन करनेभर को लडना है!"

कभी कभी मौलवी स्वयं सेना का नेतृत्व करता! जब देशी सेना आलमबागपर चढ जाती तब मौलवी सब के आगे चमकता दिखायी पडता! दिसबर २२ को अुसने चकमा देकर अुन्हे आलमबाग में बद कर देने का अेक कुशल दॉव रचा था। अंग्रेजों को झॉसा दे कर वह अपनी सेना के साथ कानपुर के रास्ते चल पडा। निश्चय यह हुआ था, कि मौलवी अंग्रेजों की पिछाडीपर पहुँचते ही क्रांतिकारी आगे से आलमबागवालों पर हमला करें। यह दॉव अवश्य अेक महत्त्वपूर्ण सूझ थी और वह सफल हो भी जाता. किन्तु आलमबाग के सैनिकों में सहयोग न होने से सब बेकार हुआ। वहॉ का कमाडर अपने अनुयायियों में मामूली अनुशासन को रख न सका। हर अेक अपनी मर्जी से चलने लगा और पहले ही झटके में चढाअी करने के बदले पीठ दिखा कर सबःभाग गये। मौलवी की तनतोड चेष्टा बेकार गयी। क्रांतिकारी हार गये।

तोभी अंग्रेजी सेना का पीछा मौलवीने नहीं छोड़ा। जनवरी १५ को, क्रांतिकारियों को पता चला, कि आलमबाग की सेना को रसद पहुँचाने को कानपुर से कुछ अंग्रेजी दस्ते चल पड़े हैं। चर्चा शुरू हुआी कि अिस रसद को रास्ते ही में कैसे मारा जाय। किन्तु कोअी निर्णय न हो सका। निदान मौलवीने बीड़ा अुठाया, 'शत्रु की रसद लूटकर मैं ब्रिटिश सेना को चीर कर सीधा लखनऊ पहुँच जाअूँगा।' दृढनिश्चय से वह चला; अपनी हलचलों की शत्रु को तनिक भी खबर न मिले अितनी गुप्तता से, कुछ लोगों के साथ वह कानपुर की ओर चला। किन्तु आलमबाग के हिंदी गुप्तचरोंने अिस बात का सुराग अुसे दे दिया; सो, अुसने कुछ दस्ते मौलवी की खबर लेने को भेज दिये। अपने साथियों को स्फूर्ति देने के लिये अिन दस्तों से मुठभेड़ हुआी तब वह सब के आगे रहा और बड़ी वीरता से लड़ा। घमासान में अुस की पीठ में गोली लगी और वह लड़खड़ा कर गिर पड़ा। बहुत दिनों से अंग्रेज अुसे पकड़ने की ताक में थे; किन्तु क्रांतिकारियों ने फुर्ती से अुसे डोली में रखा और लखनऊ ले आये। अुस के घायल होने के समाचार से हर अेक का मुख सूख गया। फिर भी, मौलवी का शुरू किया हुआ काम पूरा करना ही अुस वीरके लिये कृतज्ञता तथा आदर प्रकट करना है, यह जानकर पलभर भी न ठहरते हुअे जनवरी १७ को विद्रोही हनुमान नामक अेक ब्राह्मण वीरने अंग्रेजी सेना पर जोरदार हमला किया। सबेरे १० बजे से शाम के ६ बजे तक यह सूरमा हरावल में लड़ता रहा। किन्तु दुर्भाग्य से वह घायल होकर गिरफ्तार हुआ। विद्रोहियों में गड़बड़ी पड़ी और व भागने लगे। अिस हार से क्रांतिकारी सेना में आपसी मनमुटाव हुआ। नादान सिपाहियों ने लड़ने के पहले वेतन पाने का हठ किया। अिन को पेशगी वेतन दिया जा चुका था वे भी मैदान में जाने के पहले और वैसे माँगन लगे। फिर भी अुस वृद्ध, साहसी और सुयोग्य बेगम ने अिस सब अव्यवस्था में भी राजप्रबन्ध जारी रखा था। और यही था अुसके असाधारण मनोधैर्य का प्रमाण * सेर। अपयशों का अिस तरह ताँता लगा

* रसेल की डायरी का अुद्धरण अिस विषय में बड़ा रोचक है, संदर्भ ४९ पढ़िये।

था और अुसी में बेगम के अर्थ मन्त्री राजा बालकृष्णसिंह चल बसे किन्तु अितनी बडी और असख्य विपत्तियों से भी यह बेगम पस्तहिम्मत न हुअी। क्यों कि, अंग्रेजों के वहाँ रहने से मौत को अधिक पसंद करनेवाले सूरमाओं की अुसके पास कभी न थी,वे प्रतिदिन जमा होते और अंग्रेजों से बार बार टकराते। अिन्ही वीरों में मौलवी अहमदशाह अेक था। अुसकी चोट पूरी तरह ठीक भी न हो पायी थी, कि १५ फरवरी में वह फिर मैदानमें कूद पडा। कम्बेल के कानपुर से पहुँचने के पहले आअुटराम का सफाया करनेपर वह तुला हुआ था। किन्तु विद्रोही सैनिकों में कायरता का रोग दिन दिन हदसे अधिक बढने लगा था; जिससे मौलवी का साहस अुस दिन भी व्यर्थ हुआ और क्रांतिकारियों की हार हुअी। फिर भी मौलवीने झगडा जारी रखा था। अिस वीर की शूरता से थकित होकर अितिहासकार होम्स अपने ग्रंथ में लिखता है, " यद्यपि बहुसख्य क्रांतिकारी कायर थे, अुनका नेता अवश्य अपनी निष्ठा तथा कर्तृत्व से अपने ध्येय के लिअे अनथक चेष्टा करने और सेनानी का काम सम्हालने को सर्वथा सुयोग्य था। और यह नेता था अहमदशाह; फैजाबाद का मौलवी*। हार जीत की परवाह न करते हुअे अपने कर्तव्यपथ पर चलने के सिद्धान्त से अभिभूत सभी, वीरता के साथ लडते थ। ६० वीं पलटन के सूबेदारने आलम बागसे अंग्रेजों को आठ दिन के अंदर भगा देने की प्रतिज्ञा की और अपनी पूरी सामर्थ्य से वह झूझता रहा। अेक दिन बेगम स्वयं सब सेना के साथ मैदान में आ गयी थी। किन्तु, अभागे लखनअू के भाग में विजय न बदी थी। और हो भी कैसे ? **विजय, कुशलता और क्षमता की दासी है,** क्रांतिकारी यदि अुस क्षमता का परिचय देते, तो विजय अुन के चरणों में होती।

निदान कम्बेल आलमबागवाली सेना में जा पहुँचा। अंग्रेजोंने लखनअू जीतने के लिअे कोअी अुपाय अुठा न रखा था। किन्तु अुनके लगातार हमलों से बाज न आकर, स्वराज्य के झण्डे के नीचे लखनअू अब तक मानपूर्वक

---

* होम्सकृत सीपॉय वॉर.

लड़ा था। अंग्रेजों ने अपनी पूरी शक्ति यहाँ केन्द्रित की थी, जिस से क्रांतिकारियों को भी डट कर सामना करने का प्रबंध करना पड़ा। अवध के सभी सूरमा यहाँ जमा हुअे थे। देहातों तथा खेतों खलिहानों में स्वदेशाभिमानी किसान अिस कठोर निर्धार से लड़े थे—'या फिरंगियों को मार भगाअेंगे या स्वयं अिस प्रयत्न में समाप्त हो जायेंगे।' चार्ल्स बॉल कहता है—"मधु-मक्खियों के झुण्डों क समा प्रांतभर से आपारों और स्वयंसेवकों के झुण्ड सशस्त्र होकर फिरंगियों से होनेवाली आखिरी कशमकश में झपट कर मरने के लिअे लखनऊ आ रहे थे।+

अस समय ३० सहस्र सिपाही और ५० सहस्र स्वयंसैनिक केवल लखनऊ में जमा हुअे थे। जो क्रांतियुद्ध की शपथ से बँधे हुअे थे, जिन्हों ने 'चपाती' खायी थी, जिन्हों ने 'रक्त कमल' की सुगंध ली थी, सभी वे जो मिले अुन शस्त्रों से लैस होकर, अपने देश और राजा के लिअे प्राणपन से लड़ने को लखनऊ में जमा थे। कम से कम ८०,००० स्वयंसैनिक वहाँ होंगे।* हर मार्ग, हर गली में खाअियाँ बनायी गयीं, ब्रुर्जियाँ खड़ी की गयीं। घर घर की तथा पुल की दीवारों में बंदूकों के छेद बनाये गये थे। दीवारों पर हर मोर्चेपर कट्टर क्रांतिकारियों के पहरे लगे थे। पूरब की ओर गौतमी नदी से नहरें खोदीं गयीं और अुनपर तोपों के पहरे लगाये गये। दिलखुश बाग से ठेठ केसरबाग तक तीन कतारों में पुलबन्दी

+ चार्ल्स बॉल कृत अिंडियन म्युटिनी खण्ड २, पृ २४१

* क्रांतिकारियों की संख्या के बारे में कल्पना शक्ति पर ही कैसे जोर दिया जाता था अिस के नमूने देखिये। सर होप ग्रैंट का कहना है—३० हजार सैनिक तथा ५० हजार स्वयंसैनिक थे। मैलेसन अेक लाख २१ हजार गिनाता है और प्रधान सेनापति कॅम्बेल के साथ होनेवाला सिविल कमिशनर दो लाख की हामी भरता है—अिस गड़बड़-घोटाले को देख बेचारा होम्स चुप हो गया।

बनी थी। स्वय राजप्रासाद् भी सशस्त्र सैनिकों तथा बडी बडी तोपों से लैस था। मतलब, अुत्तर दिशा को छोड सभी ओर क्रांतिकारियों ने लखनअू की रक्षा की सराहनीय सिद्धता कर रखी थी।

कॅम्बेलने, उत्तर की असुरक्षितता भॉप कर ठीक अुसी ओर चढाअी शुरू की। अबतक हॅवलॉक, आअुटराम या कॅम्बेल किसीने अुत्तर से चढाअी न की थी, और यहॉ गौतमी नदी होने से क्रातिकारियों ने भी विशेष प्रबन्ध न किया। संरक्षण–योजना की अिस कच्ची कडी से आअुटराम ने पूरेपूर लाभ लिया। सो, अुत्तर से हमला करने से और वहॉ प्रतिकार ढीला हो जाने से क्रातिकारियों को हर मोर्चेपर हार खानी पडी। ६ मार्च को ब्रिटिशोंने चढाअी का प्रारंभ किया। कॅम्बेल की सेना ३० हजार तक बढ गयी थी, जिस से अुत्तर और पूरब दोनों ओर वह चढाअी कर सका। कॅम्बेलने अपने व्यूह की रचना अैसी की थी, जिस से लखनअू से अेक भी क्रांतिकारी जीवित न जा सके। अनपेक्षित ओर से चढाअी होनेसे क्रांतिकारियों की सभी योजनाअें कट गयीं, तोभी ६ से १५ मार्च तक अुन्होंने डट कर युद्ध किया। अिस अभागे लखनअू में सालभर यह तीसरी बार रक्त की नदियॉ बही थी। दिलखुशबाग, कदम रसूल, शाहनजीफ, बेगम कोठी तथा अन्य स्थानोंपर, अेक के बाद अेक हमले करते हुअे ब्रिटिश सैनिक आगे घुस रहे थे। दिनांक १० को क्रांतिकारियों की गोलीसे हडसन मारा गया–वही हडसन, जिसने शरण आये दिल्ली के निरपराध और निःशस्त्र राजपुत्रों को जानबूझ कर क्रूरता से कत्ल किया था। अिस पापी हत्यारे को मारकर लखनअूने दिल्ली का प्रतिशोध लिया। दि. १४ को अंग्रेज सेना ठेठ राजमहल में घुसी। मॅलेसन् अुनकी अिस विजय के विवरणमें यों कहता है:–अिस करारी तथा अपूर्व हार का यश तो खास कर सिक्खों तथा १० वीं पैदल पलटन की ही करतूत है।"

किन्तु केसरबाग की अपूर्व विजय से फूल जाने पर भी कॅम्बेल को आअुटराम की ओर से जो समाचार मिले, अुन से बडा दुख हुआ। क्यों कि, भले ही लखनौ का पतन हुआ–किन्तु सहस्रावधि क्रातिकारी न शरण आये, युद्ध भी अुन्होंने न रोका। किन्तु अुलटे, अपने राजा तथा अुपजाअू मस्तिष्क

वाली बेगम के साथ घेरनेवाली अंग्रेज सेना का व्यूह तोड़ कर वे कब के छटक गये थे।

जब अंग्रेज ठंडे दिल से लखनऊ में लूटमार कर रहे थे, तब वह मानी मौलवी लखनऊ में घुसा दिखायी पड़ा। लखनऊ का पतन और अंग्रेजी संगीनों का ताण्डव होने की कल्पनाही अुसे विष के समान घणित मालूम होती थी। सो, अुसने अपने शिबिर से लखनऊ नगर में घुसने की चढ़ाई शुरू की। अपने राजा के अपमान से चिढ़ कर, जान हथेली में लिये, स्वदेशभक्ति से पागल यह मौलवी अहमदशाह शहादतगंज में डट गया। जिस से अितिहास को लिखना पड़ेगा—'लखनऊ जूझते हुअे पड़ा।' अिसुने सारे नगर पर कब्जा जमा लिया था। फिर भी मौलवी भी–भअिनी के रोम में चिपकने के समान–लखनऊ में रहा; जब सब क्रांतिकारी सेना लखनऊ से निकल गयी थी और जब अंग्रेज पल्टनें वहाँ आतंक ढा रही थीं, तब निराशा के बल से जूझते हुअे यह अहमदशाह वहाँ डटा था।

मॅलेसन कहता है —'शहर में भी कुछ काम बाकी था; वह अनहद हठीला विद्रोही-नेता मौलवी फिर लखनऊ आया था; और ठीक अुस के मध्य में, शहादतगंज में, दो तोपें और पूरीतरह किलाबन्दी की हुअी अेक अिमारत लेकर अंग्रेजों को ललकारता हुआ वह खड़ा था। लखनऊ की चढ़ाअी के पहले ही दिन बेगमकोठी को जीतनेवाली पल्टन के बचे लोगों के साथ लुगार्ड को, दि २१ को, अुस मौलवी को भगाने के लिअे भेजा गया। अुस के साथ ९३ वीं हाअिलँडर और चौथी पंजाबी राअिफल पल्टनें थी। आम के समान धीमरपन और निर्धार का परिचय अिस के पहले बागियोंने कभी न दिया था। अुन्होंने बड़ी वीरता से मुकाबला किया और हमारे कअी लोगों को मारने तथा कअियों को घायल करने पर ही अुन की हार हुअी।" *

बस; यह लखनऊ की अन्तिम लड़ाअी थी!

---

* के ॲन्ड मॅलेसन कृत अिंडियन म्युटिनी खण्ड ४, पृ २८९.

क्यों कि, क्रांतिकारी अिस अिमारत से कब के चले गये थे। तब भी छः मीलों तक अंग्रेज अुनका पीछा करते रहे ओर तब भी मौलवी अुन्हें झाँसा देकर छटक गया।

अब लखनअू पूरी तरह अंग्रेजों के हाथ आ गया। अिस बार अंग्रेजों ने लखनअू पर प्रतिशोध की आग बरसायी; अुस का विवरण देने के लिअे लेखक को अपनी लेखनी की लहू को स्याही में डूबो कर ही लिखना पडेगा! अंग्रेजों ने अिस नगर तथा राजमहल में कैसी लूटमार की, नागरिकों की सामूहिक हत्याअें कैसे कीं, लाशों का विडंबन कैसे किया, यह अेक लम्बा चौडा और शोकपूर्ण करुण किस्सा है। रसेल जैसे लोगों ने लिखे पैशाचिक अत्याचारों के वर्णन, वे अंग्रेजों के लिखे हुअे हैं यह किंचित् न भुलते हुअे भी, पढकर लखनअू से अंग्रेजों ने कैसा भयंकर बदला लिया होगा अिसका कुछ अंदाजा लग सकता है। क्रातिकारियोंने अबतक और आगे भी, क्या सराहनीय सयम रखा था! हिंदी और अंग्रेजी प्रतिशोध में आकाश पाताल का कैसे अंतर होता है अिसकी प्रतीति पाठकों को, आगे दो अंग्रेज लेखों के अुद्धरण पढ कर, हो सकती है।

"लखनअूकी बादिशाला में कअी अंग्रेज स्त्रियाँ तथा अधिकारी थे। छ. महीनोंतक रहते हुअे भी अुनका बालतक बाँका न हुआ। किन्तु अिधर छोटा —बडा, सज्जन—दुर्जन किसी का खयाल न करते हुअे कॉलिन के गोरे दस्तोंने जब सामूहिक हत्याअें करते हुअे शहर में प्रवेश किया तब अुत्तेजित क्रातिकारी राजमहल की ओर गये और बेगमसाहिबासे अनुज्ञा माँगी कि कुछ गोरे बंदियोंसे बदला लिया जाय। श्री. ओर्र, सर माअुंट स्टुअर्ट और अन्य पांच छः गोरों को क्रातिकारियों के सुपुर्द किया गया तब अुन्हें वहींपर गोलियों से खतम कर दिया गया; किन्तु स्त्री—बंदियों की माँग जब की गयी, तब बेगम ने स्त्री जाति की प्रतिष्ठा के नामपर साफ अिनकार किया और सभी मेमों को अपने जनाने में ला रखकर अुनकी जानें बचायीं।" *

* चार्लस बॉल कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड २, पृ. ९४.

अब अंग्रेजी मतिसोध के अेक दो अुदाहरण सभ्यता की मात्रा की तुलना के हेतु पाठकों के सम्मुख रखते हैं। "रामभहलमें जब हत्याकाण्डने तूल पकड़ा, तब अेक बालक अेक बूढ को ले जा रहा था। अुस बूढेने गोरे अफसर के पास आ कर जान बचाने की याचना की। अिस दीन याचना का जवाब क्या मिला? अुस अफसरने सीधे अपनी पिस्तौल अुठायी और अुस बूढे की कनपटीपर चला दी! फिर अेक बार निशाना ताका, किन्तु वह चूक गया। फिर अेक बार गोली चलायी, किन्तु अुस गोली ने अुस निष्पाप बालकीहत्या करने से मुँह मोड लिया! हाँ चौथी बार, अुस वीर को जश मिला और अुस के पाँव के पास खून से लथपथ वह बालक गिरकर मर गया।" * संसार को यह प्रसंग अिस लिये मालूम हुआ कि अुसे देखकर लिखनेवाला कोअी वहाँ मौजूद था। अैसे कअी प्रसंग हैं कि जिनको देखने और लिखनेवाला कोअी नहीं था। ये क्रूर अत्याचार अितने असंख्य हैं, कि 'क्रूर हत्या' और 'दया पूर्ण हत्या' की श्रेणी बनाने की बारी आयी थी। अुपयुक्त हत्या बहुत कुछ 'दयापूर्ण' थी। बूढे और बालक का निर्दय खून भी अिस भयंकर हत्या के सामने 'दयापूर्ण' बन जाता है अुसका रूप साधारण तया यों था —" अब भी कुछ सिपाही जीवित थे, अुनको मार डालने की दया दिखायी गयी! किन्तु अुनमें से अेक को घर के बाहर रेतीले मैदान में घसीट लाया गया। वहाँ गोरे अुसे जलाने के लिये अींधन लाने गये थे। जब चिता तैयार हुअी तब अुस अधमरे सिपाही को अुसमें भुना गया। यह सब काम 'गोरे' ही कर रहे थे; और अुनका अेक अधिकारी भी यह सब कुछ देख रहा था; किसीने अुन्हे रोका नहीं। खैर; जब वह अभागा, अधजला सिपाही चिता से बाहर लड़खड़ाया तब अुस पैशाचिक क्रूरता ने कमाल कर दी। जब वह चिता से अलग हुआ तब भुने माँस की बोटियाँ खुली पड़ी हड्डी से लटक रही थीं, फिर भी वह कुछ दूरी पर भागा! तब

---

* रसेल की डायरी पृ १४८

अुसे सगीनों से अुठा कर चिता में डालकर अुसके सब अवशेष भुने गये।" *

दिल्ली जीता गया, लखनौ जीता गया, किन्तु क्रान्तियुद्ध का जोर धीमा न पडा। अिस अचिन्तित स्थिति को देख कर अंग्रेजों को विश्वास हुआ कि, यह विप्लव सिपाहियों ने किया और वह भी अेक दो असतोष के कारण थे, अैसा मानने में वे बडी भारी भूल कर रहे थे। यह 'बलवा,' 'विद्रोह' नहीं था, स्वाधीनता के लिअे ठाना हुआ युद्ध था। अेकाध असंतोष के आधारपर यह अुत्थान न हुआ था, असीम दुखों को पैदा करनेवाली राजकीय पराधीनता ही अिसकी जड में थी। अिस युद्ध की जड में क्षुद्र व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था; स्वतत्रता की पवित्र ज्योति, स्वदेश और स्वधर्म की महनीय ध्येय-भावनाही अुसकी जड में धधक रही थी। स्वाधीनता के पवित्र आदर्श ही को अपना स्वार्थ बनानेवाले सिपाही ही केवल अपना खून बहाने को अुत्सुक नहीं थे, वरंच मध्यम श्रेणी के लोग तथा देहाती जनता भी अिस अुत्थान में मुख्यतः शामिल हुअे थे। यदि अैसा न होता तो यह बल, यह निर्धार, यह निःस्वार्थता, यह साहस कभी प्रकट न होता। क्यों कि, अिसी समय, लॉर्ड कॅनिंगने ढिंढोरा पीटा था-" जो भी अब अिस विद्रोह में शामील होंगे अुनकी सब माल-मताअें तथा जमीनें जप्त की जायँगी और जो शरण लेंगे अुन्हे मुआफ कर दिया जायगा।" अिस घोषणा के बाद भी क्रातिकारियों ने हथियार नहीं डाले। लखनअू का पतन हुआ तो भी अवधने युद्ध जारी रखा था। सिपाही, बनिया, ब्राह्मण, मौलवी, राजा, जमींदार, तालुकदार, गॉववाले किसान अवध का हर सपूत अिसमें शामिल था। डॉ. डफ अिस प्रचण्ड अुत्थान के बारे में लिखता है:-यदि यह विद्रोह, बहुसख्य जनता की सहानुभूति या सहयोग न होता और केवल सैनिकों का बलवा होता तो, पहली दो चार बडी विजयोंसे अुस बलवे को कुचल दिया जाता और मामला ठंढा हो जाता। परन्तु बिलकुल अुलटी बनी। विद्रोह धीमा पडने के बदले और ही भडक अुठा और अुस का क्षेत्र भी बढता दिखायी दिया। और अब तो अुस का रूप अुग्रना लिअे हुअे है।

* रसेल की डायरी पृ. ३०२.

मालूम होता है, यह सैनिकों का मामूली बलवा नहीं, यह विप्लव है, क्रांति का अुत्यान है। यही कारण, है कि हमें अुसे दबाने में बहुत थोड़ा यश मिला है और, मालूम होता है, कि यह जल्द शांत नहीं होगा। आये दिन के अनुभव से अब यह स्पष्ट होता जाता है कि यह 'बलवा' अेका अेक खड़ा नहीं हुआ है। दिनोंदिन जिस के और प्रमाण मिलते जाते हैं। यह 'बलवा' दीर्घकालिक तथा सोच समझ कर रचा हुआ है, जिस में हिंदु मुसलमानों का अस्वाभाविक मेल होकर वे कंधेसे कंधा भिड़ाकर शामिल हुअे हैं, अवध की सारी जनता ने जिसे खुल्लमखुल्ला अपनाया और पोसा है और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे आसपास के लगभग आधे से अधिक प्रांतोंने अपने आशीर्वाद दिये हैं और सहायता भी की है—अैसे 'बलवे' को, छोटी और सराहनीय कुछ विजयों से, जो बागी सिपाहियों पर मिली हों, दबाना असम्भव है।"

"प्रारंभ ही से यह बलवा धीरे धीरे विप्लव का रूप धारण करता आ रहा है—सैनिकों के अलावा सर्वसाधारण असंख्य जनता का यह विद्रोह अंग्रेजी सत्ता और शासन के विरुद्ध है। हमारी सच्ची लड़ाअी केवल बागी सिपाहियों से नहीं थी और अब तो लगभग नहीं के बराबर है। केवल सिपाही हमारे सामने शत्रु होते तो देश में कब की शान्ति हो गयी होती।'

'जहाँ जहाँ भिड़न्ते हुअीं वहाँ वहाँ अपने शत्रुको तितर बितर कर और अुस की तोपें छीन कर ही भगाया है। किन्तु, बारबार पिटने पर भी वह फिर से संगठित हो कर सामने खड़ा हो ललकारता है। जिधर कोअी शहर जीता या मुक्त किया नहीं कि दूसरे नगर को खतरा खड़ा हो जाता है। गोरे सैनिकों की बाड़से अेक जिला सुरक्षित होने की बात प्रकट करते हैं तो दूसरे जिले में अशान्ति और बलवा शुरू होता है। मोर्चे के स्थानोंमें यातायात प्रबन्ध होते ही फिर अुसे बन्द कर देना पड़ता है और कुछ समय के लिअे तो किसी तरह का संबंध ही नहीं रहता, अेक बस्तीसे बागियों को भगाया नहीं, और दूसरी बस्तीमें दुगनी तिगनी संख्या में वे

जमा हुअे नहीं। हमारे गश्ती जत्थे शत्रुओं की सफों को चीर कर निकल जाते है, तो पीछे छोडा हुआ प्रदेश ये बागी कब्जा कर लेते है। शत्रु की सख्या की कमी तुरन्त पूर जाती दिखायी पडती है और कहीं भी हमने पूरा सफाया किया हुआ दिखायी नहीं पडता, न डर ही पैदा होता दीख पडता है।×

डॉ. डफ ने सच्ची स्थिति बतानेवाला जो सत्यकथन किया है, अुसका भान अंग्रेजों को लगभग अन्त में हुआ। किन्तु हर अेक 'पांडे' अपने ध्येय को आरंभ से पहचानता था। अपना राज और देश के लिअे जो खेत रहे वे तो अिन बातों को घोषित करते ही थे, अुन की स्त्रियों ने भी वैसा ही निर्धार बताया। कुछ 'शूर' अंग्रेजों ने लखनअू के जनानखानेपर धावा बोला तब कुछ स्त्रियाँ अुनके हाथ लगीं। दरवाजे तोड कर अंदर घुसने पर भी गोरे सैनिकों ने वहाँ बदूकों की बाढ दागी, जिस से कुछ औरतें वहीं ढेर हो गयीं। बचीं अुन्हें बंदी बनाया गया। लखनअू को मटिया मेट किया गया। यह सब दृश्य देख कर अब क्रातिकारी झट शरण आयेंगे अिस कल्पना से अंग्रेजो को बडा आनद हुआ। अपने देशबधुओं के अिस आनदोन्माद में सहभागी बने कुछ अग्रेज बंदिपाल भी अुन बंदी रानियों से पूछते 'क्यों, अब तो बलवा कुचल दिया गया है न?' झट अुत्तर मिलता 'कुचलने की बात तो बहुत दूर है; हाँ अन्त में तुम्हारी हड्डियाँ नरम की जायँगी अवश्य।' *

× डॉ. डफ कृत अिंडियन रिबेलियन पृ. २४१–२४२.

* नॅरेटिव्ह ऑफ दि अिंडियन म्यूटिनी पृ. ३३८ रसेल की डायरी, पृ. ४००.

अध्याय ८ वाँ

कुँवरसिंह और अमरसिंह

जगदीसपुरकी धून से जनरल आयार को खदेड़नेवाला शाहबाद प्रांत का यह बूढ़ा किन्तु धीर वीर शेर कुँवरसिंह जिस समय तड़पता हुआ घूम रहा था, स्वाधीनता को हड़पनेवाले शत्रु का गला फोड़कर अुष्ण रक्त पीने के लिये। अुसके झण्डे के नीचे अुसका भाई अमरसिंह, तथा दो जागीरदार निस्वार्थसिंग और जवानसिंह खड़े हुअे थे। ठीक मौके की ताक में वे अगल में पड़े थे। अुनके साथ, केवल लड़ने की प्रतिज्ञा से आयीं, अुनकी रानियाँ भी थीं। ये मानिनियाँ अपने बालों को संवारने के लिये रनवासमें अपने साथ रंगीन कंघे न लायी थीं, पैने तीरों की नोकोंसे वे कंघी का काम लेती थीं। कुसुम से कोमल करों में अुन्होंने अभ्यास से भी कठिन फौलादी पैनी तलवारें ली थीं। खैर; शत्रुके रक्त की घूँट पीने के लिये ये सब अुतावले हो रहे थे हाँ, शत्रु—रक्त की घूँट! हम फिर दुहराते हैं। बूढ़ा कुँवरसिंह भी अुसके शत्रु के समान मानी अुदंड था, जिससे अुसकी अेकमेव अिच्छा शत्रु के गले का खून पीने की थी। भर्तृहरी का कथन है, कि भूख का मारा, बुढ़ापे से सताया, क्षम—क्षम दशामें सब प्रकार से पीड़ित, राज्य से वंचित होने पर भी कुँवरसिंह अब भी वनराज था; और चाहे जो विपत्तियाँ आ पड़नेपर भी पराधीनता की

सूखी घास वह कभी नहीं चबायगा; अुसकी अेकमेव आकांक्षा, अुसी सुभाषित के अनुसार, हाथी का गंडस्थल फोडने की, शत्रुका अुष्ण रक्त पीने की थी।

अनादि काल से कुँवरसिंह के वंश में रहा प्रदेश शत्रु हडप चुका था। जगदीशपुर का राजमहल भी शत्रु ने अपवित्र कर छोडा था। अुस के मंदिर और अुन की मूर्तियाँ फिरंगी के पापी हाथों से भग्न और अपवित्र हो गयी थीं तिसपर भी कुँवरसिंहने काफी संयम रखा था। न अुसने जगदीशपुर से अपना सत्था फोडा, न शहाबाद प्रांत को अपने कब्जे में रखने की चेष्टा की। अुस की राजधानी के अिर्दगिर्द अंग्रेजों ने कडा पहरा रखा था। कुँवरसिंह के पास केवल १२०० सैनिक तथा ५०० नौसिखिये स्वयंसैनिक थे। अिसी से अपनी राजधानी को जीतने का हठ अुसने न किया। हाँ, स्वाधीनता का झण्डा लहराये रखने का अुस का पुरेपूर निर्धार था। जिस दिन अुसने हठीला प्रतिकार न करते हुअे जगदीशपुर छोडा था अुसी दिन अेक अनोखी युद्धपद्धति का अवलंबन करने की अुस न ठानी थी। यही अेक मात्र युद्ध पद्धति है जो यशप्राप्ति की निश्चिति की दृष्टि से अनमोल महत्त्व रखती है। अिस का नाम है वृकयुद्ध।

अिसी से अपनी राजधानी से वंचित कुँवरसिंहने अपनी सेना को शत्रुओं से न भिडाया। वह जानता था कि अंग्रेजी सेना के आक्रमक धक्के से अुस की मुठी भर सेना मक्खी-मच्छरों के समान चुटकी में पीसी जाती। अिसी से शत्रु के मर्मस्थान का सुराग लगाते हुअे सोन के किनारे हो कर पश्चिम बिहार के जंगल में आसरा लेकर बैठ गया। तब अुसे पता चला कि लखनअू की खबर लेने के लिअे आजमगढ से गोरखों तथा अंग्रेजों की सेनाअें भेजी गयी है। अुस शेर की तीक्ष्ण नाक में अपने शिकार की बराबर आ गयी, और तुरन्त जगदीशपुर का सिंह जंगल से बाहर हो झपटा। कुँवरसिंह वृक-युद्ध का पण्डित था। अवध के पूरबी विभाग में ब्रिटिशों का बल बहुत कम था। सो, अुन पर झपटने तथा अुस विभाग में फैले हुअे क्रांतिकारियों को संगठित कर फिर से आजमगढ पर छापा मारने के लिअे अुस तरफ बढा। अुस का विचार था, कि अिस चढायी में सफलता मिले तो बनारस या अिलाहाबाद पर

हमला कर जगदीशपुर का बदला लिया जाय। १८ मार्च १८५८ को बीवा के क्रांतिकारी भी उसे आ मिले और संयुक्त सेनाने अतरौलिया के किले के पास डेरा डाला।

अतरौलिया से अजीमगढ २५ मील है। खबर पाते ही २०० पैदल सेना, कुछ रिसाला और दो तोपें साथ लेकर मिलमन अतरौलिया पर चढ आया। मार्च २२ को दोनों सेनाओं की मुठभेड हुई। क्रांतिकारियों को एक क्षण भी फुरसत् न देते हुए मिलमन टूट पडा। तब क्रांतिकारी उस के सामने कहाँ तक टिक सकते! इस धावे में उनकी पूरी हार हुई। तो कुँवरसिंह की सब शेखी धरी ही रही। असल में रातभर इतना फासला चलकर थकने पर भी इस अगम सेनाने इतना जोर दिखाया वह प्रशंसा के योग्य है।

ब्रिटिश-सैनिको! अपना खून बहा कर तुमने यह विजय प्राप्त की है; अच्छा, तब इस अंबराव की शीतल छाया में मजेसे नाश्ता करो। सब ओर सशस्त्र पहरे बिठा कर नाश्ते की तैयारियाँ हुईं। भूके मुँह पहला ही कौर चबा रहे थे, शराब के जाम छबालब भरे थे—इतने में:—

धडाम! साँय साँय! क्या है यह गडगडाहट—? मुँह का कौर गिर पडा; मुँह लगा जाम खिसक गया, नाश्ते की तय्यारियाँ चूर चूर हो गयीं, 'हाश' कर अभी रखे हथियार उठा कर सुसज्ज होना पडा! कहीं कुँवरसिंह तो नहीं आया? अरे हाँ, कुँवरसिंहही? मदोन्मत्त हाथी के गंडस्थल पर जिस तरह वनराज झपटता है उसी तरह वह अंग्रेजों पर टूट पडा। मॅलेसन लिखता है—'सच्चे सेनानी को और क्या चाहिये था। सब कुछ मनचाहा उसे मिल गया था। निश्चित विजय का मौका देख कुँवरसिंह झपटा। × मिल्मिनने घेरे से छटक जाने के लिये और से हमला करने का बहाना किया। *किन्तु गन्ने के खेतों, आम के पेडों तथा मेडों से गोलियों की बौछारें सर सराती थीं।* कुँवरसिंह के पास इसबार मिलमन से पाँच छ: गुना सेना थी।

× मॅलेसन कृत इंडियन म्यूटिनी खण्ड ४, पृ ११९

मिलमन को चारों ओर से घेरे जाने का डर हुआ तब अुसने अपनी चढाअी समेट–सी ली। ब्रिटिश सेना अब, होश काफूर होने से, पीछे हटने लगी। वृक युद्ध का मजा अब आया। फैले हुअे गोरों को गोली से अुडाते हुअे तथा अंग्रेजी दस्तों पर हमले करते हुअे कुँवरसिंह के सैनिक मंडराने लगे। अिस तात्कालिक विजय से कुँवरसिंह बौखलाया नहीं। पीछे हटनेवाले शत्रुपर अुसने सब मिल कर जोरदार हमला नहीं किया। क्यों कि, अपने अनुयायियों की सच्ची क्षमता वह जानता था। आमने सामने डटकर लडने में अुनके टिके रहने में संदेह था। अिसी से अुसने वृकयुद्ध ही अधिक पसंद किया, अिस प्रकार शत्रु-सेना को खदेडते हुअे अतरौलियासे कोसिल्ला तक पहुँचा दिया।

किन्तु, कोसिल्ला में अंग्रेजी सेना को सुरक्षित आसरा कहाँ मिलेगा? अुसकी हार के समाचार अुस के पहले पहुँच चुके थे। अिसी-से वहाँ के हिंदी नौकर अुनकी देखभाल में होनेवाले मवेशियों तथा अन्य सामग्री के साथ निकल गये थे। न कोअी नौकर, न रसद, भेडिया सी पीछे पडी कुँवरसिंह की सेना! सब सोचकर मिलिमनने चतुरता दिखायी और वह ठेठ आजमगढ तक पीछे हटा। यहाँ आकर अुसे आशा बंधी, क्यों कि अुस के त्वर्य संदेश के अनुसार कर्नल डेम्स के मातहत गाजीपुर और बनारस से आये हुअे तानादम २५० सैनिकों की सहायता अुसे मिली थी। तब आजमगढ के अड्डे से, अुपर्युक्त सभी संजोगों को देख, अपने अपमान का बदला लेने का सब ने निश्चय किया।

अुस के अनुसार कुँवरसिंह से बदला लेने २८ मार्च को, कर्नल डेम्स आजमगढ से आगे बढा। किन्तु फिर अितिहास का पुनरावर्तन हुआ और नये सेनानी के आधिपत्य में बढे ताजा–दम सैनिकों के छक्के छूट गये और कर्नल साहब फिर वहीं पहुँचे जहाँसे आगे बढे थे। आजमगढ की घुसबन्दी का सहारा अुन्हें लेना पडा। अब कुँवरसिंह पर चढ जाने की बात धरी रही। कुँवरसिंह ही ठेठ आजमगढ में घुसा, वहाँ गढी में आसरा लिये अंग्रेजों को भूखों मरा कर सफाया करने का काम कुछ लोगों को सौंपकर वह विजयी वीर बनारसपर चढ गया।

अिस समय गवर्नर जनरल कॅनिंग अिलाहाबाद में था। कुँवरसिंह की क्षमता, धैर्य तथा युद्ध की कार्यवाही में समय का महत्त्व जानना, अिस बात से कॅनिंग अच्छी तरह जानकार था, जिस से आगामी संकट की आहट अुसने पहचानी।×

आजमगढ में अभी अभी गोरी सेना को अुस ने बंद कर रखा, थकित करनेवाली फुर्ती से ८१ मीलों का अंतर तय कर, अिलाहाबाद और कलकत्ते का सबंध तोड देने के लिअे कुँवरसिंहने बनारसपर हमला किया था। अिसी समय लखनअू के भगोडे क्रांतिकारी भी यहाँ अुससे मिले। धीरज खोये परेशान अनुयायियों को फिरसे अुत्साहित कर, अुन्हें फिरसे अनुशासित संगठन में पिरोने की कुँवरसिंह की अद्भुत क्षमता को कॅनिंग पूरी तरह पहचानता था। क्रांति के पूर्वार्ध में कलकत्ते के आसपास के प्रदेश में क्रांति के फैलने के पहले ही अुसे कुचल दिया गया; अिस का अेकमेव कारण था, सिक्खों के बलपर बनारस और अिलाहाबादपर अंग्रेजों का दृढ कब्जा रखना। अुस गँवाये मौके को फिरसे हथियाने के लिअे बनारस और अिलाहाबाद पर कुँवरसिंहने आक्रमण किया। तब कॅनिंगने अुसके मुकाबले के लिअे लॉर्ड मार्क कर को आज्ञा दी।

क्रीमिया के युद्ध में प्रसिद्ध तथा भारतीय यौद्धिक तंत्रसे परिचित महान् योद्धा लॉर्ड कर, पाँचसौ सैनिक तथा आठ तोपें लेकर आजमगढसे ८ मिलोंपर आ खडा हुआ। दिनांक ६ अप्रैल को सबेरे ६ बजे अुसने चढाअी का महूरत किया। अुसे पता लगा कि अुसकी गतिविधिपर कुँवरसिंह के लोगों की नजर है। किन्तु यह बात न जानने का बहाना कर अुसने अपनी सेना को 'होशियार' का हुक्म दिया; और कुँवरसिंह के बाअें पासेपर हमला किया। अुसके सैनिकोंने भी डटकर मुकाबला किया। अुस धमाधाम युद्ध में अपने प्यारे सफेद घोडेपर सवार वह बूढा 'कुमार' दिख पडा। शत्रुको डरा देने की अपने सैनिकों की संख्या असीम बताने के लिअे नौकरों को भी अुसने भरती कर

× मॅलेसन कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ४, पृ २११

लिया था; किन्तु अपनी सेना की सच्ची शक्तिको पूरी तरह जान कर, कुँवर-सिंहने अपनी वीरता, धीरज, तथा चतुरता के बूतेपर ही झगडा चालू किया।

मार्क कर पर हमला करने के लिअे अपनी सेना को विभागों में बॉटा। शत्रुकी तोपें भीषण आग अुगल रही थीं किन्तु अुन्हें बंद करने के लिअे अुस के पास अेक भी तोप न थी, फिर भी मार्क कर की पिछाडी पर धूम जाने में वह सफल हुआ! कुँवरसिंह के अिस चालसे शत्रु के सभी अिरादे मिट्टी में मिल गये, क्यों कि फिर अुसे अपनी तोपें हटानी पडीं। अिससे क्रांतिकारियों को, मानो, चढाअी की सूचना मिली और विजय के नारे लगाते हुअे वे आगे बढे। अंग्रेजों की पिछाडी पर कुँवर-सिंहने अैसा दबाव डाला कि अुनके हाथी तितर बितर भागने लगे। जीवित रहने की आशा पूरी तरह नष्ट हो जानेसे अुन के महावत भी हाथियों के गले में चिपक गये और अन्य नाकर जिधर रास्ता मिला अुधर भाग खडे हुअे फिर भी मार्क कर कहता रहा 'ठहरो, अब भी विजय मिलेगी' क्रांतिका-रियों की अगाडी के कुछ घर जो अुसने हथिया लिये थे! किन्तु अुस की पिछाडी साफ टूट गयी थी।

अुधर कुँवरसिंहने आग लगाना शुरू कर दिया। अुसे देख कर मार्क कर आजमगढ की ओर पीछे हटने लगा। अुसने सोचा क्रातिकारियों पर विजय न सही आजमगढ में बद गोरों को सहाय पहुँचाने का काम तो करेगा। अुस की तोपोंने अिस बार अच्छा काम किया, क्यों कि कुँवरसिंह के पास अेक भी तोप न थी। आधी रात में, लॉर्ड कर अपनी सेना आजमगढ पहुँचा सका। यह लडाअी, अुस के लिअे चतुरता की चालें, कुँवरसिंह की भूलें और वे अडचनें जिस का सामना अुसे करना पडा—अिन सब बातों पर प्रकाश डालते हुअे मॅलेसन कहता है, "कुँवरसिंह व्यूहबाजी की अपेक्षा युद्ध-निपुणता में अधिक चतुर था। अुसने चढाअी की योजना की बडी सुंदर रचना की थी, किन्तु अुस पर अमल करते हुअे अुसने कअी बडी भूलें कीं। मिलमनने अुसे अनपेक्षित बडा अच्छा मौका दिया था। कुँवरसिंह जो चाहे अुसे कर सकता था। अंबराव में नाश्ता करने अतरौलिया के पास जब मिल-

मन की सेना ठहरी, तब अुन का आजमगढ से संबंध काट देना अुस के लिये आसान था, किन्तु अुसने सामने से हमला करना पसंद किया और जब मिलमन पीछे हटने लगा तब अुसने जोरदार पीछा नहीं किया। अेक सुयोग्य सेनानी ने अुन्हें और खदेड़ा होता। आजमगढ में आसरा लिये मिलमन की नाकाबंदी के लिये थोड़ी सेना कुँवरसिंहने रखनी चाहिये थी, शेष सैनिकों के साथ बनारस की ओर बढना चाहिये था, और मोर्चा बाँधता तो लॉर्ड कर से मुकाबला करने में और सुविधा होती। बादमें मालूम हुआ है, कि अुस के पास लगभग १२००० फौज थी और अिन के मुकाबले में लॉर्ड कर के मातहत कुछ लोगों के बिना और सेना न थी। अुस ने हाथ पाँव फैलाये होते तो सब कुछ अुसकी पहुँच में था; । हाँ, वह अवश्य सुयोग्य था; हो सकता है अुसने अिन सब मौकों को भाँपा भी होगा। किन्तु प्रसंग का परमेश्वर वह था नहीं। अुसके पास अपने दस्तों के साथ जो आता; वह हरअेक अपनी ही योजना पर हठ करता। परिणाम यह होता कि कुछ समझौता कर लेना पड़ता। "*

हाँ, तो लॉर्ड कर को केवल पूरी विजय से ही नहीं आजमगढ को सहायता पहुँचाने से भी हाथ धोना पड़ा। क्यों कि, अब तक आजमगढ क्रांतिकारियों ही के हाथ में था और आसपास के सब प्रदेश पर भी अुन का अच्छा प्रभाव था। कुँवरसिंह में सेनापतित्व के जो अुत्कृष्ट गुण थे, वैसे शायद ही किसी दूसरे में पाये जाते हैं। अपने सैनिकों के स्वभाव तथा क्षमता को पूरी तरह पहचाननेवाला ही सच्चा सेनापति होता है; कुँवरसिंह में यह गुण था। अपने शत्रु का सत्त्वाबल तथा युद्धशक्ति को जहाँ वह बिलकुल ठीक ताड लेता; वहाँ अपने अनुयायियों के गुण—अवगुणों को भी ठीक तरह जान लेता था। यही कारण था कि अुसने अंग्रेजों को आसरा देनेवाले किले पर सीधा हमला न किया। अुसने सूक्ष्म निरीक्षणसे देखा था कि डर या आतंक, चाहे जिस कारण से हो, सिपाही किसी भी संकट का सामना करने को सिद्ध

* मॅलेसन कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ४, पृ १२६–१२७

होते हुअे भी अंग्रेजी सगीन से डरते थे। आरा और लखनअू के घेरों में यह बात सिद्ध हो चुकी थी। अंग्रेज किले से बाहर जाने की सम्भावना न रहने देकर वह अपने मन में शत्रु का सत्यानाश करने की अेक अनोखी योजना बना रहा था। १८५७ की क्राति में शामिल हुअे लोगों में दो प्रवृत्तियों के लोक स्पष्टतया दिखायी पडते थे। अेक वे, जो समरागण में काल के गाल में कूदने को सिद्ध थे और जो पूरे अनुशासन पर चलते हुअे डट कर लडते थे, चाहे सामने तोप होया तलवार! दूसरे वे थे, जो देश पर बलि चढाने को अुत्सुक होते हुअे भी अपनी अिच्छा पर अमल करने का धीरज नहीं रखते थे, जिस से डट कर लडने के ठीक समय पर पीछे पग धरते और पराजित हो जाते। कुँवरसिंह ने पहले वर्ग के लोग चुनचुन कर अिकट्ठे किये, जो रण में परखे गये थे, अुनके अलग दस्ते बनाये थे। चाहे जिस बाँके प्रसग में काम आनेवाले विश्वास योग्य चुनिन्दे लोगों के दस्ते बन जाने पर, कुँवरसिंह ने अपनी साहसी तथा अनोखी योजना पर अमल करना तय किया और अिन दस्तों को तानू नदी के पुल पर मोर्चा लेने की आज्ञा दी।

क्यों कि, अिसी छोटेसे पुलपर होकर, जनरल लुगार्ड आज आजमगढवालों को छुडाने के लिअे, जानेवाला था। लुगार्डने पहले तो यही माना, जो बिलकुल स्वाभाविक था, कि अिस पुलपर डटने का मतलब यही होगा कि आजमगढ शहरपर क्रातिकारियों का कब्जा बना रहे। "किन्तु", मॅलेसन कहता है "अुस चतुर नेताने जो योजना बनायी थी अुसकी गहराअी का अदाजा अुसके साथी भी न लगा सके।" यह गहरी चालभी, शत्रु के सामने यह दिखावा करने की, कि जानपर खेलकर आजमगढ की रक्षा की जा रही है। अिस तरह अंग्रेजों पूरा ध्यान अिस ओर आकर्षित होगा और अिसी में जब व्यस्त होंगे तब सीधे जगदीशपुर पर चढाअी करें। सैनिकविद्या के अनुसार यह योजना अद्वितीय चतुरतावाली थी—आजमगढसे गाजीपुर, वहाँसे गंगा को तैरकर पार होना, फिर जोरदार हमला कर जगदीशपुर फिरसे जीतना—और अुस सकट को जानकर कि लुगार्ड पीछा करेगा और धोखा दी हुअी आरा की अंग्रेज सेना सामनेसे हमला करेगी! अिसी महान साहसी योजना की पूर्ति के

कि भेजी। अुसने अपने सुनिन्दे वीरवरों को पुलपर डट जाने को कहा था। आशा यह थी, वे वीरवर तबतक पुलपर लुगार्ड को रोके जबतक कि अन्य सब सेना–विभाग आजमगढ छोडकर अंग्रेजों की दृष्टि बचाकर गाजीपुर के मार्गपर चल दें। गाजीपुर पहुँचकर गंगापार अेकबार हो जाय तो फिरसे यह शेर अपने जगदीशपुरके जंगलमें घुस जायगा और तब अंग्रेजोंका सब काम शुरूस प्रारंभ करना होगा; क्यों कि, गत १२ महीनों में अुन्हों ने जो कुछ कमाया वह सब नष्ट हो जायगा।

तानू नदीपर डटे हुअे वीर सैनिको! किन्तु, अिस सारी योजना की यशस्विता की कुंजी तुम्हारी वीरता है। शत्रुकी नजर से बाहर कुँवरसिंह सारी सेना के साथ, जबतक छटक न जाय तबतक लुगार्ड को पुलपर पग न धरने देना। तुम्हारे नेताने तुम्हें अिसी लिअे चुना है कि तुम किसी भी दशा में पीछे न हटोगे और अिस विश्वास को निबाहना तुम्हारी आन है। अेक मान, अेक ध्यान, अेक आन तुम्हारी हो—जबतक कुँवरसिंह अपनी सारी सेना के साथ शत्रु को धोखा देकर निकल नहीं जाता तबतक युद्ध शत्रु के हाथ न जाय; तुममें से अन्तिम वीर जीवित हो तबतक अिस आनको निबाहना! अरे नहीं; वह आखरी सिपाही मारा जाय तो, अुसी क्षण, अपनी साधना को पूरी करने के लिअे वह फिरसे जनम लेकर यहीं जूझता रहे! लुगार्ड ने छोटेसे क्रांतिकारी दस्तेपर ताबडतोड हमले किये किन्तु वह अेक क्षण भी पुलपर जम न सका। हर बार डटकर मुठभेड होती और हर बार अंग्रेजों को रुकना पडता। कुँवरसिंह के आजमगढ पहुँचने और गाजीपुर के मार्गपर चलने में सफल होने का अिशारा मिलने तक व 'मृत्यु–दल' के वीरवर चप्पा चप्पा भूमके लिअे लडते रहे। कर्नल मॅलेसन कहता है —" मँजे हुअे वीरों के समान अुन्होंने अिस नावों के पुल की रक्षा जीवट और निर्धार से की और अुनके साथी सुरक्षित स्थानमें पहुँचनेके लम्बे समय तक प्रतिकार कर वे हट गये। * " अिस तरह अिस 'मृत्यु—दल' ने अपना मन्तव्य पूर्ण

* मॅलेसन कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ४, पृ ३२४

किया, फिर अनुशासनपूर्वक वे हट गये और, जैसा कि निश्चय था, कुँवरसिंह के पास पहुँच गये।

अेकाअेक पुलपर से प्रतिकार बंद हुआ देख लुगार्ड आगे घुस पडा, किन्तु देखता क्या है, कि वहाँ कोअी नहीं है; कुँवरसिंह की समूची सेना साफ निकल गयी है, मानों, सब जादूसे पैदा हुअी थी और अुसी के समान अब गायब ! अिस अदृश्य सेना की खोज के लिअे अुसने गोरे रिसाले तथा घोडे-पर जानेवाली तोपों को भेज दिया। १२ मीलोंतक वे बेतहाशा दौडे, किन्तु व्यर्थ—और आगे बढे तब अुन्हे पता चला, कि कुँवरसिंह अैसी सुरक्षित जगह में पहुँच गया था, जिस के भागनेवाले तथा पीछा करनेवाले कौन है अिसमें संदेह हो। शत्रु को देख क्रातिकारी नहीं डरे, अुलटे क्रांतिकारियों के दर्शन होते ही अंग्रेजी दस्तों का मस्तिष्क चकराने लगा। कुँवरसिंह की सेना अपनी नंगी तरवारें सँवारे और अपनी तोपों के मुँह शत्रु की ओर किये खडी मिली। अिस भिडन्त में होनेवाला अेक अंग्रेज अफसर कहता है "अितने भारी बल के सामने अपने आप को सम्हालने से अधिक हम क्या कर सकते थे ? हमारे रिसाले ने तुरन्त हमला किया किन्तु वे अेक चौकोर बनाकर हमें गालियाँ दे कर आगे बढने को बारबार ललकारते रहे।" और जब सचमुच अंग्रेजों ने आगे बढने की धृष्टता की तब अुनका अैसा तो गरम स्वागत हुआ कि सैनिक तो क्या अफसर भी वहीं ढेर हो गये। कुँवरसिंह के चौकोर अभेद्य रहे और अंग्रेज बचाव पर मजबूर हुअे। फिर कुँवरसिंह आगे बढता गया और गंगा के पास पहुँचने लगा।

अंग्रेजों की फजीहत के समाचार आजमगढ पहुँचे। जनरल डगलस और पांच छः तोपें ले कर अुनकी सहायता के लिअे दौड पडा। डगलस कुँवरसिंह की तलवार की पैनी धार को चख चुका था, जिस से वह सतर्क होकर चक्कर काटकर नघअी गाँवतक पहुँच गया। अिधर कुँवरसिंह भी स्वागत के लिअे सिद्ध था। अपनी पहुँच में अंग्रेज आये देख अपने मृत्यु दल के वीरों को अुनपर छोड दिया और शेषसेना के दो भाग कर दो भिन्न मार्गों से गंगा

किनारे भेज दिया। जिधर यह प्रबंध चुपचाप हो रहा था, तबतक अुसके विशेष दल ने जोरदार चढ़ाओ चालू रखी। अंग्रेजी तोपें अुन्हें घास की तरह जला रही थीं; अुनके पास तोपें न थीं। फिर भी वे विचलित न हुओ; अुन की हरावल भी न टूटी, न अुनके हमले का जोर कम हुआ। चार मील तक यह ज्वलन्त युद्ध जारी रहा। जब शत्रु के थक जाने के आसार दील पडे, तब दो भिन्न मार्गोंसे जानेवाली सेना अेक में मिल गयीं और बेरोक आगे बढने लगीं, राजा कुँवरसिंह फिर गंगा की ओर आगे बढने लगा।

अहुस गाँव के पास १७ अप्रैल १८५८ को यह थका हुआ अंग्रेज दल रातमें रुका। सबेरे अुठ कर डगलसने सोचा कि क्रांतिकारियों के आगे वह निकल नहीं पाया है तब फिर आगे बढने चला—किन्तु कुँवरसिंह अुस के आगे १२ मील निकल जाने का पता चला। सारा ब्रिटिश रिसाला और तोप खाना कुँवरसिंह का पीछा कर रहा था, किन्तु पैदल सेना, थकावट के कारण, आगे बढने में असमर्थ थी, जिस से और अेक रात अुन्हें आराम दिया गया। कुँवरसिंह के गुप्तचर अंग्रेजों की छोटी-मोटी हलचल तथा स्थान के बारे में संवाद लाने के काम में बेजोड थे। अुनके थकावट का संवाद देने वे न चूके। अुस बुढे अस्सीवर्ष के कुँवर ने अैसा मौका हाथ से न जाने देने के लिअे आधी रात को वह चल पडा, सिकंदरपुर को पहुँचा और घाघरा नदी पार हो कर गाजीपुर के प्रदेश में गया। ठेठ मनहर गाँवतक पहुँच कर अुस देशभक्त नेताने हर साहसी योजना को सफल बनाने में सहयोग देने को सदा सिद्ध रहनेवाले थके, भूखे अपने सैनिकों को आराम के लिअे ठहराया। कुँवर सिंह ने ताड लिया था, कि अुस समय अुसकी दशा दुबली थी, फिर भी वहाँ थकावट न अुतारना मानवी सहनशक्ति के परे था। डगलस को पता चलते ही वह दौडता हुआ मनहर तक पहुँच गया और अेकदम धावा बोल दिया। थके हुअे सैनिक जिस जोरदार हमले के आगे टिक न सके और वे हार गये, जिस से कुँवरसिंह के हाथी, गोलाबारुद और रसद सब शत्रु के हाथ चले गये। हाँ, अुसका अुत्साह पहले के समान अजिंक्य और अदम्य रहा। जब अुसने देखा कि पासा पलट रहा है, तब अुसने अपनी पुरानी रणनीति

पर चलना तय किया। अपनी सेना के छोटे छोटे दस्ते बनाये, मैदान से हटा लिअे और भिन्न भिन्न मार्गों से भेज दिये और अिस तरह शत्रु को पीछा करना असम्भव कर छोडा। हर दस्ते के नेता को निश्चित समय पर, निश्चित स्थान में पहुँच जाने का आदेश अुसने दे रखा था, जिस से फिर सब सेना अिकट्ठी हुअी और फिर से अपने निश्चित मार्ग पर चलने लगी। अैसे तो अंग्रेजों की जय हुअी, किन्तु शत्रु कहाँ गया और अुस का क्या हुआ अिस का कुछ भी पता न मिलने से मनहर ही में अुन्हे डेरा डालना पडा। अिधर कुँवरसिंह की सेना गंगा किनारे लगभग पहुँच गयी थी।

पास, और पास, गगा के किनारे और नजदीक! अरे, अब तो कडी शर्त जीत कर गगा किनारे भी वह पहुँच गया। अंग्रेज सेना भी अुसका पीछा कर रही थी। कुँवरसिंह की सेना बहुत थोडी रही थी; अैसी दशा में शत्रु से भिडना लाभकारी न था, यह देखकर अुसने और ही दाँव रचा। प्रांत भर में अेक अैसी गप अुसने अुडा दी कि किश्तियों की कमी के कारण कुँवरसिंह बलिया के पास हाथियों पर से गंगा पार होनेवाला है। अंग्रेज दूतों ने सेनापति को यह सवाद दिया। अपने गुप्तचरों की कला पर प्रसन्न हो कर अुसने अुनकी प्रशंसा की। 'मेरे गुप्तचरोंने मेरा शत्रु- विद्रोहियों का महान् नेता-किस स्थान पर गंगा अुतर जायगा यह ठीक जानकारी मुझे दी है, अब देखता हूँ कैसे वह अपना अिरादा पूरा करता है;। मालूम होता है अुसके हाथियों तथा सेना के साथ वह गगालाभ करने जा रहा है।' अैसी शेखी बघारते हुअे गोरे सैनिकों के साथ डगलस बलिया गया और कुँवरसिंह के भारी हाथियों पर टूट पडने क लिअे ओट बनाकर छिपा रहा। अंग्रेज बहादुरो! आगामी विजय के मोदक मनमें खाते हुअे तुम मजे करो; तुम्हारे शत्रु के पहुँचने तक बलिया के पास छिपे रहो! अरे-किन्तु वहाँसे ७ मील पर कुँवरसिंह गगा पार कर रहा है। बलिया और हाथी की कल्पित कहानी से कुँवरसिंह आवश्यक किश्तियाँ प्राप्त कर सका और रातही रातमें शिवापुर घाट से पवित्र भागीरथी से पार होने लगा। झाँसा दिये शत्रु को जब अिस बातका पता लगा तब वह आग बबूला हो कर बलिया से शिवापुर घाट को दौड पडा। और

कुँवरसिंह की कमसे कम अेक किश्ती पकड़ने में वह सफल रहा। कुँवरसिंह की वह अन्तिम नाव थी। लगभग सब सेना परले कौठे पहुँच भी चुकी थी। और यह निश्चित कर कि सब कुछ ठीक हुआ है, कुँवरसिंह भी अब गंगापार हो गया होता। हाय! किन्तु जब वह राष्ट्रवीर, वह शूर और अुदारतापूर्ण मानी महाभाग, वह स्वाधीनता का पराक्रमी खड्ग कुँवरसिंह मझ धार में था तब शत्रु की अेक गोली साँय साँय करती आयी और अुसकी कलाभी में घुस गयी। अस्सी साल का बूढ़ा होने पर भी अुसे अुसकी परवाह न थी, किन्तु जब सारा हाथ निकम्मा होनेका भय हुआ, तब अुसने अपने ही दूसर हाथसे तलवार अुठाई और कुहनी तक घायल हातको तोड़कर गंगामें फेंक दिया और कहा 'गंगामैया! तुम्हारे प्यारे पुत्र की यह अन्तिम बलि! माता अिसे स्वीकार करो।'

'गंगामैया!' पुकारनेवाले अनगिनत जीव है; किन्तु कुँवरसिंह के समान असाधारण वीर पवित्र गंगा को माता कहकर अुस की कोख को सुफलित करने और चमकानेवाले होते हैं। आकाशमें अनगिनत तारे चमकते है; किन्तु अेक मात्र चाँद ही अुसकी शोभा बढ़ा कर अुसे रमणीय बनाता है—अेकश्चन्द्र-स्तमो हन्ति, न च तारागणोऽपि च।

गंगामैया को अिस तरह भोग लगा कर यह कुलभूषण अंग्रेजी सेना से और किसी प्रकार कष्ट न पाते हुअे गंगा पार हुआ। अुस शिकारी की तरह, जो अपने शिकार को आँखों के सामने छटकते देखता है, छटपटाते, हाथ मलते अंग्रेज रह गये, अुनकी शेखी चूर चूर हो गयी थी; अुनका मन्सूब्य अधूरा रह गया था। क्यों कि, गंगा पार होनेकी हिम्मत अुनमें न थी। व्याध के ताने हुअे भाले की पहुँच से दूर और अुसके जाल को तोड़ छूटे हुअे शेर की तरह कुँवरसिंह भी शाहबाद् के जंगल में फाँद कर जगदीशपुर पहुँच गया; २२ अप्रैल को वह अपनी राजधानी में पहुँचा। अिसी राजधानी से अुसे आठ महीनों के पहले खदेड़ा गया था। फिर अब वीर राणा कुँवरसिंह अपने सिंहासनपर विराजमान हुआ। स्वदेशाभिमानी किसानों का दल साथ लेकर कुँवरसिंह के पहले गंगा पार हुआ अुसका भाभी अमरसिंह भी वहाँ आ पहुँचा। अुस को, सेना का ठीक

विभाजन कर, राजधानी की रक्षा का भार सौंपा गया और पहले की तरह दृढ-निश्चय तथा निर्भीकता से अुसने फिरसे भीषण रण का प्रारंभ किया।

फिर संग्राम छिडा। जगदीशपुर में कुंवरसिंह विद्युत्वेग से तथा साहस के साथ घुसा था, जिस से जगदीशपुर पर कहीं निगरानी रखने के लिअे ही आरा के पास खास कर डेरा डाले ब्रिटिश सैनिकों का ध्यान जाने के पहले ही वह आरापर चढ आया था। शत्रु के अिस चक्रमे से आरा का कमांडर लेग्रांद् आग बबूला हो गया। पूरबी अवध में डेरा डाली हुअी अंग्रेज सेना को झाँसा देकर यह बागी राजा जगदीशपुर में जाता है, और अपने पूर्ववैभव से फिर राज भी करने लगता है! कैसी अुच्छृंखलता! और वह भी पास होनेवाली अेक ब्रिटिश सेनापति की छाती पर मूँग! दीसते हुअे! क्या ढिठाअी! अभी आठ महीने भी नहीं हुअे जनरल आयरने अुसे अिस जंगल से भगा दिया था न? जो हो, आयर के समान ले ग्रॉंद् भी अिस बागी राणा का आखेट कर अुसे अवश्य भगा देगा। सो, २३ अप्रैल को ४०० गोरे सैनिक तथा २ तोपों के साथ ले ग्रॉंद् ने अभागे जगदीशपुर पर हमला किया। अब कुंवरसिंह अिसका मुकाबला कैसे करे? गत कअी महीनों से यह बूढा वीरवर छिनभर भी आराम न करते हुअे मैदान में डटा हुआ था। अुस के सैनिकों को शांतिपूर्वक भोजन या सुख से नींद प्राप्त करने की फुरसद ही न मिली थी। पूरबी अवध में अभी, संहारक घमासान युद्ध से निपट कर, कल कुंवरसिंह यहाँ पहुँचा है और अुसकी सेना को पूरा अेक दिन का आराम भी नहीं मिला है। स्वयं अंग्रेजों के सरकारी विवरणों से मालूम होता है—'अुस की सेना, बिखरी हुअी बेतरतीब, शस्त्रास्त्र अपर्याप्त और बिना तोपखाने के पंगु बन गयी थी।' अधिक से अधिक अेक सहस्र सैनिक अुस के पास होंगे और अुन का सेनापति ८० वर्षोंका का बूढा कुंवरसिंह काटे हुअे हाथ के प्राणघातक प्रसंग से दुबला था। अैसी दशा में ले ग्रॉंद् के नेतृत्व में ब्रिटिशों के ताजा-दम तथा अनुशासन में मँजे हुअे दस्तों की चढाअी तोपों के साथ हो रही थी, जिस से लडाअी का परिणाम पहले से कूता जा सकता था। अिस पक्के विश्वास से शहर से डेढ मील पर होनेवाले जंगल में ब्रिटिश दस्ते घुस पडे! अुन की तोपें धडधडाने लगीं

किन्तु अुन के मुकाबले में क्रांतिकारियों के पास तोपें ही नहीं थीं । क्या पता है, अैसी दशा में भी अुस घनघोर अरण्य में चारों ओरसे क्रांतिकारियों की सेना हम पर हमला करने को, वह बूढ़ा कुँवरसिंह, भेज दे ? डर है, हमारे घेरे जाने का ! तो फिर चलो शुरू करें वह साहसी संगीनों का हमला, जिस से अेशियाअी हिम्मत हारते हैं, डरसे काँपने लगते हैं। अुस बड़ी गोरी सेना, आज्ञा होते ही, बढ़े वेगसे । कुँवरसिंह के सैनिकों ने प्रतिकार किया । और भगवान जाने क्यों, तात्काल साहसी गोरे सैनिकों का दिल बैठ गया और 'पीछे हट' का हुक्म दिया गया । कुँवरसिंह के सैनिकोंने गोरे सैनिकों को चारों ओरसे दबोचा था । पीछे हट की आज्ञा के सुर मारू बाजे बोल रहे थे, किन्तु पीछे हटना भी तो अब खतरे से खाली नहीं था । जिस से तो लड़ते हुअे मर जाना, बेहतर था । हे ब्रिटिश बहादुरो ! जब पिछेहट या डटकर लड़ना दोनों हानिकर हैं, तब आजतक तुमने जिस 'अटूट धैर्य गोरों की साबियत' होने की डींग मारी थी अुसका परिचय, डटकर लड़कर, अब दे सकते हो ! हाँ चाहे तुम अपनी शेखीको निभाओ या न निभाओ, यहाँ तो यत्पलायति स जीवति वाला मामला है ! और सचमुच, व्याध के आगे कुलाँच भरनेवाले हिरनके समान गोरे भागने लगे। जिधर पाँव ले जाय वे जंगलमें भागते थे, क्रांतिकारी अुनका डटकर पीछा करते थे । सब गोरी सेना तितर बितर हो गयी । अिस हारी सेनामें स्वयं अुपस्थित अेक व्यक्ति अपने अनुभव अेक पत्रमें यों कथन करता है –' मैं आगे जो कुछ लिखनेवाला हूँ अुसपर मैं स्वयं लज्जित हूँ । समरांगणसे भाग, हम जंगलके बाहर तो किसी तरह आये, किन्तु शत्रु हमारा पीछा नहीं छोड़ता था। प्यासके छटपटाते हमारे लोग अेक गढ़ा गढ़ा देखकर अुधर दौड़ने लगे । ठीक अिसी समय कुँवरसिंह के घुड़सवार हमारा सुराग लगाते आये । तब हमारी छीछालेदरकी सीमा न रही और हमारी पूरी दुर्दशा हुअी । लज्जाको हमने लात मारी और जिधर पाँवले जायें हम भागते गये । सैनिक आज्ञा अनुशासन संगठण सब भाड़में गये थे । जिधर देखो अुधर, लम्बी साँसें, आहें, गालियाँ आर्त रुदन, और कराह—यही सब सुनायी पड़ता था । कुँवरसिंह हमारा वैद्यक विभाग भी हथिया चुका था, जिससे दवादारू भी क्या चीज़ ? कुछ ने तो यहीं

पैर फैला दिये, कुछ शत्रु के वारों के गाहक बने। डोलियों को मार्ग में ही त्याग कर कहार भाग गये। थोडे में सब दूर कुहराम मचा हुआ था। घायल सैनिकों के बोझ से लदे सोलह हाथी भी थक गये। सेनापति ले ग्रांद की छाती में गोली लगी और वह ढेर हो गया। पांच पाच, छः छः मील भागनेवाले सैनिकों में अपनी बदूक अुठानेभर शक्ति न रही थी। धूप के आदी सिक्खों ने सब से पहले हाथियोंपर चढ कर पलायन किया था और अब गोरों का त्राता कोअी न रहा। अेक सौ नब्बे गोरों में से कुल ८० बच पाये। क्या ही क्रूर कत्ल! बूचडखाने के जानवरों की तरह, क्या, हे भगवान! हम अुस जगल में लाये गये थे?।' ×

अिस तरह कुँवरसिंह की पूरी जीत हुअी। 'शत्रु की तोपों के मुकाबले में अेक भी तोप नहीं, और तिसपर भी शत्रु की यह हानि क्रांतिकारी कर सके। और तो और, अंग्रेजों की साथ लायीं तोपें भी अुन्हों ने छीन लीं।'* किन्तु अिस भगदड में अेक महत्त्वपूण बात निखरती है, कि अुस दिन के मृतकों की सख्या में केवल नौही सिक्ख मारे गये दिखायी पडे। यह अुस सीख का प्रमाण है, जो कुँवरसिंह अपने अनुयायियों को सदा दिया करता—' जिस तरह विदेशी शत्रु को दया दिखाने की भूल कभी न की जाय, अुसी तरह अपने भूले भाअी शत्रुकी ओरसे लडते हों तो भी, अुन्हें जबतक बने, जानसे न मारो।' विद्रोह की पहली झपटमें अंग्रेजों का साथ देनेवाले कअी बंगाली बाबुओं को कुँवरसिंह के लोगोंने पकडा था। अुनको न केवल रिहा कर दिया गया, वरंच अुनकी अिच्छा के अनुसार अुन्हें हाथियोंपर चढा कर पटना पहुँचाया गया। अंग्रेजी भाषा में लिखे सरकारी खत—पत्रों में आग लगाने का हठ जब क्रांतिकारियोंने पकडा तब कुंवरसिंह ने अुन्हें कडककर रोका, कहा—' अंग्रेजों को भारतसे भगा देनेपर, अिन कागजों के आधारपरही

× चार्लस बॉल कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड २, पृ. २८८.

* अंग्रेजों को अिस प्रसग में बहुत बुरी और पूरी हार खानी पडी।' होअिट कृत हिस्टरी ऑफ दि म्यूटिनी.

८० वर्ष के कुँवर जगदीशसिंह

गोरे की अपवित्र गोली से छिदा हाथ गंगामैया में बलि चढा रहे हैं।

लोगों के वंश-परंपरागत वारिसदारी के अधिकार तथा लोगों का आपसी पालने का सबूत ही हम नष्ट कर देंगे; अैसा कभी न करना चाहिये।×

अिस प्रकार, अपने शत्रुओं को पूरी तरह हरा कर, नयी विजयमाला को पहनकर और अपनी कीर्ति में चार चाँद लगा कर बूढे वीर राणा कुँवरसिंह का आगमन जगदीशपूर के राजमहलमें २२ अप्रैल का हुआ।

किन्तु अुस का यह अन्तिम आगमन है। अब कुँवरसिंह संसार के रंगमंचपर फिरसे दिखायी न देगा। अपने अेक हाथ से अुसने अपना दूसरा हाथ तोडा था; वह घातक सिद्ध हुआ और अिस नयी विजय से तीसरे दिन वह महान् राणा अपने राजमहल में स्वर्गवासी हुआ। स्वाधीनता का ध्वज शान से लहरा रहा था, तब स्वतंत्र और विजयी सिंहासन पर अुसने देह छोडी। अुस समय जगदीशपुर के राजमहल पर अंग्रेजों का 'युनियन जॅक' नहीं, स्वदेश और स्वधर्म का विजयचिन्ह बना स्वाधीन राष्ट्र का सुवर्णध्वज वहाँ लहरा रहा था। स्वातंत्र्य—जिस की शीतल छाया में अुसने अपनी लीला समाप्त की। कौनसा राजपूत अिस से बढ कर अुज्ज्वल मृत्यु की अपेक्षा करेगा ! *

भारत और अुस पर हुअे अन्यायों का ठीक बदला वह ले चुका था। हाथ लगे छोटे मोटे साधनों के बल पर युद्ध में शत्रु की धूपरी ही अुसने कुचल दी थी। अपने देश और धर्म का द्रोही बन कर नीच कम न किया, अुलटे अेक मानव, शाक्तिमर, जो चेष्टा कर सकता है वह पूरी तरह कर मातृभूमि की बेडियों को तोड कर अुसने स्वतंत्र किया और आम तो समरांगण में स्वयं विजय देवीने विजयमाला अुस के गले में पहनायी थी। हे राजपूत कुलावतंस!

× बंगाल के राजपूत कान्त गुपानी कृत आर्यकीर्ति

* अितिहासकार होम्स अपने 'हिस्टरी ऑफ दि सीपॉय वॉर' में कहता है —'वह बूढा राजपूत, जितने सम्मानपूर्वक तथा वीरता से अंग्रेजों के लड कर, २६ अप्रैल १८५८ को कालकवलित हो गया।'

तो अब वह पवित्र पर्व आ चुका है। अब तुम आँखें बंद कर सकते हो। जरा से जर्जर हो कर नहीं, स्वातंत्र्यसमर में मातृभूमि के लिअे झगडते हुअे शरीर पर हुअे गहरे वारों से तुम्हारा जड शरीर अब निष्प्राण हो रहा है। पंच-भूतों में विलीन हो कर संसार की मूल शक्ति में मिल जाने का क्षण आ गया! धन्य हो! तुम्हारी मृत्यु भी तुम्हारी जीवनी के समान अुदात्त और अद्वितीय हो!

स्वतंत्र राष्ट्र के विजयी ध्वज के नीचे मृत्यु! सच्चे देशभक्त को अिस से अधिक विलोभनीय और पवित्र क्या होगा?

श्री कुँवरसिंह का व्यक्तित्व कअी पहलुओं से प्रभावपूर्ण है। साहसपू वीरता और अभिजात चरित्र से अुसकी सेनामें भी शौर्य तथा अनुशासन अप आप पैदा हुअे थे। किसी राष्ट्र के पुनरुत्थान के झगडे के नेता का व्यक्तिग जीवन अुस के सार्वजनीन कर्तृत्व के समान ही महान तथा विशुद्ध होना बहु कम पाया जाता है। किन्तु कुवरसिंह में महान् चरित्र तथा महान् कर्तृत्व क अपूर्व संगम दीख पडा। अुस के सैनिकों पर अुसका अितना प्रभाव था कि अुसके आदरयुक्त डर से अुसके सामने हुक्का पीने की हिम्मत कोअी भी करता था। सत्तावन के क्रांतियुद्ध में रणनीति तथा युद्धकौशल में कुँवरसिं के जोड का कोअी वीर न था। क्रांतियुद्ध में वृक-युद्ध (गेरिले वा फेअर) का महत्त्व सब से पहले अुसीने जाना। शिवाजी महाराज के वृक-युद्धतंत्र के दाँव पेंचों का पूर्णतया और समझकर अनुकरण करनेवाला वही अेक मात्रा वीर था। तात्या टोपे और कुँवरसिंह १८५७ के क्रातियुद्ध में अग्रसर। अिन दो सेनापतियों ने वृक-युद्ध-पंडित के नाते जो काम कर दिखाये हैं अुनका तुलनात्मक परीक्षण किया जाय तो कुँवरसिंह को प्रथम स्थान देन पडेगा। यह सही है कि वृक-युद्ध के विध्वंसक भाग में तात्या टोपे अपना सानी नहीं रखता था, किन्तु कुँवरसिंह विध्वंसक तथा विधायक दोनों भागे का अुपयोग करने में सिद्धहस्त था। अपनी सेना का पूरा सफाया करने य शत्रु को नयी सेना खडी करने का मौका रच भी तात्या टोपे न देता था किन्तु ये दोनों बातें शत्रु को न करने देकर भी कुँवरसिंह अूपर से पूरी तरह शत्रु को हराता था; और अुसी का सफाया करता था। वृकयुद्ध में अन्तिम

विजय की आकांक्षा रखनेवाले को चाहिये; कि अपने अनुयायियों को हिम्मत न हारने दे। हर बार मैदान से हटक जाना तथा प्रबल शत्रु को देख लड़ाई से किनारा करना, यह नीति अपने अनुयायियों के आत्मविश्वास को बढ़ाने के बदले उलटे बिगाड़ती जाती है। नेता कुछ हेतु से जानबूझ कर हारे या किसी उद्देश से मैदान से हट, तो ऐसे समय ध्यान रखा जाय कि अपने अनुयायियों में जिस से किसी प्रकार की उदासीनता तथा अविश्वास न पैदा होने पावे। बारबार लड़ाई टाल कर मैदान से भाग जाना अच्छा नहीं। परिणाम यह होता है, कि अनुयायियों में लड़ाई का डर पैदा हो जाता है। चतुरता से लड़ाई टालना तथा परेशान हो कर मैदान से भागना—जिन में बड़ा अंतर है। जिद्दी से, डर कर मैदान से हट जाना वृक-युद्ध के तत्व के संपूर्णतया विरुद्ध है। भिड़न्त शुरू होते ही जितने वेग से तथा लोप से लड़ना चाहिये, जिस से शत्रु का हृदय धड़धड़ाने लगे और अपने अनुयायियों के अंतःकरण में असीम आत्मविश्वास बढ़ जाय। कुशलता जिस में है कि बेमेल भिड़न्त करने को शत्रु बाध्य करे ऐसे समय लड़ाई न करें। किन्तु ओक बार ठन जाय तो कुँवरसिंह की तानू नदी की लड़ाई की तरह बीचट से कड़ी होनी चाहिये। मतलब, अपना बल कम हो तो नेता को चाहिये, कि भिड़ने के फँदे में न फँसे। पाती योगी बराबर का हो तो मुठभेड़ हो जानी चाहिये; किंतु अिच्छा से हो या अनिच्छा से, ओक बार रण में भिड़ जाय तो फिर डरस या ढीले अनुशासन से पीछे पग कभी न धरना चाहिये, उलटे; निश्चित अपयश या तात्काल मृत्यु का भय हो तो भी डट कर वीरता से लड़ाई करें, जिस से विजय हाथ से निकल जाने पर भी कीर्ति तो किसी तरह न गँवायें। ऐसी लड़ाई करते रहें तो शत्रु काँप जाता है, अनुयायियों का धैर्य बना रहता है, सैनिक अनुशासन ढील नहीं पड़ता; और हुतात्मता की कथाओं से स्फूर्ति में बाढ आती है। वीरता से वीरता दुगनी होती है और जश अवश्य मिलता है। वृक-युद्ध से लड़नेवाली सेना या उस के नेता के मन पर यह असर कभी न पड़ने की सावधानी रखनी चाहिये, कि शत्रु ने उसकी वीरता से दबा कर अपन को हराया है। यही है कुंजी वृक-युद्ध के तंत्र की।

किन्तु वृक–युद्ध के अिस विधायक भाग भर तात्या टोपे ने ध्यान नहीं दिया। नर्मदापार करने के लिअे तात्याने तथा गंगापार होने में कुँवरसिंहने जो गतिविधियाँ चलायीं, अुनका अध्ययन बडा बोधप्रद होगा। केवल डरसे घबडाये अनुयायियों ही के कारण तात्या को कअी बार हारना पडा। किन्तु चढाअी के समय कुँवरसिंह अपनी हरावल अितनी जोरदार रखता था, कि जब कभी मौका मिलता, पीछा करनेवाले शत्रु को जोर की थप्पड दे सकता था। अिसीसे शत्रु को पीठपर रखकर भी वह जब पीछे हटता जाता तब भी अुसके अनुयायी प्रचंड आत्मविश्वास तथा स्फूर्ति से भरे रहते थे। हाँ, अेक बात न भूलनी चाहिये, कि पहली की हारसे सारी सेना का जी पहले ही बैठ गया था और युद्ध के पूर्वार्ध में बडे बडे वीराग्रणी मर या घायल होकर निकम्मे हुअे थे—अैसे कुसमय में तात्याको वृक–युद्ध का आसरा लेना पडा। अिसीसे अुसके वृक–युद्धमें विशेष निपुण तथा कुशल संयोजक होनेपर भी अधूरे साधनों के कारण, स्वाभाविक था, कि वह अपनी योजना को सफल कर न पाया। तात्या टोपे की हार का कारण था अुसके डरपोक और लचर अनुयायी! और अिसी से असफल रहनेपर भी अुसकी क्षमता पर रंच भी आँच नहीं आती। किन्तु शिवाजी महाराज के पदचिन्हों का अनुसरण करनेवाले कुँवरसिंहने अपने अनुयायियों का जी कभी न बैठने दिया, अुलटे अपने में और अुनमें अभिनव आत्मविश्वास फुलाने का जतन किया। अुसका पराक्रम, साहस तथा अनुशासन सराहनीय था। लडाअी करने तथा टालने—दोनों में अुसने असाधारण चतुरता का परिचय दिया, और, अिसीसे शत्रुको नष्टभ्रष्ट कर विजयमाला गले में पडी थी तब, स्वातंत्र्यध्वज की छत्रछायामें तथा स्वाधीन सिंहासनपर यह बूढा किन्तु असाधारण वीर भारतीय योद्धा पुण्यप्रद वीरगति को प्राप्त हुआ।

२६ अप्रैल १८५८ को कुँवरसिंह की मृत्यु हुअी। यह महान् व्यक्ति अितिहास के रंगमंच से निकल जाने पर, अुस की जोड के शूर और स्वदेश-भक्त और अेक व्यक्तिने रंगमंच पर पदार्पण किया। यह व्यक्ति और कोअी न होकर अुसी का भाअी राजा अमरसिंह ही था। पूरे चार दिन का आराम भी न लेकर और लडाअी के सत्त्व को कम न होने देकर अमरसिंहने आरा पर

ही धावा बोल दिया। आरा के अंग्रेजों की हार के समाचार मिलने पर ब्रिगे- डियर डगलस तथा जनरल लुगार्ड के नेतृत्व में गंगा के इस ओर पड़ी सेना ने गंगा पार होकर, अमरसिंह से भिड़न्त की। जब अंग्रेजोंने क्रांतिकारियों को घेरना शुरू किया तब अमरसिंहने भी ओरही चाल चली। शत्रु की जीत होती देख कर, वह अपनी सेना को अलग अलग टोलियों में बाँट देता और उन्हें फैला कर मैदान से हट जाता और उन्हें निश्चित समय तथा स्थान पर मिलने की सूचना देता, जिस से शत्रु किसी तरह पीछा न कर सकता था। अंग्रेजों के सामने यह समस्या आ पड़ी कि इस बहुरूप शत्रु से कैसे लड़ा जाय। ज्यों ही ब्रिटिश मानने लगते कि वे ही हर बार विजयी होते हैं, त्योंही अमरसिंह की सेना पहले के समान बलवान् तथा कार्यशील किसी और जगह दिखायी देती। जंगल के एक छोर से खदेड़ी जाय तो वह दूसरे छोर पर ऊधम मचाती और वहाँ से भगाने फिर पहली जगह पर कब्जा कर लेती। निदान, परेशान हो कर निराश तथा अपमानित ब्रिटिश सेनापति लुगार्ड जून १५ को सेवानिवृत्त हो कर आराम के लिये इंग्लैंड चला गया, उस की सेना छावनी को लौट गयी।

और इस से इशारा पाकर अमरसिंह मैदान में विजयी सेनापति बन कर आ डटा। इसी समय क्रांतियुद्ध में गया की पुलिस को शामिल कराने में नेताओं को सफलता मिली।

फिर अंग्रेजों को झूठा सुराग देकर अमरसिंह आरा पर चढ़ आया और शहर में प्रवेश कर गया। इस से क्या होता है? अब तो वह जगदीश पुर की राजधानी में प्रवेश कर रहा है। जुलाई समाप्त, अगस्त बीत गया। सितंबर शुरू भया; जगदीशपुर के बुर्जोंपर, संपूर्ण स्वाधीनता का अनुभव करनेवाली जनता का, विजयी ध्वज लहरा रहा था और प्रजाप्रिय राणा अमर- सिंह सिंहासनपर विराजमान था। मि डगलस और उस की ७ हजार सेनाने अमरसिंह को नष्ट करने का बीड़ा उठाया था। यहाँ तक, कि किसी तरह राणा अमरसिंह का सिर लानेवाले को बड़े बड़े इनाम घोषित किये गये। अब उन्होंने जंगल तोड़कर सड़क बना ली थी। नाके नाके पर ब्रिटिश सेना

आगे बढ रही थी; कुँवरसिंह के स्थानपर आये भाअी अमरसिंह ने जरा भी चिंता न की। अुस की विविध गतिविधियों का विवरण देने को यहाँ स्थान नहीं है; किन्तु अितनाभर कहना काफी है कि अमरसिंह ने जिस जिवट और चतुरता से व्यूह रचे और लडाअी जारी रखी, अुस से लोग मानते थे कि कुँवरसिंह का देहावसान हुआ ही नहीं।

निदान, अंग्रेजों ने हर अुपाय से अिस लडाअी का अन्त लाना तय किया। सात दिशाओं से सात सेनाअें जगदीशपुर पर चढ आयीं। हर मार्ग रोका गया। राणा को मानो कटघारे में बंद किया जा रहा था। अन्त में, १७ अक्तूबर को अंग्रेजों ने जगदीशपुर को पूरी तरह घेर लिया। हाय, हाय! अिसी क्रूर कटघरे में वह स्वाधीनता-प्रेमी शेर बद कर, मारा जायगा। निश्चित समय पर सब सेनाअें जगदीशपुर में घुस पडीं और अुस असहाय सिंह को घेर कर प्रहार किया—किन्तु धन्य हो अमरसिंह, धन्य! अंग्रेजों ने प्रहार किया किन्तु कटघरे पर; खाली कटघरे पर; शेर तो कब का साफ बाहर हो गया था।

क्यों कि, ब्रिटिश व्यूह के निश्चय के अनुसार छः सेनाअें भिन्न भिन्न दिशाओं से नगर के भिन्न भिन्न भागोंपर चढ आयी थीं; सातवी सेना को आते पांच घंटे देरी हुअी। ठीक मौका ताडकर अिसी ओरसे अमरसिंह अपनी सेना के साथ साफ निकल गया।

बिहारी क्रांतिकारियों को पीस डालने का अिरादा फक हो जाने से, छकटे हुअे क्रांतिकारियों का पीछा करने के लिअे रिसाला भेजा गया। हाथ धोकर पीछे पडे अिस रिसाले ने अमरसिंह को अेक क्षण का अवकाश न मिलने दिया। अिस समय अंग्रेजी सेना के पास नये किस्मकी राअिफलें थीं, जिन के सामने क्रांतिकारियों की तोडेदार बंदूकें बिलकुल निकम्मी साबित हुअीं, जिस से अंग्रेजी सवारों को टालना असम्भव हो गया—फिरभी अमरसिंह के मुख से शरण का शब्द नहीं निकला। १९ अक्तूबर को अंग्रेजी सेना ने नोनदी गाँव में क्रांतिकारी सेना को पूरी तरह घेर लिया; ४०० से ३०० तो

कट गये। शेष रहे सौ क्रांतिकारी जान हथेली में लेकर खुले मैदान में शेर की तरह कूद पड़े और भरी आयी गोरी सेना से भिड़े। अन्त में अिनमेंसे तीन बच पाये, जिन में अेक राणा अमरसिंह था; अब तक अेक सैनिक बनकर लड़ रहा था। कितनी ही रक्तपाती लड़ाभियाँ 'पांडे' सेनाअें लड़ीं, कितनी खून की नहरें बहीं; किन्तु स्वाधीनता का ध्यज अपतक झुका नहीं। राणा अमर सिंह तो अैसे बाँके संकटों से बचा था कि कहते ही बनता है; अेकबार तो शत्रु ने राणा के हाथी को पकड़ लिया, किन्तु राणा कूद पड़ा और गायब! अिस तरह क्रांतिकारि चप्पा चप्पा भूमि के लिअे जूझते हुअे अपने प्रांत के बाहर खदेड़े गये। अब वे कैमुर की पहाड़ियों में पहुँच गये। पीछा करनेवाले गोरों को अुस प्रांतवालोंने हमेशा तथा यथाक्रम धोखा देकर क्रांतिकारियोंकी रक्षा की। ×

शत्रुने अिन पहाड़ियों में भी क्रांतिकारियों का भीषण पीछा किया। हर टीला, हर अुपत्यका हर चट्टान पर क्रांतिकारी झगड़ते रहे। अेक भी क्रांतिकारी, पुरुष या स्त्री, शत्रु के हाथ न लगा; वह जूझते हुअे अपने देश और धर्म के लिअे खेत रहा। श्री कुँवरसिंह के रनवास की डेढ़ सौ स्त्रियों ने, अब कोभी चारा नहीं है यह देख कर, अपन हाथों अपने को तोपों के मुँह बाँध लिया और अपने हाथों अुन्हें दाग कर अुड़ गयीं—हुतात्मता के अनंतत्व में विलीन हो गयीं!

विदेशी शत्रुओंसे जन्मसिद्ध स्वाधीनता के लिअे बिहारने अैसा प्रखर तीखा झगड़ा किया!

और राणा अमरसिंह शत्रु के हाथ न लगा! राज्यश्री ने अुसे छोड़ दिया, किन्तु अुस के अदम्य आत्मतेज न अुसे कभी न छोड़ा। अमरसिंह का आगे क्या हुआ? अपना शेष जीवन अुसने कहाँ बिताया—बतलाओ हुआ अितिहास गूँजता है क—हाँ ऽ ऽ!

× मॅलेसन कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ४ पृ २४४

अध्याय ९ वॉ

मौलवी अहमदशाह

लखनअू के पतन से रुहेलखण्ड और अवध में क्रांतिकारियों का सगठन करने योग्य अेक भी संगठनकेन्द्र शेष न रहा। शत्रु के आक्रमक दबाव ने बिहार और दोआब के क्रातिकारियों को दबाते हुअे अुन्हे रुहेलखण्ड और अवध के दिनोदिन सकीर्ण होनेवाले रणक्षेत्र में जमा कर दिया। सब ओर से अिस प्रकार दबोचे जाने तथा कोअी भी बलवान आश्रयस्थान न रहनेसे क्रातिकारियों को अपना पुराना युद्धतंत्र–खुले मैदान में बहादुरी दिखाते हुअे घमासान लडाअियॉ–लडना छोडकर अब वृक–युद्ध का अवलब करना पडा। यदि प्रारभही से वृकयुद्ध से काम लिया जाता तो विजय के अनागिनत अवसर अुनके हाथ लगते। किन्तु, सबेरे का भूला शामको घर आ जाय तो भी अच्छा है। हॉ, विजय की आशा तो अब नहीं के बराबर थी, फिर भी अेक भी क्राति–केन्द्र से पीछेहट की या शरण लेने की भनकार भर न सुनायी दी। अुलटे, वृकयुद्ध का अवलंबन कर झगडा जारी रखने के निर्धारसे अवध और रुहेलखण्ड के क्रातिकारियोंने प्रांतभर में अेक घोषणापत्र प्रकट किया–‘ खुले मैदान में शैतानों की स्थायी सेनासे सामना मत करो, क्यों कि अनुशासन में वह तुम से श्रेष्ठ है और अुस के पास बडी तोपें हैं, किन्तु अुसकी गतिविधि पर निगरानी रखो, नदी के घाटों पर पहरा रखो,

शत्रु की डाक काटो, रसद रोको और चौकियाँ तोड दो; उसके पडाव के आसपास मंडराते रहो; फिरंगी को चैन न लेने दो* '। मौलवी अहमदशाहने इन्हीं सब उपायों पर अमल किया। लखनऊ होनेवाले ब्रिटिश सेनाविभाग के सुगम पर रह कर उसने लखनऊ से २१ मील के फासले पर बारी में अपना पडाव डाला। बेगम हजरतमहल छ हजार सैनिकों के साथ बोतौली में डेरे डाले थीं। इन दोनों दुश्मनों का सफाया करने के उद्देश्य से २००० सैनिक तथा प्रबल तोपखाना साथ लेकर होप ग्रँट पहले बारी की खबर लेने चल पडा। मौलवीने ब्रिटिश सेना का भेद जानने को अपने कुछ गुप्तचर भेजे थे। ये लोग उसी रात को सीधे अंग्रेजों की छावनी में दाखिल हो गये। गोरे पहरेदारोंने रोका तब '१२ नंबर पल्टनवाले' का बहाना कर आगे बढे। और, यह सच था कि व १२ वीं पल्टन के सैनिक थे। उसी पल्टन ने गत जुलाई में 'विद्रोह' कर अपने गोरे अधिकारियों को मार डाला था। ये लोग इस १२ वीं पल्टन के थे, यह गोरा पहरेदार क्या जाने! ये गुप्तचर शान्त और निर्भीक हो कर चल रहे थे। उनका निश्चित उत्तर और निडर बरताव देख पहरेदारों का संदेह दूर हुआ और उन गुप्तचरों को आगे जाने दिया। सीधे छावनी के अंदर जा, सब भेद जान, ये गुप्तचर अपने स्वामी के पास लौट गये। शत्रुकी योजना का पूरा पता मिल जाने पर मौलवीने आवश्यक प्रबंध किया और बारी से आगे चार मिलों पर होनेवाले एक गाँवपर कब्जा कर लिया। योजना यह थी कि पैदल सिपाही इस गाँव में रह कर शत्रुका सामना करें और रिसाला छुपे रास्ते शत्रुकी पिछाडी पर हमला करे। मौलवी को विश्वास था, ब्रिटिश सेनापति किसी आशंका के बिना, दूसरे दिन सबेरे उसी देहातमें आ जायगा। मॅलेसन कहता है–' मौलवी की यह योजना बडी चतुरतापूर्ण थी। उस की व्यूहरचना के ज्ञान का इस से पता लग जाता है।'

* रसेल कहता है (डायरी पृ २७६). इस घोषणापत्रने दूरंदाजी तथा चतुरता का परिचय दिया है और कितनी कठिनतम लडाई हमें लडनी है इसकी सूचना मिल जाती है।

अिस समय विजय प्राप्त करने के लिअे दो बातें विशेष आवश्यक थीं। अेक, अिस देहात की सेना को अत्यंत गुप्तता रखना चाहिये थी, और दूसरे, यह सेना सामने से शत्रु को पीटने तक पिछाडी रिसाला हमला न करे। जैसा कि निश्चित था, मौलवीने अपने घुडसवारों को गुप्त मार्ग से रवाना किया और स्वयं पैदल सेना के साथ अुस देहात में घात लगा कर बैठ गया। दूसरे दिन सबेरे अंग्रेज सेनानी नदी किनारे आ पहुँचा। अब केवल आध घटे की देरी थी और अंग्रेज चक्की के दो पाटों में पिस कर रह जाते।

किन्तु यही आध घंटा मौलवी के लिअे घातक बन गया। अुसकी योजना के तीन तेरह हो गये; क्यों कि, अुस के घुडसवारों ने बेवकूफी की। अुन्हों ने गुप्तरूप से जा कर अंग्रेजों की पिछाडी पर अेक मोर्चे की जगह हथिया ली थी; और शत्रु पर टूट पडने का मौका देख रहे थे; यह सब ठीक हुआ। किन्तु, मौलवी की स्पष्ट आज्ञा को तोड कर सामने दिखनेवाली कुछ असंरक्षित तोपों पर कब्जा करने के लिअे अपने दस्ते को आगे बढने की आज्ञा अुस के अधिकारीने दी! क्रांतिकारियों ने कुछ तोपें हथिया लीं; किन्तु अिस से शत्रु को अुन का पता लग गया, अंग्रेजों ने अुन पर प्रतिचढाअी की और तोपें छीन लीं। किन्तु अिस घटना से मौलवी का किया कराया धूल में मिल गया। पिछाडी पर क्रांतिकारियों की गतिविधि देख अंग्रेज सावधान हो गये और दोनों ओर के प्रतिकार के लिअे सिद्ध हुअे। अपने घुडसवारों की अिस बेवकूफी से मौलवी को अुस देहात को छोड कर अन्य अुपाय सोचना पडा।

जब होप ग्रँट क्रांतिकारियों को अवध से बाहर खदेडने के लिअे बारी से बोतौली तक दबा रहा था, अुसी समय १५ अप्रैल को रुअिये के किले के पास कडा झगडा ठन गया था। पाठकों को स्मरण होगा कि अंग्रेजों ने दोआब में अपनी सेना को दो हिस्सों में बाँट कर अुन के द्वारा क्रांतिकारियों को फतहगढ तक पहुँचा दिया था, अिस का ज़िक्र हम कर चुके हैं। अिसी तरह से चारों ओर से चढाअियाँ कर क्रांतिकारियों को अवध के बाहर अुत्तरी सीमातक धकेल देने का काम शुरू हो गया था। १ अप्रैल १८५८ के आसपास गोरे

सैनिकों की संख्या ११ हजार तक बढ़ गयी थी और साथ देशद्रोही सिक्खों का जोड़ भी था। पठान, पारिया (अछूत) तथा अन्य लोगों को भरती भी जल्दी से किया गया था; किन्तु आये दिन के युद्ध के अनुभवों से वे भी अब मँजे हुअे सैनिक बन गये थे। अूपर से देशी नरेशों की सेनामें विदेशी अंग्रेजों की सहायता के लिअे संग्राम में हाथ बँटा रही थीं। जिस तरह अनगिनत चुने हुअे काले गोरे सैनिकों की पल्टनें क्रांतिकारियों के हाथ से अवध छिनने के लिअे भरसक चेष्टा कर रही थीं। गत अध्याय में बताये के अनुसार लुगार्ड और डगलस को बिहार, होप ग्रँट को बारी और कोतोली तथा वॉल्पोल को गंगा के किनारे पर चढ़ाअी करने की आज्ञा हुअी थी। प्रधान सेनापति के नेतृत्व की पल्टनें तथा अन्य सभी सेना क्रांतिकारियों को ठेठ रुहेलखण्ड में धकेलने के लिअे जोरदार हमले कर रही थीं। अिस कार्यक्रम के अनुसार लखनअू से ५१ मीलोंपर होनेवाले रुअिया के किले पर चढ़ाअी करने के लिअे जनरल वॉल्पोल १५ अप्रैल को आया था।

रुअिया का किला भारी न था और किलेदार नरपतसिंह भी बलवान् न था। किन्तु अिस जमींदार ने अपना सर्वस्व स्वाधीनता की रणवेदी पर चढ़ाने की प्रतिज्ञा कर राष्ट्र के पुनरुद्धार के लिअे आगे पग धरा था। वॉल्पोलने समझा, केवल २५० सैनिकों के साथ दुर्ग की रक्षा करनेवाला नरपतसिंह, अद्यावत् (अपटुडेट) युद्ध-सामग्री से लैस अनगिनत अंग्रेज वाहिनी के सामने टिक न सकने के डर से, कब का नौ दो ग्यारह हो चुका होगा। किन्तु अुसी दिन रिहा किये हुअे अेक गोरे बंदीने आ कर वॉल्पोल को बताया-'नरपतसिंहने यह कठोर निश्चय किया है कि अेक बारही सही, अंग्रेजों से खूँखार लड़ाअी लड़ कर, अुन्हें अेक बार सिखाकर अेवं अिस तरह प्रतिशोध लेने पर किला छोड़ दिया जाय।'

हैं! यह छिछोरा जमींदार हमें हरायगा! क्रोध से खौल कर वॉल्पोल ने अपनी सेना को धावा बोल देने की आज्ञा दी। अंग्रेजों ने पहले से यह झूठी गप अुड़ायी थी कि नरपतसिंह के पास दो हजार आदमी हैं। क्यों कि, वॉल्पोल को पूरा भरोसा था कि वह नरपतसिंह को नाकों चने चबायगा और

तब अपनी विजय का महत्त्व बढ चढ कर बताने के लिअे शत्रु की संख्या फुला कर कहने के बिना कोअी चारा न था। वॉलपोल ने भी अिस गप में हॉ में हॉ मिला दी। बन्दी से रिहा गोरा कैदी यद्यपि दावे से कह रहा था कि नरपतसिंह की सेना २५० से अधिक नहीं है, अुस की आँखों देखी बात है, तब अुसे विश्वासघाती बताने में अंग्रेज न हिचकिचाये। किले के कच्चे परकोटे की ओर से चढायी करने के बदले गर्व के मद में अंग्रेजों ने प्रबल तथा सुरक्षित किलाबंदी पर सामने से हमला किया। तुरन्त सामने की झाडी से किलेवालोंने गोलियों की बौछारें कीं। शत्रु जब खाअी के पास आया तब तो गोलियों की धुआँधार वर्षा होने लगी। आगे बढे १५० सैनिकों से ४६ गोरे तो अेक साथ मर गये। अिस तरह किले की प्रबल कक्षा से होनेवाले तीखे प्रतिकार को देख वॉलपोल ने किले की कच्ची ओर से चढाअी करना तय किया। ब्रिटिश तोपें धडधडाने लगीं। किन्तु दुर्भाग्य से अुन के गोले किले में पडने के बदले ठीक पास होनेवाली ब्रिटिश सेना ही में गिरने लगे। शत्रु के साथ लडनेवाले कअी वीर सेनानी अब तक हो चुके होंगे, किन्तु अेकही समय, शत्रु तथा मित्र के साथ समान कुशलतासे तथा वीरता से लडनेवाले अिस महान् सेनापति वॉलपोल का सानी कभी न हुआ होगा, न आगे होगा, अुसकी अैसी बहादुरी देख, जनरल होप अुस की सहायता के लिअे दौड पडा किन्तु दुर्भाग्य! बेचारा क्रांतिकारियों की धधकती, असहनीय रणाग्निमें जल कर खाक हो गया। तब ग्रोव्ह भी पीछेहट की भाषा बोलने लगा। गडबड, अव्यवस्था असीम बढ गयी और हार कर, हाथ मलते हुअे, चुपचाप अंग्रेजी सेना लौट पडी।

जनरल होप की मृत्युसे भारत में अंग्रेजों को बडा धक्का पहूँचा। लॉर्ड कॅनिंग तथा सर कॅम्बेल ही नहीं, सारा अिंग्लैंड शोक से पागल हो गया। अुस समय के साहसी और अति शूर अंग्रेज अफसरों में होनेवाले अेक जनरल होप ग्रॅट की मृत्यु से समूचे ब्रिटिश राष्ट्र को अितना शोक हुआ, जितना सैंकडों सैनिकों के मारे जाने से भी न होता। रुअियावाले नरपतसिंह ने अपना वचन सत्य कर दिखाया। अेकबार अंग्रेजों को हार खिलाकर और 'प्रतिशोध' ले

कर, रहे सहे मुठ्ठीभर सैनिकों को साथ लेकर तथा स्वराज का झण्डा अंक संकित ऊँचा रखकर लड़ते लड़ते नरपतसिंह किलेसे निकल गया।

भिन्न भिन्न सेनाविभागों ने अवध के क्रांतिकारियों को पहले अवध की उत्तर में और फिर रुहेलखण्ड में खदेड़ने पर, स्वयं प्रधान सेनापतिने सब सेनाओं को मिलकर रुहेलखण्ड पर चढ़ाओ करने की सिद्धता की। अिस समय सब क्रांतिकारी नेता शाहजहाँपुर में जमा थे। कानपुरवाले नानासाहब तथा मौलवी अहमदशाह भी अुनमें थे। ब्रिटिश सेनापतिने अिन को पकड़ने की कभी चेष्टाअें विफल कर ये दोनों विजयी वीर पहले के समान निश्चिंत सब ओर घूम रहे थे। अब अिन सभी शत्रुओं को अेक साथ जाल में बाँधने-योग्य स्थानमें अुन्हें जमा हुअे देख, अपनी गातिविधि का तनिक भी सुराग कानो कान भी न देने के भरोसे, सर कॅम्बेलने समूचे शहर को सब ओरसे घेर लिया। दुर्भाग्य! पंछी कब के अुड़ गये थे। कॅम्बेल को अधिक दुःख अिस बात का था, कि भिन्न भिन्न सेनाओं से चारों ओरसे घिरे होने परभी ठीक अुसी की सेना की ओर से ये दोनों नेता छटक गये थे।

अिस तरह शाहजहाँपुर का पासा अुलटा पड़ा देख, कमसे कम बरेली को सीधा करने के लिअे कॅम्बेलने अुस ओर प्रयाण किया। चार तोपें और कुछ सैनिक शाहजहाँपुर में छोड़, १४ मओ को निकल, बरेली से अेक दिन के मुकाम पर आ पहुँचा। खान बहादुर खाँ अब भी वहाँ विराजमान था। दिल्ली और लखनऊ के पतन के बाद भी स्वाधीन अिस क्रांतिदल के नगर में झुण्ड के झुण्ड क्रांतिकारी प्रतिदिन आ पहुँचते थे। दिल्ली के शाहजादा मिर्जा फीरोजशाह, श्रीमंत नानासाहेब, मौलवी अहमदशाह, बेगम हजरत महल, श्रीमंत बाला-साहेब, राजा तेजसिंह तथा अन्य नेता रुहेलखण्डकी राजधानी बरेली में आये हुअे थे। और आनंद की बात थी, कि स्वाधीनता का झण्डा वहाँ शान से लहरा रहा था। अिसी से बरेली को नष्ट करने का बीड़ा कॅम्बेल ने अुठाया था। किन्तु क्रांतिकारियों के अभी प्रसिद्ध हुअे घोषणा-पत्र के अनुसार वृक्ष युद्ध की नीति पर चलने का निश्चय होने से क्रांति-नेताओं ने यह निश्चय किया

कि बरेली में किसी तरह लडाअी न चलायी जाय। बरेलीसे निकलकर, प्रांतभर में फैल, झूझने का अुन का अिरादा था, बरेली खाली करने की पूरी सिद्धता हो चुकी थी, अब केवल चल पडने की आज्ञा की राह थी। किन्तु वहाँ के शूर रुहेलों ने हठ किया, कि जब नीच शत्रु फिरंगी बरेली के अितना नजदीक आ पहुँचा है, तब अुसके लहू का घूंट पीये बिना बरेली नहीं छोडेंगे। क्यों कि, वे सिद्ध कर देना चाहते थे, कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता के पवित्र ध्येय के लिअे खून बहाने को वे कितने अुत्सुक और सिद्ध थे।

बरेली को घेरने के अिरादे से आयी अंग्रेजी सेना बहुतही प्रबल थी। अुस के पास बढिया तोपखाना हो कर अच्छी तोपें भी काफी थीं। अुसका रिसाला तथा पैदल सेना दोनों बहुत मजे हुअे तथा शस्त्रास्त्रों से सुसज्ज थे। और अिस सेना का नेतृत्व स्वय कॅम्बेल जैसा समर्थ सेनानी कर रहा था। अैसी सेना के आगे खान बहादुर खॉ की तोपों की अेक न चली। निदान, ५ मअी को क्रांतिकारियों ने अपनी तलवारें अुठायीं। ये तलवारें थीं अुन क्रांतिकारी हुतात्माओं की, जो विजय की आशा न होने की बात स्पष्ट जान कर—यहाँ तक कि, पराजय के लिअे तैयार हो कर—मैदान से न हटकर अपने परम पवित्र ध्येय पर दुर्दम्य तथा अटल निष्ठा रख कर, हॅसते हॅसते मौत को गले लगाने के लिअे अुठायी थीं। **पवित्र साधना के लिअे पतन ही स्वर्गद्वार खोलने की कुंजी है।** अुन की अटल श्रद्धा थी, स्वतंत्रता का ध्येय भी अुन अुदात्त ध्येयों में शामिल है जिनके लिअे मानव प्राणोंपर खेल जाय। अपनी तलवारें सॅवार कर ये घासी अंग्रेजों पर टूट पडे। अितनी फुर्ती और निडरता से अुन्हों ने यह हमाला किया कि, अिस दबाव से ब्रिटिश सैनिक भी अेक बार विचलित हो कर गडबडाये। ४२ वीं हाअिलंडर पलटन ने प्रतिकार का प्रयत्न किया, किन्तु जमदूत के समान विकराल भासनेवाले घासियों ने जोरदार मारकाट की और अुनमें से कुछ ब्रिटिशों की पिछाडी तक पहुँच गये। अुन वीरोंसे अेक भी लौट नहीं आया, ब्रिटिश सेना की गाजर—मूली काटते हुअे वे काम आये थे। वे लडते लडते खेत रहे किन्तु भूलकर भी शरण या पीछेहट की कल्पना अुन्हें छू तक न गयी।

अेक ही वीर था जो अंग्रेजी संगान का शिकार न हुआ। हैं ! यह कैसे ! ठहरो। स्वय ब्रिटिशों का सेनानी यहाँ आ रहा है। देखो, अबतक लाशों के ढेर में मृतक का बहाना कर पड़ा वीरवर अुस सेनापतिका गला घोंटने को झपट पड़ा ! हाय, हाय ! पास खड़े अेक 'रामसिंह' सिक्ख ने अुसी समय अुस वीर पर वार किया और वह सचमुच मृतक बन गया ! *

संसार के अितिहास में अमर पराक्रम से अंकित हुतात्मता के जो अिने गिने प्रसंग मिलते हैं अुनमें अैसा महान्, दिव्य और अुदात्त प्रसंग शायद ही पाया जायगा !!

सात मश्री को, अुन्हें पूरी तरह घेरने के ब्रिटिशों के सभी प्रयत्नों को विफल बनाकर सभी क्रांतिकारी, अपने नेता खानबहादुरखाँ के समेत, बरेली से कुशल से छटक गये और खाली पड़ी रुहेलखण्ड की राजधानी पर अंग्रेज बहादुरों ने कब्जा जमा लिया।

खानबहादुरखाँ के सहीसलामत छटक जाने से विषण्ण-मन सेनापति कॅम्बेल, बरेलीपर दखल होने से खुश, अपने खेमेमें बैठा था; तभी अेकाअेक चिल्लाहट हुअी 'मौलवी, मौलवी!'

शाहजहाँपुर में मौलवी अेक बड़ी साहसी और अति अद्भुत योजना बना रहा था। नाम (स्वामी) टालने के हेतु, वे नानासाहब और मौलवी अहमदशाह शाहजहाँपुर से यों ही कॅम्बेल को धोखा देकर थोड़े ही छटक गये थे ! शहर छोड़ने के पहले ही वहाँ के सरकारी कार्यालयों तथा अुपानों को अुजाड़ने की आज्ञा दे दी थी। अुन चतुर नेताओंने ठीक भाँप लिया था, कि शाहजहाँपुर में थोड़े सैनिक रख कर कॅम्बेल बरेली को अवश्य जायगा। अिसी से यह योजना तय हुअी थी, कि कॅम्बेल के बरेली पहुँचते ही अुस के प्रति शोध के लिअे मौलवी शाहजहाँपुर पर टूट पड़ें और वहाँ के सैनिकों का सफाया कर शहर लूटें। अंदाजा बिलकुल ठीक निकला। चार तोपें और कुछ

* रसेल की डायरी से

सैनिक वहाँ छोड कॅम्बेल बरेली चला गया था। सभी घुसबन्दी को पहले ही नानासाहब अुजाड चुके थे, जिस से अंग्रेजी सेना को खुली जगह में डेरा डालना पडा था। मअी ४ को अहमदशाह शाहजहाँपुर पर चढ गया। अुस का शत्रु अुस समय सुरक्षा के भ्रम में बेखबर पडा था। किन्तु आधी रात में किसी के मूर्ख हठ से मौलवी की सेना वहाँ से चार मील दूरीपर अटक गयी। और मौलवी की योजना टॉय टॉय फिस हो गयी। क्यों कि, अंग्रेजों के अेक हिंदी गुप्तचरने अिस गतिविधि पर पूरी नजर रख कर बडी चतुरता से सब समाचार शाहजहाँपुर के कर्नल हेलको सुना दिये। देशद्रोही हिंदी खुपिया से खबर मिलतेही ब्रिटिश सेनानीने अपने सैनिकों को नयी बनसी गढी में भेज दिया। अपना शिकार सावधान हो कर सुसंरक्षित ओट में पहुँच गया है यह देखकर भी मौलवीने चढाअी जारी रखी। शहर तथा किला हथिया कर वहाँ के लोगों से अपने खर्च के लिअे कर भी जमा किया। मॅलेसन भी मौलवी का अनुमोदन करते हुअे लिखता है:— 'मौलवी ने वही बरताव किया जो युरोप की युद्धनीति में किया जाता है।' पर अिस से क्या होता है? **स्वातंत्र्य-समर म समचे राष्ट्र की पराधीनता और अपमान को, अपने उष्ण रक्त को बहा कर धो डालने के लिअे जब कुछ अिने गिने महान् व्यक्ति आगे बढते हैं, तब तो अिन देशभक्त वीरों की सहायता स्वयंस्फूर्ति तथा स्वेच्छा से करने के लिअे आगे बढना जनता का कर्तव्य होता है।** शहर को हथियाने पर मौलवीने वहाँ आठ तोपें ला रखीं और अंग्रेजों की गढी पर दागीं।

७ मअी को यह खबर जब कॅम्बेल को मिली तब पहले तो वह चकित हुआ, किन्तु अैसे तो अुसे प्रसन्नताही हुअी। क्यों कि पहले मौलवी के छटक जाने से मौका हाथ से गँवाया था तभी से अुसके मन में कसक थी। अब मौलवी अपनी ही करतूत से अुसे वह मौका दे रहा था। तब पूरी तरह प्रबंध कर कॅम्बेल मौलवी को फाँसने चला। अब मौलवी के छटक जाने का कोअी चारा न रहा। मअी ११ से तीन दिनों तक घमासान और अविराम युद्ध मचा रहा। किसी तरह मौलवी का छुटकारा असम्भव बन गया। तब अिस अत्यंत जनप्रिय और महान् साहसी देशभक्त को बचाने

के लिये क्रांतिकारी नेता चारों ओर से अपनी अपनी सेनाओं के साथ जमा हुये। अवध की बेगम हजरत महल, महमदी नरेश मय्यनसाहब, दिल्ली के शाहजादा फीरोजशाह, कानपुर से नानासाहब—ये सब नेता १५ मयी के पहले शाहजहाँपुर में संकट में फँसे स्वाधीनता के झण्डे की रक्षा को दौड़ पड़े। जिस प्रकार सहायता पाकर दिनरात शत्रुसे जूझते हुये उसे हैरान कर, कॅम्बेल का व्यूह तोड़ कर, शाहजहाँपुर से मौलवी निकल गया। जिधर क्रांतिकारियों का प्रतिकार दूर जाने की बात सुनकर, मौलवी को यों पकड़ लेंगे जिस विश्वास से, कॅम्बेल ने अपनी सेना को बाँट कर भिन्न भिन्न दिशाओं में पहले ही भेज दिया था। किन्तु अपने शत्रु की आशाओं तथा योजनाओं की धज्जियाँ उड़ा कर यह मौलवी छटक गया, किन्तु कहाँ? वह अवध ही में घुसा। वही अवध! जहाँ सालभर की अनथक चेष्टा तथा रक्तपात, और अत्यंत कष्ट से अंग्रेज क्रांतिकारियों से मुक्त करने में सफल हुये थे। कॅम्बेल ने अवध पर दखल किया था और मौलवीने रुहेलखण्ड पर। अब सर कॅम्बेल रुहेलखण्ड जीतता है तो यह मौलवी चक्कर काट कर फिर से अवध को हथियाता है!

जिस प्रकार युद्ध तथा चीमटपन से प्रतिकार कर मौलवीने विदेशी शत्रु की नाकों दम कर दिया। और यह लड़ाकी, अपने करोड़ों भाभियों तथा राष्ट्र की शान के लिये उसने लड़ी।

मौलवी की जिस भयंकर गतिविधि को रोक जिस झगड़े का अन्त कर देने के विषय में अंग्रेजी शासन निराश होने लगा। जिस दशा में है कोभी उनकी सहायता करनेवाला? जिस क्रांतिनेता को काटने की हिम्मत किस की तलवार में है; जब कि कॅम्बेल की तलवार उसके सामने भोथरी पड़ गयी है? अब जिस मौलवी को किस रामबाण उपाय से मारा जाय?

रामबाण उपाय? अंग्रेजो! तुम चिंता न करो! क्या आजतक कभी भार हिंदुस्थान की ब्रिटिश सत्ता के शत्रुओं को नष्ट करने में अंग्रेजी खड्ग

अिसी तरह लाचार और अयशस्वी नहीं हुआ है ? बस तो, कठिन तथा निराशा के प्रसंगों में जो बचा सकते थे और जिन्हों ने बचाया वे ही अब अिंग्लैंड को बचाने के लिअे आगे आ जायेंगे। हिंदुस्थान की अिस ध्येयमूर्ति को काट डालने के लिअे अंग्रेज़ों की तलवार मोथरी पडी है, वहाँ विश्वासघात के खंजर को काम सफल करने दो!

अवध में फिरसे आ जाने पर फिरंगी का अधिक से अधिक तथा हठीला प्रतिकार करने का मौलवी ने निश्चय किया। अुस ने सोचा, कि यह जो तूफान अब अवध में बरपानेवाला था, जिस से अंग्रेजों को निकाल बाहर कर सकेगा, यदि पोवेन नरेश अुसकी छोटीसी सेना मौलवी को सौंप देगा, तो अुसमें सफल होगा। अिस हेतुसे पोवेन नरेश के पास, बेगम की मुद्रा से अंकित, पत्र भेजा। यह मामूली राजा मोटा और स्थूल बदनवाला, काम में सुस्त और मंद, बुद्धिसे कुंद और बुद्दू, स्वातंत्र्य समर और समरांगण का अुल्लेख पढते ही चौंक पडा। किन्तु जितना कायर अुतना ही कपटी होने से अुसने अुत्तर में लिखा कि वह मौलवी साहबसे स्वयं मिलना चाहता है। अिस निमंत्रण के अनुसार मौलवी अुसे मिलने चला। वहाँ पहुँचने पर अुस के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब अुसने देखा कि गाँव के सब दरवाजे बंद है और परकोटे पर सशस्त्र सैनिक अुस की रक्षा कर रहे हैं; राजा जगन्नाथसिंह अुन के बीच खडा है और अुस का भाअी अुस के बगल में। यद्यपि मौलवी अिस का मतलब ताड गया, फिर भी निडरता से अुस ने राजासे चर्चा शुरू की। अुस निर्भीक हृदय की, जिस ने फिरंगी को देशनिकाला देने या स्वयं शहीद का मुकुट पहने की प्रतिज्ञा की थी, वक्तृता का असर परकोटे पर खडे अुस नीच के मन पर क्यों कर होता? जब यह स्पष्ट हो गया कि वह कमीना खुशी से दरवाजा नहीं खोलेगा तब मौलवीने अपने महावत को आज्ञा दी कि जिस हाथीपर वह बैठा था अुस की धडक से द्वार तुडवाया जाय। और अेक धडक, और द्वार टूटने को था। किन्तु राजा के भाअीने निशाना ताका और महान् मौलवी अहमदशाह अुस नीच कायर के हाथों मारा गया। वह स्थूल राजा और अुस का भाअी तुरन्त दरवाजे के बाहर

आये, मौलवी का सिर तोड लिया, अुसे अेक कपडे में लपेटा और १२ मील पर होनेवाले शाहजहाँपुर की ब्रिटिश छावनी को दौड गया। वहाँ गोरे अधिकारी खाने के कमरे में खाना खा रहे थे। राजा अदर गया, अुसने अपने बोझ को, जिसे वह तोहफा समझ रहा था, खोला और गोरे अफसरों के पाँवों के पास अुस सिर को, जिस से अब भी रक्त चू रहा था, फेंक दिया। दूसरे दिन अिन सभ्य अंग्रेजों ने, अुन के साथ, अन्ततक, वीरोचित पराक्रम से जूझने वाले कट्टर शत्रु का सिर चौकी के द्वारपर लटका रखा और पोवेन नरेश को अिस घणित राष्ट्रद्रोही करतूतपर ५० हजार रुपयों का पारितोषिक दिया।

मौलवी अहमदशाह की मृत्यु के समाचार अिंग्लैंड पहुँचे तब 'अुत्तर भारत का ब्रिटिशों का भयंकर शत्रु खतम हुआ' कह कर अंग्रेजों ने संतोष की साँस ली।* मौलवी कद में अूँचा और अिकहरे बदन का होने पर भी मजबूत और गठा हुआ था। आँखें बडी और भेदक तथा भौंहें काली थीं, नाक नोंकदार तथा चेहरा भरा हुआ था। अिस वीर मुसलमान की जीवनीसे यही पाठ मिलता है, कि अिस्लाम के असूलों पर विश्वास तथा भारतभूमि पर गहरी अटल भक्ति-दोनों में न बेमेल है, न वैर, अेक मुसलमान असाधारण धर्मप्रेम के रहते हुअे भी-नहीं बल्कि अुसी के कारण-साथ साथ भारत का लाडला अत्यंत श्रेष्ठ नेता हो सकता है, जो अपना सब कुछ अपनी मातृभूमि पर न्योछावर अिस लिअे करता है, कि संसार में अेक स्वतंत्र और स्वाधीन राष्ट्र होने के नाते सम्मान प्राप्त करे। सच्चा औमानदार मुसलमान अपनी मातृभूमि में पैदा होने और अुस के लिअे कट जाने में गर्व अनुभव करेगा।

क्रांतिकारी नेताओं के गुणों का वर्णन, अतिशयोक्तिसे तो असंभव किन्तु वास्तविक और ठीक तरह करने में भी टालमटूल करनेवाला अंग्रेज अितिहासकार मॅलेसन, भावना के बहाव में अंग्रेज होने की बात भूल कर, लिखता है-'मौलवी अहमदशाह अेक असाधारण व्यक्ति था। विद्रोह के काल में अुस के सैनिक नेतृत्व की योग्यता का परिचय कभी प्रसंगों में मिला है,

* होम्स कृत हिस्टरी ऑफ दि अिंडियन म्यूटिनी (पृ ५९१)

जिस में अिस अध्याय में वर्णित के जोड का अकाट्य प्रमाण दूसरा नहीं है। ...सर कॅम्बेल को रण मैदान में दो बार मुँह की खिलाने की शेखी मौलवी के बिना कोअी नहीं कर सकता...अिस तरह फैजाबादवाले मौलवी अहमद् अुल्ला की मृत्यु हुअी। अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता अन्यायसे छिन जाने पर योजनापूर्वक स्वाधीनता के लिअे लडनेवाला—देशभक्त की यह परिभाषा ठीक हो तो—मौलवी अहमदशाह निस्संदेह सच्चा देशभक्त था। अुसने अपनी तलवार किसी की अकारण हत्यासे रंगने न दी थी, अुसने हत्यारे पर दया न की। वह वीरता से लडा, सभ्यता और जीवट से समरांगण में अुन विदेशियोंसे लडा, जिन्होंने अुस के देश को कब्जा कर लिया था। संसार के सभी राष्ट्र के सच्चे वीर अुसकी स्मृति का सम्मान करेंगे, अैसी अुस की योग्यता थी। *

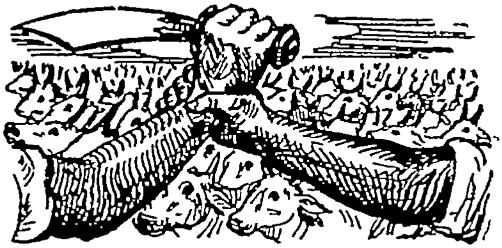

* मॅलेसन कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ४, पृ. ३८१.

अध्याय १० वाँ

रानी लक्ष्मीबाअी

“क्या, मैं झाँसी छोड़ूँ ?—नहीं छोड़ूँगी। किसी की हिम्मत हो तो सामना ले; मेरी झाँसी नहीं दूँगी!!” झाँसी की समरलक्ष्मी के गलेसे अुस का स्वातंत्र्य–कौस्तुभ कौन छिनने की धृष्टता करेगा? अिस लोक में अुद्दण्ड बने सारे राक्षस आ जायें या मृत्यु की यंत्रणाओं का समूचा संभार साथ लेकर साक्षात् जमराज सामने आ खड़े हों, कोअी भी अुस स्वातंत्र्य–कौस्तुभ को छिन नहीं सकेगा। लक्ष्मा के शरीर में जब तक लहू का अेक बिंदु शेष हो तब तक स्वाधीनता की कौस्तुभमणि अुस से कभी अलग नहीं हो सकता! और लहू की अन्तिम बूँद भी सूख जायगी या अुस के शरीर से चू पड़ेगी, तब भी स्वाधीनता की कौस्तुभमणि अुस के कंठ में पड़ी रहेगी और वह धधकी हुअी अग्निज्वालाओंपर आरूढ होकर परलोकको प्रयाण करेगी, अुस समय हे नराधमो! अुस लपलपाती अग्निज्वाला में तुम खाक हो जाओगे। और फिर तुम महारानी लक्ष्मीबाअी को अुस के कौस्तुभ से—स्वाधीनता की मणि से—कैसे वंचित कर पाओगे? जहाँ लक्ष्मी वहाँ स्वाधीनता! हम फिर अेक बार स्पष्ट करते हैं, अिन दोनों को अेक दूसरे से वंचित कभी नहीं किया जा सकेगा। झाँसी, वहाँ का राजप्रासाद, जरीपटका (मराठी झण्डा), सिंहासन, अुस के स्त्री–धन का जेवर और स्वाधीनतामणि के साथ झाँसीवाली लक्ष्मी या

तो अपने सिंहासनपर स्वतन्त्र ही रहेंगे या यज्ञाग्नि में जल कर भस्मसात् हो जायेंगे !

'नहीं; मेरा झाँसी नहीं दूँगी, जिस की हिम्मत हो वह आजमा ले।' अिस आव्हान के साथ झाँसी की शूर राणी अंग्रेजों से लोहा लेने को सिद्ध हुआी। और समूचे बुंदेलखण्ड में आगामी क्रांतिके तूफान के लच्छन बहुत गहरे और भयकर दिखायी दिये। सागर, नैगाँव, बाँदा, बानापुर, शाहगढ और कालपी में प्रतिशोध की फेनिल लहरें अेक दूसरी से होड लगा रही थीं। अब तक लक्ष्मी की स्वाधीनता-कौस्तुभने अुस की प्रजा को शान्त, सुखी, और सुव्यवस्थित रखा था। किन्तु डलहौसी जब से अुसे चुरा ले गया तब जनता का भावसागर तल से बिलोडा गया। किन्तु बहुत जल्द लक्ष्मीने अपने बलसे चोर के हाथों से वह छीन लिया, लहरोंपर मात कर तूफान पर काबू किया और जनता के भावों की अुभाड को मर्यादा में रखा। स्वाधीनता का रत्न अुसने अपने हृदय के पास रखा और विजयभाव से राज कर रही थी। युद्ध देवी रानी लक्ष्मी का वह भयकर रूप अब और कुछ हो गया है; कमलासना लक्ष्मी की कोमलताने अुस का स्थान लिया है। अब तक के अुस के विकराल रूपसे आँखें चौंधिया जाती थीं, क्यों कि, वह सिर से पैरतक शस्त्रों से सुसज्जित थी, अब फिर से कमल के रग के कपडों से लैस छबेली मालूम पडती थी।

फिर से जब वह झाँसी का पवित्र सिंहासन स्वाधीनता की सुंदरता से विभूषित हुआ तब से प्रजा में व्यवस्था, शान्ति और आनन्द का बसेरा हो गया। अिस समय रानी लक्ष्मी का दैनंदिन कार्यक्रम यों बखाना गया है:- 'रानी लक्ष्मीबाअी तडके पाँच बजे अुठ कर अित्र से सुगंधित जल से नहाती थी। वस्त्र पहनने के बाद-और साधारण तया वह सफेद चंदेरी साडी ही पसद करती थी-पूजा पाठ के लिअे बैठ जाती। विधवा होने पर भी वपन न करने के लिअे वह प्रायश्चित्तार्घ्य देती; फिर तुलसी वृंदावनमें तुलसी की पूजा करती; अुस के बाद पार्थिव-पूजा होती। तब दरबारी सगीतज्ञ साम गायन करते। फिर कथावाचक कथा सुनाते। समाप्तिपर सरदार और माण्डलिक वदना करते।

प्रतिदिन सबेरे असके ७५० दरबारियों में अेकाध न दिखायी देता तो, स्मरण शक्ति तीक्ष्ण होनसे, दूसरे दिन अुस के अुपस्थित होनेपर पूछताछ करती। पूजापाठ और देवतार्चन समाप्त होनेपर कलेवा करतीं। विशेष स्वयं कार्य न हो, तो नास्ते के बाद् अेक घण्टा आराम करतीं। फिर सबेरे भेंट में आयीं वस्तुअें चांदी की तश्तरियों में रेशमी वस्रों से ढँकी अुस के सामने रखीं जातीं। अुन में से पसन्द चीजों को वे स्वीकार करतीं, जो अुन के नौकरों में वितरण करने के लिअे कोठीवाले को दी जातीं। दो पहर ३ बजे पुरुष-वेश में दरबार को जातीं। पायजामा, गहरे नीलरंग का कोट, अेक टोपी और अुसपर सुंदर पगडी बांधतीं, कमर में बूटे का काम किया हुआ दुप्पटा पतली कमर में बांधती, जिस में रत्नजडित तलवार लटकती थी। जिस वेश में यह गोरे रंग की महिला प्रत्यक्ष गौरी देवी सी दिखायी देती। कभी कभी स्त्रीवेश भी पहनतीं। पति की मृत्यु के बाद् नथनी या कोअी सौभाग्य अलंकार वे नहीं पहनती थीं। कलाअी में हीरे की चमडियाँ, गले में मोतियों का हार, और छोटी अुँगली में हीरे की अँगूठी रहती। बस, येही अुनके आभूषण थे। बालों का जूडा बाँधतीं। सफेद साडी और सादी सफेद अंगी पहनतीं। जिस तरह कभी पुरुषवेश तथा कभी स्त्रीवेश में वे दरबार में बैठतीं। दरबारी लोक अुन्हें प्रत्यक्ष देख नहीं पाते थे, क्यों कि, अुनके बैठने का कमरा अलग हो कर अुस का द्वार दरबार में खुलता था। सोने के वेलबूटे से अंकित अुस द्वार पर कढा हुआ सोने के रंग का चिक पडा रहता। अुस कमर में मुलायम गद्दीपर, मुलायम तकिये से अुटंग कर वे बैठ जातीं। द्वार पर हमेशा सोने-चाँदी के मुलम्मे के सोटे थामे हुअे दो वेत्रधारी खडे रहते। लक्ष्मणराव दिवानजी अुस कमरे के सम्मुख महत्त्वपूर्ण कागजों को लेकर खडे रहते और अुन के पास दरबार का आमात्य बैठता था। बुद्धिवान् तथा समझदार होने के कारण हर बात के मर्म को वे सहज् जान लेतीं और अुन के निर्णय स्पष्ट और थोडे में किन्तु निश्चित रहते। कभी कभी वे स्वयं आज्ञाअें लिखतीं। न्यायदान के काम में वे बहुत सावधान रहतीं और मुल्की और फौजदारी कामों का निर्णय बडी योग्यता के साथ करतीं। रानीसाहब भक्तिभावसे

महालक्ष्मी के दर्शन को जातीं। यह मंदिर अेक तालाव के किनारे था, जिस में कमल खिले रहते। हर मंगल तथा शुक्रवार को रानी मंदिर को जातीं। अेक बार, मंदिर से लौटकर दक्षिण दरवाजे से रानी आ रही थीं तब देखा कि हजारों भिखारियों ने अेक रास्ता रोका है और गडबडी मचा रहे हैं। तब रानी ने मंत्री लक्ष्मणराव पांडे से अिस का कारण पूछा। अुसने पता लगा कर बताया कि 'ये लोग बहुत गरीब हैं और अति शीत के कारण दुःखी है; तथा रानी से प्रार्थना करते हैं।' दयालु रानी को बडा दुख हुआ; अुन्होंने आज्ञा दी कि चौथे दिन सब भिखारियों को अिकठ्ठा कर हर अेक को अेक मोटा कुर्ता, अेक टोपी और अेक कम्बल दिया जाय। शहर के सारे दर्जी कुर्ता, टोपी बनाने के काम में लगे। निश्चित दिन को राजमहल के सामने, सब भिखारी—जिन में गरीबों को भी शामिल किया गया था—जमा हुअे। रानी ने अपने हाथों कपडे बाँट कर सब को संतोषित किया।...नत्थे खाँ के साथ की लडाअी में घायलों के घावों को धोने के समय रानी स्वयं अुपस्थित रहने का हठ करती। अपने सुख दुखों के विषय में अिस प्रकार रानी लक्ष्मीबाअी को ध्यान देते देखकर ही अुन के घाव अच्छे होते; अुन्हें अपने कर्तव्य-पालन का पूरा प्रतिदान मिल जाता।..... ...रानी लक्ष्मीबाअी जब महालक्ष्मी के मंदिर में जाने निकलती अुस समय की शोभा तो अवर्णनीय होती थी। कभी रानी पालकी में या कभी घोडे पर से जातीं, जब पुरुष वेश में होती थीं.........सुंदर साफे का छोर पीठ पर लहराता था, जो रानी को खूब फबता था। अुन के आगे राजध्वज, मारू बाजों के साथ, चलता। **अिस ध्वज के पीछे दो सौ गोरे घुडसवार रहते।** रानी के आगे पीछे सौ सौ सवार चलते थे।.... कभी कभी सारी सेना जलूस में रानी के साथ निकलती ....'... रानी के निकलते ही झाँसी के किले का नगाडा और सहनाअी मधुर-ध्वनि से बजने लगतीं .... ।*

---

* दत्तात्रय बलवंत पारसनीसकृत 'रानी लक्ष्मीबाअी का चरित्र' पृ. १४७-१५१.

अब स्वराज का नगाड़ा गंभीर घोष कर रहा था। गत ११ महीनों से जिस गमकनेवाले गंभीर घोष ने सारे बुंदेलखण्ड का वातावरण, जो अब स्वाधीनता के तेज से चमक रहा था, भर दिया था, जिस नगाड़े का साथ काल्पी व तात्या टोपे की तोपें दे रही थीं। जिस तरह, विंध्य से जमनातक ब्रिटिश सत्ता का कोजी चिन्ह नहीं दीख पड़ता था—कोजी अुस का नाम नहीं लेता था। ब्राह्मण, मौलवी, सरदार, जागीरदार, सैनिक, पुलीस, राजा, राव, साहुकार, व्यापारी लोग—हर किसी की बस, अेक ही माँग थी—स्वाधीनता! और जिन हजारों आवाजों को अेक सुर में मिलाने के लिअे झाँसी की रानी लक्ष्मीबाजी ने अपने मीठे किन्तु दृढ स्वर में कहा—'मेरा झाँसी नहीं मिल सकता, जिस की हिम्मत हो आजमा ले।'

संसार ने अैसे दृढ 'नहीं' को बहुत कम सुना है। अब तक अुदार और महामना भारत से बारंबार यही ध्वनि सुनायी पड़ती 'मैं दूँगा।' किन्तु आज यह विलक्षण चमत्कार हुआ—दृढ ध्वनि तेजस्वी मुख से निकली 'मैं नहीं दूँगी! मेरा झाँसी नहीं दूँगी।'

हे भारतमाता! काश; तुम्हारे रोम रोम से यह ध्वनि गूँजती! जिस अनपेक्षित दृढता से फिरंगी चौंक पड़ा और ५००० सैनिकों तथा काफी तोपों के साथ जिस विद्रोह की गहराजी नापने और अुसे शान्त करने के लिअे सर ह्यू रोज चल पड़ा।

१८५८ के प्रारंभ में, हिमालय से विंध्य तक के समूचे प्रदेश को क्रांतिकारियों के हाथों से फिर से जीतने की सैनिक योजना अंग्रेजों ने बनायी थी। यह प्रदेश दो हिस्सों में बाँटा गया और हर अेक पर धावा करने प्रबल सेना भेजी गयी। सर कॅम्बेल जिलाहाबाद से गंगा जमना की अुत्तर की ओर अपनी बड़ी सेना के साथ बढ़ा; दोआब जीता, गंगापार कर लखनअू को मटियामेट किया; बिहार के विद्रोह को दबाया; बनारस के आसपास तथा अवध में बागियों को हराया, सब क्रांतिकारियों को रुहेलखण्ड में, जहाँ अन्तिम मुठभेड़ें हुआी, भगाया और अुत्तर के प्रदेश को क्रांतिकारियों से मुक्त किया, आदि बातों का

अुल्लेख हम पिछले अध्यायों में कर चुके है। जहाँ कॅम्बेल जमना से अुत्तर में हिमालय की ओर बढ रहा था, वहाँ जमना के दक्षिण में विंध्य तक का प्रदेश जीतने को सर ह्यू रोज बढा। अुत्तर में सिक्खों, गोरखों तथा कुछ हिंदी सैनिकों और जमींदारों ने कॅम्बेल की सहायता की। अुसी तरह दक्षिण में ह्यू रोज को हैदराबाद, भोपाल आदि रियासतों की सहायता थी। और खास कर अुसे मद्रास, बम्बअी तथा हैदराबाद की पलटनों की महत्त्वपूर्ण सहायता थी। हिंदी सेना से कुछ विभाग ह्यू रोज को मिले थे अिस बात का अुल्लेख अनावश्यक है। क्यों कि, ह्यू रोज को विजय मिली यह कहने भर से स्पष्ट है कि हिंदी सैनिकों की सहायता से ही यह हो सका। **अकेले अंग्रेज अपने बल पर विजय पाने की बात,** संसार की अन्य अत्यंत असम्भव बातों के समान, **असम्भव है**। दक्षिण विभाग को जीतने के लिअे जमा की गयी देशद्रोहियों की हिंदी सेना को दो हिस्सों में बाँटा गया। अेक ब्रिगेडिअर विटलॉक के मातहत रखा गया, जो जबलपुर से बढे और रास्ते में सब प्रदेश को जीतते हुअे ह्यू रोज को आ मिले। दूसरा हिस्सा स्वयं रोज के मातहत था। जबलपुर से विटलॉक चलेगा, तभी रोज भी मअू से चलेगा और झाँसी और कालपी होते हुअे आगे बढेगा। निश्चित योजना के अनुसार ६ जनवरी १८५८ को ह्यू रोज मअू से निकला। अेक छोटी लडाअी के बाद अुसने रायगढ जीता। वहाँ से सागर गया, क्रान्तिकारियों ने बंदी बनाये गोरों को मुक्त किया, और दक्षिण जा कर १० मार्च को बानापुर ले लिया और चंदेरी का प्रसिद्ध किला जीत लिया। २० मार्च को झाँसी से १४ मीलोंपर अिस विजयी अंग्रेज सेनाने डेरा डाला। अिन मुठभेडों के कारण नर्मदा से अुत्तर में देशभर में फैले क्रांतिकारी दस्तों की अब झाँसी में भीड थी और अिसी से क्रांतिकारियों के अिस गढ को नष्टभ्रष्ट करने के लिअे रोज फुर्तीसे झाँसी को चल पडा। किन्तु लॉर्ड कॅनिंग तथा कॅम्बेलने अुसे आज्ञा दी कि पहले वह चरखारी नरेश की सहायता करे, जो तात्या टोपे से घिरा था। अिस आज्ञापर वह अमल करता तो तो झाँसी को नष्टभ्रष्ट करने की अुस की योजना बेकार हो जाती। अब वह क्या करे? बडी दुविधा में पडा। अिस बाँकी परिस्थिति में

झाँसी पर चढाओी करने में अंग्रेजी राज का हित था; तब हिंदुस्थान के सबसे बड़े दो अधिकारियों की आज्ञा न मानने का पूरा दायित्व सर रॉबर्ट हॅमिल्टनने अपने सिर ले लिया और अपने राष्ट्र के अुच्च हित का काम करने से गर्वित ब्रिटिश सेना झाँसी की ओर बढी; अुसे विजय की आशा थी। किन्तु झाँसी की भूमि पर पग धरते ही अुसे बहुत कष्ट अुठाने पड़े। क्यों कि, अचरज के साथ यह मालूम हुआ कि रानी की आज्ञा से झाँसी के आसपास का सभी प्रदेश अिस लिअे अुजाड दिया गया था, कि शत्रु को किसी प्रकार की रसद न मिले। खेत में अनाज का अेक भी भुट्टा नहीं, घास का तिनका नहीं छाया के लिअे पेड भी नहीं! नेदर्लंड्स् के विलियम ऑफ ऑरेंज ने, सेनवाले शत्रु के हाथ में देश जाने की अपेक्षा, सागर के पानी को अन्दर लेना पसंद किया था; अिधर झाँसीवाली रानीने अुसी नीति का सहारा लिया।

अब भी वही गर्जन रानी की ध्वनि में है, क्रोध से अुस की आँखों से चिनगारियाँ निकल रही हैं। बानापुर नरेश मर्दानसिंह, क्रोध भरा शाहगढ का राजा, जान हथेलीपर लिअे शूर ठाकुर, बुंदेलखण्ड के सरदार—देश की स्वाधीनता के लिअे डटे अुनके अनुयायी—यह सभी ज्वालाग्राही सामग्री झाँसी में क्रोध से जल रही थी। क्रोध की लपटें 'जरीपटका' (राजध्वज) तक अूँची अुठती हैं—और अिन सब में निखरती है वह तेज की मूर्ती! अुपर्युक्त सभी लोगों की शक्ति तथा किलाबंदियों, ज्वालाओं तथा जरीपटका का बल अुस अेक देवी में केन्द्रित है। वह सब की स्फूर्ति—देवता है। रानी में चेतनाओंन आसरा लिया है। वह स्वराज की तेजस्वी प्रत्यक्ष मूर्ति है, स्वाधीनता की केन्द्रकल्पना है; अुस का अवतार है।

सब भूमि अुजड़ी हुअी पड़ी है फिर भी अंग्रेज सेना झाँसी की ओर आगे बढी। बलिहारी है। शिंदे तथा टेहरी नरेश की—जिन्हों ने 'अंग्रेज मित्रा' के कारण सारी सेना को अिस लड़ाअी में घास, अींधन और फलमेवे पर्याप्तता से अधिक दे कर, सहायता की।* अब की शिंदे

* मॅलेसन कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ५, पृ ११०

और टिहरी नरेश फिरंगी की सहायता कर रहे हैं, विश्वासघात और उद्दण्डता का बाजार गर्म है; अपनों और परायों ने धोखा दिया है, अब तुम्हारे लिअे विजय की कोअी आशा नहीं। तो फिर अंग्रेजों की शरण लेकर सर्वनाश से क्यों नहीं बचतीं? क्या शरण? और झाँसीवाली रानी के लिअे! मंत्री लक्ष्मणराव, मोरोपंत तांबे, शूर ठाकुरो और सरदारो तुम सब स्वाधीनता के वीर हो, तुम शरण माँगो तो बच जाओगे; लडोगे तो मर जाओगे। क्या पसंद करते हो? झाँसी ने सहस्त्रों मुखों से दृढता से गीता के शब्दों में अुत्तर दिया—' जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः और सम्भावितस्य चाऽकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते— जो जन्म पाता है वह अवश्य मरता है, तो फिर व्यर्थ में कीर्ति को कलंकित क्यों किया जाय?

सो, देश की प्रतिष्ठा के लिअे अंग्रेजों से भिडना तय हुआ। तब झाँसी और झाँसी की ' लक्ष्मी ' दिनरात युद्ध की सिद्धता में लगी रहीं। वीर अुस की सेना में काफी थे; युद्ध की शिक्षा पाये हुअे बहुत थोडे थे। अनुशासन का अभाव स्पष्ट दीख पडता था। फिर भी स्वयं रानी ने सब सेना का नेतृत्व किया। हर बुर्ज तथा द्वार पर, वह घूमती हुअी नजर आती। तोपों की कुर्सियाँ बनने और अुन्हें मोर्चेपर लगाने की जगह पर वह स्वयं अुपस्थित थी। चतुर तोपचियों का चुनाव करने में वह मगन थी। और निराश हृदयों में भी वीरता के प्राण फूँकती हुअी वह हर जगह दिखायी देती थी। झाँसी के पण्डित देश की स्वाधीनता के लिअे प्रार्थनाअें चला रहे थे। वहाँ के मंदिरों ने रण में जानेवाले सैनिकों को आशीर्वाद दिये और घायल हो जाने पर अुन की शुश्रुषा की। वहाँ के कारीगर गोलाबारूद और युद्ध की अन्य आवश्यक चीजें बनाने में व्यस्त थे। झाँसीवालों ने तोपों के काम में आदमी दिये, बंदूकें भरने का काम किया, और तलवारें पैनी कीं। वहाँ की स्त्रियों ने गोलाबारूद पहुँचायी, तोपों की कुर्सियाँ बनायीं, रसद पहुँचायी।* २३ की

---

* स्त्रियाँ तोपखाने में तथा गोलाबारूद पहुँचाने आदि कामों में व्यस्त दिखायी दीं—सर ह्यू रोज.

रातको, शहरभर में युद्ध के नगाड़े बजने लगे और किले से बीच में मशालें चमकती दिखायी पड़ीं। महरियों ने कुछ गोलियाँ भी चलायीं। २४ का सबेरा हुआ। अब तनिक भी देरी नहीं होनी चाहिये! 'घनगर्ज' तोप ने अपना काम शुरू किया। अुस की गर्जन बड़ी भयंकर थी।

झाँसी के घेरे की प्रारंभिक दशा का 'आँखों देखा' विवरण हम नीचे देते हैं।

२५ दिनांक से बराबर भिड़न्त शुरू हुअी। अंग्रेजी तोपें दिन रात आग बरसाती थीं। रातमें किले और शहर में गोले पड़ने लगे। दृश्य भयंकर था। पचास या साठ पौंड का गोला टेनिस की गेंद की तरह, किन्तु अंगार के समान, दीख पड़ता था। दिनमें धूप के कारण ये गोले स्पष्ट न दिखते थे किन्तु रातमें वे खूब चमकते और रात को भयानक बना देते। २६ के दोपहर में दक्षिणद्वार की हमारी तोपें अंग्रेजों ने निकम्मी कर दीं और अेक भी व्यक्ति वहाँ न टिक पाता था। सब गलितधैर्य हो गये थे। तब पश्चिमद्वार के तोपचीने अुसी की तोप का मुँह घुमाया और अंग्रेजों पर गोले फेंकने लगा। तीसरे गोले से अंग्रेजों का बढ़िया तोपची मारा गया और तोप बेकार हुअी। जिस से रानी बहुत प्रसन्न हुअी और अपने अुस तोपची को चाँदी का कड़ा अिनाम में दे दिया। अुस का नाम था गुलाम गोशखान। पहले, तात्ये टोपे के साथ हुअे युद्ध में भी अुसने अैसाही काम किया था।"

"पाँचवें या छठवें दिन अुसी तरह युद्ध हुआ। चार पाँच घंटों तक रानी की तोपोंने अच्छा काम किया और अंग्रेजों की भारी हानि हुअी। अुन की बहुत तोपें भी कुछ समय के लिअे बंद हुअीं। फिर अंग्रेजी तोपों की मार भीषण हुअी और रानी की तोपें बंद पड़ने लगीं; लोगों का दिल बैठने लगा। सातवें दिन, सूर्यास्त के समय, चाअें की तोप निकम्मी हुअी। कोअी वहाँ खड़ा नहीं रह सकता था। अंग्रेजों के मोर्चे से मुँडेर ढह पड़ी। किन्तु रात में कंबलों में छिपकर ग्यारह राज वहाँ लाये गये और तड़के के पहले से मुँडेर का काम पूरा हो गया। अंग्रेजोंने सबेरे दाँतों तले अुँगली दबायी, जब अुन्होंने देखा कि छेद ठीक

हो गया है और झाँसीवाली की तोप ठीक काम कर रही है। अिस बार अंग्रेज बेखबर–से थे, अुन को बहुत हानि अुठानी पडी और अुन की तोपें लम्बे अरसे तक निकम्मी हो गयीं।

"आठवें दिन सबेरे शंकर किलेपर अंग्रेजों ने हमला किया। अंग्रेजों के पास बडी मूल्यवान् तथा आधुनिक दूरबीनें थीं, जिन की सहायता से किले के जलाशय पर तोपों से आग बरसान लगे। पानी के लिअे ६।७ आदमियों से चार मारे गये, बचे हुअे बरतन वहीं फेंक भागे। चार घंटे तक पानी न मिलने से बडा कष्ट हुआ। अब पश्चिम तथा दक्षिण द्वारों से गोलों की वर्षा कर शंकर किले पर निशाना मारनेवाली अंग्रेजी तोपों को बेकार कर दिया। तब जाकर कहीं नहाने पीने को पानी मिला। अिमली कुञ्ज में बारूद का कारखाना था। दो मन बारूद बन जाने पर वहाँ से अुठा कर तहखाने में भेज दी जाती। अुस कारखाने पर अेक तोप का गोला पडा और ३० आदमी और ८ औरतें समाप्त। अुस दिन घमासान युद्ध हुआ। वीरगर्जन का बडा शोर होता था, तोपों और बंदूकों की खडखडाहट जारी थी, तुरहियाँ और करनाल जोरोंसे हर जगह बजते थे। धूल और धुअें से आकाश भर गया था। बुर्जों के कअी तोपची तथा बहुत सैनिक मारे गये। अुन का स्थान दूसरों ने ले लिया। रानी स्वयं बहुत काम कर रहीं थी। हर छोटी मोटी बात पर रानी का ध्यान था, आज्ञा झटपट देतीं और हर कच्चे स्थान की मरम्मत कर लेतीं। अिस से सैनिकों का हौंसला बढता और वे लगातार लडते। अिस कठोर प्रतिकार से, पर्याप्त बल होने पर भी ३१ मार्च १८५८ तक अंग्रेज किले में घुस न पाये।*

पग पग पर संकटों का सामना करने में व्यस्त होने पर भी रानी लक्ष्मी अेक विशेष दिशा में अितनी अुत्सुकता से क्यों कर देख रही हैं! देखो, रानी मुस्करायीं भी! सावधान! मान–वंदना में तोपें दागो; विजय के ढोल गंभीर

* द. बा. पारसनीस 'रानी लक्ष्मीबाअी' का चरित्र पृ १८७-१९३.

घोष करने लगे। रणगर्जना से आकाश गूँज रहा था। क्यों कि, झाँसी की सहायता के लिये तात्या टोपे सेना के आगे चल रहा है।

कानपुर को विंढॅम को हरा कर, और कॅम्बेल से हार कर, गंगा पार कर, तात्या श्रीमंत नानासाहब की छावनी में आ पहुँचा। अुस के बाद, नानासाहब को छोड़, काल्पी के पास जमनापार हो गया। पेशवा के शुरू किये स्वाधीनता-युद्ध में हाथ बँटाने से चरखारी-नरेश ने अिनकार करने पर सेनापति तात्या ने अुस की राजधानी पर धावा बोल दिया, अुस देशद्रोही को अच्छा दण्ड दिया, २४ तोपें छीन लीं और तीन लाख का जुरमाना वसूल किया। फिर तात्या काल्पी की ओर मुड़ा। वहाँ अुसे रानी लक्ष्मीबाओी का पत्र मिला, जिस में झाँसी के घेरे को तोड़ने में सहायता करने की प्रार्थना थी। तात्या ने प्रधानमंत्री रावसाहब के पास पत्र भेजा और अुन से आज्ञा पाते ही अंग्रेजों की पिछाड़ी पर वह टूट पड़ा। झिससे लक्ष्मीदेवी के मुँह पर स्मित की रेखाओं दौड़ गयीं। बचपन में तात्या और लक्ष्मी अेक साथ, बिना किसी का ध्यान पड़े, ब्रह्मावर्त के राजमहल में खेले थे। आज भी वे दोनों खेल रहे हैं—रणमैदान में। अेक झाँसी की बुर्जबन्दी पर आग की लपटों में खड़ी है, दूसरा २९ हजार सेना के साथ बेतवा के पास है। बचपनमें अुन के खेल पर कोओी खास ध्यान न देता था। आज सारा संसार अुन के खेल को रसपूर्वक देख रहा है।

जितनी बड़ी सेना के साथ तात्या को आते देख अंग्रेज घबरा गये। अुस समय बहुत थोड़े गोरे सैनिक होने से अुन्हें, सचमुच बड़ा धक्का था। क्यों कि, सामने से रानी लक्ष्मीबाओी और पीछे से अपने बाओीस सहस्र पंजों से झपटने पर अुतारू मराठा शेर तात्या। तो फिर ह्यू रोज पर झपट कर अुसे फाड़ क्यों नहीं खाता? वह झपटने को था, तब अुस के बाओीस सहस्र पंजे लूले पड़े मालूम हुअे। बिना पंजों के शेर क्या करेगा? हाय, हाय! बेतवा के किनारे क्रांतिकारी दलों ने कायरता का लज्जास्पद प्रदर्शन किया। झाँसी की सेना सामने से और तात्या की आगे से हमला करने की योजना सचमुच सराहनीय थी। किन्तु निराशा के तेरे से अंग्रेजों ने तात्या पर हमला किया

और झाँसी पर तोपोंसे आग बरसायी। अिस तरह दोनों ओर की चढाअियाँ ठढी पड गयीं। शिवाजी के मावले वीरों या कुँवरसिंह के चुनन्दे सूरमाओं के समान अेक बार भी जोरदार चढाअी होती तो युनियन जॅक तथा अुस के अनुयायियों की लाशों के ढेरों पर गिद्धों की दावत होती। किन्तु हाय! कायर कहीं के! आगे बढने में हिचकिचाते हैं! अिसे क्या कहें, नीच विश्वासघात या घृणित कायरता? तोपों से अेक भी गोला न चला। सेना और सेनापति को बुरी तरह हार कर भागना पडा। अिस गडबड में असीम युद्धसामग्री अंग्रेजों के हाथ लगी, तात्या की सभी तोपें धरी रहीं, और भगदड में पंद्रह सौ मारे गये। अेक हजार पाँचसो भागते हुअे मरे! बुद्दू और पागल कहीं के! भागते हुअे कायर की मौत मरने की अपेक्षा तुम यदि ह्यू रोज पर हमला करते तो भी रोज का अुस की सेना के साथ सफाया हो जाता और तुम वीर हुतात्मा बन कर अजरामर कीर्ति के धनी होते! खैर, परमात्मा तुम्हे क्षमा करे! और न सही, हम तुम पर तरस खाते है। कमसे कम तुम

स्वाधीनता के काय में मारे गये हो। हमारे देशभाअियों को तुम्हारी मृत्युसे अितना तो पाठ अवश्य मिलेगा,' कि जीने के लिअे जो भागते हैं वे मारे जाते हैं और मौत को गले लगाने के लिअे जो रणमैदान में झूझते है वे जीवित रहते है!

और मृत्यु को ललकारते हुअे रानी लक्ष्मीबाअी झूझ रही थी। तो फिर अिन सरदारों, ठाकुरों और सिपाहियों ने अेकाअेक क्यों कर लाचारी दिखायी! नौ दिन और नौ रातें आग बरसाती तोपों के सामने तुम डट कर खडे रहे; तुम्हे आशा थी कि तात्या टोपे तुम्हारी सहायता को जल्द ही दौड पडेगा। जब वह आया तो तुमने आनद के नारे लगाये। १ अप्रैल को तात्या की हार हुअी और केवल तुम्हारा वह आनंद ही नहीं, विजय की आशा भी मिट गयी। जिस रसद को, विश्वासघाती शत्रु के हाथ से छीनने के लिअे हजारों सैनिकों का बलिदान देना पडा, वह रसद अनायास गोरों के हाथ लगी तात्या की तोपें और गोलाबारूद भी तो शत्रु के हाथ लगी है, यह सत्य है। फिर भी यह निराशा क्यों? विजयी होकर जीवित रहने, तुम्हारा शत्रु न दे,

किन्तु अमरकीर्ति की मृत्यु तुम से वह कदापि नहीं छीन सकता। वीरो, तो फिर काहे की निराशा? ठहरो! निश्चित, दृढ़ और वीरता की वाणी रानी लक्ष्मी के मुख से सुनो —

'अब तक झाँसी पेशवा के बूते पर नहीं झूल रहा था; आगे युद्ध जारी रखने के लिये भी अुन की सहायता की खास आवश्यकता नहीं है। अब तक तुमने आत्माभिमान, साहस, दृढ़ निश्चय अेवं वीरता का सराहनीय परिचय दिया है। अब भी तुम अुसी तरह से काम लो, और मैं तुमसे आग्रहपूर्वक कहती हूँ कि धैर्यसे और प्राणपन से लड़ो।"

हाँ, प्राणपन से लड़ो! सावधान! मारू बाजे बजने दो; करनाळ फूँके जायँ! वीर गर्जनासे आकाश गूँजने दो; बड़ी तोपों को धड़धड़ाने दो! २ अप्रैल की पहली किरणें पृथ्वी पर आ चुकी हैं और अंग्रेजों का आखरी हमला झाँसी पर हो चुका है। सब ओर से वे आ रहे हैं और दबाव बढ़ गया है। बस, तो फिर लड़ो; जोरसे, डटकर, प्राणपन से लड़ो। युद्धदेवीने कैसे तलवार सँवारी है देखो! और वीरताकी पराकाष्ठा कर दिखाने के लिये वह शत्रु की हरावल को विचलित कर रही है। बिजली की तरह रानी घूम रही है; किसी को सोने के कड़े, किसी को पोशाक बख्श रही है। किसी की पीठ ठोंकती है तो किसी को अपनी मुस्कान से अुत्साहित कर रही है। तब, गुलाम गोसखाँ और कुँवर खुदाबख्श! तोपों से आग बरसाओ! शत्रु प्रमुख द्वार तोड़ रहा है; किलाबंदी को तोड़ रहा है, आठ जगह निसेनियाँ लगायी गयी हैं। 'हरहर महादेव'! किले से, बुर्जों से, हर घर से गोलियों की बौछारें छूटीं; बाढ़ों का ताँता बंध गया। तोपें लाल गोले अुगल रही हैं। 'मारो फिरंगी को' —क्या यह युद्धदेवता है या कालीमाता स्वयं खड़ी है, जो भीषण युद्ध कर रही है! 'हर हर महादेव!' ले डिक और ले मेयकले जोशान सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं और अपने आदमियों को पीछे चढ़ने को ललकार रहे हैं। धड़ाम, धड़ाम! साहसी अंग्रेज काल के गाल में चले गये! कोअी है अुन के पीछे

आनेवाला! ले. बोनस और वीर ले. फॉक्स! तुम मरना चाहते हो? तुम्हारी मुराद पूरी होगी। मरो फिर! बडी कठनाअी से चढे हुअे अिन चार वीरों को गिरते देख निसेनियॉ भी कॉपने लगी। अंग्रेजी सैनिकों के भार से वे लडखडा कर टूट गयीं। अंग्रेजों ने पीछेहट की तुरही बजायी। सेना पीछे गयी; हर सिपाही हर चट्टान की ओट लेकर छिपते हुअे भागा। ×

प्रमुख द्वार पर अिस तरह डट कर प्रतिकार हुआ। किन्तु दक्षिण बुर्ज पर वह कौन कराह रहा है! हो सकता है, नीच विश्वासघातने मोर्चा द्वार गॅवाया होगा। हॉ, दुर्भाग्यसे सच है कि अंग्रेजों ने देशद्रोहियों के बल पर अुसे जीता है–अैसा कहा जाता है–और बुर्ज पर चढ कर फुर्ती से आगे बढ रहे हैं। अुस दिन सब के मन में अेक मात्र भाव था–मारेंगे या मरेंगे। अेक बार शहर में अंग्रेजों ने मार काट की धूम मचा दी। अेक के पीछे अेक मोर्चा कब्जे करते गये; कत्ल, आग, विध्वंस का बाजार गर्म रहा– वे ठेठ राजमहल तक पहुँचे। राजमहल पर दखल करने पर हजारों रुपये लूटे गये, प्रहरियों को मार डाला गया, अिमारतों की अींट से अींट बजा दी गयी। निदान, हाय, झाँसी शत्रु के हाथ में चला गया।

परकोटे पर खडी रानी ने अेक बार झॉसी पर दृष्टि डाली। दक्षिण दरवाजे के पास बने भीषण प्रसग का घृणित चित्र अुस की ऑखों में तर गया। शत्रु के स्पर्श से अुस का झॉसी अपवित्र हो गया। अुस की ऑखों से क्रोध की चिनगारियाँ अुड रही थीं। क्रोध से रानी पागल हो अुठी। अुस ने अपनी तलवार सँवारी, अपनी हजार पंधरहसौ सैनिकों की सेना को साथ लिया और किले को चल पडी। अपने बच्चे को छेडनेवाले पर भी शेरनी अितनी फुर्ती से नहीं झपटती। दक्षिण द्वार के पास अुसने गोरों को देखा और वह अुन पर झपटी; फिर "तलवार से तलवार भिडी, दोनों शत्रु दल क्षणभर में अेक दूसरे में मिल गये, 'दे दनादन, शुरू हुआ, बहुत गोरे मारे गये, बचे

× स. ४७ देखो लो कृत सेंट्रल अिंडिया. पृ. २५४.

हुअे शहर की ओर भागे और ओट से शिकार खेलने लगे। फिरंगी खून से अब अुस काली का क्रोध कुछ शान्त हुआ, अब अुस के ध्यान में आया कि किले से अितनी दूर अिस तरह अकेली का लड़ना बड़ी मूर्खता थी। किन्तु अिस असाधारण साहसी वीरता का प्रतिध्वनि अब शहर के हर रास्ते में मिलने लगा। जब कि सारा शहर और राजमहल भी अंग्रेजी तलवारों से रक्तरंजित कर दिया था, राजमहल के घुड़साल के ५० नौकरोंने घुड़साल छोड़ने से अिनकार कर दिया। 'शरण' का शब्द अुन के शब्दकोष में था ही नहीं। अुन में से हर अेक ने अपनी शक्तिभर अधिक से अधिक गोरों का सामना किया, और अुन में से हर अेक कट जाने पर ही यह घुड़साल शत्रु के हाथ लगी। अंग्रेजों ने अभी तक शहर को खंडहर बना डाला था। अुन के हाथ में जो भी आता, चाहे पाँच साल का बालक हो, चाहे ८० वर्ष का बूढ़ा, अुसे कत्ल कर देते। शहर भर आग लगायी गयी। घायलों या मरनेवालों की कराहों तथा मारनेवालों की चिल्लाहट से आकाश गूँज अुठा। सर्वत्र कुहराम मच गया।

अंग्रेजों ने किले के परकोटे को, बहुत पक्का होने के कारण, अुड़ा देने का काम दूसरे दिन करना तय किया था। आज झाँसीवाली रानी परकोटे पर खड़ी अुस अत्यंत करुणापूर्ण दृश्य को देख रही थी। अुसे अत्यंत दुख हुआ। अुन की आँखें डबडबायीं। रानी लक्ष्मीबाओी रोयीं। वे सुंदर आँखें रोने से लाल हो गयीं। अुन का झाँसी और अुस की यह दशा! फिर अेक बार सिर अूँचा कर देखा कि झाँसी की किलाबन्दी पर फिरंगी का झण्डा—पराधीनता का दाग—लगाया गया है; बस, अेक विलक्षण तेज अुन रोनेवाली आँखों में चमक अुठा। धन्य वे आँखें, वह हृदय, वह धैर्य! अरे, यह दूत कौन बेतहाशा दौड़ कर अुस के पास आ रहा है? दूत ने कहा —'रानी सरकार! किले के प्रमुख द्वाररक्षक, अतुल धैर्य, सरदार कुँवर खुदाबख्श और गुलाम गोसखाँ—तोपचियों का सरदार—दोनों को अंग्रेजों ने गोली से अुड़ा दिया है।' पहले ही दुखी हृदय पर यह कितना भयंकर आघात! कैसे संकट पर संकट आ रहे हैं? रानी, अब आगे क्या विचार है? विचार—अेकमात्र निश्चय है—

स्वाधीनता की कौस्तुभमणि झाँसी की लक्ष्मी के गले से नहीं गिरना चाहिये। अुस दूत से, जो अेक बूढा सरदार ही था, कहा :—देखो; मैं अिस किले के साथ, स्वय अपने हाथों बारूद के भंडार में आग लगा कर अुड जाना चाहती हूँ।" अपने जरिपटके के साथ—स्वाधीनता के झण्डे के साथ—या तो यह सिंहासन पर होंगी या चिता पर!

यह सुन कर अुस बूढे सरदार ने शान्ति से कहा :—सरकार! यहाँ रहना अब खतरनाक है। शत्रु की छावनी को चीर कर आप को आज रात मे किला छोड चले जाना चाहिये और पेशवा की सेना में पहुँचना चाहिये। और यदि मार्ग में मृत्यु आ जाय तो समरांगण-तीर्थ की पवित्र धारा में गोता लगा कर स्वर्ग के खुले द्वार से प्रवेश हो सकता है।"

"मैं मैदान मे लडते लडते मरना अधिक पसंद करती हूँ' रानी ने कहा, "किन्तु मै स्त्री हूँ; मेरे शरीर की कहीं विडबना होगी तो?"

सब सरदारोंने अेक स्वर से कहा 'विडबना?' हम में से अेक भी जीवित है, तबतक आप के शरीर को छूने का साहस करनेवाले शत्रु को हमारी तलवार टुकडे टुकडे कर देगी।"

अच्छा! रात हो गयी; रानी लक्ष्मी ने अपनी प्यारी प्रजा को बुला कर अन्तिम बार आशीर्वाद दिया। झाँसी छोड जाने का रानी का अिरादा जान सारी प्रजा की आँखें डबडबायीं। शायद फिर रानी कभी न आयें? रानीने चुनिन्दे घुडसवारों को अपने साथ लिया। जेवर से शृंगारित अेक हाथी अुन के बीच रखा गया और 'हर हर महादेव' की गर्जना कर वे किले से अुतरने लगीं। पुरुष-वेश बनाया था; फौलादी कवच ने शरीरकी रक्षा की थी। कमरबंद में अेक जमिया पडा था, और अेक पैनी तलवार लटक रही थी; अंचल में अेक पियाला बंधा था, और रेशमी धोती से, पीठ पर अुनका दत्तक पुत्र दामोदर, बधा हुआ था। अेक श्वेत अश्वपर चढी, अिस तरह सजी, वह लक्ष्मी प्रत्यक्ष महादेवी लगती थी। अुत्तरी दरवाजे के पास पहुँचने पर टिहरी के देशद्रोही राजा के प्रहरीने टोका, 'कौन है?' 'टीहरी की सेना सर-ह्यू रोज

की सहायता के लिअे कूच कर रही है '— अुत्तर मिला। पहरेदार ने जाने दिया। रानी आगे बढ़ी। अेक गोरे महरी का भी किसी तरह टाला गया। अुन के शरीर-रक्षकों में अेक हाथी, अेक घारगीर, और १०।१५ घुड़सवार थे। जिस तरह यह ' सेना ' शत्रु की छावनी के बीच से हो कर काल्पी तक सुरक्षित पहुँच गयी। किन्तु अुन के अन्य घुड़सवारों को संदेह में अंग्रेजों ने रोका और वहाँ खूब ठन गयी। मेरोपंत तांबे, घायल होने पर भी, दतियातक निकल गये, किन्तु वहाँ के देशद्रोही दिवान ने अुन्हें गिरफ्तार कर लिया और अंग्रेजों को सौंप दिया। अंग्रेजों ने मोरोपंत तांबे को फाँसी दिया।

अच्छा तो, लक्ष्मीदेवी; अब तुम्हारे घोड़े को जेडी दो। क्यों कि, हे बोकर, चुने हुअे घुड़सवारों के साथ तुम्हें पकड़ने के हेतु, पीछे से घोड़ा अुछालता आ रहा है। और हे अश्व! तुम्हारे पीठ पर होने वाले पवित्र निधि के कारण भाग्यवान्! पूरा बल लगा कर दौड़ो! भारत के मानव भले ही देश द्रोही बन; भारत के जानवर, तुम तो श्रीमानदार रहोगे! हे रात्रि! रानी लक्ष्मी तथा अुन के शत्रुओं के बीच अंधकार का परदा खड़ा करो। देखो अश्व! तुम वायु से भी अधिक वेग से दौड़ रहे हो, लक्ष्मीदेवी को फूल की तरह ले जाओ। मार्ग! तुम किसी तरह की रुकावट घोड़े को न होने दो। हे तारो! शत्रु के लिअे प्रकाशित न हो। हाँ, जितना प्रकाश रहे कि तुम्हारी अमृत-वर्षिणी किरणों से यह कमल के समान सुकोमल सुंदरी मार्ग तय करने में अुत्साहित हो। अब तो अुषा आ गयी; सो हे वीर लक्ष्मीदेवी! वायु की पीठों पर रात भर तुम अुड़ती चली आ रही हो! भांडेर गाँव के पास कुछ विश्राम करो! वहाँ का लंबरदार तुम्हारे प्यारे दामोदर को खिलायगा!

कलेवा कर के तुरन्त काल्पी के मार्ग में, रानी चल पड़ीं। किन्तु पीछे से यह गर्द कैसे अुड़ रही है? देवीजी! और तेज करो घोड़े को, पीठ पर दामोदर को सँम्हाले और आगे बढ़ो। अपनी तलवार सँवारो। देखो, बोकर पास आ रहा है। हे वीर, पीछा कर ने का यह पारितोषिक! बिजली सी तलवार अुठी; अेक लम्बी चोट और बोकर कराहता घोड़े से गिर पड़ा। पीछा करने

वाले अंग्रेज और रानी के १०।१५ सवारों में प्राणघातक भिडन्त हुअी। जो बचे वे लक्ष्मीदेवी की रक्षा के लिअे आगे बढे। घायल बॉकर तथा अुस के साथियों ने पीछा करने से मुँह मोड लिया। भारतमाता की तलवार विजयी और चमकती हुअी आगे बढी। आकाश में सूर्यदेव और पृथ्वी पर लक्ष्मी-देवी, दोनों आगे बढ रहे थे। दोपहरी हुअी; किन्तु रानी न रुकी। साँझ की छायाअें लम्बी होने लगीं। सूर्यदेव थक कर क्षितिज के पीछे छिपे, किन्तु रानी ? नहीं, वे बढती ही गयीं। तारे, झिलमिलाये। अुन्हों ने देवी को कल रात जैसी देखी थी वैसी पायी। आगे बढती हुअी, बेतहाशा घोडेको फेंकती हुअी। निदान, आधी रातमें, रानी लक्ष्मी कालपी पहुँची। १०२ मीलों का अंतर तय किया और वह भी बॉकर जैसे आदमी के साथ झूझकर, पीठ पर अेक बालक का बोझ सम्हाल कर ! वह घोडा रानी को कालपी में सुरक्षित पहुँचाने ही को प्राण धारण किये हुअे था। क्यों कि, अपनी अनमोल निधि को अुतार कर वह लडखडाया और स्वर्ग सिधारा। छः आदमियों को तुरन्त अुस की अन्त्यक्रिया में लगाया गया। वह घोडा रानी का बडा प्यारा था। जिस घोडेने अैसा पवित्र बोझ अितनी अीमानदारी से पहुँचा दिया, अुस का स्मरण अवश्य रहना चाहिये; अुस की स्मृति सदा के लिअे प्यारी रहेगी।

रानी ने सबेरे तक आराम किया। सबेरे रानी और रावसाहब पेशवा का हृदयवेधक साक्षात् हुआ। दोनों को अपने अुन पुरखाओं का स्मरण हुआ जिन्हों ने असम्भव को सम्भव बनाने के बडे काम किये और जिन के वंश में होने का सौभाग्य दोनों को प्राप्त था ! अुन्हे अिस बात से प्रेरणा मिलती थी कि मराठों का झण्डा अटक पर लहराने का कारण था—शिंदे, होळकर; गाय-कवाड, बुंदेले और पटवर्धन स्वराज्य के लिअे अपने प्राण न्योछावर करने को सिद्ध थे। अुसी झण्डे और अुसी स्वराज के लिअे, जिसके लिअे अुनके पुरखाओं ने खून बहाया था, शुरू हुअे युद्ध को अन्ततक निबाहने का दोनों ने प्रण किया। स्वदेश को भ्रष्ट करने की चेष्टा करनेवालोंसे वह युद्ध लडा जा रहा था।

सो, पूरा बल लगा कर वह युद्ध जारी रखने का दृढ संकल्प किया।

फिरसे लक्ष्मीबाअी तथा राव तात्या टोपे ने घनघोर संग्राम की तैयारी करना शुरू किया।

अिन दोनों को युद्ध की तैयारी करने के लिअे छोड़, हम अब ब्रिगेडियर व्हिटलॉक की गतिविधि का सरसरी दृष्टिसे निरीक्षण करें, जिस का हम कुछ पहले ज़िक्र कर चुके हैं। नर्मदा तथा गंगा जमना के बीच के प्रदेश को फिर से जीतने के लिअे दो सेनायें चली थीं। अुन में से अेक वह, जो ह्यू रोज़ के नेतृत्व में चली थी, झाँसी जीत लिया था, जिस का वर्णन हम पहले कर चुके हैं। झाँसी जीतने के बाद आतंक और गड़बड़ वहाँ मची। लूट के काम में तो नादिरशाह की बराबरी की गयी। मंदिर और मूर्तियाँ भ्रष्ट कर दिये गये; भयंकर हत्याकाण्ड हुआ। अुस के बाद यह सेना मुहीम जारी रखने के लिअे काल्पी चढ़नेवाली थी। जिस का अन्तिम भाग पूरा करने का कार्य ब्रिगेडियर व्हिटलॉक को सौंपा गया था। वह १७ फरवरी को जबलपुर से चला; अुस के साथ गोरी पलटन और मद्रासवाली काली पलटन, गोरा और काला रिसाला और अुत्कृष्ट तोपखाना था। सागर में बड़ी शान से अुस ने प्रवेश किया जहाँ अंग्रेज मित्र ओरछा का राजा अुसे मिला। फिर यह सेना बाँदा के नवाब को जीतने चली, जो अुस प्रान्त के मुख्य क्रांतिनेता थे। क्रांति की पहली लहर में झाँसी, सागर और अन्य स्थानों में क्रूर कत्लें हुअी थीं और वहाँ के गोरे जहाँ शरण मिली वहाँ जान बचाने को भाग गये। बाँदा के नवाब ने अुन्हें अपने राजमहलमें सुरक्षित रखा था और अुन की अच्छी तरह देखभाल की। किन्तु साथ साथ क्रांति के धमाके से धरानेवाले ब्रिटिश सत्ता के कंधावर को फेंक देने के काम में भी व्यस्त था। शुरू से अुसने परायी सत्ता के सभी चिन्ह मिटा दिये थे और वह स्वतंत्र नरेश की हैसियत से राज कर रहा था। जब अुस ने देखा कि अंग्रेजी सेना अुस का राज छीनने आ रही है, तब अपनी प्रजा के अनुरोध तथा सहायता से युद्ध की सिद्धता की। कअी मुठभेड़ों के बाद हार कर नवाब अपनी सेना के साथ काल्पी चल पड़ा और १९ अप्रैल को विजयी व्हिटलॉक ने बाँदा में प्रवेश किया। अब किरवी के राव पर चढ़ाअी होनेवाली थी।

किरवी नरेश राव माधवराव की आयु १० वर्ष की थी और अंग्रेज अुस के रक्षक बने थे। किरवी के राव बाजीराव पेशवा का नजदीकी नातेदार था। १८२७ में अनन्तरावने (अुस समय के किरवी नरेश) काशी के मंदिरों में दान करने के लिअे अंग्रेज सरकार के पास दो लाख रुपये जमा कर दिये थे। अनन्तराव के मरते ही अंग्रेज यह सारी रकम हडप गये। अिस से योग्य पाठ न सीखते हुअे अुन के पुत्र विनायक राव ने भी कअी लाख रुपयों की थाती अंग्रेजों के पास रखने की मूर्खता की थी, वेह रकम भी अन्याय से हडप कर गये थे। विनायकराव के मरते ही यह घटना हुअी। विनायकराव का दत्तक पुत्र माधवराव नाबालिग था, रियासत का प्रबंध अंग्रेजों के हाथ में था, प्रधान कर्मचारी रामचंद्रराव अंग्रेजों से नियुक्त था; अिस दशा में अंग्रेजों को किरवी रियासत में किसी प्रकार के विद्रोह की आशा न थी। किन्तु १८५७ में अिन रावों और महारावों ने जो कुछ किया अुस से अुन की प्रजा सम्मत न होती थी। कभी अप्रत्यक्ष, कभी प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र की सच्ची शक्ति जनता का बल, सदियों तक कुचला जाने के बाद भी धीरे धीरे अपना प्रभाव जमाने की अनथक्क चेष्टा कर रहा था। किरवी के जमींदार, धर्मगुरू, व्यापारी, यहाँतक कि मामुली से मामूली आदमी भी स्वाधीनता के आदर्श से प्रभावित हुअे थे और अेक दिन दिल्ली स्वतंत्र होने के समाचार सुन कर आनद से अुछल पडे थे। दूसरे दिन लखनअू स्वतन्त्र घोपित हुआ और तीसरे दिन झाँसी ने फिरंगी के झण्डे को अुखाड फेंकने के समाचार आये। अिन आशाप्रद घटनाओं से अुत्साहित हो कर लोगोंने किरवी स्वतंत्र होने की घोषणा की, और विदेशी कंधावर को, बिना राव की सम्मति या मन्त्रियों की आज्ञा के, फेंक दिया। जब जनता से स्वतंत्रता की घोषणा डके की चोट पर पुकारी जा रही थी तब किरवी के ९ या १० वर्ष के राजाने अंग्रेजों के विरुद्ध कुछ भी न किया था। अुलटे, जब अंग्रेजी सेना बुदेलखण्ड में लौट आयी तब अुसने अुस का स्वागत कर अपने राज्य में आने का निमंत्रण दिया। निमन्त्रण को स्वीकार कर अंग्रेजी सेना चुपचाप चली आयी; किन्तु आयी अुस नाबालिग राव को बंदी बनाने, अुसकी राजधानी को खंडहर

बनाने और अुस के राजमहल का विध्वंस करने और पैशाचिक लूट, संपूर्ण अग्निकाण्ड, तथा नृशंसता पूर्ण प्रतिशोध लेने।* रियासत खालसा में मिलायी गयी।

जीते हुअे प्रदेश में 'शान्ति' रखने के लिअे विटलॉक महोबे में छावनी डाल रहा था। वास्तव में अुसने अपनी मुहीम पूरी की थी। बुंदेलखण्ड का पूरबी हिस्सा अुसने जीत लिया था और अेक दो छोटी जमहों को 'शान्त' करने के लिअे कुछ दस्ते भेजे गये थे। सो, अब विटलॉक को छोड़, फिर अेक बार शूर झाँसीवाली रानी के पवित्र चरणों का अनुसरण करें।

अब आशापूर्ण रानी ने पेशवा की सेना के साथ काल्पीसे ४२ मीलों पर होनेवाले कैंचगाँव को कूच किया। किन्तु, मालूम होता है, रानी की सूचना के अनुसार सेना की व्यूह-रचना रावसाहब ने न की थी। ध्यान रहे, रावसाहब या तात्या टोपे को पूरी तरह प्रबंध करना भी असम्भवसा था। यद्यपि अुन के पास बाँदा का नवाब, शाहगढ़ नरेश, बानापुर के राजा, ये सब अेक ही झण्डे के नीचे अिकट्ठे हुअे थे; फिर भी एक विशाल सैनिक संगठन के अंतर्गत अनुशासित हो कर नहीं आये थे, जो संगठन अेक हृदय से संचालित हो, अेक निश्चित योजना और विधान के अनुसार चले और कड़ा सैनिक अनुशासन और आज्ञाकारित्व हो। हरअेक अपनी योजना बनाता, जिससे किसी की योजना पर पूरा अमल न होता, यहाँ शत्रुदल के नेताओं में कोअी झगड़ा न था; संगठन व्यवस्थित औ

---

* से ४८ राव के साथ किये गये अिस अन्याय के विषय में,' मॅले-सन को मानना पड़ता है, कि "विटलॉक के सैनिकों पर अेक भी गोली न चली, तो भी अुसने निश्चय कर लिया था कि अुस नाबालिग राव को बागी माना जाय। अिस नीचता का कारण यह था कि गोरे सैनिकों की अुन की कठिन लड़ाअियों तथा चिलचिलाती धूप में कष्ट अुठाने का पारितोषिक देने की सामग्री किरवी के खजाने में भी। यहाँ के तहखाने आदि में अनमोल चुने हुअे जेवर तथा हीरे पड़े थे। अिस संपत्ति के लालच में यह अन्याय किया गया"—के और मॅलेसन कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ५-पृ १४०-१४१

अच्छी तरह अनुशासित था। सर ह्यू रोज के सेनानी नियुक्त होने के पहले गरम चर्चाओं और मतभेदों का बाजार गर्म रहा। बस, किन्तु, अेक बार अुस की नियुक्ति हुअी कि अुस का मत ही सब का मत था। जो भी आज्ञा वह दे ठीक मानी जाती; और न भी हो तब भी अुसपर अमल होता। किसी साधारण सेनानी की गलत आज्ञा पर, यदि आज्ञाकारित्व और व्यवस्थात्मक वीरता के साथ, सैनिक अमल करें तो भी वे सफल होंगे। अिस के विपरीत सुयोग्य सेनानी की सुविचारपूर्ण आज्ञाअें भी विपत्ति और पराजय का कारण बनती हैं, यदि सैनिक अपनी सनक को अधिक महत्त्व दें, शासन में अेकता न हो और आज्ञाकारित्व न हो!

नहीं तो कॅचगॉव में जो पराजय हुअी वह कभी न होती। झाँसी से सर ह्यू रोज के आते ही कॅचगॉव में क्रांतिकारियों से मुठभेड हुअी। दोपहर की चिलचिलाती धूप गोरे सह नहीं सकते यह जान कर क्रांतिकारियों के अेक आज्ञापत्र में लिखा था:—"सबेरे १० बजे के पहले फिरंगी से कोअी मुठभेड न करें; सदा ही दस के बाद लडाअी हो।" अिस बडी चतुर आज्ञा पर अुस दिन अमल किया गया। जैसा कि अन्य स्थानों में हुआ था, दस बजने के बाद जहाँ लडाअी शुरू होती अंग्रेजों के छावनी में कुहराम मच जाता; आज अैसा ही हुआ। और तिसपरभी कॅचगॉव में क्रांतिकारियों की हार हुअी और अुन्हें कालपी को हटना पडा। जिस सराहनीय ढंग से वे पीछे हटे, जिस संगठित रूप से वे मोर्चे छोडते गये, शत्रुने भी अुस की अत्यंत प्रशंसा की है।* किन्तु

स. ४९ "फिर बागियोंने वह काम किया जिस की प्रशंसा अुन के शत्रुओं को भी करनी पडी। पीछे हटने का कार्यक्रम अुन्होंने जिस तरह पूरा किया अुस का जोड पाना असम्भव है। अंग्रेज अफसरोंने अुन्हें जो पाठ अच्छी तरह सिखलाये थे अुन को ठीक तरह ध्यान में रखा गया था। किसी प्रकार की जल्दबाजी, अव्यवस्था तनिक भी न थी; पीछे की ओर भागने का नाम नहीं। रणमैदान के सचलन की तरह सब कुछ व्यवस्थित था। दो मील

दुर्भाग्यसे यह सारा संगठन तथा अनुशासन पराजय के बाद् अमल में आने के बदले पहले दिखायी देता तो अच्छा होता! अिस के बाद क्रांतिकारी काल्पी को पहुँचे। और फिर हार का दोष अेक दूसरे के सिर मढने की होड लगी। पैदल सेनाने रिसाले को कोसा; रिसाले ने झाँसीवालों की निंदा की; और सब मिल कर तात्या टोपे की गलती बतायी।

किन्तु यह आपसी बखेडे को देखने तात्या काल्पी आया ही न था; वह तो जालवण के पास चरखी गाँव में अपने पितासे मिलने गया था। वह अुसके बाद कहाँ जायगा? ध्यान रहे रास्ते में ग्वालियर पडता है। हम आशा करें कि अिस अनोखे पुत्र और अुसके पिता की भेंट अत्यत प्रेमपूर्वक तथा आनंदसे हो और फिर क्रांतिक अिस महान् नेता को अपनी बडी बडी योजनाओं को सफल बनाने में तुरन्त यश मिले।

अिस मनचाही यात्रा में तात्या के चले जाने के बाद रानी लक्ष्मी पेशवा के शिविर में गयीं। कैंचगाँव के पराभव से पेशवा को बडा रंज हुआ था। अपने स्फूर्तिमद् शब्दों से अुन की अुदासी को भग कर, धीरज बँधाते हुअे शूर झाँसीवालीने कहा–' आप यदि सेना को फिर से संगठित करें तो शत्रु अुस पर कभी विजय नहीं पा सकता ' रानी के शब्दों से बांदा के नवाब को अुत्साह प्राप्त हुआ। स्फूर्तिमद् शब्दों में रचे घोषणा–पत्र फिर से क्रांति–सेना में वितरित हुअे। आज जमना के किनारे भीड जमा हो रही थी। तलवारें और तोपें चमकती हैं, मातृभूमि की स्वाधीनता की साधना को संतप्त सिपाही जमना मैया के आशीर्वाद माँग रहे है–अिस तरह का मेला जमना किनारे

लम्बी मुठभेड की हरावल होने पर भी किसी जगह घबराहट नहीं थी। सैनिक गोली चलाते, फिर पीछे की पाँती के पीछे मुड जाते और अपनी बंदूकें भरते। फिर आगेवाले गोलियाँ चलाते और पीछे अपनी जगहपर हट जाते। पीछा करनेवाले यदि बहुत जोर करते तो वे डट कर खडे हो जाते और घमासान लडाअी पर ।जमजूत करते। " मैलेसनकृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ५ पृ १२४। शत्रु की अिस प्रशंसा से ' पांडे ' की सेना का महत्व निखर पडता है।

पहले कभी किसी ने न देखा होगा। सब ओर मातृभूमि और धर्म की जय की पुकारें प्रतिध्वनित हो रही हैं। 'जय जमना मैया! तुम्हारा पवित्र जल हाथ में ले कर हम प्रतिज्ञा करते हैं, कि फिरंगी नष्ट होगा, स्वदेश स्वतंत्र होगा। स्वधर्म की पुनः स्थापना होगी। जय जमना! यह सब–होगा तभी हम जीवित रहेंगे; नहीं तो हम रणमैदान में सदा के लिअे सो जायेंगे। कालिंदी माता! हम त्रिवार प्रतिज्ञा करते हैं"

तीन बार शपथ किये वीरो! मैदान में बढो, वह रण–लक्ष्मी तुम्हें अुत्तर की ओर बुला रही है। रावसाहब सारी सेना का नेतृत्व करेंगे। ह्यू रोज के नेतृत्वमें होनेवाली २५ वीं पैदल पलटन को भगा दो। वे सब हिंदी हैं–अिन देशद्रोहियों को भगा दो। यह मेजर ऑर्र बढा क्या?–अुस की भी वही गत कर दो। कालपी के सामने के मैदान में हिलोरनेवाले हिस्से की सेना को सुरक्षित रखने पर हमारी स्थिति लगभग अजेय है। अरे, देखो! सेनामुख पीछे हट रहा है। वह बहुत अधिक आगे बढ गया था और पीछेसे पूरी सहायता न पानेसे पीछे हटना पडा है। दौडो, रानी लक्ष्मी, अुन की रक्षा के लिअे दौडो। तलवार हवा में फेंकते हुअे बिजली–सी वह दौड पडी अपनी सेना को बचाने! अंग्रेजों के दाहिने पासे पर लाल–गणवेशधारी सवारों के साथ टूट पडी। अेकदम अंग्रेज ठंढे पडे, अितना जोरदार हमला था वह! और लाचार हो पीछे हट गये। अिक्कीस साल की लडकी की यह बिजली सी झपट, अुस के घोडे का वायुवेग से दौडना, दायें–बायें गाजर मूलीकी तरह अुस का गोरों को काटना, अिस दृश्य को देख कौन होगा जो अुस के लिअे न लडेगा? किसे अिससे अुत्साह प्राप्त न होगा? रानी के रणकौशल से सभी क्रांतिकारियों में अुत्साह बढ गया। रक्ताक्त भीषण युद्ध शुरू हुआ! हलकी तोपों के गोरे तोपची अेक अेक कर के मर गये। तब रानी अपने रिसाले के साथ आग अुगलती तोपों पर धावा बोल गयी। तोपची भागे। घोडों पर होनेवाला तोपखाना तितर बितर हो गया। क्रांतिवीर सब ओरसे आगे बढने लगे। आजतक हाथ में न आनेवाले फिरंगी को मटियामेट करने का मौका मिलने से वे आनंद से बौखला गये और अुन सब के आगे चमकती थीं रानी लक्ष्मी!

इस अचानक धावे को देख ह्यू रोज चौंक पड़ा। वह अपने इस वाली ऊँटों को लेकर आगे बढ़ा, किसी तरह अंग्रेजोंने ऊँटों के कारण अपनी जान बचायी। एक अंग्रेज लिखता है —और पंद्रह मिनिट ही बीत जाती तो क्रांतिकारियोंने हमारा सफाया कर दिया होता। इसबार्दी १५० ऊँटोंने उस दिन हमें उबारा। और उस दिन से, सचमुच, म ऊँट जानवर को प्यार की नजर से देखने लगा।" केवल ऊँटदलने मई २२ को पेशवा की सेना को काल्पीतक पीछे हटने पर मजबूर किया। कुछ मुठभेड़ों के बाद २४ मई को ह्यू रोज काल्पी में घुस पड़ा। काल्पी किले में तात्या टोपे तथा रावसाहब पेशवा की बड़े कष्टसे जमा की हुई युद्धसामग्री अनायास अंग्रेजों के हाथ लगी। साठ हजार रतल बारूद भूमि में गाडी हुई पायी गयी। नयी बंदूकें, अद्यावत् ढंग के बने पीतल के तोप के गोले, उन्हें बनाने के यंत्र, सैनिक गणवेश के ढेर के ढेर, झण्डे, मारू बाजे, फ्रान्सीसी तुरहियाँ, यूरोपमें बनी भरनाल तोपें और कई तरह के शस्त्रास्त्र—इतनी अति उपयुक्त निधि अंग्रेजों के हाथ लगी।

हाथ न लगे केवल शूर तथा सदा स्मरणीय क्रांतिनेता! क्यों कि, काल्पी का संपूर्ण पतन होने के पहले एक सप्ताह रावसाहब, बाँदा का नवाब, रानी लक्ष्मीबाई और अन्य नेता वहाँसे गायब थे और किसी अज्ञात स्थान को गये थे; किन्तु बिना सेना के, निःशस्त्र और निःसहाय इन दुर्दैवी नेताओं को मारे मारे फिर कर, भूखों भटक कर या तो शत्रु के चंगुल में पकड़ा जाना या आत्महत्या करना और काल के गाल में प्रवेशित होना ही पड़ता और कोई चारा न था।

इस तरह, जमुना के उत्तर कौंठे का प्रदेश फिर से हड़प कर, विजयी कॅम्बेल हिमालय तक पहुँच गया। इधर ह्यू रोज और विटलॉक ने नर्मदा से प्रारंभ कर यमुना के दक्षिण कौंठे के प्रदेश पर दखल किया। क्रांतिकारियों का पूरा सफाया करने पर अंग्रेजों को हक था कि वे अपना अभिनंदन करें। ह्यू रोज ने अपने सैनिकों का अभिनंदन इन वक्तृतापूर्ण शब्दों में किया, है—वीर सैनिको! तुमने एक हजार मील का प्रदेश रौंध कर शत्रु से सौ

तोपें छीन ली हैं। नदियों को तैरकर, पहाड टीले लांघ कर, जंगलों, दर्रों, अुपत्यकाओं में शत्रु का सफाया कर, असीम प्रदेश जीत कर अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाये है! तुम वीर तो हो ही, किन्तु अनुशासन का पालन भी तुमने बडी टेक से किया है। **क्यों कि, विना अनुशासन के साहसी वीरता का कोअी मूल्य नहीं होता।** अत्यंत कठिन दशा में फुसलाव तथा यत्रणाओं में नमने अपने प्रमुख अधिकारियों की आज्ञाओं का ज्यों का त्यों पालन किया और आज्ञाभग या अुद्दण्डता का तनिक भी बरताव न किया। जमुनासे ठेठ नीचे नर्मदा तक तुमने अपने अद्वितीय सैनिक अनुशासन से प्रचंड विजय प्राप्त की है।"

यह वीरस्तुतिपूर्ण और प्रभावी वक्तृता को प्रसिद्ध कर सर ह्यू रोज स्वास्थ्य के कारण सैनिक सेवा से निवृत्त हुआ। और अुस की विजयी अंग्रेज सेना भी शत्रु की पूरी हार होने से अब छुटकारे की साँस भर कर आराम की अपेक्षा करने लगी।

अिन्तु अितने ही में तुम आराम का खयाल कैसे कर सकते हो? तात्या टोपे और रानी लक्ष्मीबाई जो जीवित है! ब्रिटिश सैनिको, तबतक तुम्हे आराम कैसा? और यदि तुम अपनी अिच्छासे खडे न होंगे तो यह गवालियरवाली सेना तुम्हे मैदान में खदेडने के लिअे सिद्ध है! कालपीसे छटक कर सभी क्राति-नेता आगामी योजना बनाने के लिअे गोपालपुर में जमा हो गये। वास्तव में अिस समय आशा के कोअी आसार थे नहीं। नर्मदा से जमनातक और जमना से हिमाचलतक सारा प्रदेश अंग्रेज फिरसे जीत चुके थे। क्रातिकारियों के पास सेनाबल न था, न थे गढ किले। और बारबार हार होने से अुन्हें नयी सेना खडी करना भी असम्भव सा हो गया था। किन्तु तात्या टोपे जो जीवित था, बस, यही पर्याप्त है! रानी लक्ष्मी भी वहाँ थी ही, तात्या गोपालपुर को लौट आया था। लोगों में खबर यह अुडी थी कि वह अपने पिता से मिल आया है। खैर, खबर झूठ हो या सच, किन्तु अितिहास अिस का कोअी प्रमाण नहीं देता। अब ह्यू रोजने अपना धूर्त दाँव

काल्पी में लड़ाया; ठीक तभी अेकाअेक तात्या को अपने पिता के दर्शन की समक आ गया; और आगे चल कर यह सनक, पितृदर्शन की धुन तो युद्ध की विस्मृति कराने लगी। और जिसतरह अपने पिता के दर्शन करने की अुमग पर अंकुश न रखते हुअे वह सीधे चरखी चला भी गया। जिस सनक का भेद क्या होगा! होगा यही, कि काल्पी का पतन होने पर क्रांति कारियों के हाथ में, कोअी न कोअी सुरक्षित स्थान या किले का होना अत्यंत आवश्यक था; नयी सेना मिल जाय तो अच्छा ही था। और अिसी कारण से यह क्रांति का अग्रदूत काल्पी से छटक कर ग्वालियर में घुस पड़ा। देखो, अब क्रांति का चात्याचक फिरने लगा है। सेनाधिकारियों के शपथपूर्वक आश्वासन तात्या ने प्राप्त किये और दरबार के अुत्तरदायी व्यक्ति, सरदार तथा अन्य कअी लोगों से संबंध प्रस्थापित कर क्रांतिके लिअे अुसने अेक स्वतंत्र सेना बना ली। अपनी शक्ति भर सब कुछ करने तथा देने के आश्वासन जिन लोगोंने दिये ये और अेक महीने के अंदर ग्वालियर की सारी सेना मानों तात्या की हथेली में आ गयी। फिर अुसने ग्वालियर के मर्मस्थानों को जान लिया और शिंदे के सिंहासन ही के नीचे सुरंग लगा कर तात्या टोपे रावसाहब के पास गोपालपुर में आया। अपने 'पिता के दर्शन' यह कर चुका था।

ग्वालियर की प्रजा को क्रांतिकार्य की ओर कर लेने में सफल हो तात्या आ पहुँचने के समाचार सुन कर रानी लक्ष्मी को बड़ा आनंद हुआ और अुसने पेशवा को सीधे ग्वालियर पर चढ़ जाने का आग्रह किया। २८ मअी को क्रांतिकारी अमीनमहल को पहुँचे। संदरदार ने अुन्हें रोकने की चेष्टा की। अुत्तर मिला, "तुम कौन होते हो रोकनेवाले? हम पेशवा हैं और स्वराज्य और स्वधर्म के लिअे लड़ रहे हैं। सारे संसार को मालूम हो जाय कि हम पेशवा हैं और अितिहास भी कान खोल कर सुने हम स्वराज्य और स्वधर्म के लिअे लड़ रहे हैं।"

श्रीमत रावसाहब के अिन शब्दों से कायर चुप हो गये और वहाँ के हजारों देशभक्तोंने क्रांतिवीरों का हृदय से स्वागत किया। तब पेशवा सीधे

गवालियर राजधानी के दीवारों से आ टकराये। शिंदे को अुन्होंने लिखा, 'मात्र, मित्रत्व की भावना से हम आप के पास आ रहे हैं। आपसी पुराने संबधों को स्मरण करो। हम आपकी सहायता चाहते है और अुसीसे हम दक्षिण पर चढाअी कर सकेंगे।' किन्तु कृतघ्न गवालियर नरेशने पुराने नातें को कब का तोड दिया था। यह बात! तब तो अुसे बताना होगा पुराना और अिस समय का नाता क्या है! "शिंदे के पुरखा हमारे सेवक थे; मामूली सेवक थे—यह पुराना नाता! और अिस समय? शिंदे की सारी सेना हमारा साथ देने को सिद्ध है। तात्या टोपे ने सेनाधिकारियों से मिलकर सब भेद जान लिया है।" किन्तु यह सब भूल कर शिंदे अपनी सेना और तोपों के साथ गवालियर के पास पेशवा की सेना पर चढाअी करने चला। श्रीमंत पेशवा ने सेनासभार को देख कर यह माना कि शिंदे, पछता कर, स्वदेश के झण्डे की वंदना के लिअे अगवानी कर रहा है। किन्तु रानी लक्ष्मीने साफ बता दिया, कि गवालियर नरेश राष्ट्रीय झण्डे के आगे झुकने को नहीं, ठुकराने के लिअे आ रहा है। रानी अपने ३०० सैनिकों के साथ सीधे शिंदे के तोपखाने पर धावा बोल गयी। थोडे ही समय में जयाजी-राव शिंदे और अुसके शरीर-रक्षक 'भाले घाटी' वीर दीख पडे। छेडी हुअी नागन से भी अधिक क्रोध से अिस राष्ट्रद्रोही को देख लक्ष्मीबाअी अुबल पडी और तीर की तरह वह अुनपर टूट पडी। देख! महादजी शिंदे के शूर वंशज जयाजी! रनवास में पडी यही बाअीस वर्ष की अबला तुम्हारे तलवार को ललकार रही है। संसार देखे कि महान् देशभक्त महादजी का कितना अंश अिस फिरंगीभक्त जयाजी में अुतरा है, जरा अजमा तो लो! रानी के पहले ही हमलेसे अुस के मुसाहब बगलें झॉंकने लगे और 'भालेघाटी' भाग खडे हुअे। किन्तु, कम से कम, अुस की विशालवाहिनी और भीषण तोपखाना अवश्य अपनी शक्ति दिखा देंगे। गवालियर की सेना ने तात्या टोपे को देखा और, बस, अपनी शपथ को स्मरण कर पेशवा के साथ लडने से साफ अिनकार किया, मुख्य सेनाधिकारियों के साथ सारी सेना पेशवा की ओर गयी; तोपखाना धरा रहा; और गवालियर के हर सैनिक ने स्वराज के झण्डे को

प्रणाम किया। जिस तरह क्रांतिनेता के अेक जादूअी स्पर्श से ग्वालियर नरेश का सिंहासन हड़हड़ाकर गिर पड़ा।

और कायर जयाजी तथा अुस का मंत्री दिनकरराव दोनों मिलकर, केवल मैदान ही को नहीं, ग्वालियर को भी छोड़ आगरे भाग गये।

ग्वालियर की प्रजा के आनंद का ठिकाना न रहा। श्रीमंत के सम्मान में सेनाने तोपें दागीं। शिंदे के कोषाध्यक्ष अमरचंद भाटिया ने शिंदे के खजाने से सब कुछ पेशवा के चरणों में धर दिया। क्रांतिकार्य से सहानुभूति दिखानेवाले जिन देशभक्तों को बंदी बनाया गया था, अुन्हें जनता के जयघोष में मुक्त किया गया। अंग्रेजों का साथ देने की सलाह देनेवाले शिंदे के राष्ट्रद्रोही दिवान् भवानी के साथ भाग गये थे; किन्तु अुन का नामोनिशान भी न रहे जिसलिअे अुन के घरों में आग लगायी गयी और अुन की संपत्ति जप्त की गयी। 'राजा और प्रजा का सच्चा नाता अेशियायी लोग बिलकुल नहीं समझ पाते' अिस घृणित भ्रम को ग्वालियर की प्रजा ने मुँहतोड़ अुत्तर दे कर अुसे झूठा प्रमाणित कर दिया है। क्यों कि, वह राजा क्या है, जो स्वदेश और स्वधर्म का द्रोह करे? पेशवा के सिंहासन से बाजीराव (२ य) को ठीक समय पर नीचे न खींचने के कारण ही तो १८१८ में मातृभूमिका द्रोह करने के पातक के कलंक का टीका पुणें के माथे लगा। ग्वालियरने यह पातक न किया, जिस से १८५७ की क्रांति आधुनिक भारत में नये से अंकुरित होनेवाली प्रजा की शक्ति के प्रथम अुदाहरण के रूप में, अितिहास में अंकित होगी। शिंदे यदि स्वदेश का साथ नहीं देता तो स्वदेश भी अुसे सहारा न देगा। तलवारें और तोपें, रिसाला तथा पैदल सेना, सरदार अेवं सरदार, मंदिर और मूर्ति—सब कुछ राष्ट्र के लिअे हैं और शिंदे ही केवल राष्ट्र के लिअे न हो तो धकेलिये अुसे सिंहासन से; और निकाल बाहर कर दो अुसे राजमहल से, राजधानी से, ठेठ देश की सीमा से! अब 'राजा प्रकृति रंजनात्'—राजा जनता के सुख के लिअे है—अिस रघुकुल

रीति के अनुसार (रघुवंश स. ४ श्लो. १२) राजा वही बनेगा जो प्रजा को सुखी करने ही के लिअे राजपद को स्वीकार करेगा !

हाँ, ३ जून का शुभ दिन निकम्मे हो कर बिताना अच्छा नहीं ! स्वराज्य को अभ्यग स्नान से नहला कर स्वदेश के सिंहासन पर बिठाना आवश्यक है। अिस लिअे फुलबाग में अेक बडा समारोह मनाया गया। सरदार, राजनीतिज्ञ, सेनाधिकारी, जो भी क्रांतिकार्य में पेशवा का साथ देने को राजी थे, सब अपनी श्रेणी के अनुसार विराजमान थे। तात्या टोपे के नेतृत्व में अरब, रुहेला, पठान, राजपूत, रगड, परदेसी, हर प्रकार के वीर अपने सैनिक गणवेश में तलवार लगाये आये थे। श्रीमत पेशवाने भी अपने पद के वस्त्र पहने थे, मस्तक पर सिरपेंच और कलगी तुर्रा, कानों में मोती के कुंडल, गले में मोतियों तथा हीरों के हार थे। पेशवा के समस्त सम्मान-चिन्हों के साथ, भालदार, चोपदारों के ललकारों में श्रीमत दरबार में पधारे। सब ने झटक-पट वदना की और आनद के आँसुओं से डबडबायीं आँखों के साथ वे सिंहासन पर विराजमान हुअे। फिर अुन्होंने सब को वक्तृतापूर्ण शब्दों में धन्यवाद दे कर रामराव गोविंद को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। तात्या टोपे सेनापति बने और रत्नजडित तल्वार अुस को भेंट की गयी। अष्ट प्रधानों का चुनाव हुआ। सैनिकों में २० लाख रुपये बाँटे गये. . (पारसनीसकृत रानी लक्ष्मीबाअी की जीवनी पृ. २०९.)

नानासाहब पेशवा के प्रतिनिधि रावसाहबने अिस तरह अेक नया सिंहासन जमा कर अेक नयी आशा, नया प्राण क्रातिदल में प्रेरित किया और विशृंखल बने क्रांतिकारियों को अेक सूत्र में पिरोने के लिअे अेक नया केन्द्र, अेक अड्डा पैदा किया। युद्ध की धूम के बीच ही अिस प्रकार राज्यारोहण समारोह सपन्न करने और वदनार्थ तोपों की बाढ दागाने में तात्या टोपे का पागलपन नहीं था। ससार ने क्राति को मृतप्राय देखा था, जिसे अिसी अुपाय से तात्याने निराशा के गर्त से अुठाया था। ससार कुछ आनद से, कुछ निराशासे चिल्लाया था।—'क्राति अब मर गयी, अुस

में कोअी पुछपुछी नहीं, किन्तु यह कैसा जादू है! तात्याने गोपालपुर में मरी मिट्टी को अुठाया, दो अुसपर फूंक मारी और सारे सभासद चकित हो कर देखा, कि अुस मिट्टी से अेक सिंहासन अुभर अुठा, जिस के चरणों में लाखों रुपयों की झनझनाहट थी। महान् आश्चर्य! देखो, हजारों तलवारें चमक रही हैं। सुनो, तोपों की घावें वंदना कर रही हैं। अेक नयी सेना खडी हुअी है। नयी तोपें तैयार हैं; तात्याने अेक नया राज जीता है। किन्तु संसार को अपने चमत्कारों से चकित करने के लिअे तात्याने जितनी चेष्टा थोडे ही की है? अुस का हेतु था कि राव पेशवा के स्थापित होने की गणना जिन लोगों द्वारा सुन कर सब दूर फैले हुअे क्रान्तिकारियों को केंद्रित होने की प्रेरणा होगी, तब और भारत जागेगा। वह जानता था कि ग्वालियर में राष्ट्रीय झण्डे को फहराता देखकर अुनमें अतीव अुत्साह और साहस पैदा होगा। अुसने भाँप लिया था, कि नये संस्थापित सिंहासन के आदर से, कोअी आकर्षण केन्द्र न होनेसे, फैले हुअे अराजक का स्थान अनुशासन लेगा। तात्याने यह सब ताड लिया और अुस की कल्पना बिलकुल ठीक निकली। क्रान्तिदल के शरीर में फिरसे जान आ गयी। जहाँ अेक ओर तात्याके देशवासियों में अुत्साह की लहर दौड गयी, वहाँ दूसरी ओर अभी सुलाये अंग्रेजी सैनिकों का दिल बैठ गया। जिसी हेतु से तात्या और अन्य नेताओंने राज्यारोहण की धूम मचायी था। अुनका यह गहरा षड्यन्त्र सफल हुआ। क्यों कि, तात्याकी तोपों की गडगडाहटसे ह्यू रोज की सुस्ताने की अिच्छा धूल में मिल गयी। जिस चतुरता और मीनेसना का परिचय, ग्वालियर पर कब्जा करने में तात्या और लक्ष्मीबाअीने दिया अुस के बारे में मॅलिसन कहता है —"असम्भव सम्भव कैसे बन गया यह बताया गया है ह्यू रोज को यह भी मालूम हुआ, कि अब और देरी करनेका परिणाम क्या होगा! बागियों के हाथ से ग्वालियर यदि जल्द छीना न जाय तो क्या क्या भयंकर परिणाम होंगे जिसकी कल्पना करना कठिन था। समय मिल जाय तो ग्वालियर को दखल करने से जो असीम राजनैतिक तथा सैनिक शक्ति तात्याने प्राप्त की थी और मानव शक्ति, धन, और सामग्रीके जो साधन अुसे मिल गये थे, अुसके बलपर कालपीमें

तितर बितर हुअी सेनाके टुकडों को जोड, फिर वह नयी सेना खडी करेगा और भारत भर मराठों का अुत्थान होगा। अुस को प्रकृतिने जो अदम्य जीवट का गुण दिया था, अुसके बूतेपर वह दक्षिण महाराष्ट्र में फिरसे पेशवा का झण्डा लहराने में समर्थ होगा। अुस प्रदेशसे हमारी (अंग्रेजो) सेना निकाली गयी थी और कहीं मध्य भारतमें तात्या को विशेष विजय मिल जाय तो वहाँ के लोग फिरसे अुस साधना के पक्ष में जायँगे, जिस को पुरी करने में अुनके पुरखाओंने अपना खून बहाया था।*

यहाँ तक सब ठीक हुआ। अेक बार तो ह्यू रोज को चौंका कर अुसे बेमन बना दिया। अब रानी लक्ष्मी की बातपर ध्यान न देनेवालों को धिक्कार है। अेक युद्ध को छोडकर अन्य सभी समारोह बंद कर दिये जायँ। किन्तु, दुर्भाग्य! क्रांतिकारियों को जो मस्ती आ गयी थी अुस के नशेमें सेना को अद्ययावत् सज्ज रखने की ओर अुन्होंने ध्यान न दिया। अैशोआराम, अच्छी दावतें तथा घातक ढीचडपन में सारे लोग मगन थे। शायद अुन्होंने समझा; बस, यह है स्वराज्य की सीमा!

वास्तव में वे स्वराज गँवा रहे थे। क्यों कि, थकित हुअे ह्यू रोज ने अपने सबसे अच्छे सैनिकों के साथ बडे वेगसे गवालियरपर हमला किया। अपने साथ वह देशद्रोही शिंदे को लाया था और घोषणा यह थी, कि केवल शिंदे के लिअे अंग्रेज लडेंगे। गवालियर की भोली प्रजा को धोखा देने की यह तरकीब थी। क्यों कि, अुसमें अंधी राजनिष्ठा का नीच और आत्मनाशक गुण था, जिससे वह प्रजा महाराजा शिंदे के विरुद्ध न लडेगी। हाँ, किन्तु यह पुराना संसार अब नये रूप में बदल गया था। अबतक क्रांतिकारियों को जमाने में सफल तात्या अंग्रेजों का मुकाबला करने आगे बढा। मुरार की छावनी के सैनिकों को अंग्रेजोंने, हराया था। अब, पराजय की छाया अुनपर पडनेसे, क्रांतिनेताओं में बडी सनसनी पैदा हुअी। रावसाहेब बाँदा के नवाब की कोठी की ओर जल्दी जाते दिखायी दिये और बाँदा के नवाब रावसाहेब के पास दौडे। अिस

* मॅलेसनकृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ५ पृ. १४९–१५०

सारे गड़बड़ में अेक मात्र रानी लक्ष्मी ठंडे दिलसे काम कर रही थी और सब प्रकार से सिद्ध थी। तलवार म्यानसे बाहर थी। अुन्हें क्या डर है? आशा और निराशा को अुन्होंने कब का पैरोंतले कुचला था। अिस पृथ्वी की हर वस्तु के लिअे अुन्हें वैराग्य हो गया था। हाँ, अेक मात्र आकांक्षा रही थी,— रानी की अन्तिम साँस तक अुस की तलवार के आधारपर स्वाधीनता का झण्डा अूँचा रहे। दोनों को ध्यय की मृत्यु न आय, केवल खेतमें दोनों रहे ता चिंता नहीं। अिसी से रानी ने रावसाहब को धीरज बँधाया, अुससे मन सके अुस प्रकार अव्यवस्थित सेना की पुर्नरचना की और पूरबी द्वार की रक्षा का भार अपने सिर ले लिया। लक्ष्मीबाअीने अेक ही माँग की 'मैं प्राणों की बाजी लगाकर अपने कर्तव्य को पूरीतरह निभाअूँगी; तुम अपना कर्तव्य करो।'

रानी ने अपना सैनिकी गणवेश धारण किया; बढ़िया घोड़े पर चढ़ीं; रत्नमाडित खड्ग को निष्कोषित किया; और सैनिकों को 'आगे बढ़ो' की आज्ञा दी। कोटा की सराय के आसपास, जिस की रक्षाका भार अुनपर था, मोर्चाबंदी की। और जब सब ओर अंग्रेज सेना दिखायी पड़ी तब तुरहीं, करनाल और ढोल सब मारू बाजे अेक साथ बोल पड़े। काश, अुनके पास अुनके समान धैर्यशील और साहसपूर्ण सेना होती। रानी के नेतृत्व में अइण्ड और डरपोक भी वीर बहादुर बन जाता; अुन के तथा अुन के अपने चुनिन्दे घुड़सवारों के साथ रानीने अंग्रेजों पर कठिन हमला किया। लक्ष्मीबाअी की दो सखियाँ—मंदार और काशी—भी अुनके कंधे से कंधा भिड़ा कर लड़ीं। पुरुषवेश से विभूषित अिन दो सुंदर कन्याओं की स्मृति रणरागिणी रानी लक्ष्मीबाअी के साथ साथ, जब तक अितिहास जीवित है तब तक, अमर रहे। स्मिथ जैसा अेक जनरल रानी की सेना को दबा रहा था; किन्तु रानी का साहस और शौर्य देखते ही बनता था। दिन भर बिजली के समान वह मैदान में घूम रही थी। अुसकी हरावल पर अंग्रेज जोरदार हमले करते किन्तु हर बार वह अपनी पाँती को विचलित न होने देती थी। अुस की सेना कभी कभी उत्साह की उभाड़ में अंग्रेजी हरावल पर धावा बोल देती और कभी शत्रुसे काटे जाते। अन्त में स्मिथ को हटना पड़ा, अुसने पड़ाव सी

खडी हरावल को तोडने का जतन छोड दिया और काले नाग के दीमक को छेडने के बदले वह दूसरी ओर गया।

अिस तरह आज का दिन समाप्त हुआ और १८ दिनांक का सबेरा यों हुआ। आज अंग्रेजों ने तनतोड हमले करने का निश्चय किया था। सभी दिशाओं से किले पर अुन्हों ने धावा बोला और प्रयत्नों की पराकाष्ठा की। कल जनरल स्मिथ को हटना पडा था; आज नयी कुमक के साथ अुसी झाँसीवाली सेना पर वह टूट पडा। ह्यू रोज को लगा, कि अुस का वहाँ होना नितान्त आवश्यक है; अिसी से झाँसीवालों पर चढाअी करनेवाले सैनिकों के साथ वह स्वयं रहा। रानी भी अपनी सेना के साथ सिद्ध थीं। प्राणों की बाजी लगा कर वह अपने कर्तव्य पर डटी हैं। रानी ने अुस दिन कामदार चंदेरी पगडी लगायी थी; तमामी चोगा और पायजामा पहना था। मोतियों का अेक हार अुन के गले में पडा था। अुन का अपना घोडा अुस दिन कुछ थका हुआ सा मालूम पडा; सो, अेक नया घोडा लाया गया। रानी की वे दो सखियाँ जब शरबत पी रही थीं तब सवाद मिला कि अंग्रेजी सेना बढ रही है। रानी अेकदम अपने खेमे से दौड पडीं—तीर भी अितनी फुर्ती से नहीं छूटता है, मेघों से बिजली भी अितने वेग से नहीं दमकती, सामने हाथी को आते देख अुस पर झपटनेवाली सिंहनी अपनी माँद से अितनी जोश से नहीं अुछलती। रानी ने घोडा दौडाया, तलवार अुठायी और शत्रु पर धावा बोल दिया। अेक अंग्रेज लिखता है 'तत्काल वह सुंदरी रानी मैदान में अुतरी और ह्यू रोज के व्यूह का डट कर प्रतिकार किया। अपनी सेना के आगे रह कर बार बार वह हमले और घनघोर मार काट करवाती। यद्यपि अुस की सफों को चीर कर अंग्रेज जाते और अुस की सेना की पाँतियाँ पतली हो रही थीं; फिर भी रानी पहली हरावल में दिखायी पडती थीं, जो अपनी टूटी पाँतियों को फिर से संगठित कर अतुल धैर्य का परिचय देती थी। किन्तु यह सब किस काम का था? ह्यू रोज ने स्वयं अपने ऊँट-दल के जोर पर आखरी पंक्ति तोड ही दी और तो भी रानी अपने स्थान में डट कर खडी थी।"

किन्तु अितने असाधारण शौर्य से लड़ते हुअे अुसने देखा, कि अंग्रेजी सेना पिछाड़ी से आक्रमण रही है; क्यों कि, पिछाड़ी की रक्षा करने वाले क्रांतिकारियों का पाँतियों का अुसने तोड़ दिया था।

तोपें ठंडी पड़ी थीं, मुख्य सेना तितर बितर हो गयी थी, विजयी ब्रिटिश सेना रानी पर चारों ओर से आक्रमण कर रही थी और अुस के पास मात्र १५।२० सवार थे। रानी लक्ष्मीने अपनी दो सखियों के साथ घोड़े को अेड़ी लगायी। शत्रु की पाँतियों को चीर कर वह पाले सिरे पर होनेवाले स्नेमों से मिलना चाहती थीं। गोरे हुसार घुड़सवारोंने रानी को न जानते हुअे भी गोलियों की मार बरसायी और शिकारी कुत्तों के समान अुस का पीछा कर रहे थे। किन्तु रानी ने असाधारण वीरता से अपनी तलवार के बल पर मार्ग कर लिया और आगे बढ़ी। सहसा चीख सुनायी पड़ी 'बाअीसाहब' मरी, मैं मरी।' हाय यह किस की पुकार? रानी ने घूम कर देखा, अुस की अेक सखी मन्दार को अेक गोरे सैनिक ने गोली मारी थी। वह मर गयी। बिजली की तरह वह कोपभरी लक्ष्मी दौड़ आयी और अेक ही झटके से अुस फिरंगी के दो टुकड़े कर दिये। मंदार का प्रतिशोध अुन्होंने ले लिया। अब फिर घूम कर वह आगे बढ़ी। मार्ग में अेक नाला आया। बस अेक कुदान और झाँसीवाली फिरंगी के चंगुल से मुक्त हो जाती। किन्तु अुनका वह नया घोड़ा ठिठकियाने लगा। काश, अुनका पुराना घोड़ा होता। जैसे कोअी जादूअी असर हो, वह घोड़ा गोल चक्कर काटने लगा, किन्तु कूदने स अिन कार करता। अेक क्षण में गोरे सैनिक रानी के बिलकुल पास पहुँच गये। फिर भी न डर है, न झुकना। अकेली रानी की तलवार को अुन अनेकों तलवारों से टकराना था।—फिर भी रानी अुन पर टूट पड़ी। सब के साथ वह लड़ रही थी। हाय, अेक गोरे ने पीछे से सिर पर वार किया और अुस के साथ, सिर का दाहिना हिस्सा कट कर रानी की दाहिनी आँख बाहर लटकने लगी—अुसी समय दूसरा वार छाती पर हुआ। लक्ष्मीदेवी! लक्ष्मी! तुम्हारे पवित्र रक्त की आखरी बूँद अब बहनेवाली है, तब लो यह अन्तिम बलि, माता! अुस पर वार करनेवाले फिरंगी का अैसी दशा में भी टुकड़े टुकड़े कर डाला और अब

रानी अन्तिम साँसे लेने लगी। रानी का विश्वासपात्र नौकर रामचंद्रराव देशमुख पास था। अुसने रानी को अुठाया और पास की अेक झोंपडी में अुसे ले गया। बाबा गंगादास ने रानी को ठंढा पानी पिलाया और बिछौने पर लिटा दिया। रक्त से लथपथ अुस देवीने अपना शरीर बिछौने पर लिटा दिया और शान्तिसे अुनकी आत्मा स्वर्ग सीधार गयी। रानी की अन्तिम साँस निकल जाने पर रामचद्रराव ने, अपनी स्वामिनी की अन्तिम सूचना के अनुसार, शत्रु की आँख बचा कर, घास का ढेर लगा दिया; अुसी चिता पर लिटा दिया और पराधीनता के घृणित स्पर्श से अुन की लाश भी अपवित्र न हो अिस लिअे आग जला कर रानी का अग्निसंस्कार किया।

सिंहासनपर नहीं, चितापर सही। किन्तु लक्ष्मी के गले मे प्यारी स्वतंत्रता की कौस्तुभमणि अब भी बिराजमान है। रणमैदान म मरकर मृत्यू के द्वार रानी ने तोड दिये है और दूसरे लोक में स्वच्छदता से संचार कर रही है। अब अुसका पीछा मानव क्या कर सकता है। और करे तो रानी की कोअी हानि न होगी। दुष्ट यदि पीछा करे तो अुसे धधकती नरकाग्निमें जाना पडेगा।

अिस प्रकार रानी लक्ष्मीबाअी लडीं। अपना मन्तव्य पूरा कर गयीं; आकाक्षा सफल हुअी, अपने निश्चय को निबाह सकीं। अैसा अेक जीवन सारे राष्ट्र का मुख अुज्वल करता है। सब सद्गुणोंका निचोड वह थीं। अेक महिला, अभी २३ धूपकाल भी जिसने न देखे हों, गुलाब के समान सुकोमल, मधुर बरताव, विशुद्ध चरित्र; पुरुषों में भी न पायी जानेवाली अपने लोगों को संगठित करने की शक्ति अुन में थी। रानी के हृदय में देशभक्ति की ज्योति सदा प्रकाशमान थी। भारत देश के लिअे अुन्हे गर्व था। और युद्ध में अद्वितीय थीं। ससार में शायद ही कोअी राष्ट्र, अैसे दैवी गुणोंसे युक्त व्यक्ति को, अपनी कन्या और रानी कहलाने का अधिकारी होगा। अिंग्लैंड के भाग्य में यह सम्मान अबतक नहीं बदा हैं। अिटली की क्राति में अुच्च आदर्श तथा अुच्चतम वीरता का परिचय मिलता है, फिर भी अितने वैभवपूर्ण समय में भी अिटली अेक लक्ष्मी को न अुपजा पायी।

हमारे भारतवर्ष का सचमुच अहोभाग्य है, कि अैसा रत्न यहाँ पैदा हुआ। अग्नि से भी बढ़ कर तेज से यह रत्न प्रकाशमान है। बाबा गंगादास की झोंपड़ी के सामने धधकती ज्वालाओं द्वारा वह चमक रहा है। किन्तु, हमारी वैभवशाली मातृभू भी अैसे रत्न को शायद ही पैदा कर सकती, यदि यह स्वातन्त्र्य–समर, यह स्वाधीनता का महायज्ञ रचा न जाता। अनमोल मोती सागर की सतह पर नहीं अुतराते। रात्रिके अंधकार में सूर्यकान्तमणी तेज की किरणें नहीं फेंकती, चकमक का पत्थर मुलायम सिरहाने पर घिसने से चिनगारी नहीं देता। अिन सब को विरोध की अपेक्षा होती है। अन्याय मन को बेचैन बना दे; अूपर से नहीं, अंदर रक्त का हर बिंदु खौलना चाहिये। अति तीव्र स्वदेशभक्ति, तल से मथी जाने पर, ज्वलनबिंदु की अंत पर जलनेवाली अग्नि से अुत्तेजित हो जाय। खौलते क्रोध से भट्टी के बरतन को खूब हिलाया जाय; अन्याय का अीन्धन भट्टी को लगातार तपाता रहे; लपटें अेक दूसरे को क्रोड में छिपाती अूपर ही अूपर अुठें, अैसी भट्टी में, फिर, सद्गुणों के कण चमकने लगते हैं; कसौटी चलती रहती है; अूपर का सारा मल निकल जाता है; फुटकर कण द्रवरूप बनकर अेक हो जाते हैं और फिर सब सद्गुणों का निचोड़ दिखायी पड़ने लगता है। १८५७ में हमारी भारत माता में कायम नहीं, सचमुच ही आग भड़क अुठी; फिर संसार के कान फाड़नेवाला धमाका हुआ और कैसा अुत्पात! देखो, कितना विशाल फैलाव अिस आग का हुआ है! अूँची और अूँची लपट पर लपट—मेरठ में चिनगारी और डलहौसी के 'रोलर' से समथल बना और धूल के ढेर सा सारा देश ज्वालाग्राही बारूद के भंडार सा मालूम पड़ा। जैसे आतशबाजी का अनार खुलने पर अुसमें से रंग बिरंगे बाण, फूल तथा अन्य कअी प्रकार की वस्तुअें छूटती, घुमती, जलती और शान्त हो जाती है, अुसी तरह अिस क्रांति के अनार से तरह तरह बड़ा, शस्त्रास्त्र और मुठभेड़ें निकलीं—अूपर अुठीं, वेग से अूँची अुठीं। और यह अनार भी कितना बड़ा! मेरठ से विंध्याचल तक लम्बा; पेशावर से डमडम तक चौड़ा! और अुसे सुलगाया गया! आग की लपटें सभी दिशाओं में व्याप्त हो गयीं और अुस अनार के पेट में क्या क्या

अजीब चीजें थीं। लहू बारिश की तरह बरसा, ओलों के साथ! दिल्ली के घेरे, पलासी के प्रतिशोध, कानपुर की तथा लखनऊ के सिकंदराबाग की कत्लें! सहस्त्रों सहस्त्र वीर झूझ रहे है और मर रहे है, नगर जल रहे हैं; कुँवरसिंग आता है, झूझता है, गिरता है, मौलवी आया, लडा और मरा; कानपुर, लखनऊ, दिल्ली, बरेली, जगदीशपुर, झाँसी, बाँदा, फर्रुखाबाद के सिंहासन; पाँच हजार, दस हजार, पचास सहस्त्र, लाख लाख तलवारें; ध्वजाअें; झण्डे; सेनापति घोडे, हाथी, ऊट—सब अिस अनार से बाहर अेक के बाद अेक आग के फव्वारे में निकलते है! अेक कुछ ऊँचाअी की लपट पर, कुछ दूसरी पर, ये ऊँचे चढ जाते है, लडखडाते हैं और लुप्त हो जाते हैं! सब दूर लडाअी—बिजली की गडगडाहट! ज्वालामुखी के भीषण ज्वालाओं का फव्वारा यह!!

और वह चिता—बाबा गंगादास की झोंपडी के पास जल रही हैं; १८५७ के स्वातंत्र्य-समर के ज्वालामुखी को अग्निप्रलय की यह अन्तिम ज्वाला है!

तीसरा खण्ड समाप्त

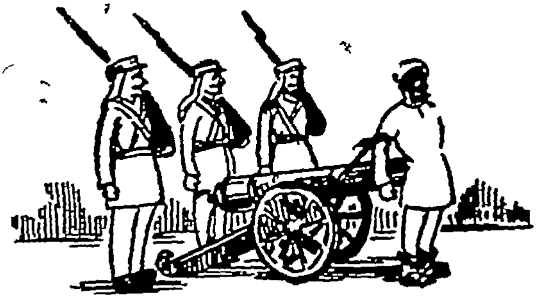

अस्थायी शान्ति

"अिम हमारे देश म, विदेशी फिरगी—तुम यहाँ के शासक और हम चोर ठहरे क्या ' " नानासाहब के येही अन्तिम शब्द अितिहास में सुरक्षित हैं ' बाजीराव (२ रा) के स्त्रैण तथा दुर्बल कार्यकाल का, पेशवा के गद्दीपर लगा धब्बा, अब रक्त के सोते बहाकर धो डाला गया है, जिस से चित्तौड की अुन राजपूतनियों के समान वह गद्दी लडते लडते स्वातन्त्र्य—यज्ञ की ज्वाला में स्वाहा हो गयी ।

—और अिस तरह अब तक धधकता हुआ ज्वालामुखी का मुख फिर अेक बार ढँक गया । हरियाली फिर से अुस मुँह पर जम गयी । सर्वत्र शान्ति, सुरक्षा और परस्पर सुहृद—भाव का साम्राज्य फैल गया । किन्तु, अिस ज्वालामुखी की सतहपर भले ही सब कुछ नयन—मनोहर तथा मृदु—मधुर भासमान होता हो, अुस की अिसी सतह के नीचे भीषण और भडकनेवाला ज्वालामुखी सोया पडा हुआ है—अिस का तनिक भी भान किसी को है ?

खण्ड चौथा

अस्थायी शान्ति

अध्याय १ ला

सरसरी दृष्टिसे

१८५७ के युद्ध का रणमैदान अधिकतर अुत्तर भारत में होने से अब तक हमें वहीं बने अपूर्व प्रसंगों का विवरण देना पड़ा। किन्तु १८५७ के स्वातंत्र्य-समर को पूरी तरह समझने के लिअे अन्य प्रांतों की हलचलों का लेखा देखना अत्यंत आवश्यक है। जिसी से भीषण प्रलय की आग की ज्वाला यहाँ अुत्तर में आकाश को चाटने जा रही है, अुसे वहीं अधम मचाने को छोड़कर, अुससे अन्य प्रांतों में जो चिनगारियाँ अुड़ीं अुनका भी विचार करना आवश्यक है।

दिल्ली के मुहासरे के विषय में पंजाब में जो घटनाचक्र था अुस का कुछ वर्णन हम अुस स्थान पर कर चुके हैं। अुस के बाद दो अेक बलवों के यत्नों को छोड़, पंजाब लगभग शान्त रहा। हिंदु मुसलमान जनता हृदय से क्रांतिकारियों के साथ सहानुभूति रखती थी; तथा मिठसों के लिअे तीव्र द्वेष भी जनता के हृदय को दहलाता था। किन्तु, किसी दल को क्रियात्मक

योग नहीं दिया गया। सिक्ख नरेश तथा सिक्ख पथ के लोगों का क्रांतिकारियों से पूरी तरह विरोध था। सो, वे युद्ध में चुप तो नहीं रहे बल्कि खुल्लमखुल्ला अंग्रेजों का पक्ष लेकर मैदान में अपने देशवासियों का खून बहाने में तनिक भी पीछे न रहे!

राजपूताने की सर्वसाधारण जनता की सहानुभूति क्रांतिकारियों के साथ थी, यह तो कअी प्रसंगों में सिद्ध हो चुका है। जयपुर, जोधपुर तथा अुदयपुर से अंग्रेजों के मातहत लड़नेवाले भारतीय सैनिकों को किस तरह लाखों गंदी गालियाँ दी जाती थीं, क्रांतिकारियों की विजय के संवाद पाते ही वहाँ के बाजारों में आनदप्रदर्शक जयध्वनि किस प्रकार फूट पडती थीं तथा अपजश की बात सुन कर अुन के अतःकरण दुख के दबावसे कैसे दबोचे जाते थे, अिन बातों को देखकर यही परिणाम निकलता है, कि अिस महान राष्ट्रीय अुत्थान में क्रांतिकारियों के यश की कामना दिन रात राजपूताने वाले किया करते थे। अब राजपूत नरेशों को देखा जाय तो मालूम होता है, कि अुन में से बहुतेरे राजा कोअी विशेष जिन्ह पैदा होने तक किसी दल को प्रकटरूप से सहायता न देते थे। किन्तु, जब जब अंग्रेजों से सैनिक सहायता के बारे में अुनपर दबाव डाला जाता तब तब अुन की सेनाअें ही अपने राजा की आज्ञा का भंग कर, फिरंगियों की ओर से अपने भाअियों से लडने से साफ अिनकार कर देतीं!

१८५७ क स्वातंत्र्य-समर के कुरुक्षेत्र का मदान अवध, रुहेलखण्ड, बिहार, बगाल बुंदेलखण्ड तथा मध्यभारत था। रंगून में अेक छोटासा बलवा हुआ, किन्तु यह सब व्यर्थ था, क्यों कि चिडियाँ खेत पहले ही चुग गयी थीं।

विंध्याचल के अुत्तर पर हमने सरसरी दृष्टि डाली, अब हम दक्षिण की ओर दृष्टि घुमाअें। सब से पहले हमारी नजर पडेगी शिवाजी महाराज के मराठा साम्राज्य पर। अिस साम्राज्य के प्रेमी अुत्तर भारत में जा कर कानपुर, कालपी, झाँसी की भीषण लढाअियाँ लढ रहे थे। अिस तरह, रायगढ से पदच्युत सिंहासन, कानपुर में रक्तसागर म नहाया, फिर से खडा दीख पडा।

और संताजी और धनाजी से अुद्घोलित स्वराज्य-ध्वज तात्या टोपे अभीतक फहरा रहा था। अुत्तर भारत में पाया गया सराहनीय मतैक्य, साहस तथा दृढ संकल्प, यदि दक्षिण में भी पाया जाता, तो समस्त अिंग्लैंड भारत में लडने आता तो भी जरीपटका-पेशवाओं का झण्डा-कभी नीचे न झुकता। जरीपटका जब आकाश में लहराता है तब अुस के प्रेम और गर्व का अनुभव न करनेवाला शुद्ध बीज का मराठा ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा। १८५७ में भी वह वीरता की प्रेरणा सभी मराठों के हृदय में स्वाभाविकतया जाग अुठी थी; किन्तु ढुलमुल नीति और दृढ निश्चय का अभाव-अिन दो रोगों ने वह वीर भाव, वह प्रेरणा गर्भ ही में मार डाली। क्रांति की योजना जब अुधर भारत में प्रगति कर रही थी, तब क्रांति का संदेश लेकर दक्षिण भर की रियासतों में तथा हर गाँव में क्रांतिदूत प्रचार कर रहे थे। सातारे के रंगो बापूजी कानपूर में नानासाहब के साथ लिखापढी कर रहे थे। पुणें, धारवाड, बेलगाँव, हैदराबाद आदि स्थानों की भिन्न भिन्न पलटनों में पुरोहित, मौलवी तथा अुत्तर भारत के विद्रोहियों के प्रतिनिधि क्रांति की मशाल अुठाकर गुप्तरूप से संचार कर रहे थे। और मैसूर से ठेठ विंध्य पर्वत तक 'अुत्तर में बलवा होते ही साथ साथ यहाँ भी बलवा करेंगे' वाली शपथें की गयी थीं। दक्षिण, बलवा करने को न भूली, किन्तु हाँ, अुत्तर में बलवा होते ही साथ साथ अुठने की बात भूल गयी। अुत्तर में अकल्पनीय विद्युत्वेग से क्रांति का अुत्थान हुआ और वह भी अिस निर्धार से कि 'मारें या मरें'। तुरन्त विद्रोह करने के बदले दक्षिणवाले देखते रहे, कि अुत्तर की लडाओी का अूँट किस करवट पर बैठता है। क्रांति के जोखों के समय में अेक क्षण जीवन मरण का निर्णय कर देता है। दोनों ओर से अिस में घाटा होता है—अुतावलेपन तथा देरी करने से। दुविधा के अैसे क्षण में, क्षमता रखनेवाला व्यक्ति अैसा महूरत चुनता है, जिस में तेज और धैर्य से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो। क्रांति अंकगणित के नियमों पर नहीं चलती। मानव के हृदय में होनेवाले आत्मिक अद्भुत सामर्थ्य के बूते पर क्रांति सफल होती है; अकर्मण्य के लचरपन से वह ठंडी पड

जाती है ! कर्तृत्व की तीव्रता से क्राति जारी रहती है। सयम, दूरंदाजी विद्रोह का दिन निश्चित करना आदि बातें सिद्धता करने तक काम की है। किन्तु अेक बार शंख फूँका गया, डंके पर चोट पडी कि प्राणों की परवाह न करते हुअे डट कर लडाअी करना ही कर्तव्य है। अुस क्षण में जो हिचकिचायगा, वह अन्त में अवश्य हारेगा। जो अुस क्षणमें विद्रोह करना अच्छा या बुरा है अिस की चिंता करेगा वह सदा के लिअे गिर जायगा। हमारा ब्रीदवाक्य हमारी टेक होना चाहिये। सिद्धता में धीरज और प्रत्यक्ष काम में साहस हो। सिद्धता करने में धीरे धीरे सावधानी से काम हो—होना चाहिये, जैसे अेक कालीन की बुनायी में होता है, किंन्तु अेक बार विप्लव फूट पडने पर क्षणमात्र भी न झिझक कर धधकती आग के विस्तार में भी तीर के समान घुस जाना चाहिये। फिर विजय हो या पराजय, जीयें या मरें—घमासान युद्ध होना चाहिये, मारते मारते मर जाने का निश्चय लोगों में होना चाहिये। क्यों कि, अेक बार क्रांतियुद्ध के नगाडे पर डंडा पड जाय तो क्राति को सफल बनाने का अेकमेव मार्ग है 'आगे बढना और कभी न रुकना!'

यह प्रधान सिद्धान्त दक्षिणवाले भूल गये। अुत्तर में विद्रोह होते ही वे न अुठे। वे धीरे धीरे काम करते गये और बारबार झिझकते रहे। सफलता की अत्यधिक चिंता और अुसके फलस्वरूप जोश में आकर, बिरले बलवे से पराजय के बिना दूसरा कोअी परिणाम न था। यह कैसे हुआ अिसका कुछ निरीक्षण हम करें।

दक्षिण में तीन महत्त्वपूर्ण सेना केन्द्र थे। कोल्हापुर में २७ वीं, बेलगॉव में २९ वीं और धारवाड में २६ वीं पलटन थीं। लिखापढी द्वारा क्रांति की योजनाअें बनीं तब बलवे का दिनांक १० अगस्त १८५७ निश्चित हुआ था, किन्तु बीचमें कोल्हापुर की जनता तथा सिपाहियों को दबाव में रखने के लिअे अेक गोरी सेना भेजी गयी। तार खाते के अेक अधिकारीने यह गुप्त संवाद सिपाहियों पर प्रकट किया। पहले से जलते हुअे सिपाहियों ने

जिसे सुन कर ३१ जुलाअी १८५७ ही को कुसमय, बलवा कर दिया। अुन्हों ने अुनके कुछ अधिकारियों को मार डाला, खजाने पर कब्जा कर लिया, अभी पहुँचे गोरे सैनिकों से भिडन्त की और महाराष्ट्र के घाटियों की ओर चल दिया। भिन्न भिन्न क्रांतिकारी दस्ते सावतवाडी के रामजी शिरसाट के नेतृत्व में अिकट्ठ हुअे और कडी क जंगल के दस्त में गोरी सेना को सताने लगे। गोवे के पुर्तुगालियों के सहयोग से अंग्रेजों ने, कुछ महीनों के बाद, अुन्हे हरा दिया और तितर बितर कर दिया। कोल्हापुर में आये नये अंग्रेज अफसर जेकबने शेष सिपाहियों से हथियार डलवा लिये और अुन के नेताओं को गोलियों से अुडा दिया।

किन्तु कोल्हापुर के सिपाहियों ने बलवा किया, तो भी वहाँ की जनता राह देखती चुप रही। बीचमें कानपुर के नानासाहब के दूत की कोल्हापुर के युवक नरेश के साथ मंत्रणा हुअी; अुसको राष्ट्रीय क्रांति में हाथ बँटाने के लिअे अुकसाया; लखनअू के दरबार की ओर से अेक तलवार भी कोल्हापुर नरेश को भेंट की गयी। अुसी तरह सांगली, जमखिंडी तथा अन्य दक्षिणी संस्थानों से भी गुप्त लिखापढी हो रही थी। किन्तु कोल्हापुर के महाराजा से अधिक गाढा शिवाजी का रक्त अुस के छोटे भाअी चिमणासाहब की नसों में था। अब तक बने बनावों से बिगडे हुअे क्रांतिकारी कार्यक्रम को फिर से कार्यान्वित करने के लिअे गुप्त मंत्रणायें अुस ने शुरू कीं। अुस ने कोल्हापुर के अस्थायी सिपाहियों तथा स्वयंसेवकों का संगठन बलवे के लिअे बनाया और १५ दिसबर के तडके कोल्हापुर ने फिर से विद्रोह किया। नगर के द्वार बंद कर दिये, तोपों को ठिकाने लगाया गया और नगर के मार्गों में क्रांति का डंका बजाया गया। जेकब को संवाद मिलतेही अुसने अपनी सेना को जमा कर अेक कच्चे द्वार पर हमला किया। तब से अंग्रेजी सेना क राजमहल पर कब्जा जमाने तक भीषण मुठ भेडें होती रहीं। हार होने पर, जैसा कि होता रहा है, राजाने घोषणा की कि बलवा सैनिकों न तथा, राजाज्ञा का भंग कर, जनता ने शुरू किया था। जब दंगेद्रोहियों के नताओं के नाम तलब किये गये तो राजाने बताया कि वह

कुछ नहीं जानता! जेकब ने नेताओं को पकड़ने की अनथक चेष्टा की; कभी लोगों को, बारी बारी से, संदेह में बंदिशाला में ठूँसा; किन्तु अुसे अुस विशाल और विकराल षड्यंत्र का तनिक भी सुराग न मिला। अेक क्रांतिनेता को जब पकड़ा जा रहा था। तब अपने हाथ के दोषी पत्र के टुकडे कर वह अुसे निगल गया—पकड़नेवालों के सामने! कभी लोगों को तोपों से अुड़ा दिया गया; अुन में से अेक पहली बार घायल हुआ, मरा नहीं; तब वह स्वयं स्थिर खड़ा रहा—दूसरी बार तोप से अुड जाने के लिअे। तब जेकब अुस के पास जा कर बोला:—मुझे तुम पर तरस आता है, तुमको धोखे से किसी ने बलवे में शामिल किया होगा। 'सो, तुम यदि कुछ विद्रोहियों के नाम बता दो तो तुम्हारे प्राण बच जायँगे।" किन्तु अुस महान् वीर ने, धैर्य के साथ अपने टूटे अंगों का असहनीय दुख सहा और "अुसने मेरी ओर (जेकब) घृणा-युक्त क्रोध से देख कर स्पष्ट शब्दों में कहा 'मैंने विद्रोह किया; मैंने किया।' किसी का भी नाम न देते हुअे वह मुडा और मृत्युदात्री तोप के सामने डट कर खड़ा हो गया। दूसरे अेक क्रांतिकारीने तोप दगने के पहले अपने अेक नेता को स्मरण किया। यह देख अेक सरकारी कर्मचारी, जो वहाँ खड़ा था चुपचाप खिसक गया और शहर में होनेवाले नेताओं तथा अन्य कार्यकर्ताओं को सचेत किया। तब गोरे अधिकारी अुस नेता को, जिस का स्मरण किया गया था, पकड़ने के लिअे अुस की खोज करने लगे किन्तु वह तो कोल्हापुर के बाहर जा चुका था और सुरक्षित था। यही आपसी श्रद्धा षड्यंत्र का काम चालू रखती, अलग अलग टोलियों और दस्तों को सगठित रखती और अुसमें किसी तरह की रुकावट या गडबडी न पड़ने देती।*

जहाँ कोल्हापुर में ये घटनाअें हो रही थीं तब वहाँ बेलगाँव में भी १० अगस्त के आसपास विद्रोह के लच्छन दीखने लगे; किन्तु ठीक समय पर सैनिक नेता ठाकुरसिंह तथा नागरिक-प्रमुख अेक साहसी मुनशी को पकडा गया। साथ साथ अेक गोरी पलटन भी भेजी गयी। बेलगाँव और धारवाड का

* सं. ५०। सर जॉर्ज ले ग्रॉद् जेकब कृत वेस्टर्न अिंडिया.

अिसतरह बल टूट गया और फिर किसी प्रकार की हलचल न दिखायी दी। अुपर्युक्त नौकर अेक सरकारी कर्मचारी थी और अुस के भेजे हुअे विद्रोही पत्र पुणें तथा कोल्हापुर के सैनिकों के पास पाये गये थे। अिस सबूत पर अुसे तोपसे अुडा दिया गया।

सातारे में रंगो बापूजी तो पहले ही से सरकारी कृपा से अुतर चुका था। कोल्हापुर में विद्रोह फैलाने के अपराध में रंगो बापूजी के पुत्र को अंग्रेजों ने फाँसी दिया था। अिसी समय सातारे के राजपरिवार के दो व्यक्तियों को कालापानी कर दिया गया था। जिस सातारे के सिंहासन की सेना में अुसने अपनी पूरी आयु लगा दी थी अुसी की अैसी बुरी गत देखकर स्वामिभक्त रंगो बापूजी सातारा छोड चला गया। अुसे पकडा देने के लिअे पारितोषिक घोषित करने पर भी अंग्रेजों की किसीने सहायता न की। स्वदेशभक्त रंगो बापूजी का क्या हुआ अिस की जानकारी आजतक किसी को न मिली।

अिन्हीं दिनों अेल्फिन्स्टन नामक अेक सुयोग्य गोरे को बम्बअी का गवर्नर बना दिया गया। अपने प्रांत की शांति का जो दायित्व अुसपर था अुसे अपनी क्षमता से निभाकर भी अुसने राजपूताने की ओर सेना भेजी। किन्तु बम्बअी के बलवे को समय पर दबा देने के काम में जो चतुरता और फुर्ती दीख पडी वह भी फारेस्ट की थी। बम्बअी केवल आलसू सुखासीनों और राष्ट्रद्रोही कायरों का घर था। अिस दशामें राष्ट्रीय क्रांति की ज्वालाअें धधकने के योग्य ज्वालामुखी अंतःकरण थे केवल अुन सैनिकों के, जो वहाँ डेरा डाले पडे थे; अिस बात को ताड कर फारेस्टने अुन सैनिकों पर कडी नजर रखी। बलवे के लिअे दीपावलि के दिन निश्चित हो चुके थे और अुसके अनुसार सिपाहियों की गुप्त सभाअें होने लगीं, जिनमें फारेस्टने अपने खास पिठ्ठुओं को घुसेडने की चेष्टा की; किन्तु सिपाहियों की दक्षतासे अुसकी अेक न चली। फारेस्ट स्वयं कभी ब्राह्मण, तो कभी और किसी का भेष बनाकर लोगों में, सामूहिक भोजों में भी, पहुँच जाता। निदान, अुसे पता लगा, कि गंगाप्रसाद नामक अेक सज्जन के

घर में सिपाहियों की गुप्त बैठकें हुआ करती थीं। कुछ डॉटडपट के बलपर वह गंगाप्रसाद के घरमें घुस गया और एक दिवार की ओटमें बैठ अेक छेद द्वारा क्रांतिकारियों की पूरी बैठक देख ली, जिसकी कानोकान भी खबर अुन्हें न मिलने पायी। और तो और, कुछ अंग्रेज अधिकारियों को वहाँतक ले जाकर अुस ने सब कुछ बता दिया। जब अंग्रेजोंने देखा, कि जिनपर अुन्हें संपूर्ण विश्वास था वेही अीमानदार और 'राजनिष्ठ' सिपाही अेक अेक कर के अुस बैठक में आ रहे हैं, तब दाँतोंतले अंगुली दबाकर वे कानाफूसी करने लगे "है! बापरे! ये तो हमारे ही सिपाही! यह कैसे हुआ?" सिपाहियों की योजना का स्वरूप साधारणतया यों था। पहले बम्बअी में बलवा हो, फिर पुणें पर चढाअी कर अुसपर दखल किया जाय, वहाँ मराठा साम्राज्य का झण्डा 'जरीपटका' फहराया जाय और नानासाहब को पेशवा घोषित किया जाय। * किन्तु अिसपर अमल होने के पहले ही फॉरेस्ट ने भंडा फोड कर दिया और दो प्रमुख क्रांतिकारियों को फाँसीपर लटका दिया; तथा छः नेताओं को सीमापार जाने का दण्ड दिया। अिस तरह बम्बअी का बलवा मूलतः रौंध डाला गया.।

अिन्हीं दिनों नागपुर तथा जबलपूर में क्रांति की चिनगारियाँ चमकने की सम्भावना दीख पडी। १३ जून १८५७ को नागपुरने विद्रोह करने की ठानी थी, अिस योजना का समर्थन सभी प्रमुख नागरिकों ने भी किया था। निश्चय यह हुआ था, कि १३ जून की रात को गाँव के लोक तीन आकाश-दिये जलाकर आकाश में चढा दें, जो सैनिकों के अुठने की सूचना समझी जायगी। और अेक बात क्रांतिकारियों के हित में थी, कि नागपूर जबलपूर के टापूमें अेक भी गोरी पलटन अंग्रेज न राख पाये थे। किन्तु थोडे ही समय में मद्रास से भारतीय पलटन आयी, जिससे बलवे की आग तुरन्त बुझा दी गयी। जबलपूर का गोंड राजा शंकरसिंह क्रांति के लिअे तन मन से चेष्टा कर रहा था। अुसे पकडकर अुसके राजमहल की तलाशी लेनेपर रेशमी बस्ते में लपेटा हुआ अेक कागज मिला, जिसपर प्रतिदिन रटने का प्रातःस्मरण लिखा हुवा था। वह

* फॉरेस्ट कृत रियल डेंजर अिन अिंडिया

ओठोंमें यों था—जगन्माता चण्डी के विकराल स्वरूप का ध्यान करते हुओ शंकरशाह रटता था "पाखण्डी निंदकों की जिव्हाओं काट डालो; पापियों को मार डालो। हे शत्रुसंहारिके। शत्रुओं को नष्ट करो। धर्म की करुण पुकार सुनो; तुम्हारे दास को शुभ वरदान दे कर उस की पृष्ठपोषक बनो; चण्डीमाते। ब्रिटिशों का संहार करो और उन्हें यहाँ से मटियामेट कर डालो।*

राजा शंकरसिंह और उस के बेटे ने जबलपुर में होनेवाली ५२ वीं भारतीय पल्टन को क्रांतिदल में शामिल करा लेने की चेष्टा की थी। जिस अपराध म जिन दोनों राजपुरुषों को १८ सितंबर १८५७ को तोपसे उडा दिया गया। जिस संवाद से शक्तिधैर्य न होकर उल्टे उछलते रोष से ५२ वीं पलटन ने बलवा किया और उसके अफसर मैकग्रेगर की हत्या कर युद्ध की घोषणा की।

धार, महीदपुर, गौरिया और अन्य स्थानों में भी शाहजादा फीरोजशाह के प्रयत्न से विद्रोह की ज्वालाओं उठी थीं। स्थानाभाव के कारण जिस का पूरा विवरण हम यहाँ दे नहीं सकते।

किन्तु उपर्युक्त सब संस्थानों से बढ़कर भारत की भवितव्यता अेक मात्र दक्षिणमें भागानगर (हैदराबाद) के निजाम के हाथ में थी। निजाम अफजलुद्दौला १८५७ का मर्मी में सिंहासन पर बैठा था। उस के प्रधान मंत्री के स्थान पर सर सालारजंग था, जिस के जिशारे पर समूचा दक्षिण प्रांत चलने को सिद्ध था। भागानगर का निजाम यदि क्रांति में साथ देता, तो सारा भारत एक हो कर उठता और उत्तर भारत के विद्रोह के सिंचाव से करक कर टूटने को होनेवाला ब्रिटिश सत्ता का रस्सा, जिस दबाव से, टुकडे टुकडे हो कर बिखर पड़ता। यह कैसे कहा जाय, कि अंग्रेजों के विरुद्ध हुओ स्वाधीनता के संग्राम के सिद्धान्त सालारजंग को किसी ने नहीं समझाये होंगे? माना जाय, कि स्वधर्म, स्वराज्य तथा स्वतंत्रता के प्रेम की अेक भी लहर अपने अंतःकरण में न उठने देने की मात्रा में-'राजनिष्ठा' सालारजंग में थी; तो

---

* चार्लस् बॉलकृत जिंडियन म्यूटिनी खण्ड २; पृ १४४

भी क्रांतियुद्ध में हाथ बॅटाने के लिअे भागानगर की जनता अुसे अुभाडने में कोअी बात अुठा नहीं रखती थी! किन्तु सालारजंग टस से मस न हुआ; तब १२ जून १८५७ को भागानगर में बडी तीव्र अुत्तेजना दीख पडी। अुस दिन लब्धप्रतिष्ठ मौलवी के हस्ताक्षर से निकले पर्चे दीवार पर चमकने लगे। क्रांतिकारी हस्तपत्रकों के तो ढेर लगे थे। मसजिदों में मुसलमानों की बडी बडी सभाअें हुअीं, जहाँ अुत्तेजनापूर्ण भाषण दिये जाते थे और लोगों से प्रतिज्ञाअें करायी जातीं, कि फिरंगी काफिरों को भारत से निकाल बाहर कर देने की चेष्टा करेंगे। सालारजंग पर अिन सभी बातों का कोअी प्रभाव न पडा; अुलटे अुसने कुछ नेताओं को पकड कर अंग्रेजों के हवाले कर दिया। तब जुलाअी १७ को भागानगर में बलवे का प्रारंभ हुआ और क्रांतिकारी नारोंने धूम मचा दी। झण्डे लहराकर अपने क्रांतिकारी नेता को छुडाने के लिअे लोग ब्रिटिश रेसिडेन्सी में घुस पडे। सब से पहले निजाम की सेना के रुहेलों तथा ५०० नागरिकों ने बलवा किया। लोग मानते थे, भागानगर संस्थान सीधी तरह सहायता भले ही न दे सके, अप्रत्यक्षरूप से सालारजंग चुपकी से सहानुभूति रखेगा; कमसे कम तटस्थ रह कर ब्रिटिशों का साथ तो न देगा; किन्तु सालारजंग ने सब को निराश किया। वह तटस्थ रहा ही नहीं, अुलटे अुसने ब्रिटिश सैनिकों से मंत्रणा कर अपने ही संस्थान के सैनिकों की हत्या करने में ब्रिटिशों का हाथ बॅटाया। अेक भिडन्त में क्रांतिकारी नेता तोराबाजखाँ मारा गया और अल्लाअुद्दीन पकडा गया, जिसे तुरन्त अंडमान भेजा गया। अिस तरह भागानगरवालों की चेष्टाअें व्यर्थ हो गयीं। अंग्रेज अितिहासकार खुलकर मान्य करता है, "तीन महीनोतक समूचे हिंदुस्थान का भाग्य अकेले सालारजंग के हाथ में था। भागानगर की दूरंदाजी से यही सिद्ध होता है, कि विद्रोही सिपाहियों के प्रयत्न से दिल्ली के सिंहासन का पुनरुज्जीवन होने की आशापर संदेहपूर्वक अवलंबित रहने की अपेक्षा, आज के अंग्रेजों की छत्रछाया के नीचे माण्डलिक बन कर रहना अधिक अच्छा है, हैदराबाद के शासकों का यही विचार था।"

निजामने क्रांतिपत्रों के सिर पर ओले गिराये तो भी अुसके पडोसी जोरापुरके हिंदु राजाने स्वातंत्र्य–समर में अपने सब कुछ पर खेलने का प्रण किया। अुस के अनुसार अुसने अरब, रुहेले और पठानों की सेना बना दी। नानासाहब के क्रांतिदूतों ने आ कर अुसे पेशवा के पक्ष में लडने को सिद्ध किया। रायपूर के हिंदु–मुसलमानोंने अुस का समर्थन किया। अुतावले लोगों के कहनेपर वह जब धावा करने के लिये सिद्ध न हुआ तब अुसे कायर कहने में भी वे न हिचकिचाये। आगे चल कर अुसने पेशवा के झण्डे के नीचे धावा किया। अंग्रेज और निजाम दोनों ने अुस पर चढाई की। जब अिन दोनों के सामने सफल होने की आशा न रही, तब यह नौजवान राजा फरवरी १८५८ के आसपास अेकाअेक भागानगर ही में चला गया। बाजार में अुसे साहाय्य की आशा से पकड कर अंग्रेजों को सौंप दिया गया। मेडोज टेलर के साथ बचपन से बहुत मेलमिलाप था; टेलर को वह 'अप्पा' कह कर बुलाता। सो; अिस राजा के द्वारा क्रांति के गुप्त संगठन का भेद लेने तथा प्रमुख क्रांतिकारियों के नाम जानने के लिये राजा की मुला कात के लिये मेडोज को जेल में भेजा; किन्तु गुप्त संस्था तथा अुस में सम्मि लित होने के बारे में जब टेलर राजासे पूछने लगा, तब राजाने क्या अुत्तर दिया ? टेलर के शब्दों में ही बताना अच्छा होगा। मेडोज टेलर लिखता है — वह झट तन कर खडा रहा और आवेश से बोला ' नहीं, अप्पा, अिस बारे में तुम मुझे रेसिडेन्ट से मिलने कह रहे हो; मैं यह बात नहीं मानूँगा। रसिडेन्ट मानता होगा, कि मैं अपनी जान बचाने के लिये अुससे याचना करूँगा; किन्तु ध्यान रहे, अप्पा, मैं कायर की तरह क्षमा माँग कर जीना नहीं चाहता। मैं अपने सहयोगी देशबंधुओं के नाम मरने दमतक न बताअूँगा।" टेलर फिर अेक बार अुस के पास पहुँचा और अुसने बताया कि राजा यदि षडयंत्रियों के नामभर बता दे तो अुसपर दया दिखायी जाने की पूरी आशा है। राजाने अुत्तर दिया 'मैं जबसे क्रांतिदल में शामिल हुआ तबसे आज तक मैंने क्या क्या किया वह सब बता सकता हूँ। किन्तु मेरे स्फूर्तिदाता का नाम बताने को मुझे यदि बाधित किया जाता हो, तो मेरा स्पष्ट अुत्तर है ' नहीं '। क्या ? काल

के गाल में जाने को सिद्ध बना मैं, अपने नेताओं के नाम बताअूँ? तोप; फॉसी या कालापानी कोअी भी दण्ड मुझे देशद्रोह से भयकर मालूम नहीं होता।" मेडोजने जब अुसे बताया, कि तब तो अुसे फॉसी ही दिया जायगा तब राजाने कहा, 'अच्छा, मै तुम से प्रार्थना करता हूँ; मुझे फॉसी पर न लटकाओ, मै कोअी चोर या गँठकटा हूँ? मुझे तोपसे अुडा दो; तुम देखोगे कि मैं कितनी निडरता तथा शान्तिसे तोप के सामने खडा हो जाअूँगा!"

अिस स्वदेशभक्त राजा को पहले फॉसी का दण्ड सुनाया गया और फिर मेडोज टेलर के हस्तक्षेप से अुसे फॉसी के बदले कुछ वर्षों तक कालेपानी की सजा दी गयी। अुसे जब अडमान भेजा जाता था तब अुसने जेल के वॉर्डर की पिस्तौल, आसपास किसी को न देख कर, छीन ली और स्वय गोली खाकर गिर पडा। मरने के पहले वह कहा करता 'कालेपानी से मृत्यु ही अच्छी है। मेरा अेक साधारण प्रहरी भी बंदिशाला में नहीं रहेगा, फिर मै तो अुन का राजा! मै बंदी कभी न रहूँगा।" ×

अिसी जोहरापुर के राजा के निकट का दूसरा व्यक्ति था नरगुंद के नरेश भास्करराव बाबासाहेब। किन्तु जब जोहरापुरने बलवा किया तब वह अुचित समय न जानकर नरगुंद नरेश चुप रहा। किन्तु जोहरापुर का खात्मा होने आया, तब नरगुंदवालों ने विद्रोह किया। अिसी प्रकार के लचर और असामायिक अुत्थान ही से दक्षिण में किसी को विजय न मिली। बाबासाहब सभ्य तथा विद्याप्रेमी था। अुत्तम से अुत्तम ग्रथों का अेक सग्रहालय भी अुस ने बनाया था। अुस की सुदरी धर्मपत्नी साहसी थी। जब से अुसे दत्तक पुत्र गोद में लेने की अनुज्ञा न मिली तब से अुस ने फिरगी का सत्यानाश करने का निश्चय किया था। अुसी की प्रेरणा से, बडी झिझक के बाद, निदान २५ मअी १८५८ को नरगुंद ने फिरगी के विरुद्ध शस्त्र अुठाया। बाबासाहब ने ब्रिटिश राजसत्ता की पराधीनता का बोझ अुतार फेंका। जब अुन्हें पता चला

× मेडोज टेलर कृत स्टोरी ऑफ माय लाअिफ.

कि अंग्रेज अफसर मॅन्सन अुन पर चढ आ रहा है, तब अुनि-२ स्टोगों के साथ नरगुंद के पास, अेक रात, जंगल में अुसे मौंडा। मॅन्सन मारा गया तब अुस का सिर काट कर नरगुंद को अेक मठूस में लाया गया; दूसरे दिन सबेरे वह नरगुंद के शहर के द्वार पर टाँगा हुआ पाया गया। अिधर बाबासाहब के सौतेले भाअी ने क्रांतिकारियों से मिलने से अिनकार ही नहीं किया, बल्कि वह अंग्रेजों के पास गया। अंग्रेज सेना नरगुंद पर चढ गयी और वहाँ के क्रांतिकारियों की हार हुअी; किन्तु बाबासाहब अुस समय शत्रु के हाथों से छटक गये। आगे चल कर गुप्तरूप से घूमते हुअे पकडे जानेपर १२ जून को अुन्हें फाँसी दिया गया। अुन की नौजवान, सुंदरी तथा साहसी रानी अंग्रेजों को ठुकरा कर अपनी सास के साथ मलप्रभा नदी में डूब मरी।

अलावा अिस के, कोमलदुर्ग का भिमराव, खानदेश के भिल तथा अुनकी युद्धको कटिबद्ध धनुष्यधारिणी औरतें और अन्य टोलियाँ महाराष्ट्रमें कम-अधिक मात्रा में बलवे की चेष्टाअें करती रहीं। नासिक के पास त्र्यंबकेश्वर के दिवान जोगलेकरने बलवा कर अपना किला रचाया, किन्तु अुन की हार के बाद पकडे जानेपर अंग्रेजों ने अुन्हे फाँसीपर लटकाया। दक्षिण में अिस तरह छोटी मोटी हलचलें हुअीं। किन्तु पूरी सिद्धता के अभाव में विद्रोह का ठीक मौका देखने की चतुरता की कमी से तथा जो चलने हुअे वे असमय, अकाफी, असंगठित मनुष्यबल के आधारपर होने से दक्षिण अंग्रेजों को बहुत कष्टदायी न हुआ, जिस से वे अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग अुत्तरभारत में कर सके।

दक्षिण की हलचलों का सरसरी दृष्टि से अिस प्रकार निरीक्षण किया। अब फिर हमें तडपते, कराहते मानी अवध की ओर ध्यान देना चाहिये। मौलवी अहमदुल्लाह के वीरचरित्र का अन्तिम अवलोकन करते हुअे अवध का कथासूत्र अधूरा छोड दिया गया है। मौलवी जैसे असाधारण वीर की मृत्यु भी अुस के जीवन की तरह वैभवशाली होती है। दूसरे केअी जन मैदान में लडते हुअे मारे जा कर स्वर्ग सिधारते होंगे, किन्तु जिन के हृदय में देशप्रेम की अग्नि

धधकती हो अुसे शान्त करने के लिये 'रक्त, रक्त,' कहकर रणभूमीपर तांडव करते हुअे जो अपने जौहर दिखाते है अुन्हे वास्तव में मृत्यु मार ही नहीं सकती। अैसे रणयोद्धा प्रतिशोध की प्यास पूरी बुझने के पूर्व खेत रह जायँ तो वे जमराज के अधीन नहीं होते। देखा गया है, कि अैसे वीर का सिर तनसे अलग हो जाय तो अुस का कबधही समरांगणमें लडता है। और यह मान्यता लोगो में प्रचलित है, कि अुस कबंध के टुकडे करनेपर भी अुस वीर का अदृश्य भूत रातमें शत्रु की छातीपर चढकर प्रतिशोध लेता है।

अिस मान्यता की जड में कुछ तत्त्व अवश्य होता है। मौलवी अहमदशाह जब समरांगण में झूझ रहा था, तब लॉर्ड कॅनिंग ने अवध प्रांत के लिअे अेक घोषणापत्र प्रकट किया था; 'जो स्वय हथियार डाल देंगे अुन्हे बागी न मानते हुअे, पूर्व के अपराधों की दयापूर्वक क्षमा की जायगी; और आज जो हमारा साथ दे रहे हैं अुन की जागीरें और अधिकार लौटा दिये जायँगे। विद्रोह के दबाने में अब ब्रिटिश शासन को पूरी सफलता प्राप्त है। ध्यान रहे, अब भी कोअी ब्रिटिश शासन का विरोध करने पर डटे रहेंगे तो अुन की अिस अुद्दण्डता के लिअे अुन्हे भयकर दण्ड दिया जायगा।" अंग्रेजों को विश्वास था, कि अिस घोषणा के बाद तथा बडे बडे नेताओं की अेक अेक कर के रण में मृत्यु होने के बाद अवध में 'सब ठीक' हो जायगा। अिसी के साथ अवध की साढेसाती मे फोड की तरह यह सवाद मिला, कि 'पोवेन के नाच राजाने ५ जून १८५८ को लोगों के आदरपात्र मौलवी का सिर काट लिया है। किन्तु अतिमानुष प्रयत्नों की पराकाष्ठा कर थका हुआ, पराजयसे पस्त और शरण लेने के लिअे जिसे क्षमा के लालच के मोह में फँसाया जा रहा था—वह अवध, मौलवी की मौत पर स्यापा रोने के बदले, भूत का सचार होने की तरह, 'प्रतिशोध' के नारे लगाते हुअे खूनखराबी में फिर कूद पडा। नीच शत्रुने मौलवी का सिर नगर के तोरण पर लटकाया किन्तु अुस का कबध मैदान में अंग्रेजों को सताने लगा। मौलवी की मौत से दबने के बदले समूचे अवध का यह भूत, अब बलाबल, यशापयश, आशा निराशा अेव जीने मरने की चिन्ता न करते हुअे नये अुत्साह से शत्रु से भिडने के

लिये मैदान में खड़ा हो गया। मौलवी की हत्या का बदला लेने को निजाम अली पिलिभीत पर चढ़ आया; खान बहादुर खाँ चार हजार सेना के साथ आया, फर्रुखाबाद से पाँच सहस्र लोग आ पहुँचे, फिरोजशाह १००० सैनिकों के साथ आया और नानासाहब, बालासाहब, अलीखान मेवाती आदि नेताओं ने मिलकर रुहेलखण्ड तथा अवध में ५००० सैनिकों के साथ भयंकर धूम मचायी। अितनी बड़ी सेना मौलवी का बदला लेने वेगसे आक्रमण करती देख पोवेन-नरेश के छक्के छूट गये। अंग्रेजों ने अुस की रक्षा के लिये तुरन्त सेना भेज दी। अिस प्रदेश के आसपास शत्रु से क्रांतिकारियों की घमासान मुठभेडें हो रही थीं। अुधर घाघरा नदी के किनारे बेगम हजरतमहल तथा मम्मूखानने डेरा डाला था। साथ साथ राजा रामबख्श, बाहुमानसिंह, भाउसिंह, हनुमन्तसिंह और अन्य बड़े बड़े जमींदार अपनी सारी सेना लेकर, अंग्रेजों से स्वाधीन अवध को फिर से छुड़ाने के लिये, अिकट्ठे हुअे थे। अिसी तरह शाहजादा फीरोजशाह, जो पहले धार में लड़ रहा था, अवध में आ पहुँचा। असाधारण निश्चय से रुअिया का किला लड़ानेवाला राजा नरपतसिंह भी यहाँ आया। जिस के पिता, जसाजसिंह, जो नानासाहब के परम मित्र थे, स्वाधीनता के युद्ध की घमासान में खेत रहे थे। सच्चे क्षत्रिय की तरह अपने पिता के स्थान ही में रणमैदान में लड़ कर नरपतसिंह अपना कर्तव्य सँवारा था। नानासाहब को अपने किले में आश्रय दिया। अिसी तरह देशाभिमान की प्रेरणा, धृष्टता तथा स्नेह से अुत्तेजना राजा बनीमाधव भी अपने किले से झपट कर कानपुर होकर लखनअू पर चढ़ाई करनेवाला था। विजय की आशा न होनेपर भी अपने सम्मान तथा कर्तव्य के लिये जो लोग मौतको भी गले लगाते हैं, अुन के असाधारण धैर्य की कोअी सीमा ही नहीं होती। क्षत्रिय कुल की आन का निबाहने, विजय की तनिक भी सम्भावना न होनेपर अितनी देरी से, वह सीधे लखनअू पर चढ़ आया। लखनअू में अुसने विज्ञापन लगवाये—नगरनिवासी सभी माताओं को बाहर निकल जाना चाहिये, क्यों कि बेनीमाधव फिरंगियों को भून डालेगा। विजय से अुन्मत्त, संपूर्ण अनुशासित सेना से सुरक्षित होनेपर भी अिस विज्ञापन के अनोखे धैर्य से अंग्रेज चौंक पड़े।

लखनअूपर हमला ? क्या बात है ? जैसे अभी लडाअी शुरू हो गयी हो, रक्तसागर अुछले न हों, सारे सालभर अवध में यह कुछ नहीं हुआ क्या ?

सो, १३ जून को, होप ग्रॅटने क्रांतिकारियोंपर अचानक धावा बोल दिया, जो लखनअू के पास नवाबगज में जमा थे। गोरे और काले सिपाहियों के नेतृत्व में जो अचानक हमला किया अुस से असावधान क्रांतिकारी तितर बितर हो जाते—किन्तु सिपाहियो ! ठहरो ! मौलवी की हत्या को अभी अेक सप्ताह भी नहीं बीता है—सो, ठहरो ! सिपाहियोंने, अैसी विचित्र दशा में भी, डट कर लडने की सिद्धता की। और देखो ! अन्य किसी जगह न मिलने वाली अद्भुत वीरता का परिचय क्रांतिकारियोंने यहाँ दिया। शत्रु भी अुस से प्रभावित हो जायगा। होप ग्रॅट लिखता है:—फिर भी अुनके हमले बडे जोरदार थे और अुन्हें विफल करने के लिअे हमें बहुत कडी मिहनत करनी पडी। बडे दृढ और साहसी जमींदार वीरोंने हमारी पिछाडी पर दो तोपों से हमला किया। मैंने भारत में कअी लडाअियाँ देखी हैं और 'जीतेंगे या मरेंगे' की आनसे लडनेवाले सूरमाओं को भी देखा है, किन्तु अिन जमींदारों की सी असाधारण वीरता मैंने शायद ही देखी है। पहले पहल अुन्होंने हाडसन के रिसालेपर हमला किया और अुसे तितर बितर कर दिया और अुनकी दो तोपों को भी विचलित कर दिया। तब मैंने सातवीं हुजार पलटन के दस्तों को आगे बढने की आज्ञा दी, अुनके साथ चार तोपें थीं, जो क्रांतिकारियों से केवल ५०० गज के फासलेपर थीं और आग बरसा रही थीं। क्रांतिकारी हँसियासे काटे भुट्टों की तरह गिर रहे थे। अेक मोटे आदमीने निडर होकर दो झण्डे अपनी तोपों के पास गाड दिये, जो वहाँ डट जाने का अिशारा था। किन्तु हमारी तोपों की मार इतनी भयकर थी, कि जो भी अुन तोपों के पास आता वह मारा जाता। हमारी सहायता के लिअे और दो दस्ते आये, जिससे क्रांतिकारियों को हटना पडा.. अुन दो तोपों के पास १२५ लाशों का ढेर लगा था। तीन घटे के बाद हमारी जीत रही। *

* होप ग्रॅट कृत अिन्सिडेंटस ऑफ दि सिपाय वॉर पृ. २९२.

पूरब, मध्य, उत्तर अवध में—लगभग सभी स्थानों में—जिस तरह की घमासान भिड़न्तें हुआीं। और ये भिड़तें केवल अंग्रजों से ही नहीं, मानसिंह तथा पोवेन नरेश के समान विश्वासघातियों से, जो क्षमा के लालच में शत्रु दल में बने रहे थे, भी हुआीं। अवध को जिस तरह थोड़ी लड़ाओी लड़नी पड़ती थी। पोवेन पर धावा बोल दिया; लखनऊ की ओर युद्ध जारी था, सुलतानपुर में भिड़न्त हुओी; नीच विश्वासघाती मानसिंह को उस के किले में बंद कर दिया गया; अंग्रेजों के मार्गों पर रुकावटें पैदा की जाती थीं; अंग्रेजों की चौकियाँ लूट गयी थीं, और जिस तरह क्रांतिकारियों ने अवध की चप्पा चप्पा भूमि अपने महान् आत्मत्याग से पूजनीय बना दी थी। जहाँ जहाँ अंग्रेज अुन्हें घेर लेते वहाँ वहाँ घेरे का तोड़ कर ये देशभक्त फैल जाते और युद्ध और प्रतिशोध के नारे लगातार चालू रखते। स्थलाभाव के कारण जिन हलचलों का क्रम ब्योरा नहीं दे सकते।

असी भीषण लड़ाओी अवध लड़ा। निदान, १८५८ के अक्तूबर में हिंदुस्थान के अंग्रेज जंगी लाट ने गोरे और काले सिपाहियों की बड़ी भारी सेना फिर से बनायी, सब दिशाओं से अेक साथ आक्रमण किया और क्रांतिकारियों को सब ओर से दबा कर नेपाल की ओर धकेलने की आज्ञा दी। फिर भी, अवध ने धैर्य न छोड़ा और बिना लड़ाओी के अेक चप्पा भी भूमि न छोड़ी।

बेनीमाधव के शंकरपुर को तीन ओरसे तीन सेनाओं ने घेरा था। रसद अुस की कम हो गयी थी; जहाँ शत्रु सब तरह से लैस था; फिर भी बेनी माधवने हथियार नहीं डाले। तब स्वयं प्रधान सेनापतिने अुसके पास संदेशा भेजा कि अब लड़ाओी चालू रखनेसे व्यर्थ रक्तपात होगा, क्यों कि जीत के कोओी लक्षण नहीं दिखायी देते। यदि वह शरण माँगे तो अुसे पूरी क्षमा की जायगी तथा अुस की सारी संपत्ति लौटा दी जायगी। बेनीमाधवका उत्तर था — 'किले का बचाव करना अब असम्भव है, मैं अुसे छोड़ रहा हूँ। किन्तु शरण ? मैं कभी तुम्हारी शरण नहीं माँगूगा; क्यों कि, मेरी देह मेरी अपनी नहीं, मेरे प्रभु की है।" किला तुम्हारे हाथ आयगा; बेनीमाधव नहीं; क्यों कि, अुस की देह

स्वराज्य की दासी है। यह अकल्पनीय अेकता, भारतमाता की भक्ति अपने निष्ठावंत सपूतों में प्रेरित करती है और अुस से देशभर में अलौकिक वीरता चमक अुठती है ! .X.

१८५८ के नवंबर में अिंग्लैंड की महारानी ने वह सुप्रसिद्ध घोषणा की और पहले की भविष्यवाणी सच निकली–ठीक सौ वर्ष के बाद कपनी के शासन का अन्त हुआ–हाँ, किन्तु अिंग्लैंड की महारानी की सत्ता अुस के स्थान में चढ ही बैठी ! अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र युद्ध करनेवालों को तब क्षमा मिलनेवाली थी, जब वे हथियार डाल दें। अुस घोषणा में यह वचन दिया गया था, कि अुन की सपत्ति जब्त नहीं होगी, यहाँ तक कि अुन के अपराधों की जाँच भी न होगी।*

.X स. ५१। चार्लस बॉल कहता है.—"अुपर्युक्त घोषणा के बाद भी अवध का झगडा बडा अजीब सा रहा। अिन सभी बागियों की टोलियों को जनतासे अपूर्व सहानुभूति तथा आदमियों की कुमुक मिला करती थी। ये बागी बिना किसी रसद के कूच कर देते, क्यों कि हर स्थान के लोग अुन्हें खिलाते पिलाते। ये अपना सामान चाहे जहाँ, बिना पहरी के, छोड जाते, क्यों कि लोग अपने आप अुस की रक्षा करते। अिन बागियों के पास अंग्रेजों की हर हलचल के समाचार घंटे घंटे पर पहुँचते रहते, जिस से अपनी तथा अंग्रेजों की दशा को वे पूरी तरह जान लेते। हर खाने के मेज के आसपास खडे खानसामें बागियों से गुप्त सहानुभूति रखनेवाले थे, जिस से हमारी कोअी योजना गुप्त न रह पाती, अैसे तो अंग्रेजों के हर खेमे में बागियों के गुप्तचर खडे होते थे। बागियों पर अचानक हमला नहीं किया जा सकता था। कोअी कौतुक बन जाय तो दूसरी बात है। क्यों कि अेक मुँह से दूसरे मुँह तक पहुँचनेवाले समाचार हमारे घुडसवारों को मात कर देते।" खण्ड २, पृ ५७२.

* सं. ५२। यह संदर्भ विशेष महत्त्वपूर्ण है; क्यों कि १८५७ के किसी अितिहासमें यह जानकारी न मिलेगी। और तो और, लंदन–टाअिम्स के लिअे भेजे गये श्री. रसेल के सवाद–पत्रों में भी अिस का जिक्र नहीं मिलेगा। अर्थात्

राजामहाराजाओं के दत्तक गोद लेने का अधिकार मान लिया गया। अिंग्लैंड की महारानी के अुस घोषणापत्र में यह अलग अभिवचन दिया गया था, कि जनता के धार्मिक अधिकारों तथा रूढियों में तनिक भी हस्तक्षेप नहीं किया जायगा और अुपर्युक्त सभी वचन पूर्णतया पालन किये जायेंगे।

आगे कहा गया था, "श्रीस्ट अिंडिया कंपनी के कार्य काल में नागरी तथा सैनिकी महकमों के भिन्न भिन्न पदों पर काम करनेवाले आज के नौकरों को हम अुन्हीं पदों तथा अधिकारों पर रखने की प्रतिज्ञा करते हैं; हाँ, यह सब कुछ हमारी अिच्छा पर तथा आगामी नियम निर्बंधों पर निभर रहेगा।"

"देशी नरेशों के लिये प्रकट किया जाता है, कि श्रीस्ट अिंडिया कंपनी के साथ अुन्हों ने जो संधियाँ या ठहराव किये होंगे वे हमें भी अक्षर अक्षर मंजूर हैं; अुसपर पूरी तरह अमल करने को हम राजी हैं। हाँ, नरेशों को चाहिये, कि वे अुस पर अमल कर आपसी सहयोग की चेष्टा करें।"

"जिस समय जो है, अुस से अधिक प्रदेश जीत कर अुस पर राज करने का हमारा अिरादा नहीं है; और, जिस तरह हमारे सार्वभौमत्व के अधिकारों तथा हमारे मातहत प्रदेशों पर हम किसी तरह का, तथा किसी का,

---

निम्नलिखित सब जानकारी श्री रसेल के जॉन डीन (ब्युन टािअम्स के संपादक) को लिखे व्यक्तिगत पत्र में है। यह पत्र डीन की जीवनी में शामिल न होता तो लोगों को कभी न मालूम होता। पत्र यों है —१८५९ के अन्त में हम्प्सु अेच रसेल लॉर्ड क्लाअिड के साथ था। प्रधान सेनापतिपर लिखे अपने पत्र में, अिलाहाबाद के अपने मकाम—मालिक-अेक अँग्लो अिंडियन जनरल मर्चंट—के विषयमें लिखते हुअे लॉर्ड क्लाअिड कहता है — तुम्हें ठीक पता है अुसने क्या किया ? नहीं। अच्छा, जब विद्रोह फूट पड़ा तब देशी व्यापारियों का अुसपर काफी ऋण था। अुसे स्पेशल कमिशनर बनाया गया और सबसे पहला काम अुसने किया, अपने सभी साहुकारों को फाँसी चढ़ाना।

भी अन्याय्य आक्रमण चुपचाप नहीं सहेंगे, अुसी तरह दूसरों के अधिकारों पर कोअी आक्रमण करना चाहे तो कभी अुसे अनुमति न देंगे। देशी नरेशों के अधिकार, सम्मान तथा पद पर ध्यान देकर अुन के साथ हम अत्यत आदर से बरताव करेंगे। हमारी यह भी अिच्छा है, कि हमारी जनता के समान अुनकी भी अुन्नति हो और अतर्गत शाति तथा सुराज्य–प्रबध से ही प्राप्त होनेवाली सामाजिक प्रगति तथा अुन्नति का लाभ अुन्हें मिले।"

"और यह भी हमारी अिच्छा है, कि हमारे प्रजाजनों से कोअी भी अपनी शिक्षा, क्षमता तथा कर्तृत्व से सुयोग्य हो तो, जाति, धर्म, पथ–किसी का विचार न करते हुअे अुसे निष्पक्ष होकर और निःसकोच हमारी सेवा में किसी भी पद पर भरती किया जायगा।"

"ब्रिटिश प्रजाजनों की प्रत्यक्ष हत्या करने में जिन्हों ने सक्रिय हाथ बॅटाया हो और यि वह अभियोग सिद्ध हो चुका है अुन अपराधियों को छोड अन्य सभी को हम क्षमा घोषित करतें है।

"और अब भी सशस्त्र होकर हम से युद्ध कर रहे है वे भी यदि अपने गॉवो को लौट जायॅगे तथा अपने अपने पहले के धंधों में लग जायॅगे, तो हमारे और हमारे शासन के विरुद्ध अुन के किये सभी अपराध, बिलाशर्त, क्षमा कर दिये जायॅगे और अुन अपराधों को हम बडी कृपा कर भूल जाने को सिद्ध है।"

अिस तरह यह भारत का भाग्यलेख (?) 'महारानी का घोषणापत्र' प्रकट किया गया। अिस का प्रमुख अुद्देश अवध की क्रातिको ठंढा-कर देना ही, निस्सदेह, था। किन्तु अवध ने अिस की ओर ध्यान तक न दिया। अुलटे अिसके सामने अवध की बेगमने अेक घोषणापत्र यों प्रकट कियाः— अिंग्लैंड की रानी के घोषणापत्र में यह बताया गया है, कि देशी नरेशों से कंपनी ने जो सधियॉ या ठहराव किये हों वे सब के सब अुस पर बंधनकारी हैं। किन्तु भारतीय जनता अिस कपट को अच्छी तरह जान ले। कंपनी तो सारा भारत हडप गयी है और अिस को सिर ऑखों पर रखना हो तो अिंग्लैंड की रानी ने

क्या नयी बात कही ? भरतपुर के राजा को कंपनी ने वचन दिया, कि अुसे अपने पुत्र के समान माना जायगा और प्रत्यक्ष में अुस का सारा राज हड़प लिया गया ! लाहौर नरेश (दिलीपसिंह) को लंदन में बंदी रख छोड़ा जो कभी यहाँ लाया नहीं जाता। नवाब शमसुद्दीन खाँ को अेक हाथ से फाँसीपर लटकाया गया और दूसरे हाथ से अुसे सलाम करते अिन अंग्रेजों को लज्जा न आयी ! सातारे के छत्रपति के पुणे के पेशवा को बंदी बनाया और मरते दमतक बिठूर में अुसे पेन्शन चढ़वाते रहे। बनारस नरेश को आगरे में बंदी बना रखा। बिहार, अुडीसा, बंगाल के नरेश या जागीरदारों को तो मटियामेट कर डाला गया। बकाया वेतन बाँटने के बहाने अवध का पुरातन मौरूसी धन सब का सब हड़प लिया। हाँ, संधी के ७ वें परिच्छेद में प्रतिज्ञा लिख दी कि अब आगे चलकर कुछ नहीं लेंगे। जिस दशा में जो कंपनी ने किया अुसी को मंजूर करने की बात अिंग्लैंड की रानी करती हो तो पहले तथा आज की स्थिति में भेद क्या हुआ ? ये तो सब पुरानी बातें हैं। किन्तु अभी अभी प्रतिज्ञापूर्वक लिखी संधि–पत्र की शर्ता को ताकपर रख कर और हमारे लाखों रुपयों का ऋण अुस के सिरपर होते हुअे भी कंपनी को ढूँढने पर भी कोअी बहाना न मिला तो 'राजकर्ता का और प्रजा का असंतोष' यह झूठा कारण बता कर हमारी अपरंपार प्रजाओं तथा करोड़ों के प्रदेश को साफ हड़प लिया ! यदि हमारे प्रजाजन पहले के नवाब वाजिदअली शाह के कार्यकाल में असंतुष्ट थे, तो फिर अब हमारे कार्य काल में प्रजा पूरी संतुष्ट और सुखी होने का क्या कारण है ? राजनिष्ठा और प्रेम जितना हमें मिल रहा है ऐसा शायद ही किसी राजा को अुसकी प्रजाने दिखाया हो ! जिस दशा में हमारा प्रांत हमें क्यों कर नहीं लौटाया जा रहा है ? अिंग्लैंडवालीने और कहा है, कि अधिक प्रदेश जीत कर अुसपर राज करने की अुसे अिच्छा नहीं–फिर भी रियासतों पर दखल करना कम नहीं होता। अुसने यदि पूरा शासन अपने हाथ में ले लिया हो, तो फिर हमारी प्रजाने अपनी अिच्छा साफ प्रकट करनेपर भी अब तक हमारा राज हमें क्यों कर नहीं लौटाया जाता ? "

"आज तक कभी सुना नहीं गया कि कोअी रानी या राजा विद्रोह के लिअे सारी सेना या सपूर्ण राष्ट्र को शिक्षा देती है। सब को क्षमा किया जायगा; क्यों कि, समूची सेना को तथा सभी भारतियों को दण्ड देना समझदारों को कभी पसंद नहीं आयगा। अुन्हे यह भी मालूम है, कि जबतक 'दण्ड' शब्द सुनाया जाता हो तबतक असंतोष और विद्रोह कभी शान्त नहीं होते। कहावत प्रसिद्ध है; मरता क्या न करता! मरी मुर्गी आगसे थोडे ही डरती हैं?

"अिंग्लैंडवाली की घोषणामें यह भी कहा गया है, कि जिन्होंने विद्रोह किया या अुसे प्रोत्साहन दिया अुन को प्राणदान दिया जायगा; किन्तु अुनकी जॉच कर कुछ दण्ड भी दिया जायगा। और फिर जिन्होंने स्वयं हत्या की है या अुसकी सहायता की है, केवल अुन्हीं हत्यारों को छोड, सब को क्षमा घोषित की जायगी। अब अिसे देख अेक गँवार भी ताड सकता है, कि चाहे अपराधी हो या निरपराधी कोअी नहीं बच पायगा; बचना असम्भव है। अिंग्लैंडवाली का घोषणापत्र देखकर हमारे प्रजाजनों के लिअे हमारा जी बिना छटपटाये कैसे रह सकता है? क्यों कि, यह घोषणापत्र तो ज्वलन्त द्वेष-भाव का बढिया प्रदर्शन है! अिसी से हम अब स्पष्ट आज्ञा देते हैं, कि गॉव के मुखिया के नाते जो लोग मूर्खता से ब्रिटिशों के सामने पेश हुअे हों, वे १ जनवरी १८५९ के पहले तुरन्त हमारे शिबिर में अुपस्थित हो जायँ। अर्थात् अुनका अपराध निश्चित क्षमा कर दिया जायगा। हमारी अिस घोषणापर विश्वास कर भारतीय नरेश कितने दयालु और अुदार होते हैं अिसे ध्यानमें रखा जाय। सहस्र सहस्र लोगोंने अिसका अनुभव किया है। लाखों लोगोंने यह सुन रखा है। हॉ, यह कभी किसी ने सुना भी नहीं कि अंग्रेजोंने किसीको क्षमा कर दिया हो।"

"शान्ति प्रस्थापित होने पर लोगों की सुखसुविधा में वृद्धि करने के लिअे नयी सडकें बनाने; नयी नहरें खोदने आदि सार्वजनिक कल्याण के काम हाथ धरने की बात अिंग्लैंडवाली ने की है। अुस पर भी गौर करना चाहिये।

मालूम होता है, सड़कें बनाने और नहरें खोदनेसे बढ़कर अन्य अच्छा धंधा भारतीयों के लिये वह ढूँढ न सकी।

" जनता यदि यह सब कुछ जान न ले तो फिर आशा की तनिक भी सम्भावना नहीं है।"

"हमारी यही भिच्छा है, कि अुम अिंग्लैण्डवाली की घोषणा के जाल में कोअी फँस न जाय।"

हाँ, तब महारानी से अुद्घोषित बिलाशर्त क्षमादान का लाभ न अुठाने का अवधने निश्चय किया। अुसके अनुसार अब भी वह अपनी तलवार चमका रहा था, घोड़े पर सवार था, रणमैदान में डटा हुआ था, रक्त से लथपथ था, अेवं यश की ज्वाला में कूद रहा था। स्वातंत्र्य, या तो अन्ततक युद्ध; यही अुसका मन्तव्य था। शत्रुके पाँवपर आलोट ने की अपेक्षा अुस के गलेपर झपटना ही अुस की प्रकृति को भैंचता था। अब भी शंकरपुर, डुंडियाँ खेड़ा, रायबरेली, सीतापुर के रणमैदान झुस रहे थे, स्वयं चीरे जाते थे और फिर भी लड़े जाते थे।

जिस प्रकार अवध १८५८ के जून से नवंबर तक तथा डिसंबर से अप्रैल १८५९ तक लड़ते हुअे सब ओर से दबाया गया और अुसे नेपाल में खदेड़ा गया। क्रांतिकारी नेपाल में घुसे तब भी अंग्रेजों ने अुन का डटकर पीछा किया। किन्तु अेक आशा तन्तु था—नेपाल का हिंदु नरेश अुन्हें आसरा देगा?

जिस समय नेपाल में पहुँचे क्रांतिकारियों की संख्या लगभग साठ सहस्र थी। अिन के नेता थे नानासाहेब, बालासाहेब, बेगम हजरत महल तथा अुसका पुत्र तथा अन्य। नेपाल के जंगबहादुरने अुनके नाम अेक पत्र भेजा, जिस के अुत्तर में नानासाहबने जितना स्पष्ट, मुँहतोड़ और व्यंगपूर्ण लिखा था, कि कम से कम अुसका कुछ भाग यहाँ दिये बिना नहीं रहा जाता। अुत्तर यों था —" पत्र प्राप्त। भारत के कोने कोने में हम नेपाल की कीर्ति

सुन रहे थे। भारत के अनेक प्राचीन नरेशों का अितिहास हम पढ चुके हैं और अनेक विद्यमान राजाओं के गुण-दोष भी हम जान चुके है, तो भी, निश्चय से, हम कह सकते हैं, कि आप का काम कोअी सानी नहीं रखता! क्यों कि, आपके प्रजाजनों से ही दुष्टतापूर्ण व्यवहार करनेवाले ब्रिटिशों की आप महाराज ने सहायता की। और अुस में तनिक भी न हिचकिचाये। केवल अुन के माँगने पर आप सहायता को दौड गये। अहा! आप की अुदारता की सीमा न रही! अच्छा, तो मै भी मानता हूँ, कि आप के प्रजाजनों से पेशवा के जो वशज सदा से मित्रता का बरताव करते आये है अुन की सहायता आप अवश्य करेंगे; क्या यह मेरी आशा अस्वाभाविक है? और खास कर तब, जब कि आप ने कट्टर शत्रु ब्रिटिशों को खुले हाथों सहायता प्रदान की है। जिसने अपने शत्रु को घर के अंदर बुलाया वह अपने मित्र को कमसे कम निकाल बाहर तो नहीं करेगा। आप महाराज को वह सुप्रसिद्ध विवरण फिरसे सुनाना अनावश्यक है—हिंदुस्थान किन अन्यायों की चोटों से कराह रहा है; ब्रिटिशों ने संधियों को ठुकरा दिया है; वचनों को कुचल डाला है; भारतीय नरेशों के मुकुट छीन लिये हैं। यह भी आप को बताना आवश्यक नहीं, कि स्वराज्य नष्ट होते ही अुस राष्ट्र का धर्म भी खतरे में पड जाता है। आप यह सब जानते ही हैं। अिन्ही कारणों से यह युद्ध छिडा है। मैं अपने भाअी बालासाहब को आप के पास भेज रहा हूँ, जो और बातों को स्वयं आप के सामने स्पष्ट कर देंगे। *

अुस पत्र पर पेशवाने अपनी मुहर लगायी और जगबहादुर के पास भेज दिया। अिस पर काफी चर्चाअें हुअीं। जंगबहादुरने अपने अेक सरदार कर्नल बलभद्रसिंह को क्रांतिकारियों के नेताओं से मिलने के लिअे भेजा या। अुसे अेक स्वर से बताया गया:—" हमने भारत के धर्म की लडाअी लडी। महाराजा जंगबहादुर अेक हिंदु हैं और हमारी सहायता करना अुन का कर्तव्य है। यदि महाराज सहायता दें, यदि अपने अफसरों को हमारा नेतृत्व

* चार्लस बॉल कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड २.

करने की आज्ञा दें, तो हम अब भी कठकबेतक आ सकते हैं। रसद का प्रबन्ध हम स्वयं कर लेंगे और आज्ञा अुनकी मानेंगे। हम जो भी प्रदेश जीतेंगे अुसपर गोरखा सरकार का स्वामित्व होगा। यदि अितना भी न हो सके तो महाराज हमें अपने राज्य में आसरा दें और हम अुनके आज्ञाकारी बनकर रहेंगे।" कर्नेल बहादुरसिंग गोरखा प्रतिनिधि बोला—'अंग्रेजों ने दयाका द्वार पूरा खोल दिया है; सो,अपने हथियार अंग्रेजों के सामने धर दो और अुनका आसरा माँगो।" क्रांतिकारी नेताओं ने कहा 'हमने यह घोषणा सुनी है। किन्तु दूसरों को हानि पहुँचा कर हम अपने कुछ मित्रों के प्राण बचाना नहीं चाहते। महाराजा जंगबहादुर हिंदू हैं, हम गोरखों के विरुद्ध लड़ना नहीं चाहते। वे चाहते हों तो हम अपने हथियार अुन के सामने धर देते हैं। यदि हममें से कुछ की हत्यायें करना चाहें तो भी हम प्रतिकार नहीं करेंगे। किन्तु ब्रिटिशों को हमारा प्रतिशोध लेने का मौका देने के लिये अुनकी शरण में क्यों कर जायें ? "

और भी बातचीत हुअी। किन्तु अन्त में क्रांतिकारियों को जंग-बहादुरने सूचित किया, कि यदि क्रांतिकारियों की सहायता करना वह चाहता तो अुनकी कत्ल करने रणनअू को अपनी सेना क्यों कर भेजता ? केवल अिस नीच अुत्तर को दे कर ही वह न रुका, अुसने ब्रिटिशों को नेपाल में घुस कर क्रांतिकारियों का शिकार करने की पूरी स्वतंत्रता दी।

तब क्रांतिकारियों की सभी आशाओं पर पानी फिर गया। अपने शस्त्र छिपाकर भी गर्दन झुका कर व अपने अपने घर चले गये। अब अुनको अुभाड़ने में लाभ न देखकर अंग्रेजों ने भी अुन्हें न छेड़ा। फिर भी कुछ अैसे वीर महात्मा थे, जो अंग्रेजों का पौदा फिरसे भारत की पवित्र भूमिपर जम रहा है यह दृश्य देख न सके। वे अन्य लोगों के समान घर जाने के बदले जंगलमें, जानते हुअे कि अिसका परिणाम भूखों मरना है, चले गये। अिसी अर्से में अंग्रेज सेनापति होप ग्रँट को नानासाहबने अेक पत्र लिखा था। क्या होगा अुस पत्र में ? आत्मसमर्पण की बातचीत चलायी होगी ? छि कभी नहीं।

ब्रिटिश कूटनीति की घोर निंदा तथा ब्योरेवार आलोचना करने के पश्चात् अुस पत्र में नानासाहब पूछते है:—" हिंदुस्थान हडप कर मुझे 'बागी' कहने का तुम्हें क्या अधिकार है ? भारत पर राज करने का हक तुमको किसने दिया है ? क्या ? तुम विदेशी फिरगी भारत के राजा ? और हम अपने ही देश में चोर ठहरे ? " येही अन्तिम शब्द नानासाहब के नाम पर अितिहास ने सग्रह कर रखे हैं। ये शब्द क्या है—बालाजी विश्वनाथ पेशवा के सिंहासन की आह है ! शिवाजी के पेशवा के अन्तिम अुत्तराधिकारी के योग्य दृढ, न्यायपूर्ण, आत्माभिमान तथा शान को शोभा देनेवाले ये शब्द है ! बाजीराव (२ य) के स्त्रैण शासन का कलक रक्त के सोतों से धो डाला गया और वह शुद्ध पेशवा का सिंहासन चित्तौड की राजपूतनियों के समान लडते, झगडते आत्मत्याग की अूंची अुठती अग्निज्वालाओं में जलते हुअे संसार के रगमंच से लोप हो गया, अुस की अन्तिम चीख थी:—" भारत में विदेशी राजा बने और भारत के सपूत चोर ? "

अिस पत्र के प्रसग के बाद नानासाहब का क्या हुआ, अितिहास नहीं जानता। अपनी अिच्छा से स्वीकृत दरिद्रता में बालासाहब की जगल में मृत्यु हुअी। आगे चल कर जगबहादुरने अवध की बेगम तथा अुसके पुत्र को आसरा दिया था। गुजरानसिंह नामक अेक क्रातिनेता अेक अन्तिम भिडन्त में मारा गया।

अिस तरह १८५७ का यह राष्ट्रीय क्रांतियुद्ध अवध में समाप्त हो गया। अपनी स्वाधीनता के लिअे, अिस से अधिक जीवट और वीरता से ससार में अन्य कोअी देश न लडा होगा।

मॅलेसन कहता है:—अवध के लोग, अपने भाअी सिपाहियों के छेडे हुअे विद्रोह में (क्रातिकारियों में बहुसख्य अवधवाले ही थे) शामिल हुअे और **स्वाधीनता के लिअे लडे**। कितने हठीलेपन से झगडा किया गया अिसका वर्णन दे चुके हैं। भारत के दूसरे किसी भी हिस्से में अितना दृढ तथा दीर्घकालिक प्रतिकार न हुआ, जैसा कि अवधने किया। झगडे भर में

१८५९ के अन्यायों की चिढ़ से लोगों का मन फौलाद-सा कठोर बनता और अुनके निश्चय को और दृढ़ बना देता। कभी कभी ठीक समय पर भाग जाते जिस आशा से, कि फिर किसी दिन विजय की सम्भावना दीख पड़ते ही संघर्ष शुरू करें। निदान, लॉर्ड क्लाइवने अवध पर अन्तिम धावे का तूफान मचा दिया और शेष सैनिकों को नेपाल के जंगलों में आसरा ढूँढने पर मजबूर किया, तब अुन्होंने शरण की अपेक्षा भूखों मरना पसंद किया। किसान, तालुकदार, जमींदार, व्यापारी सबने, दीर्घकालिक संघर्ष के बाद, अुसका अन्त देख कर हार मान ली।*

* मॅलेसनकृत ब्रिटिश म्यूटिनी खण्ड ५, पृ २०७

अध्याय २ रा

पूर्णाहुति

२० जून १८५८ को गवालियर के रणमैदान में जो भिडन्त हुअी अुस में झाँसीवाली रानी लक्ष्मीबाअी खेत रही। अिस तरह अंग्रेजों का अेक कट्टर शत्रु सदा के लिअे कम हुआ। किन्तु अंग्रेजों के और अेक कट्टर शत्रुने, जो युद्धतन्त्र में रानी से भी अधिक मँजा हुआ था, मैदान से यशस्वी पीछेहट से अंग्रेजों को झाँसा दिया था। गवालियर से वह २० जून को गायब हो गया। फिर जावरा और अलीपूर से दिनांक २२ को अंग्रेजों के हाथोंसे छटक गया—किन्तु कहाँ ?

थोडे ही समय में सारे मध्यभारत भर में जगलों, नदियों, पहाडों, अुपत्यकाओं, गाँवों अेव नगरों से भीषण रणगर्जनाअे बुलन्द हुअीं; और हर स्थान से 'तात्या टोपे, तात्या टोपे' का घोष अुठने लगा।

क्यों कि, शिकारियों के बरछे सब ओर से अुठ जाने से यह मराठा शेर मध्यभारत के जंगलों में घुसा था। गवालियर के मैदान मे रानी लक्ष्मीबाअी खेत रहने से, मानो, अुस का दाहिना हाथ ही गिर पडा। अनेक हारों के बोझ से क्रांति लगभग दब चुकी थी। नानासाहब से वह हमेशा के लिअे बिछुड गया था। भारतीय पिठ्ठुओं ही की सहायता से अंग्रेजी सत्ता अब भारत में अजेय होने की शेखी बघार रही थी। न तात्या के पास तोपें, न

आवश्यक सेना रही थी; न अुसे प्राप्त करने की आशा भी। फिर भी अंग्रेजों को परेशान करनेवाले तथा पराजय को भी लज्जित करनेवाले अिस बाँके वीर ने अपना झण्डा नीचे नहीं झुकाया था। शत्रु के आगे झण्डा झुकाना ? नहीं, कदापि नहीं ! क्यों कि, जिसी अलीपरके (झण्डे) का दण्ड अैसे वृक्ष से बनाया गया है, कि अुसे कभी विदेशी तोड दें तो शायद टूट जायगा; किन्तु अुन के आगे झुकेगा नहीं—कभी नहीं !

ग्वालियर, जावरा और अलीपुर की हारों के बाद बची हुअी सेना के साथ तात्या टोपे तथा रावसाहब पेशवा सारमथुरा नामक गाँव में गये। अुन की युद्ध की योजना अब तीन महत्वपूर्ण सिद्धान्तोंपर खडी थी—(१) अंग्रेजी सेना से किसी मैदान में भिडन्त न की जाय, (२) अर्वाचीन प्रांतों में छकयुद्ध की नीति से छापे मारे जायँ, (३) मार्ग में जो रियासत मिलेगी अुस से युद्ध सामग्री, धन और सेना अुगाहे जायँ; क्यों कि, अिस तीसरे सिद्धान्त के बिना अुपर्युक्त दोनों सिद्धान्त छूछे पड जायँगे। अुत्तर तथा मध्यभारत में लगभग हर मुकाम पर संस्थान है। हर अेक के पास साल भर के लिअे आवश्यक रसद् तथा शस्त्रास्त्र जमा किये रहते हैं और देश की रक्षा में अुसे लगाना अुन का प्रथम कर्तव्य है। १८५७ की क्रांति में जनता के बल्वा करने की माँग को, हिन्दी नरेशों ने अपने व्यक्तिगत पापी स्वार्थ के लिअे ठुकरा कर प्रकटरूप से क्रांति की सहायता न की। अिन रियासतों में व्यर्थ का संग्रह किया हुआ माल पडा हो; तब स्वदेश के सैनिक क्यों कर भूखों मरें ? सो, अिन विश्वास घाती नरेशों से आवश्यक सहाय हथियाने के लिअे तात्या टोपे और रावसाहब ने बडी सुंदर योजना बनायी। अिस तरीके से देश की सेना को खिलाने तथा अुसे लडती रखने में जनता पर कोअी बोझ न पडा। अिन नरेशों के पास नगण्य सेना होती थी, तब अुन पर यह युद्ध—कर लादने का काम कठिन न था और रियासतें पास पास होने से सेना के साथ सामग्री ढोने का कष्ट भी न करना पडता। माँग करते ही ये नरेश मान लें, तो अच्छा ही था, नहीं तो अुन्हें मजबूर करने से काम बन जाता। बस।

हाँ, तो अुपर्युक्त तीन बातों पर तात्या टोपे ने अपनी आगामी-लडाअी का कार्यक्रम रचा था। अिस संघर्ष को चालू रखने में तात्या का अन्तिम अुद्देश्य यही था, कि कूच करते रहना और सुनहला अवसर पाते ही नर्मदा पार हो कर मराठा शेर को अपने घर के पहाडों और जगलों में पहुँचा देना; जहाँ अंग्रेजों का ध्येय था, नर्मदा पार करने का अवसर तो दूर, किन्तु नर्मदा के पास भी तात्या को फटकने न देना। दोनों में यह चढाअूपरी चालू हुअी।

पहले तात्या की दृष्टि भरतपुर पर थी, किन्तु प्रबल अंग्रेजी सेना वहाँ पहुँचने की खबर पाते ही अुसने अपना रुख जयपुर की ओर मोडा। जयपुर की राजसभा में तात्या के सहानुभूतिक कअी लोग थे। जनता और सैनिकों का झुकाव भी अुसी की ओर था। सो, तात्या ने जयपुर को आदमी भेज कर अपने हितुओं को सिद्ध रहने की पूर्वसूचना दी, किन्तु अंग्रेजों के कानों में यह भनक पडी और तुरन्त अुन की सेना नसीराबाद से जयपुर को चल पडी। जयपुर को यह बनाव देख कर तात्या दक्षिण की ओर मुडा। यहाँ कर्नल होम्स ने तात्या का पीछा किया। तात्या टोपे ने बडी चतुरता से अुस को झाँसा दिया और वह टोंक रियासत पर चढ गया। नवाब स्वय सुरक्षित नगर में बैठा रहा और तात्या का सामना करने के लिअे कुछ सैनिकों को चार तोपों के साथ नगर के बाहर भेज दिया। अब भीषण लडाअी छिड जाती, किन्तु टोंक के सैनिकों ने तात्या के सैनिकों को गले लगाया; अपनी तोपें तात्या को दे दीं। अिस तरह फिर से नयी तोपें, सेना और सामग्री के साथ निश्चयपूर्वक दक्षिण की ओर कूच किया। वह ठेठ अिंद्रगढ तक पहुँचा और कुछ आराम किया। अुस के पीछे होम्स की सेना और अेक पासे पर राजपूताने से रॉबर्टस् आ रहे थे। अिस समय मूसलाधार वर्षा हो रही थी, सामने चम्बल भरी पडी थी। पीछे से भयकर शत्रु-सेना की, तथा सामने चम्बल में, बाढ थी! अिस से अुत्तर-पूर्व को मुड कर वह बुंदी पहुँचा। वहाँ से बडी चतुरता से शत्रु को भुलाता हुआ, पहले से क्रांति में सहयोग देने वाले नीमच, नसिराबाद के प्रदेश में आ पहुँचा। भिलवाडे में वह आराम के लिअे रुका। यह समाचार मिलते ही ७ अगस्त १८५८ को सरवर गाँव

से बहुत जल्दी निकल कर पार्कसने तात्या की सेना पर धावा बोल दिया। दिन भर तात्याने अुस को रोक रखा और रात होते ही तोपों और सेना को अुदयपुर राज्य के कोटरा गाँव में पहुँचा दिया। वहाँ सेना को सुस्ताने का समय दे कर, पास ही होनेवाले नाथद्वार के पवित्र क्षेत्र में ठाकुरजी के दर्शन के लिअे तात्या चला गया। वह आधी रातमें ही वहाँ से लौटा और तभी अुसे पता लगा कि पीछा करनेवाली अंग्रजी सेना बहुत पास पहुँच गयी है। तात्या ने अुसी समय वहाँ से कूच करने की आज्ञा अपनी सेना को दी। किन्तु सैनिक अितने थके माँदे थे, कि पैदल सैनिकों ने साफ बता दिया, 'कल सबेरे तक अेक डग भरने की हममें शक्ति नहीं; रिसाला चाहे तो आगे चला जाय।' अिस दशा में तात्या को लडाअी करने के बिना चाराही न था। तडके, जितनी हो सके, सेना की व्यूह-रचना अुसने कर ली। १४ अगस्त के अिस लडाअी में तात्या की सेना हार कर तितर-बितर हो गयी और अुस की तोपें भी शत्रु के हाथ लगीं। अब फिर तात्या के पास न रहीं तोपें न युद्धसामग्री और अुधर विजयोन्मत्त शत्रु हाथ धो कर पीछे पडा था। तात्याने फिर झाँसा दे कर चम्बल की ओर दौड लगायी, किन्तु पीछे से और अेक पाखे पर अंग्रेजी सेना ताबडतोड हमले कर रही थी और अब तो अेक अंग्रेज कमांडर चुनी हुअी सेना के साथ प्रत्यक्ष चम्बल के किनारे सामने टपक पडा। किन्तु, अेक को झाँसा दे कर, अेक को पीछे हटा कर और अेक की आँखें बचा कर बडी कुशलता से तात्या, मँजिल पर मँजिल तय करता हुआ चम्बल पर आया और अंग्रेजों को ताकते रख कर चम्बल पार कर गया।

अब तात्या और शत्रु की सेना के बीच चम्बल का बाँध पडा था। किन्तु तात्या के पास तोपें न थीं, न रसद; न धन। तब नर्मदा का मार्ग छोड अुसे झालरापट्टण को आना पडा। वहाँ के अंग्रेजनिष्ठ नीच नरेश ने तोपों से सुसज्ज अीमानदार सेना के साथ तात्या पर धावा बोल दिया। किन्तु कैसा चमत्कार! तात्या और सैनिकों की चार आँखें होते ही वे तात्याही को 'स्वामी' कहकर वंदन करने लगे! झालरापट्टण में अुसे घोडे, गाडियों और भरपूर रसद मिल गयी। तात्या गया था खाली हाथ, अब अुस के पास ३२ तोपें हुअीं। राजसाहब

पेशवाने वहाँ के राजा को २५ लाख का दण्ड किया; किन्तु 'अुस के बहुत गिडगिडाने पर १५ लाख पर समझौता किया। तात्या वहाँ पाँच दिन रहा। हर घुडसवार को ३० और पैदल सैनिक को २० के मासिक वेतन के हिसाब से सब का वेतन चुका दिया। अब फिर दक्षिण जाने के कार्यक्रम की चर्चा तात्या, रावसाहब और बाँदा क नवाब करने लगे। पेशवा की अिस सेना का प्रमुख अुद्देश नर्मदा पार कर दक्षिण में प्रवेश करना था। अंग्रेजों ने तात्या की योजना को असफल बनाने के लिअे अपनी सेना का मजबूत और कुशलतापूर्ण व्यूह रचा तथा अुसके बाहर जाने के सभी मार्गों को रोक रखा। किन्तु तात्या के हाथ तोपें जो लगी थीं! हर विपत्ति का सामना करने को वह सिद्ध था। अुसने अपने मित्रों को मंत्र दिया 'अब सीधे अिंदौर'!

यह अनोखी सूझ तात्या के साहसी स्वभाव के योग्य ही थी। अपनी अेक भी सेना पास न होते हुअे तात्या ने नअी सेनाओं, नये राज्यों अेवं नये राजमुकुटों का निर्माण किया था। अिस तरह के अद्भुत बल के नेता को अिंदौर पर चढ जाना तनिक भी असम्भव न था। होलकर का कर्तव्य था, कि अपने स्वामी पेशवा की सहायता करे। सीधे बन कर यदि न दे, तो बलात् अुससे लेनी पडेगी। अिंदौर की सेना गुप्तरूप से तात्या के वश में थी; यहाँ तक कि अिंदौर के दरबारी तात्या को निमंत्रण दे रहे थे! सो, तात्या ने यह दाँव रचा और झालरापट्टण से वह त्वरा से दक्षिण की ओर बढ कर मालवे में घुसा और सीधे रायगढ के पास आ खडा रहा!

तब तात्या का पीछा करने के लिअे सब दिशाओं से रॉबर्टस्, होम्स, पार्क, मिचेल, होप, अेव लॉकहार्ट—ये सेनापति दौड पडे! तात्या अिंदौर पर हमला कर रहा है, यह सुन कर अिनका कलेजा काँपने लगा। मअू से अेक चल पडा, दूसरा नालखेड की ओर दौडा, तिसरा अिस पशोपेश में रहा कि वह रायगढ जाय या नहीं! बडे कष्ट के बाद मिचेल ज्यों ही अेक पहाडी पर चढा, अुसने दूसरी ओर तात्या को वहीं से अुतरते देखा, किन्तु तब अंग्रेजी सेना अितनी थकी हुअी थी, कि अेक डग आगे धरना दूभर हो गया था।

सो, वह वहीं रुकी। तात्या ने जिस से पूरा लाभ उठाया और आगे कूच कर दिया। दूसरे दिन तमसोट मेडा कर मिचेल ने तात्या को गाँठा। अब क्रांतिकारी थके हुओ थे; फिर लडाओ को सिद्ध हुओ। उन की संख्या पाँच हजार थी और साथ १२ तोपें। किन्तु तमाशा यह रहा कि अेक हजार अंग्रेजी सेना उनपर टूट पडते ही लहू का लेनदेन होने तक तोपें छोडकर क्रांतिकारी हटने लगे। यहाँ पर तात्या टापे और कुँवरसिंह के युद्धयुद्ध के ढंग का भेद प्रकट होता है। अंग्रेजी सेना से खुले मैदान में सामना कभी न करने का नियम तोडा न जाय, जिस लिये मार्ग में हाथ आये कभी अच्छे सुअवसर तात्या की सेना ने गँवाये थ।

रायगढ का मैदान छोड तात्या की सेना बेतवा नदी के पास जमल में घुस गयी और दूसरी ओर सिरम गाँव के पास निकल आयी। यहाँ तात्या को चार तोपें मिलीं; जिसी असे में बारिश बहुत जोरों से शुरू हुअी, जिस से अंग्रेजी सना की हलचल बंद हो गयी। तात्या की सेना को भी सुस्ताने का समय मिला। अेक सप्ताह आराम करने के बाद वह उत्तर की ओर मुडा शिंदे के राज के जिसागढ गाँव ने उसे रसद देने से जिनकार किया। तब तात्या को बलात् सब कुछ लेना पडा। जिधर आठ तोपें भी उसे मिल गयीं। यहाँतक ठीक हुआ। किन्तु नर्मदा तो अब दूर रह गयी। जितनी अंग्रेजी सेनायें जब अकेले तात्या के पीछे पडी हों, तो नर्मदा की बात ही कौन कहे? अेक अंग्रेज लेखक लिखता है—'फिर पीछेहटों का वह अनोखा ताँता बँध गया, जो दस महीनों तक, पराजय की लिखी अबाला चलता रहा, जिस से तात्या का नाम बहुतेरे अँग्लो अिंडियन सेनापतियों की अपेक्षा युरोप के लोगों को अधिक परिचित हुआ। उसके सामने जो समस्या थी वह साधारण सी न थी। हारे हुअे अेशियाअियों की सेना को अेक सूत्र में बाँधना था, जिस का तात्यासे व्यक्तिगत कोअी संबंध न था; और आपस में भी उस सेना के सैनिकों का अेक ही बंधन था—समान द्वेष और समान डर; ब्रिटिशों के नाम से द्वेष और उन की फाँसी का भय। अैसे कबाड को सेना का रूप देकर सदा ही उसे चलती रखना पडता था और वह भी उस

वेग से, जिससे केवल पीछा करनेवाले शत्रु ही हक्काबक्का नहीं रह जाते थे, बल्कि तात्या के कूच की रेखा से समकोण करते हुअे दौडनेवाले भी हैरान हो जाते थे। अपने अर्धसंगठित कबाड को पागल के समान दौडते रखने में तात्या को कअी दर्जन शहरों को जीतना पडा, नयी रसद जुटानी पडी, नयी तोपें हथियाने की बारी आयी, और तो और, जनता से स्वयसेविकोंको भरती करना पडता था, ।जिन को केवल प्रतिदिन ६० मीलों के वेगसे भागते रहना ही नसीब था। अितनी सभी बातों को यथाप्राप्त साधनों से सफल बनाने में तात्या की असाधारण क्षमता का परिचय मिलता है। हमारे विद्रोही शत्रु के नाते हम भले ही अुस की हेठी करें, किन्तु था हैदरअली की बराबरी का। और यदि अुस की योजना पर पूरा अमल वह कर सकता और नागपुर से घुसकर मद्रास की ओर निकल जाता, तो हैदरअली के समान वह भयानक शत्रु बन जाता। नेपोलियन को अिंग्लिश चॅनल ने रोका, ठीक अुसी तरह नर्मदाने तात्या को रोका। अेक नर्मदा पार करना छोड, वह सब कुछ कर पाया था। अंग्रेजों की सेनाअें पहले तो अुन की अंग्रेजी आदत के अनुसार कूच करती रहीं और आखिर वेग से बढना जब वे सीख गयीं, तो ब्रिगेडियर पार्क तथा कर्नल नेपियर तात्या की आधी रफ्तार तक पहुँच पाये थे। फिर भी वह छटक गया, और गरमी, बरसात, जाडा फिर गरमी से झूझते हुअे भी वह भागा ही जा रहा था—कभी दो हजार 'दिल टूटे' अनुयायियों के साथ तो कभी १५००० की सेना लेकर। *

अब क्रांतिकारियोंने अपनी सेना को दो भागों में बाँटा। अेक का नेतृत्व रावसाहब पेशवाने तथा दूसरे का तात्याने किया। दोनों सेनाअें भिन्न भिन्न दिशाओं में भले ही जाती थीं, किन्तु अुन की युद्ध—पद्धति अेक ही थी, शत्रु को चकमा दे, नयीं तोपें पा तथा गवाँ, कभी शत्रुसे सफल सामना कर के दोनों सेनाअें ललितपुर के पास मिलीं। किन्तु नर्मदा अब भी दूर थी।

* 'फ्रेन्ड ऑफ अिंडिया' प्रे.

ओर, तात्या और रावसाहब अब शत्रु के चंगुल में पड़े फँस गये थे। दक्षिण से मिचेल, पूरब से कर्नल लिडेल्, उत्तर से कर्नल मीड, पश्चिम से कर्नल पार्क तथा चम्बल की ओर से ऍबर्टसन्—जिस तरह शत्रु के पाश तात्या को जकड रहे थे और वह पूरी तरह घिर गया था। तब तात्या और रावसाहबने मंत्रणा की, जिस के अनुसार वे शत्र कजुरी को आ निकले; किन्तु वहाँ भी अेक अंग्रेजी सेना खडा थी। सो, वे फिर से जंगलों में घुस गये और उत्तर को तलमाट तक पहुँच गये। अंग्रेजोंने समझा, अब दक्षिण जानेका विचार तात्याने छोड दिया होगा। किन्तु यहीं से तात्या और रावसाहब चटक मार कर, बेतवा लाँघ तथा कजुरी और रायगढ में अंग्रेजों से अेक भिडन्त कर कभी खुले तौरपर, तो कभी छिप कर दक्षिण को त्वरा कर कूच करते जाते थे। तात्या के जिस साहसी हलचल से अंग्रेज दुविधा में पडे। उसे रोकने को वे चारों ओर से दौड पडे। किन्तु अनोख हलचल से शत्रु को चकमा दे कर जिस सूरमाने बिजली के वेग से घाटियों तथा नदियों का पार कर, जंगलों में होते हुअे, ठेठ दक्षिण की ओर प्रगति की। पार्क अेक पासेपर, मिचेल पीछे से, और बेंचेर सामने से चढ आया, तो भी तात्याने अपनी अनोखी मार्गक्रमणा को न रोकते हुअे दक्षिण की ओर प्रगति जारी रखी; निदान वह नर्मदापार आ धमका। अचरज से हक्काबक्का संसारने तात्या की जय पुकार कर आनंद से तालियाँ पीटीं। तात्या नर्मदा पार कर और दक्षिण के मार्ग पर चल पडा। मॅलेसन लिखता है:—तात्याने जिस जीवट तथा हठ से पीछेहट की यह अनोखी योजना सफल कर दिखायी, उस की प्रशंसा न करना असम्भव है।" जिस बारे में १७ जनवरी १८५९ के (लंडन) टाअिम्स का विवरण पढते ही बनता है (देखो संदर्भ ५२)।

निदान, मराठों का राजा अपनी सेना के साथ दक्षिण आ पहुँचा! होशंगाबाद के पास नर्मदा पार कर तात्या नागपुर के नजदीक पहुँच आने का संवाद पाते ही, न केवल तीन प्रांतों में, न केवल अिंग्लैंड में, सारे युरोप

भर में कहा गया , ' धन्य ! तात्या टोपे धन्य, सबने तात्या की प्रशंसा की ! अेकाअेक क्रांति का रुझान ही बदल गया । *

अुस के सामने वह निजाम का राज था, जहाँ तात्या के सहानुभूतिक दरबार में थे, जहाँ परली और पुणें, बम्बअी, तथा समूचा महाराष्ट्र फैला पडा था। वह जरिपटका—मराठों का स्वाधीन झण्डा—फिरसे महाराष्ट्र में आ पहुँचा था ! महाराष्ट्र के अिसी रायगढसे, अिसी पावन-खिंडसे, अिसी वडगाँवसे कौनसी अत्यद्भुत गुप्त सामर्थ्य फिर जागृत हो अुठेगी अिसका क्या पता था ? भागानगर का निजाम, मद्रास का लॉर्ड हॅरिस, बम्बअी का लॉर्ड अेलफिन्स्टन तथा कलकत्तेवाला लॉर्ड कॅनिंग सब ने दाँतों तले अुगली दबायी ! तात्या ने दक्षिण में पहुँच कर अेक अद्भूत चमत्कार कर दिखाया था। किन्तु वह अेक चमत्कार ही था। क्यों कि, अुस से पूरा लाभ अुठाने का समय कबका बीत चुका था। लगभग सभी स्थानों में क्रांति की पूरी हार हुअी थी। और अिस विराट क्रांति में जो भीषण रक्तपात हुआ अुस की स्मृति अबतक जनता के मन मे हरी होने से सारा राष्ट्र दुबला और बावला सा बन गया था। तिस पर भी यदि नागपुर, कम से कम, कुछ जीवट से काम लेता तो भी क्रांति की शकल बदल जाती। अुत्तर में हर देहात से और हर किसान-नागरिक से अपनी ओर से तात्या को युद्ध की सामग्री पहुँचायी गयीं थी और अेक महान् देशभक्त के नाते जनता तात्या को आदर से पूजती थी। किन्तु महाराष्ट्र में—तात्या के महाराष्ट्र में—अिस अुदात्त कार्य में हाथ बँटाने का धैर्य किसीने न दिखाया। हाँ, अुस कुप्रसिद्ध रानी बका की ' वफादारी ' के बीज से और क्या फसल पैदा हो सकती है ? अपने असाधारण यत्नों का अैसा शून्य स्वागत देख कर भी, तनिक भी धीरज न छोडते हुअे, तात्या टोपे वहीं रहा और आगामी योजनाओं को सोचने लगा।

तुरन्त चारों ओर से अंग्रेजी सेना जमा होने लगी, तात्या का पीछा करने वाली सब शत्रु सेनाअें अब नर्मदा पार कर दक्षिण में आ चुकी थीं। तो भी

---

* स. ५४। मॅलेसन कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड ५, पृ. २३९।२४०.

यह सूरमा अडिग खड़ा था। यहाँ तक, कि शत्रु को झाँसा दे कर आगे बढ़ जाने का और भी अत्यद्भुत प्रमाण उसने प्रत्यक्ष कर दिखाया। पीछा करने वाली तथा घेरनेवाली सेनाओं की रोक-थाम कर उनकी डाक लूट, तारयंत्र को तोड़ तथा चौकियाँ लूट कर तात्या ठठ नर्मदा के मूलस्थान तक पहुँच गया। क्यों ? क्यों कि, अब बड़ोदे ने उस का मन आकर्षित किया था। नर्मदा के सब घाटों को शत्रु ने दोनों ओर से रोक रखा था, तो भी तात्या नर्मदा लाँघने के लिये करगन गाँव के पास आया। यहाँ पर मेजर संदरलँड से अेक घमासान भिड़न्त की, जिस में उस की तोपें छिनी गयीं, तब वह नर्मदा में कूद पड़ा और तैर कर निकल गया। जिस समय तात्याने तथा उसकी सेनाने अजीब यौद्धिक चालों का परिचय दिया। मॅलेसन लिखता है – " उनकी तोपें अब छिनी गयी थीं, तब मानो, तात्या के सैनिकों ने असाधारण वेग से मार्ग तय करने का प्रत्यक्ष पाठ ही हमें सिखाया। जिसे देख मैं तो मानता हूँ, मँजिल दर मँजिल दौड़ते रह कर सफल पलायन करने में संसार की कोअी भी सेना जिस भारतीय सेना का मुकाबला न कर सकेगी ! जिस भागदड़ में भी तात्या ने बड़ोदे की दिशा में अपनी मँजिल जारी ही रखी थी। बड़ोद में, बड़ोदे के दरबार में तथा सेना में नानासाहब की नीति को पसंद करनेवाला दल बहुत प्रबल होने से गायकवाड की सेनायें मचल रही थीं, कि कब तात्या आयगा और वे सुलभ सुला उस के अधीन हो जायँगी। तात्या अब रायपुर से छोटा उदयपुर रियासत में पहुँच चुका था। बड़ोदा अब केवल ५० मीलों पर ही रहा था।

अंग्रेजी सेना पीछा कर ही रही थी। छोटा उदेपुर में 'पार्क' तात्या पर चढ़ आया, जिस से बड़ोदा का विचार तात्या को छोड़ना पड़ा ! पश्चिम का रुख छोड़ वह सीधे उत्तर की ओर चल पड़ा और उस ने बाँसवाड़े के जंगल का आसरा लिया। किन्तु ठीक अिसी समय अिंग्लेंड की रानी की घोषणा का विश्वास कर, बाँदा के नवाब ने हथियार डाल दिये। तात्या और रावसाहब अब अैसे चगुल में फँसे थे, जिस से छुटकारा पाना दूभर था। दक्षिण में नर्मदा, पश्चिम में राबर्टस् और उत्तर तथा पूरब में ऊँची खड़ी

ढलान ! अैसी दशा में तात्या और रावसाहब हथियार डाल देते, तो भी अुन्हें कौन दोष लगाता ? किन्तु, धन्य है वे वीर ! अैसी दशा में भी अुन्हों ने झुकने की न सोची ! अेक अंग्रेज ग्रंथकार आश्चर्य से थकित हो कर लिखता है:–' किन्तु ये अैसे दो व्यक्ति थे, जो अुन के जीवन के किसी प्रसग के समान शाति, धैर्य तथा नयी नयी सूझ से अिस प्राणांतिक सकट का सामना डट कर कर रहे थे । " * दिसबर ११ को तात्या जगल से बाहर निकला और अेक किलेदार से कुछ सामग्री जुटा कर सीधे अुदयपुर को चल पडा। किन्तु तुरन्त कअी अंग्रेजी सेनाअें अुस पर टूट पडीं, जिस से अुसे फिर जंगल में जाना पडा। अब अेक सप्ताह से अधिक टिकना तात्या के लिअे असम्भव–सा हो गया था और स्पष्ट था कि अुसे झुकना पडेगा। क्रांतिकारी नेता भी आपस में चर्चा करने लगे, कि अब सघर्ष समाप्त कर दिया जाय। अब वह जंगल न रहा था; चारों ओर से खदेडे हुअे और बद किये हुअे मराठा शेर का जंगला था। सब ओर से अंग्रेजी सेना के पाश अुस की गर्दन को कसते जा रहे थे, तब भी अुस मराठा वीर ने लडाअी स्थगित करने का विचार तक न किया। अेक दिन वह रावसाहब के साथ प्रतापगढ की दिशा में बाहर निकला। तात्या की सेना बाहर निकल भी न पायी थी, कि मेजर रॉके की सेना अुस के मार्ग में ही आ टपकी। तात्याने अिधर अुधर की न सोची और सीधे रॉके पर टूट पडा और अैसे जोरसे, कि रॉके के सैनिक हैरान हो गये। अिस प्रकार वह जगला तोड कर फिर अेक बार वह मराठा शेर कटघरे से बाहर कूदा, अंग्रेजी सेनापति लज्जा से सिर झुकाये हाथ मलते रह गये।

२५ दिसबर १८५८ को तात्या टोपे बॉसवाडे के जगल से बाहर हुआ। अिन्हीं दिनों शूर वीर शाहजादा फीरोजशाह भी अपनी सेना के साथ तात्या की सहायता को आ रहा था। * मिर्जा फिरोजशाह ने गगा

* मॅलेसन कृत अिंडियन म्यूटिनी खण्ड, ५ पृ. २४७

*सं. ५५। लदन टाअिम्स २० मअी १८५९ का अेक अुद्धरण.

सेनापति तात्या टोपे

जिसकी वीरता तथा युद्धनीति का बखान युरोपभर में हुआ था।

कॉपी राइट
© साहित्य प्रकाशन, पुणे १

यमुना पार कर कौनसे कष्टोंसे कर दिसाय और मार्ग तय करते हुअे तात्या को कैसे मिल गया, आदि बातों का विवरण अब स्थलाभाव के कारण नहीं दिया जा सकता। फीरोजशाह तथा शिंदे के दरबारी मानसिंग—अेक क्रांतिकारी सरदार—को जा मिलने के लिअे तात्या टोपे तथा रावसाहब कभी भिड़न्तों के बाद १३ जनवरी १८५९ को अिंद्रगढ पहुँचे। फिर ये चार क्रांतिनेता आगामी कार्यक्रम पर चर्चा करने लगे। अंग्रेजों की हलचलों की छोटी से छोटी और पक्की खबर तात्या को मिला करती थी, जिस से चारों ओर से फिर अंग्रेज दबाव डालने की चेष्टा करने की खबर पाते ही वह दलदल के साथ मार्ग तय कर देवास पहुँचा। अब अंग्रेजों के पंजे से अुसे किसी तरह छूटने का रास्ता न रहा था। यश की आशा तो रंच भर भी न रही थी, जिससे नयी साहसी योजना बनाने का अुसे बिलकुल अुत्साह न था। सो, वह अपनी थकी सेना को अंग्रेजों के पंजे से कैसे छुड़ाता? अंग्रेज सेनापति अपनी मूँछों में बल देते हुअे कह रहे थे 'देखें, अब बच्चा कैसे छूटता है!' फिरोजशाह, मानसिंग, तात्या टोपे और रावसाहब अिन चार क्रांतिनेताओं को पूरी तरह फाँस कर अपने जाल को अंग्रेज खूब कस रहे थे। अब काहे का छुटकारा?

१६ जनवरी १८५९ को तात्या, रावसाहब तथा फीरोजशाह युद्ध समिति की विशेष बैठक में आगामी योजना की चर्चा कर रहे थे, जितने में बाहर कुहराम मचा हुआ सुनायी पड़ा तात्याने ताड़ लिया कि अब अंग्रेजों ने पूरी तरह दबा लिया है, अिस विचार से अुसने सिर अुठाकर झाँका तो पता चला, कि तात्या की छावनी में गोरों ने तहलका मचा दिया है। "तात्या मिल गया, अिस प्रकार की आनंदपूर्ण चिल्लाहट गोरे सैनिकों के मुँहों से हो रही थी। हैं! सहसा वह आनंद लुप्त क्यों हो गया? 'अरे, कहाँ है? अभी तो यहीं था। दौड़ो, सैनिको, दौड़ो देखें।'" यही हो हल्ला अब सुनायी पड़ता था। गोरे सोजीरोंने कोनाकोना छान मारा किन्तु व्यर्थ—तात्या टोपे गायब था।

यह जादूगर तात्या, फिर, रावसाहब, फीरोजशहा तथा अन्य सहयोगियों के साथ २१ जनवरी को अलवर के पास सिखार में प्रकट हुआ। अंग्रेज फिर पागलों की तरह अुस का पीछा करने लगे। होम्स की सेना के साथ क्रांतिकारियों की अेक भिडन्त हुअी, जिस में अुन्हे हार खानी पडी।

सिखार की हार से क्रांतिकारियों की, विजय के बारे में, निराशा न हुअी—क्यों कि, वह आशा बहुत पहले नष्ट हो चुकी थी। हाँ, अब प्रतिकार करना पूर्णतया असम्भव हो चुका। नर्मदा पार कर बडोदे पर चढाअी करने की तात्या की योजना टूट गयी थी, तब वृकयुद्ध के ढग में कुछ सुधार करने के प्रस्ताव पर तात्या और रावसाहब सोच रहे थे और कुछ निश्चय कर तात्या टोपे तथा रावसाहब ने अपनी सेना से विदा ली। अुसने अपने साथ केवल दो घोडे, अेक टट्टुआ, दो ब्राम्हण रसोअिये और अेक टहलुवा रखा। अपने अिस परिवार के साथ वह गवालियर के सरदार मानसिंग के पास गया, जो पारौन के जंगलमें छिपा हुआ था। मानसिहने कहा, 'तात्या, तुम सेना को छोड आये—अच्छा नहीं किया,। तात्या' का अुत्तर था, 'चाहे वह अच्छा है या बुरा, मैं तो अब तुम्हारे साथ ही रहने आया हूँ। दम—तोड दौरों से अब मैं तो अुब गया हू।'*

तात्या मानसिंह के पास रह रहा है यह समाचार अंग्रेजो के पास पहुंचा। रणमैदान में आमने सामने लडकर अुसे पकडने में अंग्रेज असमर्थ रहे। तब अुन्हों ने अपने स्वाभाविक हथकण्डे से काम लेना, छल कपट और विश्वासघात के नीच साधन, जो चलाना आसन होता है, अमल में लाना तय किया। पहले मानसिंह के पास दूत भेजा गया और कहा गया, कि यदि मानसिंह स्वयं आत्मसमर्पण कर तात्या को पकडवा दे तो अुसे क्षमा बख्शी जायगी और नरवाड की रियासत अुसे दे देने का अनुरोध शिंदे से किया जायगा। यह मानसिंह, जिसने पहले अपने चाचा को अंग्रेजों को सौंप देने तक नीचता की थी, लालचमें फॅसा और अंग्रेजों के वश में हो गया। अुसने तात्या को बताया,

---

* तात्या टोपे की डायरी से

कि वह अंग्रेजों को आत्मसमर्पण कर रहा है। तात्याने आत्मसमर्पण से अिनकार कर दिया। जिस समय फीरोजशाह ने अपनी छावनी में आने के लिये तात्या को पत्र लिखा था। वह पत्र तात्या ने मानसिंह को बताया और पूछा 'मैं चला जाअूँ या रहूँ? जैसा तुम कहो मैं करूँगा।' तब मानसिंह ने कहा 'अभी कुछ दिन ठहरो, फिर तय करेंगे'। तात्या जान गया था, कि मानसिंह ने अंग्रेजों को आत्मसमर्पण कर दिया है, तो भी तात्याने अुसे अपने प्यार में अमानतदार समझा था। मानसिंह ने कहा "मेरे रहने तक तुम यहाँ पर रहो, न तो मेरा आदमी तुम्हें ले जायगा।" अुस की बात। जगह में, सुरक्षित जान कर, तीन दिन तक साथ रहा। तीसरे दिन आधी रात में वह शूर मराठा वीर, जिसने अबतक हमारे स्वामियों से शत्रु को हैरान किया था, हजारों मील दौड़ कर तथा प्राणघातक संकटों से बचे रह कर तथा चातुर्य से अपने को बचा कर शत्रु के आतंक घुमाया था, अन्त में विश्वासघाती देशबन्धु से पकड़वाया गया।

मानसिंह तात्या को छोड़ सीधे अंग्रेजों के पास पहुँचा। अुन्हों ने सम्पअीवाली पल्टन के दस्ते के साथ मानसिंह को तात्या को पकड़ने के लिअे, भेज दिया। तात्या के लिअे हर भारतीय के हृदय में जितना आदर और प्रेम था, कि अंग्रेज किसी भी भारतीय का विश्वास नहीं करते थे। सो, सम्पअीवाले सैनिकों को केवल अितना ही बताया गया था, कि 'मानसिंह की आज्ञा मान कर अुस के बताये अभियुक्त को पकड़ रखना'। मानसिंह अिन सिपाहियों के साथ पारोन के जंगल में पहुँचा। तात्या को अुस ने तीन दिनों का समय दिया था; वह ठीक वेला पर पहुँच गया। मानसिंह के आदमी के बताये स्थान में तात्या सो रहा था। तब मानसिंह ने साथ आये हुअे सम्पअीवाले सिपाहियों को छोड़ दिया और वे अुस शेर पर झपटे। तात्या ने आँखें खोलीं तब अंग्रेजों का बंदी था।

७ अप्रैल १८५९ की आधी रात में तात्या टोपे विश्वासघातसे पकड़ा गया; दूसरे दिन सबेरे अुसे सिप्री में जनरल मीड की छावनी में ले आया

गया। तुरन्त सैनिक न्यायसमिति की बैठक हुअी; ब्रिटिश राजशासन के विरुद्ध बलवा करने के अपराध में अुस की जॉच हुअी। बुधवार को तात्या ने अपना वक्तव्य लिखा :—

"मैंने जो कुछ किया अपने स्वामी की आज्ञा से किया। कालपी तक मै नानासाहब के मातहत रहा; फिर मैंने रावसाहब की आज्ञा मानी। युद्धनीति को छोड तथा प्रत्यक्ष लडाअी के बिना मैंने या नाना ने किसी भी गोरे पुरुष, स्त्री या बच्चे को निर्दयतासे नहीं मारा, न फॉसी दिया। बस, मुझे न्यायसमिति के काम में कुछ भाग नहीं लेना है।"

अंग्रेजों के प्रार्थना करने पर तात्या ने क्रांति के प्रारंभसे तब तक की दैनंदिन घटनाओंका महत्त्वपूर्ण तथा विश्वस्त विवरण थोडे में बताया। मुनशी ने यह सब लिख लिया और तात्या को पढ सुनाया और फिर अुस वक्तव्य तथा दैनंदिन कार्यक्रम के नीचे तात्या ने बढिया रोमन अक्षरों में 'Tatia Tope' लिख दिया; किन्तु अुस से पूछे गये प्रश्नों के अुत्तर, अपने वक्तव्य तथा विवरण के अनुसार हिंदी में दिये; जो साफ, थोडे में और तेजस्वी थे। अुससे अंग्रेजो में से कोअी प्रश्न पूछे तो वह शान्ति से हिंदी में अुत्तर देता 'मालूम नहीं।' मामूली अंग्रेज अफसर जब अुसके पास से अुठकर निकलता तो अुसके चेहरेपर तुच्छता और घृणा के भाव दिखायी पडते। तीन दिन यह जॉच हो रही थी। भारतीयों के झुण्ड के झुण्ड अुसके दर्शन को जमा होते, किन्तु अुन्हें लौटा दिया जाता। जिन को तात्या के दर्शन की अनुज्ञा मिलती वे अुसे देखते ही आदर और प्रेम से झुक कर प्रणाम करते। तात्या को अंग्रेजों ने पहले जब बताया, कि न्यायसमिति अुसका न्याय करेगी और वह अपने बचाव के लिअे आवश्यक सबूत भी जमा कर रखे। तब अुसने कहा, "मै, जब कि अंग्रेजो के विरुद्ध लडा हू, मुझे पूरीतरह मालूम है कि मुझे मरने के लिअे सिद्ध रहना चाहिये। न मुझे तुम्हारी न्यायसमिति, न तुम्हारी जॉच की आवश्यकता है"। और भारी हथकडियों से कसे हुअे हाथों को अूंचा कर कहा, 'अिन भारी शृंखलाओं से, अेक मात्र अुपाय है, तोपसे अुडा दिया जाना या फॉसीपर लटकना। हॉ, मै तुम्हें अेक बात कहना चाहता हूं। ग्वालियर में

मेरा परिवार है; अुसका मेरे कामों से तनिक भी सम्बंध नहीं है; सो, मेरे लिये मेरे वृद्ध पिता को, कृपया, रंच भी कष्ट न हो।'

१८ अप्रेल का जाँच का नाटक समाप्त हुआ; तात्या को फाँसी की सजा सुनायी गयी और दोपहर ४ बजे अुसे १ ली बंगाली गोरी पल्टन के सैनिकों के घेरे में वधस्थल को ले जाया गया। फाँसी के तख्ते के पास आने पर सैनिकोंने चौकोर व्यूह बनाकर अुसे घेर लिया। देशी पैदल सैनिकों, रिसालेवाले सैनिकों तथा अन्य तमाशबीनों की बड़ी भारी भीड़ लगी थी। फिर अेक बार, तात्याने अपने पिता को न सताने के लिये अमलों को जताया। तात्या को अुसपर लगाया अभियोग तथा अुसका दण्ड पढ़ सुनाया गया, फिर लुहार ने अुसके पाँव की बेड़ियाँ तोड़ दीं; तब तनिक भी झिझक के बिना वह वधमंच की ओर धीर और धीमी चालसे गया; सीढ़ीपर से बुलाहट पड़ा। नियम के अनुसार जल्लाद जब अुसके हाथ पैर बाँधने आये, तो मुस्कराकर तात्याने कहा, 'अिस क्रम की जरा भी आवश्यकता नहीं, यह कहकर स्वयं अपने हाथों अपनी गर्दन में फाँसी का फंदा डाल लिया। फंदा कसा गया, तख्ता गिरा और झटके के साथ !!!

पेशवा का एकनिष्ठ आज्ञाकारी, १८५७ का अेक महान् वीर योद्धा, स्वदेश का हुतात्मा, स्वधर्म का रक्षक, आत्माभिमानी, भावुक, तथा अुदार तात्या टोपे अंग्रेजों के बनाये फाँसी की टिकटिकी से निष्प्राण लटक रहा था। वधमंच खून से लथपथ हुआ, और स्वदेश आँसुओं से भीग गया। तात्या का दोष ?—यही, कि स्वदेश की स्वाधीनता के लिये अुस ने अकथनीय यन्त्रणाओं को सहा! अुसे पारितोषिक मिला विश्वासघाती की दोहरी नीचता! और अंग्रेजों ने अुसे किसी खूनी डाकू की तरह फाँसी लटकाया!! तात्या टोपे! तात्या!! अिस अभागे राष्ट्र में तुम पैदा ही क्यों हुअे? अिन विश्वासघाती, नीच और अक्ल के दुश्मनों के लिये तुम लड़े ही क्यों? तात्या; क्या, हम देशभक्तों की आँखों से बरसनेवाले आँसुओं को तुम नहीं देख पाते हो? हाँ, तुम्हारे रक्त का प्रतिदान हम दुर्बलों के आँसू! कैसा महँगा सौदा!

तात्या का निष्प्राण शरीर छिन्नभिन्न दशा में लटकता देख कर अपनी बहादुरी पर गर्व करते हुअे, संतोषित अंग्रेज वीर लौट पडे। तात्या की देह अुसी दशा में सूर्यास्तपर्यंत लटक रही थी। अुस के पहरेदार जब चले गये, तब भीड को चीरते हुअे गोरे दर्शक आगे बढे और स्मृति के रूप में तात्या के बालों के गुच्छों को प्राप्त करने में चढाअूपरी करने लगे।

१८५७ के स्वातंत्र्य-समर की धधकती भव्य-भीषण यज्ञवेदी में यह अन्तिम पूर्णाहुति पडी !

अिस तरह वह भीषण ज्वालामुखी, जिस ने अपना जबडा पूरा खोल कर क्रोधावेग से माँस, रक्त, लाशों, बिजली, गडगडाहटों, जलते हुअे लाल लाल उष्ण लावा रस को अुगला था, अब अपना मुँह बद करने लगा था। अुसका अुष्ण लावा रस अब लोप रहा था; अुस की तलवारों की जीभें फिरसे म्यानों में समेट रही थीं; कडकती बिजलियाँ, कान फाडनेवाली गडगडाहटें, अुस के वात्याचक्र, अुस के तूफान वेग, अुस की भीषणता—सब मदारी के पिटारे में गुप्त हुअे और वायुरूप बन कर वायुमण्डल में मिल गये। और ज्वालामुखी का मुँह बद हो गया; अुस की सतह पर फिरसे हरियाली अुगने लगी, खेती फिर से शुरू हुअी; हलाअी पड गयी, शान्ति, सुरक्षा और सुकोमलता का बोलबाला हुआ। और अिस ज्वालामुखी का पृष्ठभाग अितना मुलायम और आनंदप्रद है, कि किसी को विश्वास नहीं होता, कि अिस के नीचे अेक भीषण ज्वालामुखी सुस्ता रहा है !

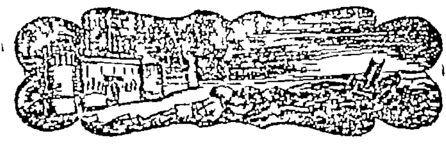

अध्याय ९ रा

समारोप

ज्वालामुखी कुछ समय के लिये तो शान्त हो गया है। पाठक पूछेंगे, फीरोजशाह और रावसाहब का क्या हुआ?

तात्या के बिदा लेने के बाद रावसाहब अेक महीने तक पूरे जोश से लड़ते रहे और जब कोई चारा न रहा था, तब भेष बदल कर जंगल में चले गये; किन्तु तीन वर्षों के बाद उन्हें पकड़ लिया गया और २० अगस्त १८६२ को कानपुर में फाँसी दिया गया। फिरोजशाह भी उसी तरह भेष बदल कर घूम रहा था किन्तु सौभाग्यसे भारत से बाहर चले जाने में सफल हो कर ईरान में करबला में जा बसा।

१८५७ की क्रांति के बारे में स्थान स्थान पर चर्चा कर चुके हैं। क्या, सिद्धता पूरी होने के पहले ही क्रांति का असमय विस्फोट हुआ था? नहीं; हम ऐसा नहीं मानते। ५७ के उत्थान में जो योजनायें और तैयारियाँ की गयी थीं, वैसी तो बड़ी बड़ी यशस्वी क्रांतियों में भी नहीं पायी जातीं। जब सैनिकों की पल्टन पर पल्टन, बड़े बड़े प्रबल राजा महाराजा, सरकारी नौकरी के ऊँची श्रेणी के अधिकारी, पुलीस, और नगर अेक अेक कर के पक्ष करने का अभिवचन दे कर आगे आते, तब तुरन्त विद्रोह करने के लिये कौन छिपाकिजायगा? और सदा से यह अनुभव है, कि किसी कार्य के प्रारंभ ही

में अडचनें पैदा होती हैं; समूचा देश बाद में ही अुठता है। अिस से स्पष्ट होगा, क्रांतिनेताओं ने तनिक भी अुतावली न की थी। अितनी सुविधाअें होने पर भी जो न अुठेंगे, वे कभी विप्लव करने के योग्य होते ही नहीं!

तो फिर यह क्रांति असफल क्यों हुअी? अिस विषय में छोटे मोटे कारणों का विवेचन पहले योग्य स्थानों पर किया ही गया है; किन्तु अेक महत्त्वपूर्ण कारण यह था:—यद्यपि क्रांति की सिद्धता पर्याप्त तथा पूरी तरह की गयी थी, पहला विध्वंसक कार्यक्रम भी बहुत अच्छी तरह निभाया गया; किन्तु अुस के रचनात्मक कार्यक्रम का क्या? अंग्रेजी शासन नष्ट करने के विरुद्ध कोअी भी न था; किन्तु फिर वे ही पहले का आपसी घातक झगडे, वे ही मुगल, वे ही मराठे। वही पहले का ढला हुआ अंदाधुंद और वैर का वायुमण्डल,—यही सब फिर भारत में आने का डर हो, तो अुस के लिअे सर्वसाधारण अज्ञ जनता को अपना रक्त बहाने की अुतनी आवश्यकता प्रतीत न होना स्वाभाविक ही था। क्यों कि, अुसी तानाशाही और अन्यायपूर्ण शासन से अूब कर, पागलपन के दौरे में, अुस जनता ने विदेशियों को अपने सिरपर बिठा लिया था। क्रांति का प्रथम भाग—विध्वंसन—बडी सफलता से पूरा किया गया। किन्तु तुरन्त जब विधायक, रचनात्मक भाग का प्रारंभ हुआ तो मतभेद, आपसी डर तथा अविश्वास की धूम मची। जनता के अंत:करण को आकर्षित करनेवाला कोअी नया ध्येय—नया आदर्श अत्यंत स्पष्टरूप से लोगों के सामने रखा जाता, तो क्रांति की प्रगति तथा अन्त भी प्रारंभ के समान ही यशस्वी और प्रभावपूर्ण परिणामकारी हो जाता।

कम से कम लोगों को अितना भी पूरी तरह जँचाया जाता, कि प्रलय के बाद तुरन्त फिर से नया सृजन, नया निर्माण होता ही है, तो भी क्रांति यशस्वी होती। किन्तु, निर्माण की बात तो दूर, संहार का, प्रलय का कार्य भी भारत पूरीतरह सफल न कर सका। और अुसका कारण? कारण यही, कि राष्ट्र का गला, अपने निजी स्वार्थ के लिअे, घोंटने की नीच वृत्ति ही भारत से पूर्णरूपेण नष्ट नहीं हुअी थी। क्रांति की असफलता के प्रमुख दो कारण

हैं—(१) पहले के किसी प्रकार के जनपद स्वराज्य से भी बढकर अंग्रेजों का शान्तिपूर्ण शासन अधिक हानिकर है—यह बात न समझनेवाले मूर्खों का किया स्वदेशद्रोह और, (२) स्वदेशबंधुओं के विरुद्ध विदेशी शत्रु को रंच भी सहायता न देने की प्रेरणा करनेवाली सद्भावना तथा देशभक्ति की तीव्रता की कमी।*

और इसी से असफलता का सब पातक केवल उन देशद्रोहियों के ही सिर आ पड़ता है। अधिक स्पष्ट, अधिक सरल, अधिक आकर्षक आदर्श यदि उस समय जनता के सामने होता, तो ये देशद्रोही भी देशभक्त बन जाते। क्यों कि, देशभक्ति ही सब लाभकारी और स्वार्थ को पूरा कर देनेवाली हो, तब जानबूझकर देशद्रोही का कलंकित तथा धोखे का धंधा, कौन करने जायगा? सच्चा उज्वल यश उन वीरों को है, जो इस बात को, कि स्वराज्य से विदेशी सत्ता बहुत बुरी होती है, अपने हृदयपर अंकित कर स्वाधीनता के लिये युद्ध करने को खड़े हो जाते हैं—फिर चाहे वह स्वराज्य गणतंत्र, एकतंत्र, राजतंत्र या अराजक ही क्यों न हो? अपने देश को संपत्तिशाली बनाना यही उद्देश स्वतंत्रता को बनाये रखनेका नहीं होता है, किन्तु इसलिये स्वतंत्रता ही में आत्मशान्ति होती है, लाभ या हानि की अपेक्षा आत्मसम्मान अधिक महत्त्वपूर्ण होता है; पराधीनता के सुनहरे पिंजड़े की अपेक्षा स्वाधीनता का जंगल सहस्र गुना अच्छा है। जिन्होंने इन सिद्धान्तों को जान लिया, अपने धर्म और देश के प्रति अपना कर्तव्य पूरीतरह निबाहा, स्वधर्म और स्वराज्य के लिये तलवारें उँचाई और, केवल यश की आशा से नहीं, कर्तव्यपूर्ति के लिये मौत को गले लगाया उन के नाम सचाही एक गौरवपूर्ण स्मृति बनकर रहेंगे; वे नाम गर्व के साथ लिये जायँगे! हमारा देश उन जीवों के नाम कदापि स्मरण न करें, जिन्होंने लापरवाही या झिझकसे स्वाधीनता के युद्ध में हाथ न बँटाया। और जो शत्रु के पक्ष में चले गये तथा अपने ही देशबंधुओं के विरुद्ध लड़े उनके नाम सदा अभिशप्त रहें—उन की घोर निंदा हो! १८५७

* सं ५६—रसेल कृत माय डायरी इन इंडिया

की क्रांति यह नापने का अेक नाप था, कि भारत अेकता, स्वाधीनता और जनप्रिय शासन की ओर कितना झुका है–कितना अभिभूत हो चुका है। ×

१८५७ की क्रान्ति की असफलता का दोष अुन के सिर है जो आलसी, डरपोक, स्वार्थी और विश्वासघाती थे, अिन्होंने सत्यानाश किया। किन्तु जिन्होंने अपनाअी अुष्ण रक्त टपकानेवाली तलवार को अुठाकर, अुस महान पूर्वप्रयोग के लिअे अग्निमय रंगमचपर प्रवेश किया, जो प्रत्यक्ष मृत्यु की छाती पर आनंदपूर्वक नाचते रहे, अुन वीरों को दोष लगाने का साहस कोअी जीभ न करे! वे कोअी पागल नहीं थे, अुतावले न थे, हार में हाथ बँटानेवाले न थे; अविचारी भी न थे और अिसी से अुन्हें कोअी दोष नहीं लग सकता। अुन्हीं की प्रेरणा से भारतमाता अपनी गहरी नींद से जाग अुठी और पराधीनता की धज्जियाँ अुडाने के लिअे दौड पडी। किन्तु जब अुस के अेक हाथने अत्याचार के सिर पर अेक जबरदस्त वार दे मारा, हाय, हाय, अुस के दूसरे हाथ ने माता की छाती में छुरा घोप दिया। और घायल माता फिर अेक बार लडखडाती भूमिपर गिर पडी! अब अिन दो हाथों में कौनसा हाथ दुष्ट, नीच, विश्वासघाती और घृणायोग्य तथा दूषणयोग्य था?

× सं. ५७। भारतीय विद्रोह से अितिहासकारों को कअी पाठ मिल सकते है, अुन में अिस से बढकर कोअी महत्त्वपूर्ण पाठ नहीं है, कि भारत में ब्राह्मण तथा शूद्र, हिंदु और मुसलमान हमारे (अंग्रेजों के) विरुद्ध अेक हो कर क्रांति कर सकते हैं और हमारे अधिराज्य के बारे में यह मानना धोखे से खाली नहीं, कि भिन्न भिन्न धार्मिक रीतिरिवाजों का पालन करनेवाली जातियों से देश भरा है, तबतक अधिराज्य शान्तिपूर्वक बना रहेगा, क्यों कि, ये लोग अेक दूसरे के रहन–सहन, रीत–रिवाजों और कार्यों को समझते है और अुनका आदर भी करते हैं; अुसमें हाथ भी बँटाते हैं। ५७ के विद्रोह ने हमें याद दिलाया है, कि हमारा अधिराज्य अेक पतली परत पर खडा है, और समाज–सुधार तथा धार्मिक क्रान्तियों के भयकर विस्फोटों से किसी भी समय यह परत फट सकती है।–फॉरेस्ट के ग्रथ की भूमिका से।

सम्राट बहादुरशाह ऊँची श्रेणी का कवि था। क्रान्ति के कोलाहल में किसीने अेक शेर कहा था :

दम-दमे में दम नहीं, अब खैर माँगो जान की।
अै सफर ! ठंडी हुअी शमशीर हिंदुस्थानकी ॥

[सम्राट, आप हर दम में दुबले होते जा रहे हैं। अब आप के प्राणों की रक्षा के लिये याचना करो (अंग्रेजों से), क्यों कि सम्राट अब हिंदुस्थान की तलवार के सदा के लिअे टुकडे हो चुके हैं]

कहा जाता है, कि सम्राट ने यों जवाब दिया —

गाजियों में बू रहेगी जब तलक अीमानकी।
तब तो लन्दन तक चलेगी तेग हिंदुस्थानकी ॥

[समाप्त]

संदर्भ

['१८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य-समर' ग्रंथ में स्थान स्थान पर अुद्धृत अंग्रेजी अुद्धरणों का अनुवाद अुसी जगह दिया है; किन्तु जो सज्जन मूल अुद्धरण पढना चाहें, अुन की सुविधा के लिअे नीचे दिये जाते हैं। ग्रंथ में संदर्भ के क्रमांक दिये हुअे हैं, जैसे 'सं १.' अुस का मूल अुद्धरण नीचे पढिये।]

सं. १ पृ. २०

"The Valiant English Government on its part agrees to give the country or territory specified, to the Government or State of His Highness The Maharaja Chatrapati (The Raja of Satara): His Highness the Maharaja Chhatrapati and his Highness's sons and heirs and successors are perpetually, that is from generation to generation, to reign in sovereignty over the said territory."

सं. २ पृ. २२

Treaty of perpteutal friendship between the Honourable East India Company and His Highness the Maharaja Raghoji Bhonsle, his heirs and successors.

सं. ३ पृ ३७

"A quiet and unostentatious young man not at all addicted to any extravagant habits"—Sir John Kaye.

सं. ४ पृ ३८

"Nothing could exceed the cordiality which he constantly displayed in his intercourse with our coun-

trymen. The persons in authority placed an implicit confidence in his friendliness & good faith and the ensigns emphatically pronounced him a capitol follow
—Trevelyan's Cawnpore

सं ५ पृ ५०

The chances against him were many & great for he had diverse ordeals to pass through and he seldom survived them all When the claims of a great Talukdar could not be altogether ignored it was declared that he was a rogue or a fool They gave him a bad name & they straightway went to ruin them. It was at once a cruel wrong and a grave error to sweep it away as though it were an encumbrance and an usurpation."

सं. ६ पृ ५५

It is my firm belief that if our plan of education is followed up there would not be a single idolator in Bengal thirty years hence —Macaulay's Letter to his Mother October 12, 1836

सं ७ पृ ६३–६४

Kay says There is no question that beef fat was used in the composition of this tallow (Vol. 1 Page 381)

Lord Roberts says "The recent researches of Mr Forrest in the records of the Government of India prove that the lubricating mixture used in preparing the cartridges was actually composed of objectionable ingredients, cow s fat and lard and that incredible disregard of the soldier s religious prejudices was displayed in the manufacture of these cartridges —Forty years in India Page 431

सं ८ पृ ७२

' There were numerous letters from his English Fiancees and two from a Frenchman It seems proba-

ble that 'les principales' chooses to which Lafont hopes to bring satisfactory answers, were invitations to the disaffected and disloyal in Calcutta, & perhaps, the French settlers in Chandernagore to assist in the effort to be made to throw off the British yoke. A portion of the correspondence was unopened and there were several letters in Azimullah's own handwriting. Two of these were to Omar Pasha of Constantinople that told of the Sepoy's discontent and the troubled state of India generally."—Forty years in India Page 429

सं. ९ पृ. ७३

"Nana's object, then, was to lay the foundation of his future sovereignty at Cawnpore. The mighty power excercised by the Peshwas was to be restored: and to himself, the architect of his own fortunes, would belong the glory of replacing that vanished sceptre. There can be no doubt that such thought induced him." —Trevelyan Page 133.

सं. १० पृ. ७६

"No society of rich and civilised Christians who ever undertook to preach the gospel of peace and good-will can have employed a more perfect system of organisation than was adopted by these rascals whose mission it was to preach the gospel of sedition and slaughter."—'Cawnpore' Page 39

सं. ११ पृ. ७७

"For months, or years indeed, they had been spreading their net work of intrigues all over the country. From one Native Court to another, from one extremity to another of the great Continent of India, the agent of Nanasahib had passed with overtures and invitations secretly-perhaps mysteriously-worded to princes and chiefs of different races and religions, but most hopefully of all to Marhattas ..There is nothing in my mind more substantiated than the complicity of

Nanasahib in widespread intrigues before the outbreak of Mutiny The concurrent testimony of witnesses examined in part of the country widely distinct from each other takes this story altogether out of the claims of the conjectural. —Kaye's Indian Mutiny Vol 1 P 24-25.

सं १२ पृ ७८

Jawan Bakht commenced abusing declaring that the sight of the Kaffir Feringhi disturbed his serenity, spat in his face and desired him to leave. —Military Narrative Page 374.

सं १३ पृ ८०

'The second grenadier said that the whole regiment is ready to join the Nabob of Oudh. Subhadar Madarkhan Sirdarkhan and Ram Shahilal said that "In treachery no one could come up to the level of the beti-chod Feringis Though the Nabob of Oudh gave up his Kingdom he could not even get a pension. Many other letters, like this the English came across afterwards Kaye s Indian Mutiny Vol. 1 Page 429

सं १४ पृ ८५

A mandate had of late gone forth from the palace of Delhi enjoining the Mohomedans, at all their solemn gatherings to recite a song of lamentation indited by the regal musician himself which described in touching strains the humiliation of the race and the degradation of their ancient faith, once triumphant from the the northern snows to southern straits, but now trodden under the foot of the infidel and the alien. —Trevelyan s Cawnpore

सं १५ पृ ८६

Of this conspiracy the Moulvie was undoutedly a leader it had its ramifications all over India certainly

at Agra where the Moulvie stayed sometimes and almost certainly at Delhi, at Meerut; at Patna and at Calcutta where the ex-king of Oudh and a large following was residing."—Vol. V page 292.

सं. १६ पृ. ८९

"These incediary fires were soon followed by nocturnal meetings. Men met each other with muffled faces and discussed in exciting language the intolerable outrages the British Government had committed upon them."—Kaye's Indian Mutiny Vol. 1 page 365.

सं. १७ पृ. ९२

"On the Parade-ground about 1300 men were assembled. They had their heads covered so that only a small part of the faces was exposed. They said they were determined to die for their religion."—Narrative of Indian Mutiny Page 5.

सं. १८ पृ. ९४

"A man appeared with a lotus flower and handed it to the chief of the regiment. He handed it on to another. Every man took it and passed it on and when it came to the last, he suddenly disappeared to the next station. There was not, it appears, a detachment, not a station in Bengal, through which the Lotus flower was not circulated. The circulation of this simple symbol of conspiracy was just after the annexation of Oudh."—Narrative of Mutiny Page 4.

सं. १९ पृ. ९८

"Afterwards the worthy couple (Nana and Azimulla) on the pretence of piligrimage to the hills visited the military stations all along the main trunk road and went so far as Umballa. It has been suggested that their object in going to Simla was to tamper with the Gurkha regiments stationed on the hills. But

finding at their arrival at Umballa a portion of the regiments was in the Cantonment they were unable to effect their purposes with those men and desisted from their proposed journey on the plea of the cold weather —Russell s Diary

ब २० पृ १०८

In this lesser sense then and in this only did the cartridges produce the mutiny They were instruments used by the conspirators and those conspirators were successful in their use of the instruments only because in the manner I have endeavoured to point out the mind of the Sepoys and of certain sections of the population had been prepared to believe every act testifying bad faith of their masters.

Medley says — But in fact the greased cartridge was merely the match that exploded the mind which had, owing to the variety of causes been for a long time preparing.

Mr Disraeli dismissed the greasing of the cartridges with the remark that nobody believed that to have been the real cause of the outbreak. —Charles Ball s Indian Mutiny Vol 1 Page 629

Another author goes one step further and says "that the fear about the cartridges was a mere pretext with many is shown beyond all question. They have not hesitated to use freely when fighting against us the very cartridges which they declared would if used, have destroyed their caste

ब २१ पृ ११४

The name has become a recognised distinction for rebellious Sepoys throughout India —Charles Ball

This name was the origin of the Sepoys generally being called Pandeys —Lord Roberts Fortyone years in India

सं. २२ पृ. ११५

"It is certain, however that if this sudden rising in all parts of India had found the English unprepared, but few of our people had escaped this swift destruction. It would then have been the hard task of the British to reconquer India or else to suffer our Eastern Empire to pass into an ignominious tradition." Malleson Vol. V.

"The calamitious revolt at Meerut was, however. of signal service to us in one respect, in as much as it was a premature outbreak which disarranged the pre-concerted plan of simultaneous mutiny of Sepoys all over the country settled to take place on Sunday the 31st May 1857"—White's History page 17.

सं. २३ पृ १२२

"From this combined and simultaneous massacre on the 31st of May 1857, we were, humanly speaking, saved by the frail ones of the Bazaar. The mine had been prepared and the train had been laid, and it was not intended to light the slow match for another three weeks. The spark which fell from the female lips ignited it at once and the night of the 10th May saw the commencement of the tragedy never before witnessed since India passed under British sway."—J. C. Wilson's official Narrative.

"However much of cruelty and bloodshed there was, the tales, which gained currency, of dishonour to ladies, were, so far as my observation and enquiries went, devoid of any satisfactory proof"—Hon. Sir Wm. Muir K. C. S. I., Head of the Intelligence Department.

सं. २४ पृ १३२

"Officers as they went to sit on the court-martial swore that they would hang their prisoners, guilty or innocent, and, if he dared to lift up his voice against such indiscriminate vengeance, he was instantly silenced by the clamours of his angry comrades *Pri-*

-soners condemned to death after a hasty trial were mocked at and tortured by ignorant privates before their execution while educated officers looked on and approved —Holmes' History of the Sepoy War Page 124.

सं २५ पृ १४०

Had the Punjab gone we must have been ruined Long before reinforcements could have reached the upper provinces the bones of all Englishmen would have been bleaching in the Sun England could never have recovered the calamity and retrieved her power in the East —Life of Lord Lawrence Vol II Page 335

स २६ प १४२

Sir John Lawrence writes in one of his letters — Had the Sikhs joined against us nothing humanly speaking could have saved us No man could have hoped much less foreseen that these people would have withstood the temptation to avenge their loss of National Independence —October 21st, 1857

सं २७ पृ १८०

At every successive stage of the Military revolt the fact of a deep seated and widespread feeling of hatred and an unappeasable revengefulness for an assumed wrong is more plaintly developed. The desire for plunder was only a secondary influence in producing the calamities to which the European residents of various places were exposed —Charles Ball's Indian Mutiny Vol. 1 page 245

सं २८ पृ १८०

No sooner had been known in the districts that there had been an insurrection at Benares than the whole country rose like one mass Communications were cut off with the neighbouring stations and it appeared as if the Ryots and the Zemindars were about

to attempt the execution of the project which the Sepoys failed to accomplish in Benares."—Red Pamphlet Page 91.

सं. २९ पृ १८२

"Volunteer hanging parties went out into the districts and amateur executioners were not wanting to the occassion. One gentleman boasted of the numbers he had finished off quite "in an artistic manner," with mango trees for gibbets and elephants as drops. The victims of this wild justice being strung up, as though for pastime, in the form of a figure of eight."—Kaye and Malleson's History of the Indian Mutiny Vol. II Page 177.

सं. ३० पृ. १८८

"And with them went on not only the Sepoys who, a day before had licked our hands but the super-annuated pensioners of the Company's native army who though feeble for action, were earnest in their efforts to stimulate others to deeds of cowardice and cruelty."—Kaye's Indian Mutiny, Vol. III page 193. See also Red Pamphlet.

सं. ३१ पृ. २००

"Indeed one of the most remarkable features of the Mutiny has been the certainty and rapidity with which the natives were made aware of all important movements in distant places. The means of communication is chiefly by runners who forwarded messages from station to station with extraordinary celerity."—Narrative page 23.

स. ३२ पृ. २०७

Trevelyan says :"The Sepoys,familiar as they were with the brutality of low Europeans and the vagaries of Military justice, would at a less critical season have expressed small surprise either at the outrage or the

decision. But now their blood was up and their pride awake and they were not inclined to overrate the privilages of an Anglo Saxon or the Sagacity of the Military Tribunal —Cawnpore page 93

सं ११ पृ ११८

Before the Mutiny broke out the Moulvie travelled through India on a roving commission to excite the minds or his compatriots to the steps then contemplated by the master spirits of the plot. Certain it is that in 1857 he circulated seditious papers throughout Oudh that the police did not arrest him, and to obtain that end armed force was required He was then tried and condemned to death. But before the sentence could be executed Oudh broke into revolt and like many a political criminal in Europe he stepped at once from the floor of a dungeon to the foot steps of a throne —Malleson Vol IV page 379

Says Gubbins — The Moulvie of Fyzabad was released from jail by the mutineers Ho was of a respectable Mohamedan family and had traversed much of upper India exciting the people to sedition. He had been expelled from Agra for preaching sedition etc etc.

सं १४ पृ १४७

The well known writer of the Red Pamphlet says — All Oudh had been in arms against us Not only regular troops but sixty thousand men of the army of the ex-king the Zemindars and their retainers and two hundred & fifty forts most of them heavily armed with guns have been working against us They have balanced the rule of the Company with sovereignty of their kings & have pronounced almost unanimously, in favour of the latter The very pensioners who have served in the Army have declared definitely against us & joined in the insurrection.

सं. ३५ पृ २५१

"It was a most favourable moment for recovering his lost authority. It was merely necessary to accede to the proposal of the mutinious contigents & to revenge himself on the British. Had he so acceded and put himself at the head and accompanied likewise by his trusty Marhattas, and proceeded to the scene of action, the consequences would have been most disastrous to ourselves. He would have brought at least twenty thousand troops-and half of them drilled and disciplined by European officers—on our weak points. Agra and Lucknow would have been at once fallen. Havelock would have been shut up, in Allahabad, and either that fortress would have been beseiged or the rebels giving it a wide berth, would have marched through Benares on to Calcutta. There were no troops, no fortification to stop them."—Red Pamphlet Page 941.

सं. ३६ पृ २५४

"Wherever the Chiefs of the Native States hesitated to join the revolution, the people of the States became uncontrollable and tried to throw off the yoke even of their own chief, if he would not join the nation's war. Seeing this extraordinary upheaval of the populace Malleson says :—Here too, as at Gwalior, as at Indore, it was plainly shown that, when the fanaticism of the oriental people is thoroughly roused not even their king, their Raja-their father as all consider him, their God as some delight to style him—not even their Raja can bend them against their convictions. " The Sepoys of the Raja of Jaypur and Jodhpur refused point blank to raise their hands against their countrymen who were fighting for the nation, even when asked by their Rajas to do so."—Malleson's Indian Mutiny, Vol III Page 172.

सं. ३७ पृ २६३

Sir W. Russell, the famous correspondent of the London Times remarks:—We who suffered from it

think that there never was such wickedness in the world, and the incessant efforts of a gang forgers and utterly base scoundrels have surrounded with horrors that have been vainly invented in the hope of adding to the indignation and burning desire for vengeance which hatred failed to arouse Helpless garrisons surrendering without condition have been massacred ere now The history of Medeaval Europe affords many instances of crimes as great as those of Cawnpore The history of the more civilised periods could afford some parallel to them in more modern times and amid most civilised nations. In fact, the peculiar aggravation of the Cawnpore massacre was this—that the deed was done by the subject race by black men who dared to shed the blood of their masters and that of poor helpless ladies and children Here we had not only a Servile War and a sort of Jacquerie combined, but we had a war of religion, a war of race and a war of revenge of hope of national determination to shake off the yoke of a stranger and to reestablish the full power of native chiefs and the full sway of native religions. —Russell s Diary Page 164.

द १८ पृ २१८

Revolt had in consequence swept before it in many cases all regard to personal interest and all attachment to the former master The imputations of remaining faithful to Government in such circumstances have been intolerable It is well known that the few Sepoys who have remained in our services are deemed out castes not only by their comrades but their caste people in general These even say they can not venture to go to their home for not only would they be reproached and denied brotherly office but their very lives would be in danger —Rev Kennedy

द २१ पृ २८१

It is related that in the absence of tangible enemies some of our soldiery, who turned out on this

occasion, butchered a number of unoffending camp followers, servants and others who were huddling together, in vague alarm near the Christian Churchyard. No loyalty, no fidelity, no patient good service on the part of these good people could extinguish for a moment, the fierce hatred which possessed our white soldiers against all who wore the dusky livery of the East."—Kaye and Malleson's Indian Mutiny, Vol II, Page 438.

सं. ४० पृ. २१४

"After the defeat of Nanasahib's forces at Fatehpur some reputed spies were brought to Nanasahib. They were accused of being the bearers of letter supposed to have been written to distant stations by the helpless women in prison. In the correspondence, some of the Mahajans and Baboos of the city were believed to be complicated. It was therefore resolved that the said spies together with the women and children, as also the few gentlemen whose lives have been spared, should be all put to death."—Narrative of Revolt Page 113.

सं. ४१ पृ. २१६

"The refinement of cruelty–the unutterable shame with which, in some chronicles of the day this hideous massacre was attended, were but fictions of an excited imagination, too readily believed without enquiry and circulated without thought. None were mutilated, none were dishonured .This is stated in the most unqualified manner by the official functionaries, who made the most diligent enquiries into all the circumstances of the massacres in June and in July." — Kaye and Mallesson's Indian Mutiny, Vol. II, Page 281.

सं. ४२ पृ. ३०५

"As soon as the Sikhs entered the town a wild Fakir rushed forward into the road & with savage menaces & threatening gestures reviled them as traitors and accursed "—Patna Crisis, by Tayler.

सं ४३ पृ १०८

Commissioner Taylor himself says Pir ali himself was a model of a desparate and determined fanatic, repulsive in appearance with a brutal and sullen coutenance he was calm, self possessed almost dignified in language and demeanour He is the type of class of men whose unconquerable fanaticism renders them dengerous enemies and whose stern resolution entitles them in some respects to admiration and respect."

सं ४४ पृ १७१

' The following graphic picture is given of the defeat by an English officer You will read the account of the day s fighting with astonishment; for it tells how English troops with their trophies and their mottoes and their far famed bravery were repulsed, and they lost their camp their baggage and position to the scouted and despised natives of India! The beaten Firinghies-as the enemy has a right to call them have retreated to their entrenchments amidst overturned tents pillaged baggage men s kits, fleeing camels elephants and horses, and servants. All this is most melancholy and disgraceful. – Charles Ball s Indian Mutiny Vol II Page 190

सं ४५ पृ १८१

The slaughter of the English is required by our religion The end will be the destruction of all the English and all the Sepoys and then God knows." Charles Ball s Indian Mutiny Vol II, page 242

सं ४६ पृ ३११

' Sir W Russel says about this Begum The great bulk of Sepoy army is supposed to be inside Lucknow, but they will not fight as well as the Match-

lock-men of Oudh who have followed their chiefs to maintain the cause of their King Birjis Kadir, and who may be fairly regarded as engaged in a patriotic war for their country and their sovereign. The sepoys during the seige of the Residency never came on as boldly as the Zemindary levies and Nujeibis. The Begum exhibits great energy & ability. She has excited all oudh to take up the interets of her son & the chiefs have sworn to be faithful to him. We affect to disbelieve this legitimacy but the Zemindars who ought to be better judges of the fact accept Brijis Kadir without hesitation. Will Government treat these men as rebels or as honourable enemies? The Begum declares undying war against us. It appears from the energetic characters of these Ranees & Begums that they acquire in their Zenanas and harems a considerable amount of actual mental power and at all events, become intriguers. Their contests for the ascendency over the minds of men give vigour and acuteness to their intellect."—Russell's Diary. pege 275.

सं. ४७ पृ. ४५०

"No sooner did we turn into the road leading towards the gate, then the enemy's bugle sounded, and a fire of indescribable fierceness opened upon us from the whole line of the walls and from the tower of the Fort overlooking this site. For a time it appeared like a sheet of fire, out of which burst a store of bullets, round shots and rockets destined for our annihilation But the fire of the enemy waxed stronger, and amidst the chaos of sound, of volleys, of musketry and roaring of cannon hissing and bursting rockets, stink pots, infernal machines, huge stones, blocks of wood and trees, all hurled upon our heads, it seemed as though Pluto and the Furies had been loosened upon us, carrying death amongst us fast. At this instant a bugle sounded on our right for the Europeans to retire"—Lowe's central India P. 254.

टीं ४८ पृ ४५७

' With regard to this injustice done to Rao, Malleson has to confess Not a shot had been fired against him (Whitlock) but he resolved nevertheless to treat the young Rao as though he had actually opposed the British forces The reason for this perversion of honest being lay in the fact that in the palace of Kirwi was stored the wherewithal to compensate soldiers for many hard fight & many a broiling sun. In its vaults and strong rooms were specie jewels and diamonds of priceless value The wealth was coveted. —Kaye and Malleson s Indian Mutiny Vol V P 140–141

टीं ४९ पृ ४५८

' Then was witnessed action on the part of the rebels which impelled admiration from their enemies. The manner in which they conducted their retreat could not be surpassed. They remembered the lessons which the European officers had well taught them. There was no hurry no disorder no rushing to the rear All was orderly as on a field day Though their line of skirmishes was two miles in length, it never wavered in a single point the men fired then ran behind the relieving men and loaded. The relieving men then fired and ran back in their turn. They even attempted, when they thought the pursuit was too rash to take up a position, so as to bring on it an infilading fire " – Malleson s Indian Mutiny Vol. V P 124

टीं ५० पृ ४८०

" But it is difficult to describe the wonderful secrecy with which the conspiracy was conducted and the forethought supplying the schemes, and the caution with which each group of conspirators worked apart concealing the connecting links and instructing them with just sufficient information for the purpose in view

And all this was equalled onled by the fidelity with which they adhered to each other." –Western India, by George Le Grande Jacob, K. C. S. I; C. B.

सं. ५१ पृ. ४९२

Charles Ball says —" After the proclamation, still the struggle in Oudh was wonderful, and all these bands of rebels were strengthened and encouraged to an inconceivable degree by the sympathy of their countrymen They could march without commissariat for the people would always feed them. They could leave their baggage without guard for the people would not attack it. They were always certain of this position and that of the British for the poople brought them hourly information. And no design could be possibly kept from them while secret sympathisers stood around every mess table and waited in almost every tent in the British camp. No surprise could be effected but by a miracle, while rumour, communicated from mouth to mouth, outstripped even our cavalry."—Vol. I Page 572

स ५२ पृ. ४९२-९३

" At the end of January 1859, Sir W. H. Russell was still with Lord Clyde and in one of his last letters from Lucknow he tells a delightful story which he heard from the Commander-in-Chief. Alluding to this landlord at Allahabad (Anglo-Indian general merchant), Lord Clyde said, " You doubtless heard what he did?" 'No'. 'Well, he was much in debt to native merchants when the mutiny broke out. He was appointed special commissioner and the first thing he did was to hang all his creditors."

This 'delightful story' is not of course contained in any 'History of the Indian Mutiny'. It was not even contained in the Time's special correspondents letters to the Times intended for publication. It was mentioned only in a private letter of Sir W. H. Russel to John Delane.

टं ५३ पृ ५०९

Our remarkable friend Tatia Tope is too troublesome and clever an enemy to be admired Since last June he has kept Central India in a fervour He has sacked stations, plundered treasuries emptied arsenals collected armies lost them fought battles lost them, taken guns from native princes lost them taken more lost them then his motions were like forked lightening and for weeks, he has marched thirty and forty miles a day He has crossed the Narbuda to and fro He has marched between our colums behind them and before them Ariel was not more subtle aided by the best stage mechanism. Up mountains over rivers, through ravines and valleys amid swamps on he goes backwards and side ways and zig zag ways now falling upon a post-cart and carrying off the Bombay mails, now looting a village, headed and burned yet evasive as Proteus. —The Times, 17th January 1859

टं ५४ पृ ५१०

'It was accomplished. The nephew of the man recognised by the Marhattas as the heir of the last reigning Peshwa was on the Marhatta soil with an army The Nizam was loyal But the Times were peculiar Instances had occurred before, as in the case of the Scindia, of a people revolting against their sovereign when that sovereign acted in the teeth of the national feeling It was impossible not to fear lest the army of Tatia should rouse to arms the entire Marhatta population and that the spectacle of a people in arms against the foreigner might act with irrisistable force on the people of the Dekhan. —Malleson's Indian Mutiny Vol. V Page 239 240

टं ५५ पृ. ५१२

' One of the Great results that have flowed from the rebellion of 1857-1858 has been to make the inhabitants of every part of India acquaited with each other.

We have seen the tide of war rolling from Nepal to the borders of Gujerat,from the deserts of Rajputana to the frontiers of the Nizam's territories, The same men overrunning the whole land of India and giving to their resistance, as it were, a national character. The paltry interests of isolated states, the ignorance which men of petty principality have laboured under, in considering the habits & customs of other principalities — all this has disappeared to makeway for a more uniform appreciation of public events throughout India. We may assume that, in the rebellion of 1857 no national spirit was aroused, but we cannot deny that our efforts to put it down have sown the seed of a new plant and thus laid the foundation for more energetic attempts on the part of the people if, in the course of future years, England has not done something towards reconciling the numerous inconsistencies and suppressing some of the dangerous tendencies of its rule in India."—The Times 20th May 1859.

स. ५६ पृ ५२१

Yet it must be admitted that, with all their courage they (the British) would have been quite exterminated if the natives had been all and altogether hostile to them The desperate defences made by the garrisons were no doubt heroic; but the natives shared their glory, and they by their aid and presence rendered the defence possible Our seige of Delhi would have been quite impossible, if the Rajas of Patiala and Jhind had not been our friends and if the Sikhs had dot recruited in our battalions and remained quiet in the Punjab. The Sikhs at Lucknow did good service, and in all cases our garrison were helped, fed and strengthened by them in the field. Look at us all, here in camp, at this moment, our out-posts are native troops, natives are cutting grass for our horses and grooming them, feeding the elephants, managing the transports, supplying the commassariat which feeds us, cooking their tents, waiting on our officers, and even lending us their money. The soldier who acts as my amanuensis

declares that his regiment could not have lived a week but for the regimental servants, Doly bearers, hospital men and their dependents. Gurkha guides did good service at Delhi and the Bengal artillery men were as much exposed as the Europeans —Russel s My Diary in India.

सं ५७ प ५२२

"Among the many lessons the Indian Mutiny conveys to the Historian, none is of greater importance than the warning that it is possible to have a Revolution in which Brahmins & Shudras Hindus and Mohamedans could be united against us and that it is not safe to suppose that the peace and stability of our Dominions in any great measure, depends on the continent being inhabited by different religious systems for they mutually understand and respect and take a part in each others modes and ways and doings. The Mutiny reminds us that our dominions rest on a thin crust ever likely to be rent by titanic fire of social charges and religious revolution—Forrest s Introduction

क्रांतिकारी सामाजिक ग्रंथ

हिंदुओं की अवनति की मीमांसा

लेः—श्री. रघुनाथशास्त्री कोकजे

तर्कतीर्थ, सांख्यतीर्थ, धर्मपारीण.

सहायकः—पं. ग. र. वैशंपायन, विद्याभूषण.

मॉडर्न रिव्ह्यू कलकत्ता—'अे हार्ट सर्चिंग बुक!'

श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन—'अिस पुस्तक से मुझे नयी जानकारी मिली है।'

स्वामी जगद्गुरु श्री जानकीदासजी महाराज, अयोध्या

'अिस बहुमूल्य ग्रथ का सार्वभौम और व्यापक प्रचार होना चाहिये।'

प्राप्तिस्थानः—जोगल अॅन्ड सन्स

५७० शनवार पेठ पुणें. २ (Poona 2)

मूल्य—काला कागज २) सफेद कागज २॥)

डाकव्यय अलग.

सामाजिक क्रांति

वीर सावरकरजी

की लेखनीसे रूढियों, संकेतों, आचारों का वैज्ञानिक विश्लेषण। हिंदु समाज में खलबली मचा देनेवाली अनूठी पुस्तक। पृ सं. लगभग २००

'सामाजिक क्रांति'

प्रकाशित हो रहा है।

निर्मल साहित्य प्रकाशन
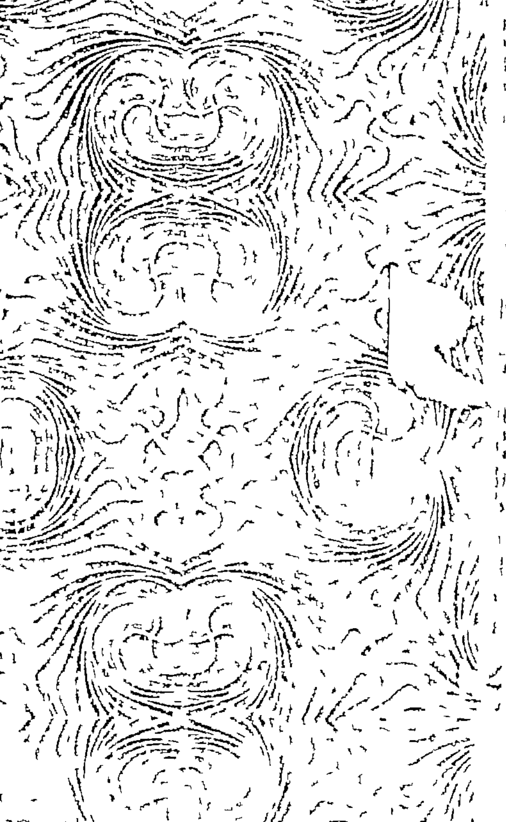
६९३ बुधवार पेठ, पुणें २.